

## भूमिका

भारतीय पुराण-साहित्य बड़ा विस्तृत है। उसने मानव-जीवन के लिये आवश्यक किसी क्षेत्र को प्रछूना नहीं छोड़ा है। जो लोग समझते हैं कि पुराणों में केवल धार्मिक कथाएँ, ऋषि-मुनि और राजाओं का इतिहास, पूजापाठ की विधियाँ और तीर्थों का वर्णन मात्र है, वे वास्तव में उनसे अनजान हैं। कितने ही पुराणों में औपधि विज्ञान, साहित्य और कला सम्बन्धी विवेचन, गृह निर्माण शास्त्र, साहित्य, संगीत, रत्न-विज्ञान, उद्योग विज्ञान, स्वप्न-विचार आदि विविध विषयों की पर्याप्त चर्चा की गई है। 'मग्न पुराण' में तो विविध विषयों में ज्ञान इतना अधिक संग्रह किया गया है कि लोग उसको प्राचीनकाल का 'विश्वकोश' कहते हैं। उसमें लगभग २००-२५० विषयों का परिचय दिया गया है। इस दृष्टि से 'नारद पुराण' भी प्रतिष्ठित है जिसमें अनेक प्रकार की उपयोगी विद्याओं का गम्भीर रूप से विवेचन किया गया है। 'गणेश पुराण' में चिकित्सा-शास्त्र और रत्न-विज्ञान की बहुत अधिक जानकारी भरी हुई है। 'पुराणों की इन्हीं विशेषताओं को देखकर प्राचीन साहित्य के एक बहुत बड़े ज्ञाता ने लिखा था—

“पुराणों में भारत की सत्य और शाश्वत आत्मा निहित है। इन्हें पढ़े बिना भारत का यथार्थ चित्र सामने नहीं आ सकता, भारतीय जीवन का दृष्टिकोण स्पष्ट नहीं हो सकता। इनमें आध्यात्मिक, आधि-दैविक, आधिभौतिक सभी विद्याओं का विशद वर्णन है। लोक जीवन के सभी पक्ष ( पहलू ) इनमें अच्छी तरह प्रतिपादित हैं। ऐसा कोई ज्ञान-विज्ञान नहीं, मन व मस्तिष्क की ऐसी कोई कल्पना अथवा योजना नहीं, मनुष्य-जीवन का ऐसा कोई अंग नहीं, जिसका निरूपण पुराणों में न हुआ हो। जिन विषयों को अन्य माध्यमों से मध्यमों में बहुत कठिनाई

होती है, वे बड़े रोचक दृष्टि से सरल भाषा में, आस्थान आदि के रूप में इनमें वर्णित हुए हैं।" पर सच पूछा जाय तो पुराणों का यही गुण कुछ 'आलोचकों' की निगाह में उनका 'दोष' बन गया है। स्रष्टा की प्रवृत्ति वाले लेखक और सरसरी निगाह से पढ़ने वाले पाठक उनकी अद्भुत और चमत्कार पूर्ण कथाओं को पढ़कर तुरन्त शोर मचाने लगते हैं—“देखा, पुराणों में कैंसी गप्पाष्टकें भरी पड़ी हैं। कहीं ऐसे भी व्यक्ति होते हैं जो एक महीना पुरुष और एक महीना स्त्री रहें और जिनके स्त्री रूप में सन्तान भी होजाय। कहीं सी-सी और दो-दो सी गज लम्बे मनुष्य भी हुआ करते हैं।”

पर कदाचित् वे यह नहीं जानते कि वैज्ञानिकों की खोज के अनुसार पृथ्वी पर आरम्भ का एक युग ऐसा भी था जिसमें सन्तानें नर-मादा द्वारा नहीं होती थी, वरन् किसी भी जीव से दूसरा जीव किसी तत्कालीन प्रणाली से उत्पन्न हो जाता था। निश्चय ही यह स्थिति करोड़ों वर्ष पहले थी, जब कि मानव-प्राणी तो दूर गाय, भैंस और घोड़े-हाथी जैसे पशु भी नहीं थे। पर कुछ भी हो उस समय पृथ्वी पर उन्हीं जीवों का अस्तित्व था, चाहे वे मछली के रूप में हो और चाहे किसी प्रकार के कीड़े-मकोड़ों, छिपकली जैसे प्राणी आदि के रूप में। इस वैज्ञानिक तथ्य को पुराने जमाने के साधारण मनुष्यों को, जब ज्ञान-विज्ञान की चर्चा बहुत ही कम फैली थी, समझा सकना असम्भव था। इस दशा में यदि किसी पुराणकार ने 'इला' नामक राजपुत्र की कहानी गढ़ कर और उसका सम्बन्ध किसी ऐतिहासिक व्यक्ति या वंश से जोड़कर समझा दिया तो इसमें क्या हानि हो गई? विद्वान् उनका यथार्थ भेद जानते हैं और पौराणिक कथाओं के थोटा केवल 'पुण्य' के विचार से उन रोचक वर्णनों को सुनते हैं और कुछ सोच उनसे सत्कर्म करने की कुछ शिक्षा भी ग्रहण कर लेते हैं। पर 'अर्द्धदग्ध' जीवों के लिए वे परेशानी का कारण बन जाती हैं, और वे द्युर-उधर से दो चार प्रसंगों को लेकर उन्हें

धूम्ररे रूप में वर्णन करने लगते हैं, और पुराणों के छिनाफ दस-पाँच खरी-खोटी बातें कहकर अपने को 'विद्वान्' समझने का संतोष कर लेते हैं ।

**पौराणिक साहित्य का विस्तार और महत्व—**

पर हम पाठकों को बतलाना चाहते हैं कि 'पुराण' धाम्नि में ऐसी 'निकम्मी' चीज नहीं है जैसा ये स्वयम्भू विद्वान् उनको सिद्ध करने का प्रयत्न किया करते हैं । अगर जो पुराणों के महत्व का उद्धरण दिया गया है वह भी मनमन्य आयु वेदों का परिगोचन करने वाले एक विद्वान् का है और ये वेदों तथा पुराणों का समन्वय करते इसी निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि "इति नाम पुराणान्या वेदे समुपबृंहयेन् ।" अर्थात् पुराणकारों ने मूल वैदिक तथ्यों को सर्वे साधारण को समझाने की दृष्टि से ही उनका विस्तार करके नाना प्रकार की कथाओं की रचना की है । इतना ही नहीं पुराणों का दावा तो इससे बहुत अधिक है । 'स्कन्द पुराण' के 'ऐवाक्य' में कहा गया है—

आत्मापुराण वेदाना पृथगङ्गानितानि पद ।

पञ्चदृष्टिहि वेदेषु तद्दृष्ट स्मृतिभिः किल ।।

उभय्या यत्तुष्टिहि तत्पुराणेषु गोपते ।

पुराण सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मण स्मृतम् ॥

"पुराण वेदों की आत्मा हैं । छ. वेदाङ्ग उससे पृथक् हैं । जो कुछ वेदों में देखा वही स्मृतियों में भी देखा गया । और वेद तथा स्मृति दोनों में जो कुछ देखा गया वह सब पुराणों में पाया जाता है । इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि पुराणों की ब्रह्माजी ने सब शास्त्रों से पहले कहा है ।"

हम इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि जब वेदों की लोकमान्य निकल जैसा विद्वान् कम से कम दस हजार वर्ष पुराना बनलात थे, तब पुराणों का रचना काल दो हजार वर्ष के भीतर माना जाता है ।

यही बात इन दोनों प्रकार के ग्रन्थों की भाषा की तुलना करने से प्रकट होती है। पर 'स्कन्द पुराण' के लेखक का कथन केवल वर्तमान समय में पाये जाने वाले हस्तलिखित तथा छपे हुए अठारह पुराणों के सम्बन्ध में नहीं है, बल्कि पौराणिक शैली के समस्त साहित्य से है चाहे वह लिखा हो अथवा जवानी कहा और सुना जाता हो। इस कथन पर विचार करने से अन्त में हमको यह स्वीकार करना पड़ता है कि वास्तव में वेद जैसी गम्भीर रचनाओं से पहले 'पुराण' जैसी लोक कथाओं का प्रचलन होना स्वाभाविक ही मानना चाहिये। सभी देशों और सभी कालों में इस तरह का 'लोक-साहित्य' ही पहले उत्पन्न और प्रचलित होता है और तत्पश्चात् वही उन्नत और परिष्कृत होते हुए स्थायी और गम्भीर साहित्य के रूप में परिणित हो जाता है। इसी तथ्य को ध्यान में रख कर किसी विद्वान् ने कहा था कि "संसार का सबसे पहला साहित्यकार कोई कहानी कहने वाला ही होगा।"

अब रह गई पुराणों में वर्णित धार्मिक विवरणों को अश्व-विम्बासों का रूप देकर उनके आधार पर लोगों की अवधारणा को जागृत करना और उसके द्वारा दान तथा पूजा पाठ के नाम पर मनमाना धन वसूल करना। इसके लिये पुराणों को दोष देना व्यर्थ है। यह काम तो प्रत्येक देश के धर्मजीवी (पण्डा-पुजारी) करते आये हैं। चालाक और धूर्त व्यक्ति प्रत्येक परिस्थिति में अपनी स्वार्थ सिद्धि का मार्ग निकाल ही लेते हैं। ऐसे ही लोगों ने पुराणों में तीर्थों तथा दान की अति प्रशंसा भर दी और उनमें 'रत्न पर्वत दान' 'भूमण्डल दान' 'सप्त समुद्र दान' जैसे अपूर्व दानों का विधान भी सम्मिलित कर दिया। इस दोष का उत्तरदायित्व एक विशेष मनोवृत्ति के व्यक्तियों पर है जो सदा से मौजूद हैं और जब तक एक बड़ी 'ज्ञान-क्रान्ति' न हो जायगी तब तक बने रहेंगे।

पुराणों का परिधत्त स्वरूप—

पुराणों का विवरण लिखते हुए 'भक्त्यपुराण' तथा अन्य पुराणों

में भी यह कहा गया है कि पहले एक ही पुराण था, फिर व्यास जी ने उस सोपों की सुविधा के लिये अठारह पुराणों के रूप में प्रस्तुत किया। पर यह सट्टा अठारह पर ही समाप्त नहीं हो गई। अठारह 'महापुराणों' के पश्चात् अठारह 'उप-पुराण' भी तैयार हो गये और उनके बाद भी लोगों ने 'लघु पुराणों' का निर्माण किया। वास्तव में अब 'पुराण' शब्द सब प्रकार के धार्मिक कथा-ग्रन्थों के लिए काम आने लगा है। इसीलिये इस आधुनिक युग में किसी लेखक ने 'गांधी-पुराण' भी लिखकर तैयार कर दिया है।

पर इन बातों से 'पुराणों' का महत्त्व कम नहीं हो जाता। यदि हम पुराणों के प्रबलित मस्तरणों का भी अध्ययन करें तो तरह-तरह की कथाओं के बीच में अध्यात्म, ब्रह्म-ज्ञान, विज्ञान, चरित्र, नीति आदि के सर्वोच्च उत्तम मिले-जुले दिखाई पड़ते हैं। कहने के लिए ही पुराण सृति-पूजा, तीर्थ-यात्रा, ज्ञान-दान आदि के मुख्य प्रचारक हैं पर साथ ही उनमें से अधिकांश में सृष्टि के मूल स्वरूप का जैसा वर्णन पाया जाता है वह आधुनिक विज्ञान की पहुँच से नहीं निकल ऊँचा है। उनमें सृष्टि विज्ञान और प्रलय (सर्ग और प्रति-सर्ग) का वर्णन करते हुए सदैव यही प्रतिपादित किया है कि इस समस्त विश्व ब्रह्माण्ड का आविर्भाव एक अमर और निराकार तत्त्व से हुआ है, जिसका कोई आदि अन्त नहीं है और न इसके विस्तार की कोई सीमा है। समस्त सूक्ष्म और स्थूल पञ्चभूत, समस्त देवता और सांसारिक प्राणी उसी में से उत्पन्न होते हैं और कुछ समय तक पृथक् रूप में दिखाई पड़कर अन्त में उसी में लय हो जाते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, नरक आदि समस्त देवता उसी एक मूलशक्ति के विभिन्न रूप और नाम हैं।

यद्यपि यह अव्यक्त और निराकार शक्ति की, दयालुता का वास्तविक मार्ग योग और ध्यान है, पर यह बहुत ही मोड़े लोपों के लिये सम्भव हो पाता है। ये सामान्य स्तर के व्यक्ति किसी अव्यक्त और

निराकार शक्ति का ध्यान कर सकने में असमर्थ होते हैं। ऐसे ही लोगों की संख्या १०० में से १० होती है। इसलिये उनकी सुविधा की दृष्टि से साकार मूर्तियों की योजना की गई है और उनकी प्रतिष्ठा के लिये मंदिरों का निर्माण और तीर्थों की स्थापना आवश्यक हुई। जिन पुराणों में किसी साधारण मन्दिर में मूर्ति दर्शन करने या गङ्गा अथवा नर्मदा जैसी नदी में एक बार स्नान करने से करोड़ों वर्ष तक स्वर्ग सुख भोगने का साधन दिखाया गया है, उन्हीं में सृष्टि की वास्तविकता के उपरोक्त तर्क और विज्ञान के अनुकूल रूप का भी विवेचन किया गया है।

इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आरम्भ में पुराणों का उद्देश्य जन साधारण के बीच धार्मिक तत्वों का प्रचार करना ही था। यह भी असम्भव नहीं है कि पुराणों की परम्परा का श्रीगणेश करने वाले वैदव्यास ही हों। इस अनुमान का कारण यह है कि व्यासजी का 'महाभारत' भी एक प्रकार का पुराण ही है, यद्यपि उसमें धार्मिक बातों के साथ राजनीतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक विषयों का विवेचन भी बहुत अधिक परिमाण में मिलता है, जिससे उसे 'इतिहास' कहा जाने लगा है। पर हमारे कथन का आशय यह नहीं कि व्यासजी ने पुराणों की जो रूपरेखा बनाई वही अभी तक स्थिर है। भाषा और लिपि में हजार पाँच सौ वर्ष में ही इतना अन्तर पड़ जाता है कि अधिकांश ग्रन्थों का नया संस्करण करने की आवश्यकता पड़ जाती है। फिर पुराणों में तो यह भी लिखा है कि व्यासजी ने एक ही पुराण संहिता बनाई और उसका विस्तार उनके शिष्य और फिर उनके भी शिष्यों ने किया—

आरयानेऽचप्युपाख्यानेर्गायामि वल्गुशुद्धिभिः ।

पुराण संहिता चक्रे पुराणार्थं विशारदः ॥

प्रम्यालो व्यास शिष्योऽभूत्सूतो वै रोमहर्षण ।

पुराण संहिता तस्मै ददौ व्यासो महामति ॥

सुमतिश्चाग्नि वचांस्य मित्रयुश्शांसपायनः ।  
 अकृतव्रण सावर्णी पट शिष्यास्तस्य चाभवन् ॥  
 काश्यपः संहिताकर्ता नावर्णिश्शांसपायनः ।  
 रोम हर्षणिका चान्ना तिमृणा मूल संहिता ॥

अर्थात्—“किर पुराणों के माता व्यासजी ने आख्यान, उपाख्यान गाथा और कल्पमुद्धि से युक्त ‘पुराण-संहिता’ की रचना की । इस पुराण संहिता का अध्ययन व्यासजी ने अपने सुप्रसिद्ध शिष्य रोमहर्षण मूत्र की कराया । रोम हर्षण के छ शिष्य हुए—सुमति, अग्निदर्षा, मित्रायु, शासपायन, अकृतव्रण और सावर्णि । इनमें से काश्यप गोत्रीय अकृतव्रण सावर्णि और शासपायन ने पृथक्-पृथक् तीन संहितायें रचीं । उन तीनों का मूल आधार रोमहर्षण द्वारा रचित एक संहिता थी ।

इसके पश्चात् भी इन सबकी आगामी शिष्य मंडली में से अनेक विद्वान् अपने देश-काल के अनुसार उन संहिताओं की वृद्धि करने रहे, उनमें नये-नये प्रेरणाप्रद आख्यान और उपाख्यान रचकर सम्मिलित करते रहे । ये सब कथावाचक शिष्य ‘मूत्रजी’ या ‘व्यासजी’ कहलाते थे । इनमें सभी प्रकार के व्यक्ति थे । कुछ विशेष रूप से धर्मपरायण और परमार्थी थे तो कुछ में जाति परायणता और सामाजिकता की मात्रा अधिक थी । यदि ऐसे कथावाचकों ने तीर्थ यात्रा, स्नान-दान और प्रजोत्सव वाले लोगों को यशसक्ति बढाकर अपन आत्माओं को अधिकाधिक ‘दान’ देने की प्रेरणा की हो तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है । जब हम् अठारहों पुराणों पर एक बिहयम दृष्टि डालते हैं और उनकी विषय सूचियों का विवेचन करते हैं, तो हमका यह प्रतीत होने लगता है कि सब पुराण एक ही दृष्टिकोण से नहीं रचे गये हैं । किसी में धर्म-साधन की प्रधानता है, किसी ने जप-तप द्वारा आध्यात्मिकता का महत्त्व विशेष बतलाया है और किसी ने हर तरह के दान-पुण्य पर ही अधिक बल दिया है । ‘लघुपुराण’ में तीसरी श्रेणी के दानें बहुत

अधिक सख्या में थे । यद्यपि हमने वर्तमान संस्करण में उनमें से अधिकांश को छोड़ दिया है, तो भी नमूने के तौर पर जिन 'व्रत' और 'दानों' का वर्णन आ गया है उनसे पाठक हमारे कथन की यथार्थता का अनुमान कर सकेंगे ।

**पुराणों की परमार्थ और अध्यात्म भावना —**

पर इस एक बात से ही हम पुराणों की मलाई-बुलाई का निर्णय नहीं कर सकते । हम इस बात को पूरी तरह नहीं समझ सकते कि जिस समय—अर्थात् से एक-डेढ़ हजार वर्ष पहले पुराण-साहित्य का इस प्रकार विस्तार किया गया, देश और समाज की क्या परिस्थिति थी । सम्राट अशोक से लेकर पृथ्वीराज चौहान तक के शासन काल के बीच देश की क्या राजनीतिक और सामाजिक स्थिति थी, इसका पता इतिहास ग्रंथों से बहुत कम लगता है । पर पुराणों के विवरणों को समझने में यदि अन्तर्दृष्टि से काम लिया जाय तो यह प्रतीत होता है कि इस हजार-बाग़ह सौ वर्ष के युग में एक देशव्यापी क्रांति होकर नये समाज का संगठन हो रहा था । बौद्ध धर्म की प्रबलता ने प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था को तोड़-फोड़ दिया था, उसी के अभावक्षेपों पर हमारे धर्मचार्य पुनः हिन्दू-धर्म-भवन के पुनर्निर्माण का प्रयत्न कर रहे थे । इस बीच में देश की अस्त-व्यस्त राजनीतिक अवस्था को देखकर यवन, ग्रीक, शक, सिथियन आदि विदेशी जातियों ने आक्रमण भी किया था । उन आक्रमणकारियों में से लाखों व्यक्ति यहाँ बस भी गये और देश के किसी भू भाग पर उन्होंने बहुत वर्षों तक शासन भी किया । ऐसी परिस्थिति में जो पुराण ग्रन्थ रचे गये अथवा प्रचलित किये गये उनमें पूर्ण रूप से विशुद्ध वैदिक भावनों की स्थिर रखना कठे सम्भव हो सकता था ?

यूनानी-सम्राट सिकन्दर के आक्रमण तथा बुद्ध धर्म की प्रभुता होने से पूर्व, देश की वैदिक संस्कृति अक्षुण्ण थी । उसमें जो परिवर्तन होते थे वे आन्तरिक कारणों के आधार पर ही होते थे । पर विदेशियों के



आक्रमण और उनमें से लाखों, करोड़ों व्यक्तियों के भारतीय समाज में मिले जाने के पश्चात् परिस्थिति बहुत कुछ बदल गई और उसके बाद जो धार्मिक संगठन बनाया गया और धार्मिक नियम प्रचलित किये गये उनमें देश काल की बदली हुई परिस्थिति का प्रभाव पड़ना अनिवार्य था । सभार के अन्य धर्म तथा जातियाँ तो इस प्रकार के आक्रमणों से सर्वथा ही नष्ट हो गये । जैसे यूनान, रोम, और ईरान की प्राचीन संस्कृति और धर्म का नाम ही इतिहास में शेष रह गया है । पर यह वैदिक धर्म की ही विशेषता थी कि विदेशी आक्रमणों और युद्ध धर्म द्वारा उत्पन्न गृह-कलह के भयंकर आपात को सह कर भी उसने अपनी 'आत्मा' की रक्षा कर ली । हमारे तत्त्वानीय धर्माचार्यों ने मधीन सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों के कारण बाह्य पूजा, उपासना, कर्मकाण्ड की विधियों में परिवर्तन किया, वैदिक यज्ञों का स्थान मंदिर और तीर्थों की भक्तिमार्गीय उपासना-पद्धति ने ग्रहण किया, पर साथ ही वैदिक सिद्धान्तों और आदर्शों को उनमें बराबर समाविष्ट किया गया, प्रत्येक विधि-विधान में उन्हीं की घोषणा की गई । साथ ही समस्त पौराणिक-धर्म कलेबर का लक्ष्य भी वैदिक आध्यात्मिक सिद्धान्त ही रहे गये । इस तथ्य का विवेचन हमकी "वायु-पुराण" के अंतिम अध्याय "व्यास सप्तथ वर्णन" में मिलता है । उसमें पुराणों में वर्णित लौकिक धर्म विधियों का वस्तुस्थिति करते हुए अन्त में मानव आत्मा के आध्यात्मिक लक्ष्य को ही प्रधानता दी गई है । उसमें स्पष्ट कहा गया है—

‘हे मूनजी ! आप तो भगवान के सच्चे भक्त हैं । व्यासजी की कृपा से आपने धर्म शास्त्रों का पूर्णतः अध्ययन कर लिया है । हे निष्ठाप आपने अठारहों पुराणों और इतिहासों का आदि से अन्त तक अच्छी तरह वर्णन किया है । इन पुराणों में आपने बहुत से धर्मों का निरूपण किया है । उसमें गृहस्थ, त्यागी, सन्यासी, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, स्त्री, शूद्र आदि के धर्म कर्तव्यों का वर्णन किया गया है । ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य

द्विजानियो तथा इनसे उत्पन्न जो अन्य सकर जातियाँ—गंगा आदि महा नदियाँ और यज्ञ, दान, तप, दान, यम-नियम, योगाभ्यास, साध्य-सिद्धान्त, भक्ति-मार्ग, ज्ञानमार्ग आदि सबका आपने वर्णन किया है। कर्मों और उपासना द्वारा चित्त की शुद्धि और धर्म प्राप्ति के सम्बन्ध में भी आपने बतलाया है। आपने ब्राह्म, शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर ( सूर्योपासक ) तथा बह्व ( जैन बौद्ध आदि )—इन छः प्रकार के दर्शनों का भी परिचय दिया है। इन सब तथा अन्य प्रकार के विषयों का पुराणों में आपने विवेचन किया है। अब हम आपसे कहना चाहते हैं कि इनसे आगे भी क्या अन्य कोई उत्तम विषय जानने को शेष रह जाता है ?” प्रश्नकर्त्ता मुनियों ने बहुत स्पष्ट रूप से कहा—

न ज्ञायेत यदि व्यासो गोपायदथ भवान् ।

अत्र न सशय छिन्धि पूर्णं पौराणिको यतः ॥

अर्थात्—“यदि व्यासजी ने किसी विषय का वर्णन न किया हो अथवा आपने ही कुछ गोपन कर लिया हो—न बतलाया हो, तो अब उसे भी कहकर हमारे सशय को दूर कीजिए ।”

मूनजी ने कहा—“हे शौनक ! आप ध्यान पूर्वक सुनो, मैं आपके ‘मुहुर्लभ’ ( महत्त्वपूर्ण ) प्रश्न का उत्तर देता हूँ। पराशर मुनि के पुत्र महर्षि व्यास देव ने समस्त वेदों के अर्थ से समावृत्त पौराणिक कथा की रचना करके फिर चित्त में विचार किया कि मैंने वर्णों तथा आश्रमों के पालन करने वालों के धर्म का जनी भाँति वर्णन कर दिया है और वेद से अविरोध रखने हुए बहुत प्रकार के मुक्ति मार्गों का भी निरूपण कर दिया है। शूत्रों की व्याख्या करते हुये जीव, ईश्वर और ब्रह्म का भेद भी प्रकट किया है और श्रुति ( वेद ) के सिद्धान्तानुसार परब्रह्म का स्वरूप भी बतलाया है। एक मात्र परम ब्रह्म ही आवनाशी तरंग है जो सती की शान्त करने के लिये ब्रह्मचारी से लेकर संन्यासी तक सब

आधर्मों के व्यक्ति 'ब्रत' ( धर्मचिन्ता ) किया करते हैं । मैं वेदों के इस सिद्धान्त को भी जानता हूँ कि यह समस्त विश्व ब्रह्मा से प्रकट नहीं है वरन् उसी से इस प्रकार उत्पन्न होता और भिन्नता रहता है जैसे बहते हुए फेनिल जल में बुलबुले उठते और टूटते रहते हैं । पर किसी-किसी स्थान पर यही सुनने में आता है कि इस परम ब्रह्मा के ऊपर भी 'गोलोक' में भगवान् कृष्ण दीप्यमान होते हैं । इसका रहस्य जानना सर्वाधिक महत्वपूर्ण है ।"

जब व्यास जी बहुत कुछ ऊहापोह करने पर भी इस प्रश्न का संतोषजनक उत्तर न पा सकें तो उन्होंने निरवयव किया कि इसका निर्णय केवल तप द्वारा हो सकता है । तब वे सुमेरु पर्वत की एक गुफा में जा बैठे और दीर्घकाल तक समाधि अवस्था में ध्यान करते रहे । अन्त में उनके सम्मुख वेद भूतिमान रूप में प्रकट हुए और उन्होंने कहा —

—

हे व्यास ! आप महान् प्राज्ञ हैं, शरीर धारण करने पर भी आप 'विष्णु आत्मा' हैं । आप अजन्मा होकर भी संसारी प्राणियों के उद्धार की इच्छा से यह सब कर रहे हैं । हमारा ठीक अर्थ बही है जो आपने प्रकट किया है । पुराणों, इतिहासों और सूत्र ग्रन्थों में उसे आपने अनेक प्रकार से प्रकट किया है ( ऐसा पात्र भेद से किया गया है ) । तो भी हम आपके प्रश्न का उत्तर देते हैं कि परब्रह्मा ही अविनाशी तत्त्व है और वही कारणो ना भी कारण है । वह आत्मस्वरूप पुण्य की गन्ध की भाँति सदैव स्थिर रहता है । महाप्रलय हो जान पर उस अक्षर ब्रह्मा से परे केवल 'रस' रहना है । पर हम शब्दात्मक होने से उस शब्दातीत तत्त्व का वर्णन करने में समर्थ नहीं हैं ।"

इस प्रकार पुराणों में सामान्य बुद्धि के मनुष्यों के लिये मन्दिर, तीर्थ आदि का माहात्म्य-वर्णन से लेकर पूर्ण आत्मज्ञानियों के लिए अक्षर-तत्त्व और 'रस' ( भगवद्भक्ति और विश्वप्रेम ) का भी निरूपण कर

दिया गया है। उनमें धर्म-साधन के जो अनेक मार्ग बतलाये हैं उनका एक कारण तो सम्प्रदाय भेद है और दूसरा कारण उपासक की योग्यता और शक्ति है। प्रत्येक व्यक्ति उपनिषदों में वर्णित आत्म तत्त्व और ब्रह्म-ज्ञान तथा माया-सिद्धान्त को हृदयङ्गम नहीं कर सकता। इसलिये पुराणकारों ने उसे अनेक प्रकार से सरल रूपों में वर्णित किया है जिससे प्रेरणा लेकर हर ध्येयी और योग्यता के व्यक्ति न्यूनाधिक अंशों में धर्माचरण करते रहे। धर्माचरण ही व्यक्ति और समाज के उत्थान तथा कल्याण का मुख्य साधन है, और उसमें मयाशक्ति लगे रहना मानव मात्र का कर्तव्य है।

‘मत्स्य पुराण’ की विशेषताएँ —

इस प्रकार के पुराण-साहित्य में “मत्स्यपुराण” का दर्जा उभयपक्षीय है। एक तरफ तो इसमें व्रत, पर्व, तीर्थ आदि में अधिकाधिक बान देने की प्रेरणा की है और दूसरी तरफ राजधर्म, सासन, धर्मव्याख्या, गृह निर्माण, मूर्तिकला, कानून विधान, शकुन-शास्त्र आदि जीवनोपयोगी विषयों का भी विनाद रूप में विवेचन किया है। भारतीय साहित्य में नारी जाति की गरिमा का परिचय देने वाला प्रसिद्ध ‘सावित्री उपाख्यान’ मुख्य रूप से इसी में विस्तार पूर्वक दिया गया है। वाराणसी, हिमाचल, नमदा आदि की प्राकृतिक शोभा का वाक्यमय वर्णन साहित्यकदृष्टि से उन्चकोटि का माना जा सकता है। और भी कितने ही विषय ऐसे हैं जो इस पुराण की उत्कृष्टता तथा उपादेयता को प्रमाणित करते हैं। यद्यपि अम परिस्थितियों के बदल जाने से अधिकांश पाठक उनकी उपयोगिता बहुत कम अनुभव कर सकेंगे, पर अब से कुछ सौ वर्ष पहले ही हमारे देश का एक बड़ा भाग उन्हीं का अनुसरण करने वाला था।

राजधर्म वर्णन—

मत्स्य पुराण का ‘राजकृत्य’ और ‘राजधर्म’ वर्णन विदोष रूप से महत्व रखता है। इसमें केवल प्रजा-पालन करने और दान-पुण्य का ही

जिक्र नहीं किया गया है, खरन् खास तौर पर इस विषय का व्यावहारिक ज्ञान दिया गया है। यद्यपि वर्तमान वैज्ञानिक-युग में ये बातें बहुत अधिक बदल गई हैं—तलवार तथा तीरों के युद्ध के बजाय वायुयानों से बम वर्षा और राकेटों से युद्ध होने का जमाना आ गया है, तो भी अब से दो-चार सौ वर्ष पहले तक भारतीय नरेशों के लिये राज व्यवस्था और शासन सञ्चालन के ये नियम और विधियाँ ही उपयोग में आती थीं। प्राचीनकाल में राज्य का पूरा अस्तित्व एक मात्र राजा पर ही रहता था। यदि उसे किसी भी उपाय से नष्ट कर दिया जाय तो सारी राज-व्यवस्था खण्ड-खण्ड हो जाती थी। इसलिये अन्य बानों के साथ राजा की अपनी सुरक्षा के लिये भी सदैव सज्ज रहना पड़ता था। इस सम्बन्ध में 'भारत पुराण' का निम्न वर्णन दृष्टव्य है।

“राजा को सदैव बीए के समान शस्त्रा युक्त रहना चाहिये। बिना परीक्षा किये राजा को कभी भोजन और शयन नहीं करना चाहिये। इसी भाँति पहले से ही परीक्षा करके वस्त्र, पुष्प, अलंकार तथा अन्य वस्तुओं को उपयोग में लाना चाहिये। कभी भीठभाड में न घुमना चाहिये और न अज्ञात जलानय में उतरना चाहिये। इन सबकी परीक्षा पहले विवासी पुष्पों द्वारा करा लेनी चाहिये। राजा को उचित है कि अनजान हाथी और घोड़े पर कभी सवार न हो और न किसी अज्ञात स्त्री के सम्पर्क में आवे। देवोत्सव के स्थान में उसे निवास करना नहीं चाहिये। अपने राज्य तथा दूसरे राज्यों में भी उसको जाने हुये विचक्षण बुद्धि वाले, कष्ट सहिष्णु और सकट से न घबड़ाने वाले, गुप्तचरो ( जासूसों ) को नियुक्त करना चाहिये जो उसे सब प्रकार के रहस्यों की सूचना देते रहें। फिर भी राजा को किसी एक ही गुप्तचर के कथन पर विश्वास नहीं कर लेना चाहिये। जब दो-चार गुप्तचरों की रिपोर्टें से उस बात का समर्थन हो जाय तब उस पर भरोसा करे।”

इस वर्णन में आश्चर्य या अविश्वास करने की कोई बात नहीं

है । अन्य लोगो से संघर्ष करने वाले धीरे दूसरो या स्वस्व अपहरण करने वाले शासकों की स्थिति ऐसे युगों में ही रहती है । पुरानी बातों को छोड़ दीजिये वर्तमान समय में भी जर्मनी के डिक्टेटर हिटलर को अपनी रक्षा के लिये, अपनी शक्ति, सूरत से मिलते हुए, और, वृत्ति, ही पोशाक तथा रंग दग वाले कई व्यक्ति अपने निवास स्थान में रखने पड़ते थे; जिससे कोई जल्दी ही उसकी हिटलर को पहिचान कर आक्रमण न कर सके । इसी प्रकार की सुरक्षा व्यवस्था बालकन प्रदेश के और भी कई शासक रखते थे, जहाँ पडयंत्रकारियों और गुप्त घातकों का अधिक जोर था । अब भी ऐसे बड़े शासकों के प्राण-नाश के लिए तरह-तरह की धालाकियों से काम लिया जाता है । रूस के जार को मारने के लिये पडयंत्रकारियों ने एक बड़ी घन्टा घड़ी तैयार की थी जिसके भीतर डाइ-नामाइट का भयंकर बम छुपा था । इस घड़ी को गुप्त रूप से राज-महल ( विण्टर पैलेस ) के किसी कमरे में लगवा दिया गया । एक नियत समय पर जब उसका घटा बजा तो उसकी घोट से बम फूट गया और महल का एक भाग उड़ गया । जब इस जन-जागृति के युग में ऐसी घटनायें सम्भव हैं तो प्राचीनकाल के एकतन्त्र नरेशों को सावधान रहने की कितनी अधिक आवश्यकता थी, इसे स्वीकार करना ही पड़ेगा ।

**प्राचीन काल की सैनिक व्यवस्था—**

यह तो हुआ अपनी शारीरिक रक्षा का वर्णन । अब राज्य की रक्षा के लिये इससे कहीं अधिक तैयारियाँ करनी पड़ती हैं । 'मत्स्य-पुराण' के अनुसार दुर्ग या किले छः प्रकार के होते हैं—धनुदुर्ग, महीदुर्ग, मरदुर्ग, बार्दुर्ग, जलदुर्ग और गिरिदुर्ग । इनमें से अपनी परिस्थिति के अनुसार किसी एक प्रकार का किला बनवा कर उसमें रक्षा की सब प्रकार की सामग्री इकट्ठी करनी चाहिए । इस सम्बन्ध में पुराणकार ने अस्त्र-शस्त्रों तथा अन्य सामग्री की जो सूची दी है, उससे हम प्राचीन काल के युद्धों के स्वरूप का बहुत कुछ अनुमान कर सकते हैं—

“दुर्ग में सभी प्रकार के आयुधों का संग्रह करना अत्यावश्यक है । इसके लिये राजा को घनुष, तीर, तलवार, तोमर, बवेच, लट्ठ, फरसा, परिष, पत्थर, मुगदर, त्रिशूल, पट्टिश, कुठार, श्राम, माला, मक्ति, चक्र, चर्म आदि का संग्रह करना आवश्यक है । कुशल, धुर, दैत, घास-फूस और अन्न की भी व्यवस्था रहे । ईंधन और तेल का पूरा संग्रह होना चाहिये ।”

युद्धकाल में सेना के लिये खाद्य और घासों की चिकित्सा के लिये औषधियों का संग्रह भी आवश्यक है । इनका वर्णन करते हुये कहा है—“जौ, गेहूँ, मूँग, उद, चावल आदि सब प्रकार के अन्न इकट्ठे किये जायें । सन, मूँज, साख, मुहागा, सोहा, सोना, चाबी, रत्न, वस्त्र आदि सभी आवश्यक वस्तु, जो यहाँ नहीं हैं और नहीं भी नहीं हैं, राजा द्वारा सचिव को जानी चाहिये । सब प्रकार की वनस्पतियाँ तथा औषधियाँ जैसे—जीवकपण, काकोल, आमलकी, शालपर्णी, मृदपपरणी, माणपर्णी, सारिवा, घना, घारा, श्वत्तनी, कृष्णा, बहती, कण्टकारीका, शृंगी, शृंगाटकी, झोशी, वर्जाम्बू, दर्भ, रेणुफा, मधुपर्णी, विदारिकम्ब, महाक्षीरा, महामवा, महदेई, कटुफ, एरण्ड, पर्णी, शत्राक्षरी, फल्गु, सत्रंर्याष्टिका, शुक्रति शुक्रा, अरमरी, छत्रानि छत्रका, बीरणा, इन्दु, इक्षुविहार ( सिरका ), सिही, अश्वरोघक, मधुक क्षतपुष्पा, मधुसिका, मधूर, पीपल, ताल, आन्मगुष्पा, कटुकना, दात्रिना, राजसीर्पकी, राजसर्प ( सरसो ), धाम्याक, उत्तरटा, कालशाक, पद्मक्षीज, गोवल्ली, मधुदन्तिका, जीतपाकी, कुमेरक्षी, कार्वाजिहवा, उरुपिका प्रदुप, गुञ्जानक, पुनर्नवा, कसेरू, वादकाक्षीरी, कल्या, शालूक, जैमर, सत्रनुप धान्य, शनीजान्य, क्षीर, क्षीर, तक्र, तैल, वसा, मज्जा, घृत, गोम, आर्याष्टक, सुग, जामक, मय, मण्ड आदि सभी का संग्रह किया जाय ।”

यह सूची बहुत बड़ी—इससे लगभग चार-पाँच गुनी है। हमने केवल थोड़े से नाम चुन कर दे दिये हैं, जिससे पाठक अनुमान कर सकें कि उस समय भी चिकित्सकों की जड़ी-बूटियों का पर्याप्त ज्ञान था। आजकल भी मुद्रक्षेत्र में सेनाओं के साथ बड़े-बड़े अस्पताल रहे जाते हैं, जिनमें सैकड़ों डाक्टर और नर्स काम करते हैं। उनमें औषधियों का भी बड़ा भण्डार रहता है, जिसमें हजारों तरह के इन्जेक्शन, कैप्सूल, टैब्लेट, टिचर, एसिड आदि होते हैं। पहले जंगल की वनस्पतियों अपने असली रूप में ही अधिकतर काम में लाई जाती थी, अब इनको वैज्ञानिक प्रक्रिया से साररूप में बदल कर इन्जेक्शन, टैब्लेट आदि के रूप में बना दिया जाता है। साथ ही पार्श्वों की चिकित्सा के लिए घी, तेल, चर्बी, मज्जा, अन्तड़ी, हड्डी आदि का प्रयोग भी किया जाता था।

### योग्य राज्य कर्मचारियों का चुनाव:—

पर इन सब बातों से भी अधिक महत्वपूर्ण है योग्य राज्य-अधिकारियों और कर्मचारियों का चुनाव। इस प्रकरण के आरम्भ में ही यह कहा गया है कि “चाहे कोई छोटा कार्य भी क्यों न हो पर उसे किसी अकेले व्यक्ति द्वारा पूरा किया जा सकना बड़ा कठिन होता है। फिर राज्य शासन तो परम विशाल और महत्व का कार्य है। अतएव मृपति को स्वयं ही ऐसे कुलीन सहायकों का चरण करना चाहिए जो शूरवीर, उत्तम जाति के, बलशाली और थी सम्पन्न हो। इस सम्बन्ध में राजा को यह ध्यान रखना चाहिये कि सहायक रूप और अच्छे गुणों से सम्पन्न सज्जन, समाशील, सहिष्णु, उत्साही, धर्म के ज्ञाता और प्रिय वचन बोलने वाले हो।

“सेनापति राजा का परम सहायक होता है। वह कुलीन, शीलस्वभाव से मुक्त, धनुर्विद्या का महान् ज्ञाता, हाथियों और घोड़ों की शिक्षा में प्रवीण, शत्रु-शास्त्र की ज्ञानन वासा, चिकित्सा के सम्बन्ध में



ज्ञान रखने वाला, कृत्तज्ञ, कर्मभूर सहिष्णु, शय प्रिय, शूद्र तत्वों के विधान का ज्ञाता हो। ऐसे विशिष्ट गुणों से युक्त व्यक्ति को सेनाध्यक्ष बनाना चाहिए। राजा का दून ऐसा व्यक्ति होना चाहिये जो दूसरों के चित्त के भावों को ठीक तरह समझता रहे। वह अपने स्वामी के कर्तव्य के प्राण्य को ठीक ढंग से प्रकट करने वाला, देश भाषा का विद्वान् दाम्नी साहसी और देश-जात की परिस्थिति को समझने वाला होना चाहिये, राजा के अग्रदूत हर तरह से मुर्नद, बहादुर, दृढ़ राजभक्त और धैर्यवान् हो। सधि और विग्रह का निर्णय करने वाला अछिर्ण ( विदेश सचिव ) नीति जालो का पठित, देशभाषाओं का विद्वान्, पद्गुण का ज्ञाता और परम व्यवहार कुशल होना चाहिये। आय व्यय विधान का अध्यक्ष ऐसा व्यक्ति हो जो देश की उपज से अच्छी तरह परिचित हो। रसोई घर का अध्यक्ष पाकशास्त्र के साथ ही चिकित्साशास्त्र का भी पूर्ण ज्ञाता हो।”

‘मत्स्यपुराण’ में राजा के कर्तव्यों और राज्य व्यवस्था का जो वर्णन किया है उससे विशिष्ट होगा है कि पुराण काल में भी राजाओं का जीवन भीना सुख और ऐश धारण का न था, जैसा जनमानसों में कल्पना किया करते हैं। निस्सन्देह उसके सर पर रत्नदटित मुकुट होना था वह सोन के विहामन पर बैठता था और उसके महल में बीसियों रानिया और सैकड़ों दाम-दासी होते थे, पर उसे सदा प्राणों का खटका भी बना रहता था। जो राजा इन कर्तव्यों की अवहेलना करते थे, और राग-रग में डूब कर कृतार्थन करने लगते थे वे प्राण दूसरे राजाओं के आक्रमण से नष्ट-भ्रष्ट हो जान थे। इस लिये उस समय राजाओं को और नहीं तो अपनी सुरक्षा के द्यान में ही प्रजापालन और न्यायदुष्ट व्यवहार का द्यान रखना पड़ता था, शिम्न उनकी स्थिति गृष्ट बनो रहे और वे बाह्य आक्रमणों का प्रभावता सधनता पूर्वक कर रहे।

## पुरुषार्थ की प्रधानता—

हमारे उपरोक्त मत्स्य की पुष्टि पुराणकार ने भी एक ठग्य प्रकार से की है। उसने 'राज धर्म' के प्रशङ्ग में एक अध्याय में यह प्रश्न उठाया है कि "देव और पुरुषार्थ में कौन बड़ा है?" इसके उत्तर में मत्स्य भगवान् द्वारा कहलाया गया है कि "देव नाम वाला जो फल प्राप्त होता है यह भी अपना पूर्व कर्म ही होता है, इसलिये विद्वानों की सम्मति में पुरुषार्थ ही सर्व प्रधान है। यदि देव प्रतिकूल भी होता है, तो उसका पौरुष के द्वारा हनन हो जाता है। जो श्रेष्ठ आचार वाले और सदैव उत्थान का प्रयत्न करने वाले व्यक्ति होते हैं पुरुषार्थ से प्रतिकूल देव को बदल डालते हैं। यह सत्य है कि कुछ उदाहरणों में अनेक व्यक्तियों की बिना पुरुषार्थ भी अच्छा फल, सौभाग्य युक्त स्थिति प्राप्त हो जाती है, जिसे पूर्व जन्मों के प्रारब्ध का परिमाण माना जाता है। पर यदि वर्तमान में भी पुरुषार्थ और सत्कर्म न किये जायें तो वह स्थिति प्रायः थोड़े ही समय रहनी है। इसलिए हम कह सकते हैं कि देव, पुरुषार्थ और बाल (परिस्थितियाँ) ये तीनों मिलकर ही मनुष्य को फल देने वाले हुआ करते हैं। पर इनमें भी पुरुषार्थ को ही प्रधान समझना चाहिये, क्योंकि कहा गया है—

नालसः प्राप्नवन्त्यर्थान् न च देव परायणः।

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन आचरेद्धर्ममुत्तमम् ॥

अर्थात्—“जो व्यक्ति नालसी होते हैं अथवा जो केवल देव (भाग्य) के ही भरोसे रहते हैं, वे धनोपार्जन में सफल नहीं हो सकते। इसलिये सदैव प्रयत्नपूर्वक उत्तम धर्म (पुरुषार्थ) का पालन करना चाहिये।” जो लोग समझते हैं कि पुराने धर्म ग्रन्थों में भाग्य को ही प्रधान बताकर भारतवासियों को 'भाग्यवादी' बना दिया है उनको 'मत्स्य पुराण' के उपरोक्त वचन से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

## भारतीय गृह निर्माणकला—

मत्स्य पुराणान्तर्गत गृह निर्माण सम्बन्धी वर्णन से सिद्ध होता है कि प्राचीन काल में भी इस विद्या की काफी खोज की गई थी। जो लोग भारत के 'अर्द्धसम्य' कहते हैं और जिनका रुचान है कि उस जमाने में यहाँ के मनुष्य जङ्गली प्रदेशों के निवासियों की तरह केवल झोपड़ों अथवा कच्ची मिट्टी के छप्पर वाले मकानों में ही रहते थे, उक्त कथन 'मत्स्य पुराण' के वर्णन से अवश्य सिद्ध हो जाता है। उससे मालूम होता है कि 'गृह निर्माण कला' का आरम्भ और प्रसार बहुत पहले हो चुका था। अध्याय के आरम्भ में ही प्राचीन भारत के उन अठारह 'वास्तु विज्ञान ज्ञाताओं' ( इञ्जीनियरों ) के नाम दिये गये हैं जिन्होंने इस विषय में विशेष मनन और प्रयत्न करके प्रसिद्धि प्राप्त की थी—

भृगुरनिर्वंशिष्ठश्च विश्वकर्मा मयस्तथा ।  
 नारदो नमजिञ्चैव विशालाक्षः पुरन्दरः ॥  
 ब्रह्माकुमारो नन्दीशः शौनको गर्ग एव च ।  
 वासुदेवोऽनिरुद्धश्च तथा शुक्र बृहस्पतिः ॥  
 अष्टादशैते विख्याता वास्तु शास्त्रोपदेशकः ।  
 सक्षेपेणोपदिष्टन्तु मनवे मत्स्य रूपाणा ॥

अर्थात् — "भृगु, अथि, वशिष्ठ, विश्वकर्मा, मय, नारद, नानजित्त, विशालाक्ष, पुरन्दर, ब्रह्मा, कुमार, नन्दीश, शौनक, गर्ग, वासुदेव, अनिरुद्ध, शुक्र और बृहस्पति—ये अठारह प्रसिद्ध 'वास्तु शास्त्र' के उपदेशक हैं और उन्हीं की विधियों का वर्णन सक्षेप में 'मत्स्य भगवान्' ने मनु जी को सुनाया।"

मालूम होता है उस समय इन नामों अथवा उपनामों वाले मनीषियों द्वारा रचित 'वास्तु विज्ञान' सम्बन्धी ग्रन्थ प्राप्त होने और उन्हीं में से एकाधिक ग्रन्थ के आधार पर सक्षेप में 'मत्स्य पुराण' ने इस कला का

परिचय दिया है। हो सक्ता है ग्रहा, इन्द्र, विश्वाकर्मा, कुमार आदि का नाम इस विषय में भी देवताओं की प्रधानता दिखाने के लिये शामिल कर दिया हो, तो भी प्राचीन समय में कितने ही उच्चकोटि के विद्वानों ने इस विषय पर भी लिखा था, इसमें सन्देह नहीं। अब भी उनमें से 'मानसार' आदि दो-एक ग्रंथ देखने में आते हैं जिनकी जानकार लोगों से बड़ी प्रशंसा सुनने में आती है। 'मय' तो 'दैत्य' जाति वालों का प्रसिद्ध शिल्प शास्त्र शास्त्रा प्रसिद्ध है। महाभारत के अनुसार महाराज युधिष्ठिर के लिये इन्द्र-प्रस्थ की अपूर्व राज सभा उसी ने बनाई थी। संभव है जिस प्रकार आर्य जाति में शिल्प विज्ञान के ज्ञाता को 'विश्वकर्मा' की पदवी दी गई, उसी प्रकार आर्यों की विरोधी दैत्य जाति में शिल्प-कला के प्रमुख ज्ञाता को 'मय' के नाम से पुकारा जाता हो, और पांडवों को संयोगवश उसी जाति का कोई शिल्प विद्या विचारद मिल गया हो। कुछ भी हो 'मत्स्य पुराण' में सामान्य गृह, महल, भवन, प्रासाद, स्तम्भ, दरवाजे, मठप, वेदी, आदि जितने भेद बतलाये हैं और विस्तारपूर्वक उनकी विशेषताओं का वर्णन किया है, उससे यह अवश्य सिद्ध होता है कि उस जमाने में भी इस कला की काफी खोजबीन की गई थी और तदनुसार अनेक छोटे-बड़े गृहों का निर्माण भी किया जाता था। विभिन्न प्रकार की आकृति के गृहों का वर्णन करते हुए पुराणकार ने लिखा है—

“सबसे उत्तम गृह वह होता है जिसमें चारों तरफ दरवाजे और दालान होते हैं। उसका नाम 'सर्वतोभद्र' कहा जाता है और देवालय तथा राजा के निवास के लिये वही प्रशस्त होता है। जिसमें तीन तरफ द्वार और दालान होते हैं पर पश्चिम की तरफ द्वार नहीं होता वह 'नन्द्यावत' कहलाता है। जिस भवन में दक्षिण की तरफ द्वार नहीं होता वह 'वर्द्धमान' कहा जाता है। पूर्व की तरफ बिना दरवाजा वाला 'स्वास्तिक' नाम से प्रसिद्ध है। उत्तर की तरफ द्वार से रहित 'रुचक' कहा जाता है।”

“राजा के निवास गृह पाँच प्रकार के होते हैं। जो सर्वोत्तम माना गया है उसको सम्बाई एक सौ आठ हाथ ( ५४ गज ) होती है। इस घर की जो अन्य चार श्रेणियाँ होती हैं उनमें से प्रत्येक की सम्बाई एक दूसरे से आठ हाथ कम होती जाती है। इसी प्रकार यूधगज के प्रथम श्रेणी के महल की सम्बाई ८० हाथ होती है और बाद की चार श्रेणियों वाले गृहों की सम्बाई क्रम से छ-छः हाथ कम होती चली जाती है। इसी तरह सेनापति के उत्तम गृह की सम्बाई बीसठ हाथ, मन्त्रियों के घरों की साठ हाथ, सरदारों और छोटे मन्त्रियों की घरों की अठतीस हाथ होती है। शिल्प विभाग, व्यवस्था और मनोरंजन के अधिकारियों के घर अठ्ठईस हाथ लम्बे होने चाहिये। राजा के यहाँ नियुक्त वैद्य, ज्योतिषी, सभा के प्रबन्धक, पुरोहित के मकान चालीस हाथ सम्बाई के होते हैं। इन सबकी चौड़ाई बज्र के अनुसार सम्बाई से एक तिहाई, चौपाई या छठवाँ भाग होती है।”

वर्तमान समय में भी अधिकांश व्यक्ति घर के शुभ-अशुभ होने में बहुत विचार किया करते हैं, और नये घर में ‘गृह-प्रवेश’ का बड़ा महत्त्व माना जाता है। ‘मत्स्य पुराण’ में इस सम्बन्ध में बहुत अधिक विधि विधान दिये गये हैं, और गृह-निर्माण तथा गृह-प्रवेश इन मुद्दों में किया जाय इस सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा गया है।

### प्राकृतिक शोभा वर्णन—

यद्यपि प्राचीन काल में जितने सत्कृत ग्रन्थ लिखे गये वे वे सभी पक्ष में हैं, वैद्यक, ज्योतिष, शिल्प, कानून आदि सभी विषयों को भी कारणवश पक्षों में लिखा गया है, पर यह स्पष्ट है कि इस प्रकार की रचनाओं में उच्च साहित्यिक गुण नहीं आ सकते। उनमें मुख्य रूप से उपयोगिता पर ही ध्यान रखा जाता है, काव्य-सौष्ठव को गौण माना जाता है। पर ‘मत्स्य पुराण’ में अनेक स्थलों पर प्राकृतिक दृश्यों का जो

वर्णन किया गया है वह इस दृष्टि से भी उसके लेखक की विद्वता को प्रकट करता है। वैसे साधारण रूप से भी इस पुराण की भाषा कितने ही अन्य पुराणों और उपपुराणों अधिक परिष्कृत जान पड़ती है, पर कवि की विशेषता राजवश, ऋषिवश, पूजा उपासना की विधि, प्रायश्चित्त के विधान आदि विषयों का वर्णन करने में नहीं जानी जा सकती। इनमें तो उपयोगिता की दृष्टि से तुकबन्दी की जैसी ही रचना करनी पड़ती है।

पर जहाँ कहीं प्राकृतिक शोभा के वर्णन का अवसर आ जाता है वहाँ कवि की कल्पना और प्रतिभा ऊँची उड़ान लेने लगती है और योग्य कवि अपनी विशेषता को प्रकट कर सकता है। 'मत्स्य पुराण' में हिमालय पर्वत, कैलाश, नर्मदा, बाराणसी की शोभा का जो वर्णन किया है उसकी गणना भाषा और भाव की दृष्टि से अपेक्षाकृत उत्तम कविता में की जा सकती है। यद्यपि इस प्रकार की पौराणिक रचनाओं की तुलना कालिदास, भवभूति, माघ आदि जैसे कवियों की रचनाओं से नहीं की जा सकती, जिनका मुख्य उद्देश्य कविता की उन्मृष्टता को ही दिखलाना होता है और जो कवि-कर्म को अपने जीवन का चरम ध्येय मानते हैं। पुराण रचयिता इसके बजाय अपना मुख्य उद्देश्य लोगों को सरल भाषा में धर्मोपदेश देना और विविध प्रकार के विधि विधानों का यथातथा वर्णन करना समझते हैं, और उसी दृष्टि की रचना करते हैं। इस लिये साहित्यिक गरिमा बिन्ही पुराणों में विशेष स्थान पर ही दिखाई पड़ती है। उदाहरण के लिये हम 'मत्स्य पुराण' के हिमालय-वर्णन का कुछ अंश नीचे देते हैं—

"परम पुण्यमयी सरिता वा अवलोकन करता और उसके समीप विश्राम करता हुआ पवित्र जब महानिधि हिमालय के निरुद्ध पट्टवता है, तो उगका दर्शन करने चरित होना है। इस हिमवान पर्वत से भूरे रंग वाले उज्ज्व शिखर आकाश की दूरी प्रतीत होते हैं। वे इतने ऊँचे हैं कि पक्षी भी वहाँ नहीं पहुँच सकते। वहाँ नदियों के जल से उत्पन्न होने

वाले महाशब्द के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार का शब्द सुनाई नहीं पड़ता । वे सरितायें परम मनोरम और शीतल जल से परिपूर्ण हैं । देवदार के वृक्षों का जो वन पर्वत के निम्न भागों में लगा है वही मानो उसका हरित अधोवस्त्र है, और ऊपर के भाग में जो मेघ धिरे रहते हैं वही उत्तरीय ( ऊपर ओढ़ने वाला वस्त्र ) है । सबसे ऊपर जो श्वेत वर्ण का बादल दिखाई पड़ता है वही उसकी पगड़ी है, जिस पर सूर्य और चन्द्रमा मुकुट के समान जान पड़ते हैं । इस प्रकार यह महागिरि एक नपति की भाँति ही जान पड़ता है । उसका सर्वाङ्ग चन्द्रम की भाँति श्वेत हिम से ढँकित रहता है और कहीं-कहीं सुवर्ण आदि धातुओं की लामा आभूषणों का उद्देश्य भी पूरा कर देती है । अनेक म्थानों पर हरितगा युक्त घास और झाड़ियाँ ऐसी घनी हैं कि उनमें हवा का भी प्रवेश नहीं होता है और कहीं रंग बिरंगे सुन्दर फूलों का बगीचा-सा जगता है । ऐसा यह महा पर्वत "उपस्वि गरण शैल कामिनामतिदुर्लभम्" उपस्विमों के लिये उत्तम आश्रय-स्थल और काम-सेवन करने वालों के लिये अत्यन्त दुर्लभ है ।"

सावित्री उपाख्यान—

सावित्री उपाख्यान पति व्रत धर्म की महिमा के लिये भारतीय साहित्य में बहुत प्रसिद्ध है, और उसके आधार पर यहाँ के कवियों ने अनेक उत्कृष्ट कोटि की रचनायें प्रस्तुत की हैं । भारत ही नहीं इस उपाख्यान ने विदेशों के विद्वानों तक को आकृष्ट किया है और इसको लेकर अंगरेजी में भी सुन्दर काव्य लिखे गये हैं । उस उपाख्यान का मुख्य उद्देश्य नारियों के सम्मुख पतिव्रत का आदर्श उपस्थित करना ही है जैसा कि इस कथानक के आरम्भ में कहा गया है—

“इसके उपरान्त अपरिमित बल-विक्रम वाले उस राजा ( मनु ) ने देवेश मत्स्य से कहा— ‘भगवन् ! पतिव्रता नारियों में कौन सी नारी श्रेष्ठ है और किसने अपने पतिव्रत के द्वारा मृत्यु को भी पराजित कर

दिया था ? मनुष्यों को इस सम्बन्ध में किसके परम शुभ नाम का कीर्तन करना चाहिये ? “मत्स्य भगवान ने कहा—“निःसन्देह पतिव्रता का माहात्म्य इतना अधिक है कि मृत्यु का अधीश्वर यमराज भी ऐसी नारियों की अवमानना नहीं कर सकता । अब मैं तुमको एक ऐसी ही पापनाशक कथा सुनाता हूँ जिसमें एक परम श्रेष्ठ पतिव्रता ने अपने स्वामी को मृत्यु के पाश से भी छड़ा लिया था ।”

इस वर्णन के आधार पर हम कह सकते हैं कि सम्भवतः यह ‘सावित्री उपाख्यान’ कवि-कल्पना-प्रसून ही हो और ‘धर्म के अनुयायी’ की महिमा को प्रदर्शित करने के उद्देश्य से ही इसकी रचना की गई हो । फिर भी ससार में ऐसी नारियाँ हुई हैं जिन्होंने वास्तव में अपने पति को ‘यमराज’ के घर से लौटाया है । इतिहास में एकाध ऐसी वीरागना का वर्णन मिलता है, जिसका पति युद्ध में विषाक्त बाण लगने से मरने लगा, पर उसने तत्काल अपने मुँह से दूधिन रक्त को चूस कर बाहर निकाल दिया और अपने प्राणों की चिन्ता न करके प्रिय पति के प्राणों की रक्षा की । इसी घटना का वर्णन करते हुये ब्रजभाषा के एक आधुनिक कवि ने लिखा था—

सहृदय प्यारी,

मरु पराजित होत प्रेम सो निश्चय जानन हारी ॥

वीरासन हवै भूपति पति काँ लै भुज लता सहारे ।

ग्रण सो विष चूस्यो लगाय जिन मधुराधर अरुणारे ॥

कुछ भी हो ‘सावित्री उपाख्यान’ एक ऐसी महान् पतिव्रता की कल्पना है जिसने आज तक लाखों नारियों को प्रेरणा देकर उनको पति की सच्ची सहगामिनी बनाया है । यमराज के सम्मुख उसके द्वारा प्रकट किये ये उद्गार आज भी पति की अनुगामिनी स्त्रियों के कानों में गूँजते रहते हैं -



पतिर्हि देवत स्त्रीणा पतिरेव परायणम् ।  
 अनुगम्यः स्त्रिया साध्व्या पति प्राण घनेश्वर ॥  
 मितन्ददाति हि पिता मित भ्राता मित सुतः ।  
 अमितस्य च दातार भर्तारं का न पूजयेत् ॥

अर्थात्—'पति ही स्त्रियो का देवता है और उनकी पारायणता, भक्ति का पात्र होता है । साध्वी स्त्रियो को सदैव उसके अनुगमन करना ही चाहिये । किसी भी स्त्री को उसके पिता, भ्राता, पुत्र आदि से मित रूप में ही प्रदान कर सकते हैं, केवल पति ही ऐसा है जो उसे अमित (सब कुछ) दे डालता है । फिर ऐसे पति की पूजा कौन स्त्री न करेगी ।'

यमराज ने समझाया कि "संसार में मनुष्य का परम धर्म अपने शास्त्रोक्त कर्तव्य का पालन ही है । धर्मशास्त्रों ने माता-पिता और पुत्र की सेवा को तीनों प्रकार की अग्नियों की आराधना करने के समान फलप्रब बताया है । इससे मनुष्यों की अनायास ही सर्वश्रेष्ठ स्वर्ग की प्राप्ति होती है । इस सत्यवान ने इस धर्म कर्तव्य का पूर्ण रूप से पालन किया है, इस लिये इसकी सद्गति होने में कोई संदेह नहीं । यह अपने पुत्र्य फल से महान् स्वर्गीय सुखों को भोगेगा । इस लिये तुम मेरा पीछा न करके ब्रह्म वापस जाकर अपना धर्म-कर्तव्य पालन करो ।"

सावित्री ने कहा निश्चय ही 'धर्म' ही संसार की सारवस्तु और मानव-जन्म का प्रधान उद्देश्य है । उसके बिना किसी सुख अथवा कल्याण की अभिलाषा करना बन्ध्या के सुत के समान असम्भव है । इस कारण—

बाल एव चरेद्धममनित्यं देव जावितम् ।  
 कोहि जानाति कस्याधमत्युरेवापतिपति ॥  
 पश्यतोऽप्यास्य लोकस्य मरण पुरतः स्थितम् ।  
 अमरस्येव अस्तिमत्याश्चर्यं सुरोत्तम ॥  
 युवत्वापेक्षमा बालो वृद्धत्वापेक्षया युवा ।  
 मत्पीडितज्ञ मारुदः स्थविरः निमपेक्षते ॥

“धर्म का पालन तो बाल्यावस्था से ही करना आवश्यक है, क्योंकि यह जीवन अनित्य है। कौन जानता है कि मृत्यु सामने खड़ी रहती है यह वास्तव में भगवान की प्रदत्त लीला ही है। बुढ़ो का मरना तो स्वाभाविक ही है, पर उनसे भी जल्दी युवा मर जाते हैं, और युवाओं की अपेक्षा बालक शीघ्र मृत्यु के प्राप्त बन जाते हैं ॥”

सावित्री ने कहा कि “जब धर्म की इतनी महिमा है, तो मैं अपने धर्म से कैसे हट सकती हूँ। स्त्री का धर्म तो पति का अनुगमन करना ही बतलाया है, वही मैं पालन कर रही हूँ। इस राजकुमार के माता-पिता बड़ी प्रसह्य स्थिति में हैं, यदि आप इसको ले जायेंगे तो उनको अपार कष्ट होगा। फिर धर्मरक्षार्थ पुनः का होना भी आवश्यक है। बिना पति के मेरे पुत्र कैसे हो सकेंगे? जब आप मुझे पुत्रवती होने का वरदान दे चुके हैं तो बिना पति के पुत्र कहाँ से होंगे? अतः अब आपको इसको जीवनदान देना ही होगा।”

इस प्रकार सावित्री ने अपनी दृढ़ता और धर्मशीलता से अपने पति को पुनर्जीवित कर दिया। सत्य का आचरण वास्तव में सदैव परम कल्याणकारी होता है। महान् से महान् आपत्तिकाल में भी सत्य मनुष्य की रक्षा करता है और उसे सुख, भी तथा शक्ति प्रदान करता है। 'सावित्री सत्यवान् उपाख्यान का संदेश मनुष्य मात्र के लिए यही है कि चाहे स्त्री हो या पुरुष, उसको धर्ममार्ग से कभी हटाना न चाहिये। जो धर्म की रक्षा करता है उसकी रक्षा भी धर्म द्वारा अवश्य होती है।

इस प्रकार के अनेक उपयोगी और लोक-परलोक में कल्याण करने वाले सदुपदेश पुराणों में भरे पड़े हैं। निस्सन्देह उनके साथ बहुत-सी ऐसी भद्रासक्ति और स्वार्थपरता की बातें भी उनमें मिलती हैं, जो अनधिकांश व्यक्ति द्वारा किसी हीन उद्देश्य से जोड़ दी गई है। हमारा कर्तव्य है कि हम इस की तरह धीर-नीर विवेक से काम लेकर थोड़े-थोड़े बातों को अपनायें और उनसे लाभ उठायें। पुराणों का भारतीय जन-

जीवन पर बड़ा प्रभाव है, और सामान्य वर्ग के लोग उन्हीं के द्वारा धर्म के कुछ तत्वों का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। आजकल पुराने समय की तरह पुराणों की कथाएँ होनी बन्द होगई हैं और 'पुराणी' लोग अगुलियों पर गिन्ने सायक सड़्या में रह गये हैं, तो भी यदि हम चेष्टा करें तो किसी ओर उपाय से उनसे साध्न उठा सकते हैं। भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास बहुत कम मिलता है। पुराणों में यद्यपि सभी राजाओं तथा उनके कार्यो का वर्णन कवि-स्वभाव के अनुसार बड़े भविरजित रूप में किया है तो भी उसकी कथाओं और वर्णनों का मार निकालना जाय तो प्राचीन समय की राजनीति, धर्मनीति और अर्थनीति सम्बन्धी बातों पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ सकता है। इसलिये हमारा कर्तव्य है कि दोषान्वेषण अथवा गुण्डन-मण्डन की अनुचित प्रवृत्ति की त्याग कर उनमें जो कुछ थोड़े सारयुक्त सामंदायक हो उसे ग्रहण करें और दोष की मनो-रजक कथा भाग मानकर उसी भाव से उसे पढ़ते रहें। कुछ भी हो वर्तमान समय में कथा साहित्य (उपमाता, कहानी आदि) की रवार्थी अथवा स्वयं भ्रष्टाचार करने वाले लेखकों ने त्रिध प्रकार पतित कर दिया है, उसकी ठमना में पुराणों की धर्म-कथाएँ कल्याणकारी शिक्षा ही देती हैं। उनको यदि हम समयानुसृत रूप देकर सद् शिक्षा का माध्यम बनावें तो यह भारतीय-जीवन की दृष्टि से उपयुक्त और हितकारी ही होगा।

'महापुराण' के इस संस्करण में से पुनरावृत्तियों को छोड़कर और बहुत बड़ी कथाओं को छोटे आकार में करके इसे सामान्य पाठकों के लिये अधिक उपयोगी बना दिया गया है। आशा है पुराण का यह सगोष्ठित रूप उनकी पसन्द आयेगा।

—श्रीराम शर्मा आचार्य

## विषय-सूची

क्रम	विषय	पृष्ठ
	भूमिका	१—३२
१—	मत्स्यावतार वर्णन	१
२—	मत्स्य-मनु सम्वाद वर्णन	७
३—	सृष्टि-प्रकरण	१४
४—	सरस्वती चरित्र	२१
५—	दक्ष प्रजापति की मेषुनी सृष्टि	२५
६—	कश्यपाश्वय वर्णन	३०
७—	आग्निपत्यभिषेकन	३८
८—	मन्वन्तर वर्णन	५०
९—	पृथ्वी दोहन	४६
१०—	आदिताक्यान	५३
११—	सूर्य वंश वर्णन	६२
१२—	देवी के एक सौ बाठ नाम	७३
१३—	पितृ वंश वर्णन	८४
१४—	आद्य प्रकरण	८८
१५—	साधारण अम्युदय कर्तन	१०१
१६—	एबोहिष्ट आद्य प्रकरण	११३
१७—	आद्ययोग्य नीतिनिर्णयनम्	११८
१८—	ययति चरित्र	१२३

१६—ययात्याष्टक सम्वाद वर्णन ( १ )	...	...	१४१
२०—ययात्याष्टक सम्वाद वर्णन ( २ )	..	...	१४७
२१—यदुवश वर्णन	...	...	१५०
२२—क्रोष्टुवश वर्णन	...	...	१५६
२३—स्वमन्तक मणि का सक्षिप्त चरित्र	...	...	१७४
२४—कृष्णोत्पत्ति वर्णन	...	...	१८०
२५—कृष्ण सन्तान वर्णन	...	...	१८५
२६—ययाति वंश की शाखामो का वर्णन	...	...	१९०
२७—पुरुवंश वर्णन	...	...	१९८
२८—कुरुवंश वर्णन	...	...	२०८
२९—भूमिवंश वर्णन	...	...	२२३
३०—कर्मयोग वर्णन	...	...	२३१
३१—पुराण संह्या वर्णन	...	...	२३६
३२—नक्षत्र पुरुष नाम वन कथन	...	...	२५०
३३—आदिष्य शयन व्रत कथन	...	...	२५४
३४—रोहिणीचन्द्र शयन व्रत कथन	...	...	२५८
३५—तडागाराम भूषादि प्रतिष्ठा विधि वर्णन	...	...	२६२
३६—सौभाग्य शयन व्रत कथन	...	...	२७१
३७—अक्षय तृतीया और सरस्वती व्रत	...	...	२८१
३८—चन्द्रादियोपराग मे स्नान विधि कथन	...	...	२८४
३९—सप्तमी स्नान व्रत कथन	...	...	२८८
४०—भीम द्वादशी व्रत कथन	...	...	२९६
४१—रत्नान सप्तमी व्रत कथन	...	...	३०४
४२—विशोक द्वादशी व्रत कथन	...	...	३०८
४३—गृह धानि वर्णनम्	...	...	३२
४४—शिव चतुर्दशी व्रत कथन	...	...	३२०

४५—फन त्याग माहात्म्य कथन	...	...	...	३२८
४६—आदित्यचार व्रत कथन	...	...	...	३१३
४७—विभूति द्वादशी व्रत कथन	...	...	...	३३१
४८—स्नान महत्त्व वर्णन	...	...	...	३३४
४९—प्रयाग माहात्म्य वर्णन	...	...	...	३४०
✓ ५०—भारतवर्ष वर्णनम्	...	...	...	३४४
✓ ५१—हिमवद् वर्णन	...	...	...	३५८
५२—कलास वर्णनम्	...	..	...	३६२
/ ५३—गुप्तिदी परिमाण वर्णन	...	...	...	३७६
५४—ज्योतिष चक्र वर्णन	...	...	...	३८४
५५—अमावस्या महत्त्व वर्णन	...	...	...	४०३
५६—चतुर्गुणमान वर्णन	...	...	...	४१८
५७—द्वापर और कलियुग वर्णन	...	....	...	४२१
५८—चतुर्गुण गति वर्णन	...	...	...	४५०
/ ५९—प्रलयकाल वर्णन	...	...	...	४५४
६०—दशावतार वर्णन	...	...	४५६ + ३२ = ४८९	

# मत्स्य पुराण

## १—मत्स्यावतार उग्रेन

प्रचण्डनाष्टवाटोपे प्रक्षिप्तायेन दिग्गजाः ।  
 भवन्तुविघ्नमद्नाय भवन्त्य चरणाम्बुजाः ॥  
 पानालादुत्पनिष्णो मकन्दसनयो यस्य पुच्छमिधाता-  
 दूर्ध्वं ब्रह्माण्डम्वष्टम्यति हरविहितव्यत्यनेनापदन्ति ॥१॥  
 विष्णोर्मत्स्यावतारे सवलवमुमनीमण्डल व्यनुमान,  
 तस्यास्योदीरिताना ध्वनिरपहस्तादश्रियम्ब. ध्रुवीनाम् ॥२॥  
 नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।  
 देवीं मरुत्त्रतीं ग्राम ततो जयमुदीरयेत् ॥३॥  
 अजोऽपि य. क्रियायोगा नारायण इति मृत. ।  
 त्रिगुणायनिवेदाय नमस्नमं स्वयम्भुवे ॥४॥  
 मूतमेकान्तनामीन नैमिषारण्यशानिन. ।  
 मुनयो दीर्घमश्रान्तेषप्रच्छुदीर्घमहिताम् ॥५॥  
 प्रवृत्ताः पुगणौपु धर्म्यानि लनिनानु च ।  
 क्यामु शीनकाद्यास्तु अभिनन्द्य मुहुर्मुहु ॥६॥  
 कथितानि पुगणानि यान्यन्मात्र त्वयानघ ।  
 तान्येवामृतवन्त्रानि श्रोतुमिच्छामहे पुन. ॥७॥

(वे नगवान् भव के चरण कमन विष्णो के नाश करने के निवे  
 होवे दिग्गजों अपने पक्ष प्रचण्ड ठाण्डव दृष्ट के बाटोर में दिग्गजों  
 भयान् दिग्गजों के अजिबानियों के कबों को भी प्रक्षिप्त कर दिया या  
 भयान् उठाकर फेंक दिया या ॥१॥) ज्ञान तोड़ में उत्पन्न शीन

जिसके पुच्छ के अभिधान से ऊपर की ओर ब्रह्माण्ड के छण्डों के ध्वनि  
 कर से बिये हुए व्यत्यय से मन्वरो की वस्तियाँ आकर गिरा करती हैं उन  
 भगवान् विष्णु के मत्स्यावतार में यह समस्त पृथ्वीमण्डल व्यभुज्य  
 हो गया है उनके मुख में उदीरितों की ध्वनि आपकी श्रुतियों की अधीन  
 अपहरण करे ॥२॥ भगवान् नारायण और नरों में सर्वश्रेष्ठ नरदेव  
 सरस्वती महामहिम महर्षि व्यासदेव को नमस्कार करके इसके अनन्त  
 'भगवान् की जय हा'—ऐसा मुख से उच्चारण करना चाहिए ॥ ३ ॥  
 अजन्मायी है वह भी किन्तु क्रिया के योग से नारायण कहे गये हैं ।  
 तीनों गुणों ( सत्त्व, रज, तम ) से युक्त, तीनों ( साम, यजु और ऋक्  
 वेदों वाले भगवान् स्वयम्भू की सेवा में नमस्कार अर्पित है ॥ ४ ॥  
 एकान्त स्थल में समासीन सूतजी से नैमिषारण्य के निवास करने वाले  
 मुनियों ने अपनी दीर्घमत्र की अवसान देसा में दीर्घ सहिता के विषय  
 पूछा था ॥५॥ घम स सयुत परम जलित पुराणों की कथाओं के प्रवृ  
 त्तों पर शौनक आदि ऋषियों ने बारम्बार अभिनन्दन किया था ॥६॥  
 महर्षिधा न सूतजी स बहा था—हे अनघ ! हम लोगों को कृपा कर  
 आपन जो पुराण सुनाय हैं वे सभी अमृत के ही बिल्कुल सुख्य थे ।  
 आपने मुखारविन्द स उन्हें पुन श्रवण करना चाहत है ॥७॥

वयससर्जभगवान् लोकनाथश्चराचरम् ।  
 वस्माच्च भगवान्विष्णुमत्स्यरूपत्वमाश्रित ॥८॥  
 भैरवत्व भवस्यापि पुरारित्वञ्च गच्छते ।  
 वस्य हेतोः कथानित्य जगाम वृषभध्वजः ॥९॥  
 सवमेतत्समाचष्टव सूत । विस्तरण क्रमात् ।  
 त्वद्वाक्येनामृतस्येव न तृप्तिरिह जायते ॥ १० ॥  
 पुण्य पवित्रमायुष्यमिदानीं श्रुत द्विजा ।  
 मात्स्य पुराणमग्निस यज्जगतां गदाघ्न ॥११॥  
 पुरा राजा भगुर्नाम षोणवान् विपुलन्तपः ।



पुलेराज्य समारोप्यक्षमावान् रविनन्दन ॥१२

मलयस्यैकदेशे तु सर्वात्मनुरासयुतः ।

समदुःखमुधोदीरः प्राप्नोति यो गमुत्तमम् ॥ १३

वभूव वरदस्त्वास्य वर्षावृतशवे गते ।

वरमृणोष्व प्रोवाच प्रोतः स कमनामनः ॥१४

लोकों के स्वामी भगवान् ने इस चराचर सम्पूर्ण सृष्टि का किस प्रकार से सृजन किया था और किस कारण से भगवान् विष्णु ने मत्स्य का स्वरूप धारण किया था ॥८॥ भगवान् भव की भी प्रैश्व स्वप्नता पुरारित्व होना कहा जाया करता है अर्थात् त्रिपुरामूर के हनन करने वाले श्री भैरव स्वरूप धारण करने वाले भव को कहा करत है किन्तु ऐसा कौनसा कारण है जिसके होने से भगवान् वृषभध्वज प्रभु बनानी को गये हैं । ॥९॥ ह मूत्रजी यह मभा कुछ घात विम्वारपूर्वक प्रम से हमको बनलाने का अनुग्रह करें । आपकी परम श्रेयस्करी मधुर वचनावली ही ऐसी है जो अमृत के समान ही है कि इससे हम को कभी तृप्ति नहीं होनी है । १०॥ श्री मूत्रजी ने कहा है द्विजग ! इस समय मैं परम पुण्यमय-आयु की वृद्धि करने वाला और जति पवित्र सम्पूर्ण मत्स्य पुराण का ही आप लीप श्रवण करिये जिसकी भगवान् गदाधर ने स्वयं कहा था ॥११॥ प्राचीनकालमें मनु नामधारी एक राजा था जो चोर्न वाजा भीर बहुत ही अधिक तपस्वी था । उसने अपन पुत्र परमेश्वर राज्य का भार सौंपकर वह क्षमावान् रविनन्दन योगाभ्यासी होगया था । १२॥ मलय देशके एक भाग में वह सम्पूर्ण जाति का गुणों से सवृत होकर तथा मुन और दुष्ट दोनों को समान भाव में मानकर वीर उत्तम योग को प्राप्त हो गया था ॥१३॥ जिन समय में एकचो दग सहस्र वर्ष ध्वंसीत हो गये थे तब वह भगवान् कमलामन परम प्रसन्न हो गये थे और इसको वरदान देने वाले बन गये थे । उन्होंने मनु के ममीप में साक्षात् समुपस्थित होकर कहा था, जो चाहो वरदान मांग लो ॥१४॥

एवमुक्तोऽब्रवीद्राजा प्रणम्य स पितामहम् ।  
 एकमेवाहमिच्छामि त्वत्तो वरमनुत्तमम् ॥ १५  
 भूतग्रामस्य सबस्य स्थावरस्य चरस्य च ।  
 भवेय रक्षणायाल प्रलये समुपस्थिते ॥ १६  
 एवमास्त्विति विश्वात्मा तन्नैवान्तरधीयत ।  
 पुष्पवृष्टिः सुमहती स्वात्पपात सुरापिता ॥ १७  
 कदाचिदाश्रमे तस्य कुवत् पितृतपणम् ।  
 पपात पाण्योरुपरि शफरी जलसयूता ॥ १८  
 दृष्ट्वा तच्छरीररूपं स दयालुमहीपति ।  
 रक्षणायानरोचत् स तस्मिन् करकोदरे ॥ १९  
 अहोरात्रेण चैकेन पौडशागुलविस्तृत ।  
 सोऽमवन्मत्स्यरूपेण पाहि पाहोति चाब्रवीत् ॥ २०  
 स तमादाय मणिकं प्राक्षिरज्जलवारिणम् ।  
 तत्रापि चैत्ररात्रेण हस्तत्रयमवधत् ॥ २१

जब राजा से इस तरह ब्रह्माजी के द्वारा कहा गया तो उसने  
 पितामह व चाणा म प्रणाम किया था और फिर राजा ने कहा है  
 भगवन् ! मैं आपसे केवल एक ही अत्युत्तम वरदान प्राप्त करना चाहता हूँ  
 ॥ १५ ॥ जिस समय मैं इस सम्पूर्ण भू-विश्व का तथा समस्त स्थ-  
 वर और चर सृष्टि का प्रलयकाल उपस्थित हो तो उस भीषण समय में मैं  
 सबकी रक्षा करने व कम से कम समय हो जाऊँ ॥ १६ ॥ इस वर की याचना  
 का गुणविशेषात् तब कभी एवमरतु । अर्थात् ऐसा होव । यह कहने  
 व बाद में ही वही पर अन्तर्हित हो गया था उसी समय में अन्तरिक्ष से  
 दशगज के द्वारा की गई बड़ी भारी पुष्पा की वर्षा होन लगी थी ॥ १७ ॥  
 इस अनन्तर जिसी समय में वह समुद्र आश्रम में अपने पितृगण के  
 निज लग्न कर रहे थे ता उनमें दयालु मणिक शफरी ( मछली ) जल व  
 साव ही भाग्य की ॥ १८ ॥ उस दयालु महीपति ने उस शफरी व रक्षण

को देखकर उसी की रक्षा करके का यत्न किया था और उसने उसे करकोशर पे रख दिया था ॥१६॥ एक ही अर्ध रात्रि के समय में वह सोलह जगुल के विस्तार वाला हो गया था और वह मत्स्य रूप से सम्पन्न होकर उस राजा से “मेरी रक्षा करो — मेरी रक्षा करो”—यह बोला ॥२०॥ उस राजा ने उस जलचारी को लेकर एक मणिक में डाल दिया था । वहाँ पर भी वह एक ही रात्रि में तीन हाथ का होकर बढ़ गया था ॥२१॥

पुनः प्राहार्तनादेन सहस्रकिरणात्मजम् ।  
 समस्यः पाहि पाहोति त्वामह शरणङ्गतः ॥२२॥  
 ततः स कूपेत मत्स्थ प्राहिणाद्रविनन्दन ।  
 यदा न भाति तत्रापि कूपे मत्स्यः सरावरे ॥२३॥  
 क्षिप्तोऽसौ पृथुतामागात्पुनर्योजनसंस्मिताम् ।  
 तत्राप्याह पुनर्ननः पाहिपाहि नृपोत्तम ॥२४॥  
 ततः स मनुना क्षिप्तोऽङ्गायामप्यवधत ।  
 यदा तदा समुद्रे त प्राक्षिपन्मेदिनीपतिः ॥२५॥  
 यदा समुद्रमाखिल व्याप्यासौ समुपस्थितः ।  
 तदा प्राह मनुर्भीत कोऽपित्वमसुरेतरः ॥२६॥  
 अथवा वासुदेवस्त्वमन्य ईदृक्कथं भवेत् ।  
 योजनान्युर्तावशत्याकस्य तुल्य भवेद्वपु ॥२७॥  
 ज्ञातिस्त्वमत्स्यरूपेण मा खेदयसिकेशव ।  
 हृषीवेप ! जगन्नाथ ! जगद्धाम ! नमोऽस्तुते ॥२८॥

उस मत्स्य ने फिर उस सूर्य के पुत्र नृपति से बड़े ही आर्तनाद कहा था कि मेरी रक्षा करो—रक्षा करो—मैं तो इस समय में आपकी रणागति में आगया हूँ ॥२२॥ इसके पश्चात् उस रवि के पुत्र राजा ने उस मत्स्य को कुएँ में डाल दिया था । जब वह मत्स्य कुएँ में भी नहीं आया था तो उस मत्स्य को एक सरोवर में प्रक्षिप्त कर दिया था ।

वहा पर भी वह बहुत बड़ा होकर एक योजन के विस्तार वाला हो गया था और वहा पर भी वह फिर बढ़कर दीन होकर राजा से बोला था— हे नृपश्रेष्ठ ! मेरी रक्षा करो—रक्षा करो ॥२३॥२४॥ इस के अनन्तर उस मनु के द्वारा वह शङ्खा में प्रक्षिप्त कर दिया गया था किन्तु वह वहा पर भी बढ़ गया था । ऐसा तिस समय में देखा तो उसी समय में राजा ने उस मत्स्य को समुद्र में डाल दिया था । जब यह सम्पूर्ण समुद्र में व्याप्त होकर समुपस्थित हो गया था तो उस राजा मनु ने अत्यन्त भय-भीत होकर उससे बोला था—तुम असुरेतर कौन हो ? ॥२५॥२६॥ अथवा आप साक्षात् भगवान् वामुदेव ही हैं । अन्य इस प्रकार का किस तरह हो सकता है । आपका यह शरीर का आकार अयुत विंशति योजन वाला हो गया है ॥२७॥ हे केशव ! मैं अब भली भाँति जान गया हूँ कि आप इस विशाल मत्स्य के स्वरूप में समुपस्थित होकर मुझे खेद दे रहे हैं । हे हृषीकेश ! हे जगत् के स्वामिन् ! हे जगद्धाम ! आपकी सेवा में मेरा प्रणाम समर्पित है ॥२८॥

एवमुक्त सभगवान्मत्स्यरूपीजनादन ।

संघुमाद्विविचित्योवाचसम्यग् ज्ञातस्त्वयाऽनघ ॥२९॥

अचिरेणैव कालेन मेदिनी मेदिनोपते ।

भविष्यति जले म न, सशैलवनवानना ॥ ३०॥

नीरिय सबदेवाना निरायेन विनिर्मिता ।

महार्जीवनिवासस्य रक्षणार्थं महीपते ॥ १॥

स्वेदाण्डजोद्भिजोदेवैश्चजात्राजरायुजाः ।

अस्यानिघायसवास्ताननाथान् पाहिमुग्रत ॥३२॥

मुगान्तनाताभिहता यदामवतिनोर्नृप !

शृङ्गऽस्मिन्मम राजेन्द्र ! तदमा सयमिच्छामि ॥३३॥

ततानया ते सर्वस्य म्यावरस्य चरस्यच ।

प्रजानिस्त्य भविता जगत् पृथिवीपते ॥३४॥

एवं कृतयुगस्यादौ सर्वज्ञो धृतिमान्नृपः ।

मन्दन्तराधिपश्चापि देवपूज्यो भविष्यति ॥३५॥

इस प्रकार से राजा ने जब मत्स्य ने निवेदन किया तो उस समय में मत्स्य स्वरूप को धारण करने वाले भगवान् जनार्दन ने कहा—बहुत अच्छा बहुत ही ठीक ! हे जनपद ! तुमने मुझको अच्छी तरह से पहिचान लिया है ॥३६॥ हे मेदिनी के स्वामिन् ! अब बहुत ही थोड़े-से समय में यह पृथ्वी जल में भग्न हो जायगी । जिसमें ये समस्त पर्वत वन और कानन सभी इस मेदिनी के साथ जल में डूब जायेंगे ॥३७॥ हे महीपते ! यह नौका ममस्त देवों के निजाय में निर्मित हुई और महान् जीवों के निजाय की रक्षा के लिये ही इसका निर्माण उत्तम है ॥३८॥ से सुबन ! जो भी स्वेदत्र-अब्दत्र-त्रायुज और उद्भिज जीव हैं उन सब धनापो को इसी नौका में रखकर आप उनकी रक्षा कीजिएगा ॥३९॥ जिस समय में युगान्त की वायु से अग्निहृत यह नौका होवे तब हे नृप ! हे राजेन्द्र ! इसको मेरे शृङ्ग में सम्मिलित कर देना ॥४०॥ हे पृथिवी पते ! इसके उपरान्त जिन समय में समस्त स्थवर और चर के लय का अन्त हो उस वक्त आप ही इस सम्पूर्ण जगत् के प्रजापति होंगे ॥४१॥ इस प्रकार से सतयुग के आदि काल में सबल और धृतिमान् नृप और देवों के द्वारा पूज्य मन्दन्तर का भी आक्षय होगा ॥४२॥

## २ — मत्स्य-प्रनुमंवाद्यवर्णन

एवमुक्तो मनुस्तेन पप्रच्छ मधुसूदनम् ।

भगवन् ! किमद्भिवर्षेण विप्यत्य-तन्क्षयः ॥१॥

तत्त्वानि च कथं नाथ ! रक्षिष्ये मधुसूदन !

त्वया मह पुनर्योगं कथं वा भवितामम ॥२॥

अद्य प्रभृत्यना वृष्टिर्भविष्यति महीतले ।  
 यावद्वर्षशत साग्र-द्रुमिधमनुभावहम् ॥ ३  
 ततोऽल्पसत्त्वक्षयदा रश्मयः सप्त दारुणाः ।  
 सप्तसप्तेभंविष्यन्ति प्रतप्ताङ्गारवर्णिनः ॥ ४  
 और्वानलोऽपि विकृतिङ्गमिष्यति युगक्षये ।  
 विपाग्निश्चापि पातालात्सङ्कपणमुखच्युतः ।  
 भस्स्यापि ललाटोत्थतृतीयनयनानल ॥ ५  
 त्रिजगन्निदं हन् क्षोभसमेप्यति महामुने !  
 एवमग्धा महीमर्वा यदास्याद्भूस्मभन्निभा ॥ ६  
 आकाशमूष्मणा तप्तम्भविष्यति-परन्तप ।  
 तत्र सदेवनक्षत्र जगद्यास्यति सक्षयम् ॥ ७

श्री सूनजी ने कहा—उन मत्स्यावतारी भगवान् के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर राजा मनु ने मधुसूदन प्रभु से पूछा था—हे भगवन् ! यह अनन्तर क्षय कितने वर्षों में होगा ! ॥१॥ हे मधुसूदन ! हे नाथ ! इन जीवों की रक्षा किस प्रकार से मैं करूँगा ! फिर आपके साथ मेरा योग कैसा होगा ? ॥२॥ मत्स्य भगवान् ने कहा—आज ही से लेकर इस महीतल में अनावृष्टि (वर्षा का अभाव) होगी । जिस समय तक साग्र सौ वर्ष होंगे तब तक यहाँ पर परम अशुभ का देन वाला भ्राल हो जायगा ॥३॥ इन के अनन्तर पून प्रतप्त अङ्गार के वण के समान वण वाले सप्त साप्त सूर्य सात दारुण रश्मियाँ हो जायगी जो छोटे २ सत्त्वा के क्षय को कर देने वाली हैं ॥४॥ युग के क्षय में और्वानल भी विकृति को ग्रस्त हो जायगा । पाताल लोक से भगवान् स कपण व मुख स च्युत विपाग्नि भी विकृत स्वरूप धारण करेगा और महादव जो व ललाट में उत्थित तीसरे नेत्र का अनल भी महान् विकृत रूप धारण करेगा ॥५॥ हे महामुने ! इन तीनों लोकों को निदाघ करते हुए परम शास को प्राप्त हो जायगा । इस तरह से यह सम्पूर्ण पृथ्वी

दग्ध हो करके जिस समय में अग्नि के सहित हो जायगी उस समय में हे परमेश ! यह समस्त आकाश मण्डल उष्मा से एकदम तप्त हो जायगा । इसके अनन्तर देवगण और नक्षत्रों के सहित यह सम्पूर्ण जगत् सशय को प्राप्त हो जायगा ॥६॥३॥

सम्बर्तो भीमनादश्च द्रोणश्चण्डोवनाटक ।  
विद्युत्पताकः क्षोणन्तुमप्तं तेलयवगरिदा ॥ ८  
अग्निप्रस्वेदसम्भूता प्लावयिष्यन्ति मेदिनीम् ।  
समुद्राः क्षोभमागत्य चैरत्वेन व्याप्स्यता ॥ ९  
एतेद्राणवमवन्दुगिष्यन्ति जगत्तनयम् ।  
वेदनाविमिमा गृह्य सत्त्वबीजानि सवणः ॥ १०  
आरोप्य रज्जुयोगेन मत्प्रदत्तेन सुव्रत ।  
सयम्य नावं मच्छून्ने मत्प्रभावाभिरक्षित ॥ ११  
एकः स्यात्सिद्धिं देवेषु द्वेषेऽपि परतप ।  
साममूर्धाविह ब्रह्मा चतुर्लोकाभिव्यक्त ॥ १२  
नर्मदा चनदीपुण्यामावण्टेयोमहान्छवि ।  
भवोवेदा पुराणद्वयविद्याभिः सवन्तोद्भूतम् ॥ १३  
त्वया सादृ मिदं विद्व म्यास्यत्यन्तरमक्षये ।  
एवमेकाणवे जाते चाक्षुषान्तरसक्षये ॥ १४

सम्बर्त-भीमनाद-द्रोण-चण्ड-वनाहनक-विद्युत्पताक और क्षोण ये सात प्रकार का लव करने वाले भेद हैं ॥८॥ अग्नि के प्रस्वेद से सम्भूत इस मेदिनी की ये मेघ प्लावित कर देवे । समुद्र भी सब क्षाम को प्राप्त होकर एक रूप वाले व्यवस्थित हो जायेंगे । यह प्रतीक हो सम्पूर्ण को एक मात्रमय कर देगे अर्थात् चारों ओर वैशेष्य में समुद्र के अतिगिन् अन्य कुछ भी दिखाई नहीं देगा । उस समय में इस वेद नौका का ग्रहण करके सभी ओर से सत्त्व बीजों को हममें स-री मत वरे हे सुव्रत ! मेरे द्वारा दिये हुए रज्जु के योग से इस नाव का

संयमित करके मेरे ही शृङ्ग में मेरे प्रमाण में सुरक्षित होगा ॥८॥१॥१०॥  
 ॥११॥ हे परन्तप ! समस्त देवों के दण्ड हा जाने पर भी एक देव उस  
 समय में भी स्थित रहेगा । वह सोम और सूर्य समावहन करने वाले  
 चारों ओरों से समन्वित ब्रह्मा जी होंगे ॥१२॥ नर्मदा परम पुण्यमयी  
 मदी है और मार्कण्डेय महान् ऋषि हैं । सब वेद और पुराण तथा  
 विद्याओं से सर्वतः वृत्त यह विद्वत् आप के साथ अन्तर सक्षय में स्थित  
 रहेगा जबकि यह आशुपान्तर सक्षय एकारणव मात्र रहेगा ॥१३॥१४॥

वेदान् प्रवृत्तयिष्यामि त्वत्सर्गादी महीपते ।

एवमुक्त्वा स भगवास्तत्रैवान्तरधीयत् ॥१५॥

मनुरप्यास्थितोयोग वासुदेवप्रसादजम् ।

अभ्यसन् यावदाभूतसत्त्वव पूर्वमूचितम् ॥१६॥

काले यथोक्ते सजाते वासुदेवमुखोद्गते ।

शृङ्गी प्रादुर्बभूवायमत्स्यरूपी जनादनः ॥१७॥

भुङ्क्षोरञ्जुरूपेणमनो पाश्वमुपागमत् ।

भूतान्सर्वान्समाकृष्ययोगेनारोप्यधर्म्मवित् ॥१८॥

भुजङ्गरज्वा मत्स्यस्य शृङ्गे नाबमयोजयत् ।

उपध्मं पस्थितस्तस्या प्रणिपत्यजनादनम् ॥१९॥

आभू सत्त्ववे तस्मिन्मतीते योगशायिना ।

पृष्ठेन मनुना प्रोक्तं पुराण मत्स्यरूपिणा ॥

तदिदानीं प्रवक्ष्यामि शृणुध्वमृषिसत्तमाः ॥२०॥

यदभवदिभ पुत्रा पृष्ट सृष्टयादिवमहन्दिजा ।

तदेवैवाणवे तस्मिन् मनु प्रपच्छ केशवम् ॥२१॥

हे महीपते ! आपके स्वर्ग के आदिकाल में मैं वेदों को प्रवृत्त  
 करूंगा । इतना कहकर वह भगवान् वही पर अन्तर्ध्यात हो गये थे  
 ॥ १५ ॥ महीपति मनु भी भगवान् वासुदेव के प्रसाद से समुत्पन्न योग  
 में समास्थित होगये थे जिसका अभ्यास पूर्व में सूचित जब तक भूत  
 सत्त्वव रहा तब तक करते रहे थे ॥ १६ ॥ भगवान् वासुदेव के मुख



द्वारा उद्गत जैताभी कहा गया था उसी काल के समुपस्थित हो जाने पर  
मत्स्य स्वरूप को धारण करने वाले जनार्दन शृङ्गो प्रादुर्भूति होगये थे  
॥ १७ ॥ एक भुजंग रज्जु ( रस्सा ) के स्वरूप में मनु के पार्श्व में  
समागत हो गया था । धर्म के वेता उस मनु ने समस्त भूतो का समा-  
कल्पित करके योग के द्वारा समारोपित कर दिया था ॥ १८ ॥ उस  
नौका को भुजंग की रज्जु से मत्स्य के शृङ्ग में योगित कर दिया था ।  
फिर भगवान् जनार्दन की सेवा में प्रणिपात करके उस नौका के ऊपर  
स्वयं उपस्थित होगया था ॥ १९ ॥ उस आमृत संप्लव के समाप्त हो  
जाने पर योगशास्त्री मत्स्य रूपी मनु के द्वारा पूछे जाने पर यह पुराण  
कहा गया था । उठो ही इस समय में मैं कहूँगा । हे श्रेष्ठ ऋषिगण !  
आप सब लोग उसका श्रवण कीजिये ॥ २० ॥ हे द्विजबन्ध ! आप लोगों  
ने पहिले मुझसे सृष्टि आदि का वृत्तान्त पूछा था वही उस समय में जब  
कि यह सम्पूर्ण अगत् एक अर्णव स्वरूप में था मनु ने भगवान् केशव से  
पूछा था ॥ २१ ॥

उत्पत्तिं प्रलयञ्चैव वंशान्मन्वन्तराणि च ।  
वंश्यानुचरितञ्चैव भुवनस्यच विस्तरम् ॥२२॥  
दानधर्मविधिञ्चैव श्राद्धवत्सञ्च शाश्वतम् ।  
वर्णाश्रमविभागञ्च तथेष्टानुत्तंसजितम् ॥२३॥  
देवतानां प्रतिष्ठादि यन्चान्यद्विद्यते भुवि ।  
तत्सर्वं विस्तरेण त्वं धर्मग्यास्यातुमर्हसि ॥२४॥  
महाप्रलयनालान्त एतदासीत्तमोमयम् ।  
प्रसुप्तमिव चातक्यमप्रज्ञातमलक्षणम् ॥२५॥  
अविज्ञेयमविज्ञातं जगत् स्थास्तुचरिण्य च ।  
तत् स्वयम्भूरव्यक्तं प्रभव पुण्यकम्मणाम् ॥२६॥  
व्यञ्जयन्नेतदस्त्रिल प्रादुरासीत्तमोनुद ।  
योऽतीन्द्रियः परोव्यक्तादणुर्ज्यायान् सनातन ।

नारायण इति रथातः स एकः स्वयमुद्यमो ॥२७

यः शरीरादभिध्याय मिसृक्षुर्विविध जगत् ।

अपएव ससर्जदो तासु बीजमवासृजत् ॥२८

मनु ने कहा—हे भगवन् ! इस विश्व की उत्पत्ति तथा इसकी प्रलय—राजाओं आदि के वश तथा सम्बन्ध—वश में होने वाला अनुष्ठित और इस भुवन का विस्तार, दान, धर्म का विधान—शाश्वत आढ्यकल्प—चारों वशों तथा चारों आश्रमों का विभाग तथा इष्टावृत्त सज्ञा वाला कर्म, देयगणों की प्रतिष्ठा आदि एवं अग्नयी जो कुछ भी इस भूमण्डल में विद्यमान है वह सभी कुछ विस्तार पूर्वक तथा धर्म की पूर्ण व्याख्या का कथन करने को आप परम योग्य हैं उसे अब कहिये ॥२२॥२३॥२४॥ मत्स्य भगवान् ने कहा—यह तमोमय महा प्रलय का अंत काल है । यह प्रसुप्त की भाँति तर्क न करने के योग्य अप्रज्ञात और लक्षण शून्य ही होता है ॥ २५ ॥ यह स्थावर और चर जगत् अविशेष और अविज्ञात सा रहता है । इसके अनन्तर पुण्य कर्मों का प्रभव - अत्यन्त स्वमम्भूतम का मोदन करने वाले इस समस्त जगत् को प्रकट करते हुए प्रादुर्भूत हुए थे । जो इन्द्रियो का पट्टेव से अतीत अग्न्यक्त से पर, अणु, ज्यामान् और समातन थे । इनका शुभ नाम नारायण प्रसिद्ध था, यह एक ही थे और स्वय ही उद्भूत हुए थे ॥ २६ ॥ ॥ २७ ॥ जिन ने अपने शरीर से अभिध्यान करके इस विविध भाँति के जगत् की रचना करने की इच्छा वाले थे । इसीलिए सृजन किया था और आदि में उन में बीजों का अत्र सृजन किया था ॥ २८ ॥

तदेवाण्डसमभवद्धेमरूप्यमय महत् ।

सवत्सरसहस्रेण सूर्याद्युतसमप्रभम् ॥ २९

प्रविद्यान्तमहातेजा स्वयमेवात्मसम्भवः ।

प्रमावादपितृव्याप्याविष्णव्यमगमत्पुनः ॥३०

तदतमगवानेन सूर्य्य समभवत् पुरा ।

आदित्वश्चादिभूतत्वात् ब्रह्माब्रह्मपठन्नभूत् ॥३१॥

दिक् भूमि ममकरोत्तदण्डसकलद्वयम् ।

सचारुगोद्विश मन्त्रामध्येव्योमश्च आस्वनम् ॥३२॥

जर युर्मैरमुग्यादन शैलाम्तरयाभवस्तदा ।

यदुत्पन्नतदनु मेघस्तडित्सघातमण्डलम् ॥३३॥

नद्याऽण्डनाम्न. सम्भूता. पितरां ननवस्तथा ।

सप्तयेऽमोममुद्राश्चतेऽपिचान्तजलोद्भवा ।

लवणेष्वमुराद्यान्च नानारत्नममन्विताः ॥३४॥

स सिमृक्षुरभदेवः प्रजापतिरग्निदम ।

तत्तजसदश्च तत्रापि मातण्ड. सगजायत ॥ ३५॥

मृतेऽडे जामने यम्मान्मातडस्तेन मंसृज. ।

रजोगुणमय यत्तद्रूप तस्य महात्मनः ।

अनुमुखः स भगवानभूत् नोक्तपितामहः ॥ ३६॥

येन सृष्ट जगत्सर्वं मदेनामुरमानुषम् ।

तमवेहि रजोमयं महत्सत्त्वमुदाहृतम् ॥३७॥

वही अण्डहंस रूपमत्र महान हो गया था और एक सहस्र मन्त्र-  
स्मर से यह दश महत्त्व सूर्यो की प्रभा के समान प्रभा बना हो गया था  
॥ २६ ॥ महान् तत्र से युवन आरभ्य मन्त्रव प्रयोग स्वयम्भू प्रभु अन्तर  
मे स्वय ही प्रविष्ट होकर प्रभाव मे जो उसकी शक्ति के द्वारा फिर वह  
विष्णुत्व की प्राप्ति हो गया था ॥ २७ ॥ उनके अन्तर मे गये हुए यह  
भगवान् पश्चिमे मूर्ध्न दूर वे जग्रा आदि भूत होने के कारण ने प्रज्ञ का  
पाठ करत हुए आदि-य हुए ॥ २८ ॥ उन अण्ड के दो खण्डो ने दिन  
और भूमि को किया था और उसने समा दिशाओं को बनाया था तथा  
मध्य मे आस्वन व्योम की रचना की थी ॥ २९ ॥ उस समय मे उसके  
जटागु और मुख्य शैल हुए थे । जो उत्पन्न था वही मेघ और विद्युत् के

सङ्घात का मण्डल होगया था ॥ ३३ ॥ उस अरुण नाम से नदिया तथा पितृगण और मनु वर्म हुए थे । जो ये सात समुद्र हैं वे भी अन्तर में जल से उद्भव प्राप्त करने वाले हो गये थे । जिनका लवण सागर इक्षु समुद्र और सुरा सागर आदि कहा गया है वे सब अनेक रत्नों से समन्वित होगये थे ॥ ३४ ॥ हे आरन्दय ! सृजन करने की इच्छा वाले वह देव प्रजापति होगये थे । उनके तेज से बहा पर यह मार्तण्ड समुत्पन्न होगया था ॥ ३५ ॥ अण्ड के मृत होने पर जिससे यह समुत्पन्न होता है इसी कारण से यह मार्तण्ड कहा गया है । उस महान् आत्मा वाले का यह रजोगुणमय स्वरूप है । लोको के पितामह वह भगवान् चार मुखी वाले होगये थे ॥ ३६ ॥ जिसने इस सम्पूर्ण जगत् का सृजन किया है जिसमें देव-असुर और मानव सभी हैं उसको रजोगुण के रूप वाला समझलो और महत्सर्व उदाहृत किया गया है ॥ ३७ ॥

### ३—सृष्टि-प्रकरण

चतुर्मुखत्वमगमत्कस्मात्लोकपितामहः ।  
 कथं तु लोकानसृजत् ब्रह्मविदाम्बर ॥ १  
 तपश्चचार प्रथमममराणां पितामहः ।  
 आविर्भूनास्ततो वेदाः साङ्गोपागपदब्रह्मा ॥ २  
 पुराण सर्वशास्त्राणां प्रथम ब्राह्मणा स्मृतम् ।  
 नित्यं शब्दमयपुण्यं शतं रोटिप्रविस्तरम् ॥ ३  
 अनन्तरञ्च ब्रह्मेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्मृताः ।  
 भीमासान्यायविद्याश्च प्रमाणाष्टसयुताः ॥ ४  
 वेदाभ्याममरतस्यास्य प्रजावामस्य मानसाः ।  
 मनसः पूर्वमृष्टाव जातायत्तेन मानसाः ॥ ५

शारीरानय वदयामि मातृहीनान् प्रजापते ।

अगुष्ठादक्षिणाद्वा प्रजापतिरजायत ॥६॥

धम्मंस्तनान्तादभवत् हृदयात्कुमुमायुधः ।

भू मयादभवत्क्रोधोलोभश्चाधरसम्भवः ॥१०॥

बुद्धेर्मोहः समभवदहङ्कारादभून्मदः ।

प्रमादश्चाभवत्स्थानमृत्युर्लोचनता नृप ॥११॥

भरतः करमध्यात्तु ब्रह्मसूनुर्भूततः ।

एते नवः । सूता राजन् ! कन्या च दशमी पुनः ।

अङ्गजा इति विख्याता दशमी ब्रह्मण सुता ॥१२॥

बुद्धेर्मोहः समभवदिति यत्परिकीर्तितम् ।

अहङ्कारः स्मृतः क्रोधोबुद्धिर्नामकिमु यते ॥१३॥

इस भाँति ब्रह्माजी के भृगु पुत्र उत्पन्न हुए थे और तुरन्त ही स्वल्प समय में नारद जी का प्रादुर्भाव हुआ था । इस प्रकार से ब्रह्माजी ने इन दश मानस मुनियों को समुत्पन्न किया था ॥ ८ ॥ इसके उपरान्त धन में प्रजापति के माता से रहित पुत्रों के शरीरों का वर्णन करता हूँ कि किस अङ्ग से किसकी समुत्पत्ति हुई थी । ब्रह्माजी के दक्षिण अगुष्ठ से दक्ष प्रजापति का जन्म हुआ था ॥ ९ ॥ स्तन के अन्तर से धम्म और हृदय से कुमुमायुध [ कामदेव ] हुआ था । भोरो के मध्य भाग से क्रोध की उत्पत्ति हुई थी तथा अधरो से लोभ समुत्पन्न हुआ था ॥ १० ॥ बुद्धि से मोह पैदा हुआ और अहङ्कार से मद की समुत्पत्ति हुई थी । हे नृप ! ब्रह्माजी के वक्षः भाग से प्रमोद का जन्म हुआ था और लोचनों से मृत्यु की उत्पत्ति हुई ॥ ११ ॥ इसके उपरान्त ब्रह्माजी का पुत्र भरत उनके वर के मध्य भाग से उत्पन्न हुआ था । हे राजन् ! ये नौ तो ब्रह्माजी के पुत्र हुए थे और अगर दशमी कन्या समुत्पन्न हुई थी । यह ब्रह्मा जी दशमी कन्या [ पुत्री ] अङ्गजा-इस शुभ नाम से विख्यात हुई थी ॥ १२ ॥ मनु महर्षि ने कहा-हे भगवन ! आपने अभी यह वर्णन

कर दिया करती है ॥१५॥ जब ये ही तीन गुण स्रोत को प्राप्त होते हैं तो इनसे तीन देव समुत्पन्न होकर तीन स्वरूपों में सामने आते हैं । सिद्धान्ततः यह एक ही मूर्ति है और तब एक के ही ये तीन भाग हो जा सकते हैं जो ब्रह्मा-विष्णु और महेश—इन तीन शुभ नामों वाले होने हैं ॥१६॥ यह विकार युक्त प्रधान से महत्तत्त्व समुत्पन्न होता है । इसकी 'महान्' यह व्याप्ति इसी लिये है कि यह सदा धोखे का होता है । ॥१७॥ मान के बढ़ाने वाला अहङ्कार महत्तत्त्व से समुत्पन्न होता है । इसके पश्चात् पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ होती हैं । जिनके विषय में वस्तुवाये गे तथा पाँच अन्य कर्मेन्द्रियाँ होती हैं ॥ १८ ॥ पाँचो ज्ञानेन्द्रियों के नाम श्रोत्र स्पर्श-स्पर्श-जिह्वा और नासिका ये हैं । पायु-रस-हस्त-पाद नाक-ये पाँच कर्मेन्द्रियों के नाम हैं, यही दशो इन्द्रियों का समग्र है ॥१९॥ इन दशो इन्द्रियों के भिन्न २ अपने विषयों के क्रम से ही बनलाते हैं । ज्ञानेन्द्रियों के विषय शब्द-स्पर्श-रूप-रस और गन्ध हैं । कर्मेन्द्रियों के विषय क्रमशः उत्तर्य-आनन्द-दान-पति और धात्वाप ये इनकी क्रियाएँ हैं ॥२०॥ मन ग्यारहवीं सर्वोक्ति इन्द्रिय है । इस में कर्म और बुद्धि दोनों ही गुणों का समावेश होता है । इन्द्रियों के अवयव बहुत ही सूक्ष्म होने हैं । मनीषीगण उसकी मूर्ति का समाग्र्य ग्रहण करते हैं । इसी कारण से उनका शरीर तन्मात्रा कहा गया है । शरीर के ही योग से यह जीवार्मा भी बुद्धों के द्वारा शरीरी कहा गया करता है ॥ २१, २२॥

अप्यन्ति यस्मात्तन्मात्रा शरीर तेन सस्मृतम् ।

शरीरयोगान्जीवोऽप्यशरीरीगच्छतेबुध ॥२२॥

मन सृष्टि विवृणुते चाद्यमानं सिमृजया ।

आकाशशब्दतन्मात्रादभृच्छब्दगुणात्मकम् ॥२३॥

आकाशविकृतेर्वायुः शब्दस्पर्शगुणोऽभवत् ।

वायाश्च स्पर्शतन्मात्रात्तेजश्चाविरम्भत ॥२४॥

त्रिगुण तद्विवारेण तच्छब्दस्पर्शरूपवत् ।

तेजोविकारादभवद्वारि राजवतुगुणम् ॥२५

रसतन्मात्रसम्भूत प्रायोरसगुणात्मकम् ।

भूमिस्तु गन्धतन्मात्रादभूत्पञ्चगुणान्विता ॥२६

प्रायागन्धगुणा सातु बुद्धिरेषा गरीयसी ।

एभिः सम्पादित भुङ्क्तेपुरुषः पञ्चविशकः ॥२७

पूजन करने की इच्छा से प्रेरणा प्राप्त हुआ मन सृष्टि किया करता है । यह आकाश शब्द तन्मात्रा से ही समुत्पन्न होता है और इस आकाश का शब्द ही विशेष गुण होता है ॥२३॥ आकाश की विकृति से वायु की समुत्पत्ति होती है और इस वायु के शब्द और स्पर्श ये ही विशेष गुण हुआ करते हैं । वायु के स्पर्श तन्मात्रा से शब्द गुण के स्वरूप वाला तेज प्रवृत्त हुआ करता है । इस तेजमें शब्द के अतिरिक्त स्पर्श और रूप के भी दो गुण और होते हैं । ऐसे यह तीन गुणो वाला होता है । तेज के विकार से जल की उत्पत्ति होती है । इस जल में हे राजद् चार गुण होते हैं ॥२४, २५, यह इसकी तन्मात्रा से समुद्भूत होता है अतएव यह प्रायः इस गुण से समान्वित होता है । भूमि गन्ध की तन्मात्रा से उत्पन्न होती है और इसमें रूप-रस-स्पर्श-शब्द और गन्ध ये पाँच गुण होते हैं ॥२६॥ प्रायः यह गन्ध गुण वाली ही होती है और यही गरीयसी बुद्धि भी है । इनके द्वारा सम्पराहित को यह पञ्चविश पुरुष भोजता है ॥ २७ ॥

ईश्वरेच्छावशः सोऽपि जीवात्मा कथ्यते बुधैः ।

एव पञ्चविशकप्रोक्तं शरीरइहमानवे ॥ २८

सांख्यसंख्यात्मकत्वाच्चकपिलादिभिरुच्यते ।

एतत्तत्त्वात्मकं कृत्वा जगद्दधाज्जीजनत् ॥ २९

सावित्री लोकमृष्ट्यर्थं हृदि कृत्वा समास्थितः ।

तत् सञ्जपतस्तस्य भित्वा देहमनन्मयम् ॥ ३०

यावदष्टदशत दिव्यं यथान्यः प्राकृतो जनः ।

तत बालेन महतातस्या पुत्रोऽभवन्मनु ॥ ३१ ॥  
 स्वायम्भुव इति ख्यात स विराडिति न श्रुतम् ।  
 तद्रूपगुणसामान्यादधिपूरय उच्यते ॥ ३२ ॥  
 वैराजा यत्न ते जाता बहव ऋषिसत्तमाः ।  
 स्वायम्भुवा महाभागा सप्त सप्त तथापरे ॥ ३३ ॥  
 स्वारोचिपाद्या सर्वे ते ब्रह्मतुल्यस्वरूपिण ।  
 औत्तमिप्रमुखा स्तद्व्योपान्त्य सप्तमोऽधुना ॥ ३४ ॥

बुधो के द्वारा वह जीवात्मा भी ईश्वर की इच्छा के वश में रहन वाला कहा जाता है । इस प्रकार से इस मानवीय शरीर में छद्मबीज तत्त्व युक्त या यह ब्रह्मिण्य इस नाम से कहा जाता करता है ॥ २८ ॥ तबों की सख्या के स्वरूप वाला होने ही से कपिल आदि के द्वारा यह साख्य शास्त्र या दशन कहा जाता है । वेधा ने इस जगत् को एक तत्त्व के स्वरूप वाला समुत्पन्न किया है ॥ २९ ॥ लोक की स्रष्टि के लिये सावित्री को अपने हृदय में करके ही प्रजापात समास्थित होते हैं । इसका उपरान्त भलीभाँति जाप करते हुए उनके कल्मष सहित शरीर का भेदन करके ही सावित्री प्रकट हुई थी ॥ ३० ॥ जिन प्रकार से कोई प्राकृत मनुष्य होना है उसी भाँति दि०प सो वष तक के बहुत महान् काल में उसका अर्थात् सावित्री का मनु पुत्र उत्पन्न हुआ था ॥ ३१ ॥ इसका स्वायम्भुव मनु—यह शुभ नाम प्रसिद्ध था वह महान् विराट् था—ऐसा हमने सुना है । उसके रूप गुण सामान्य से वह अधि पुरुष कहा जाता है ॥ ३२ ॥ जहाँ पर वे बहुत से ऋषित ग्रन्थ वाले वैराज समुत्पन्न हुए थे तथा दूसरे सात सात महाभाग वाले स्वायम्भुव थे ॥ ३३ ॥ स्वारोचिष आदि वे सब ब्रह्मा के ही तुल्य स्वरूप वाले थे । उसी तरह औत्तमि प्रमुख भी थे अर्थात् जिनमें औत्तमि ग्रन्थ था वे भी थे जिनमें आप इस समय में मानवें होते हैं ॥ ३४ ॥



आगे करके सप्तपि गण स्थित रहा करते हैं ॥ ५ ॥ धन्या नाम धारिणी  
मनु की कन्या ने ध्रुव से शिष्ट को जन्म दिया था । शिष्टात्मा अग्नि  
को कन्या सुच्छाया ने सुतो को समुत्पन्न किया था ॥ ६ ॥ वृष, रिपु,  
जय, यत्त, दृक् तेजस, चक्षुष ब्रह्म दोहित्री में और वह रिपुंजय वीरिणी  
के उत्पन्न हुए थे ॥ ७ ॥

वीरण्यात्मात्मजायास्तु चक्षुर्मनुमजीजनत् ।  
मनुर्वैराजकन्याया नड्वलाया सचाक्षुषः ॥८॥  
जनयामास तनयान्दश शूरानकल्मषान् ।  
ऊ : पूरु शतद्युम्नरत्तपस्वी सत्यवाक् हविः ॥९॥  
अग्निष्टुर्दातिरात्रश्च सुद्युम्नश्चापगजितः ।  
अभिमन्युस्तु दशमो नड्वलायामजायत ॥१०॥  
ऊरोरजनयत् पुत्रान् पडाग्नेयी तु सुप्रभान् ।  
अग्निमुमनस स्याति व्रतुमङ्गिरसङ्गयम् ॥११॥  
पितृकन्या सुनीथातु वेनमणादजीजनत् ।  
वेनमन्यायिन विप्रा ममन्यस्तत्करादभूत् ॥  
पृथुर्नाम महातेजाः स पुत्रो द्वायजीजनत् ॥१२॥  
अन्तर्धानस्तु मारीच शिखाण्डन्यामजीजनत् ।  
हविर्धानात् पडाग्नेयी धिषणाऽजनयत् सुतान् ।  
प्राचीनवर्हिष साग यम शुक्र बल शुभम् ॥१३॥  
प्राचीनवर्हिर्भगवान् महानासीत्प्रजापतिः ।  
हविर्धाना प्रजास्तेन बहवः सम्प्रवर्तितान् ॥१४॥

वीरण्या की आत्मजा मे मनु ने चक्षु को प्रसूत किया था और  
वैराज की कन्या नड्वला मे सचाक्षुष मनु ने कल्मष से रहित महान्  
शूरवीर दश पुत्रों को जन्म ग्रहण कराया था । उन दशों के नाम—  
ऊरु—पूरु—शतद्युम्न—तपस्वी सत्यवाक् हवि—अग्निष्टुत्—दातिरात्र—सुद्युम्न—  
अपराजित और अभिमन्यु दशम था जो नड्वला से उत्पन्न हुआ था ॥८॥

६, १० ॥ ऊह से पहाग्नेयी ने सुन्दर प्रसा वाले पुत्रों को प्रसूत किया था उन पुत्रों के नाम अग्नि-मुमन-ह्यग्नि-ऋतु-अङ्गिरा और गय ये थे ॥ ११ ॥ पितृ कन्या जिसका ध्रुम नाम सुनोया तो अङ्ग से वेन ओ जन्म दिया था । राजा वेन बहुत ही अधिक अन्यायी हुआ था । अतएव विप्रों ने उस को आप देकर फिर उसके शरीर का प्रथम किया था । उसका हाथ से मग्यन करने पर पृथु नाम वाला महान् तंत्रस्वी का जन्म हुआ था उस मृत्यु ने भी दो पुत्रों को प्रसूत किया था ॥ १२ ॥ इसने मिथुनिनी में अन्तर्धान और मारीच नाम वाले पुत्रों को उत्पन्न किया था । पिपणा पहाग्नेयीने इविर्धान स सुनो को प्रसूत किया था जिनके नाम प्राचीन बहि-साङ्ग, यम, शुक्र, बल और शुभ ये ॥ १३, प्राचीन बहि भगवान् एक महान् प्रजापति हुए थे । उसने हविर्धान बहुत सी प्रजाएँ सम्प्रवर्तित की थी ॥ १४ ॥

सवर्णयान्तु सामुद्रयान्दशधित मुतान्प्रभुः ।  
 सर्वपचेतसोनाम धनुर्वेदस्य पारया ॥ १५  
 तत्तपारक्षिता वृक्षा बभुर्लोकं समःतत ।  
 देवादेसान् च तानग्निरदहद्रविन्दन ॥ १६  
 सोमकन्याऽभवत्पत्नी माग्निा नाम विश्रुता  
 तेभ्यस्तु दक्षमेक सा पुत्र मग्यमजीजनत् ॥ १७  
 दक्षानन्तर वृक्षानोपधानि च सवशः ।  
 अजीजनत्सोमकन्या नन्दी चन्द्रवती तथा ॥ १८  
 सोमाशम्यचतम्यापि दक्षस्वासीति षोडश ।  
 तामातुविस्तर ब्रह्मे लोके य मुप्रनिष्ठितः ॥ १९  
 दिपदश्चाभवन् केचित् केचिद् बहूपश नराः ।  
 बलीमुखा शत्रुवर्णा वज्रप्राधरणास्तथा ॥ २०  
 अश्रुश्रुतमुग्रा केचित् केचित् मिहाननान्तथा ।  
 स्वपूजरमुग्रा केचित् के चिदुष्ट मुद्याम्नथा ॥ २१

ब्रह्म ने सवर्णा सामुद्रो मे दश सुतो को जन्म प्रदान किया था । ये सभी प्रचेतस नाम से प्रसिद्ध हुए थे ॥१५॥ उनके तप से सुरक्षित वृक्ष लोक मे सब ओर सुशोभित हुए थे । हे रविनन्दन ! देवो के आदेश से अग्नि ने उनको जला दिया था ॥१६॥ मारिषा इस शुभ नाम से प्रसिद्ध उसकी पत्नी हुई थी उनसे एक अगम्य अर्थात् परमोत्तम दक्ष नाम वाले पुत्र को उसने प्रसूत किया था ॥१७॥ दक्ष के अन्तर सभी ओर बहुत से वृक्ष और ओषधियाँ सोम कन्या ने समुत्पन्न की थीं तथा नन्दी चन्द्रवती का भी जन्म दिया था ॥१८॥ सोम के अश उस दक्ष के भी अस्ती कगोड़ हुए थे उनका बिस्तार बतायेगे जो लोक मे सुप्रतिष्ठित हुआ था ॥१९॥ कुछ दो पद वाले और कुछ बहुत पद वाले नर हुए थे । बबीमुख-शकु कण गया कण प्रावरण कुछ अश्व और रीछ के मुख बान तथा कुछ सिंह के समान मुख वाले हुए थे । कतिपय कुत्ता और शूकर व सुत्य मुख बान और कुछ ऊँट के समान मुख वाले हुए थे ॥२०, २१॥

जनयामासधर्मात्मास्लेच्छान् सर्वाननेकश ।

मसृष्ट्वामनसादत्त स्त्रिय पश्चादजीजनत् ।

ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ।

सप्तविंशति सामाय ददौ नक्षत्रसंज्ञिता ॥

८वासु मनुष्यादिताम्य सवमभूज्जत् ॥२३

उस धर्मात्मा न सब अनेको स्नेच्छा को भी जन्म दिया था । उा दश न मा म सृजन, करि पीछे स्त्रियो को जन्म दिया था ॥२२॥ उसने उन मे स दश तो धम्म का दी थी—नरह कश्यप को प्रदान की थी और सत्तार्दस नक्षत्र संज्ञा वाली सोम को दी थी । उ ही स्त्रियो से दव-अगुर और मनुष्य प्रवृत्ति का यह सम्पूर्ण जगत् हुआ था ॥२३॥

## ५—दक्ष प्रजापति से मयुनी मृष्टि

देवानां दानवानाञ्च गन्धर्वोऽगरक्षनाम् ।  
 उत्पत्तिविन्तरेणैव सूत ! ब्रूहि यथातथम् ॥ १ ॥  
 सङ्कुलाद्दर्शनात् स्पर्शात् पूर्वणा मृष्टिर्न्ययते ।  
 दक्षात्प्राचेतसाद्दूर्ध्वं मृष्टिर्मयुनसम्मवा ॥ २ ॥  
 प्रजानृजेति व्यादिष्टः पूर्वं दत्तः स्वयम्भुवा ।  
 यथा समजं चञ्चारी तथैव शृणुत द्विजाः ! ॥ ३ ॥  
 यदा तु नृजतस्तस्य श्वपिगणपन्नगान् ।  
 न वृद्धिमगमल्लोकास्तदा मयुनयोगसः ।  
 दक्षः पञ्चमहन्त्राणि पाञ्चजन्यामजीजनन् ॥ ४ ॥  
 ताम्बु द्वष्ट्वा महाभागः सिग्मश्रु विविद्या प्रजाः ।  
 नारदः प्राहृष्यन्वान् दक्षपुत्रान्ममागतान् ॥ ५ ॥  
 भुवः प्रमाणं सर्वत्र ज्ञातयोद्ध्वंमघ एव ख ।  
 ततः मृष्टिं विधेयेण कुरुष्वमृषिसदामाः ॥ ६ ॥  
 ते तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रयाताः नवैवोदिशम् ।  
 अद्यापि न निदत्तंते नमुद्रादिव निग्धवः ॥ ७ ॥

था । ४। विविध भीति की प्रजा की सृष्टि करने की इच्छा करने वाले महाभाग ने उनको देख करक ना रहने समावत ह्यश्व दक्ष क पुत्र से कहा था । ५। हे ऋषि स तमो । सवत्र इस भू मण्डल का पुमाण ऊर्ध्व भाग में और अधोभाग में भली भा त जान कर फिर विनेष रूप से सृष्टि की रचना करो । ६। उ होने भी उन के इस वचन को सुन कर सभी दिशाओं में प्रयाण किया था और तब स गये हुए वे आज तक भी वापिस नहीं लौटे हैं जिध तरह ननिर्या समुद्र में जाकर फिर वापिस नहीं लौटा करती हैं । ७।

ह्यश्वेषु प्रअष्टेषु पुनदक्ष प्रजापति ।  
 वीरिण्यामेव पुत्राणा सहस्रमसृजत्प्रभु ॥८॥  
 शबला नाम ते विप्रा समेता सृष्टिहेतव ।  
 नारदोऽनुगतानग्राह पुनस्तानपूववत्सतान ॥  
 भव प्रमाण सवत्र ज्ञात्वा भ्रातनयो पुन ॥९॥  
 आगत्य चाय सृष्टिञ्च करिष्यथ विशेषत ।  
 तेषि तेनैव मार्गेण जग्मुर्भ्रतृन् यथा पुरा ॥१०॥  
 तत प्रभति न भ्रातु कनीयानमागमिच्छति ।  
 अविपन्दु खमप्नोति तेन तत्परिव्रजेत् ॥ ११॥  
 ततस्तपु विनष्टेषु पटि क या प्रजापति ।  
 वीरिण्या जनयामास दक्ष प्राचेतसस्तथा ॥१२॥  
 प्रादात्स दक्ष धर्माय वश्यपाय त्रयोदश ।  
 सप्तविंशतिसोमायचतस्रोर्ऽरष्टनेमय (मिने) ॥१३॥  
 द्वे चव भगुपुत्राय द्व कृशादवाय धीमते ।  
 द्व चैवाङ्गिरस तद्वत्तासा नामानि विस्तरात् ॥१४॥

उन ह्यश्वों के द्रष्ट हो जान पर दक्ष प्रजापति ने पुन वीरिणी में प्रभु ने एव सहस्र पुत्रों का सृजन किया था । ८। वे विप्र शबल इस नाम जान थे और सभी सृष्टि के हेतु स्वरूप एवनिष्ठ हुए थे । फिर उन

अनुगत सुनो से पूर्व की भाँति ही नारद ने कहा था कि इस भूमि का सर्वत्र प्रमाण को जानकर वि यह जितनी विस्तृत है तथा अपने प्रथम गत भाइयों को भी जान कर फिर यहाँ आकर विशेष रूप से सृष्टि की रचना करोगे । देखिए नारद जी के कहने पर वे सभी उसी मार्ग से चले गये थे, जिससे पहिले उनके बड़े भाई लोभ गये थे । ८, १० ॥ सभी से लेकर भाई से छोटे भाई उस मार्ग की इच्छा नहीं करता है । अन्वेषण करते हुए दुःख की प्राप्ति होता है अतएव इसी कारण से इसका परिवर्तन कर देना चाहिए ॥ ११ ॥ इसके अनन्तर उनके भी विनष्ट हो जाने पर प्रजापति प्राचेनस दक्ष ने नैऋती में साठ कन्याओं का सृजन किया था अर्थात् उनको जन्म दिया था ॥ १२ ॥ उन्हीं साठ कन्याओं में से दक्ष ने दम पश्यायें तो पमं का दी थी—नैरह कश्यप ऋषि को प्रदान की थी, सत्ताईस मोम को अज्ञान की थी—वार अरिष्टनेमि को दी थी । अब उनके नाम विस्तारपूर्वक वर्तमाने जाते हैं ॥ १३, १४ ॥

शृणुष्व देवमातृणा प्रजाविस्तरमादितः ।

मरुत्वतो वसूयामो लम्बा भानुरदन्धतो ॥ १५

सङ्कल्पा च मुहूर्त्ता च साध्या विश्वा च भामिनी ।

धर्मपत्न्य समार्यातास्तामा पुत्राग्निबोधत ॥ १६

विश्वेदेवास्तु विश्वाया साध्या सायानजीजनत ।

मरुत्वत्या मरुत्वन्तो यसोस्तु वसवस्तथा ॥ १७

भानोस्तु भानवस्तद्वन् मुहूर्त्ताया मुहूर्तका ।

सम्प्रायाघोपनामानानागवीथोतुयामिना ॥ १८

पृथिवीतलसम्भूतमन्धत्यामजायन ।

सङ्कल्पायास्तु सङ्कल्पो वसुसृष्टिर्निबोधत ॥ १९

ज्योतिष्मन्तस्तु ये देवा व्यापवा पर्वतो दिशम् ।

वसवस्तेममार्यान् स्तेषां सगंनिबोधत ॥ २०

आपो ध्रुवश्च सोमश्च घग्श्चैवानिरोजनलः ।

प्रत्यूषश्च प्रमानश्च वसवोऽष्टौ रकोतिताः ॥ २१

अब आप लोग उन दवों की माताओं के परम शुभ नामों का तथा आदि से प्रजा के विस्तार का श्रवण करो—धम्म का जा वयामें दश दी गयी थी उन धम्म की पत्नियों के नाम मरुत्वती—वसूयामिनी—लम्बा भानु—अरु घती—सङ्कल्पा—मुहूर्ता—साध्या—विश्वा और भामिनी ये थ। ये सब धम्म की पत्नियाँ समारूपात हुई थी। अब उन दशा पत्नियों के उदर से जो पुत्र समुत्पन्न हुए थे उनको भी जान लो ॥ १५, १६ ॥ विश्वा के विश्वेदेवा पुत्र हुए थे और साध्या ने साध्या को जन्म दिया था। मरुत्वती ने मरुत्वायो ने जन्म ग्रहण किया था और वसू से वसुगण समुत्पन्न हुए थे ॥ १७ ॥ भानु से भानुगण और उसी भाति मुहूर्ता ने मुहूर्त को जन्म लिया था। लम्बा नाम की पत्नी ने घोष नाम वाले पुत्र हुए थे तथा यामि ने जन्म लेने वाले नागवीथी थे। अरुघती ने पृथ्वी तत् सम्भूत का जन्म हुआ था। सङ्कल्पा से सकल्प समुत्पन्न हुआ था। अब वसुकी सृष्टि का ज्ञान प्राप्त कर लो ॥ १८ १९ ॥ ज्योतिष्मान जो देव व्यापक हैं और सभी विश्वाओं में हैं वे ही सब वसुगण नाम से समारूपात हुए थे। अब हमसे जो सृष्टि हुई है उसको भी आप लोग समझ लो ॥ २० ॥ आप अर्थात् जल, ध्रुव, सोम धर, अनिल, अतल प्रसुथ, प्रभास ये आठ वसुगण कीर्तित किये गये हैं ॥ २१ ॥

आपस्य पुत्राश्चत्वारः शान्तो वैष्ण्डवश्च ।

शाम्बोऽथमणिः कश्चयज्ञरक्षाधिकारिणा ॥ २२

ध्रुवस्य कालपुत्रस्तु वर्चा सोमादजायत ।

द्रविणा हव्यावाहश्च धरपुत्रावुभौ स्मृतौ ॥ २३

कल्याणिन्या ततः प्राणोरमण शिशिरोऽपि च ।

मनोहराघरात्पुत्रानवापाथ हरे सुता ॥ २४

शिवा मनोजवः पुत्रमविज्ञानगतिं तथा ।

अवापाचानलात् पुत्रावग्निप्रायगुणौ पुनः ॥ २५

एतेषा मानसानान्तु क्षिणूलवरधाग्निषाम् ।  
 कोटयश्चतुराशोतिस्तत्पुत्राश्चाक्षया मताः ॥३१॥  
 दिक्षु सर्वासु ये रक्षा प्रकुर्वन्ति गणेश्वराः ।  
 पुत्रपौत्रसुताश्चैते सूरभी गर्भसम्भवाः ॥३२॥

अज, एकपाद, आदि बुध्म, विरुपाक्ष, रैवत, हर, बहुल्य,  
 अश्वत्थक-सुरेश्वर-सोवित्र-अपन्त - पिनाकीन्द्रपराजित—ये इदं समाख्यात  
 हुए हैं । एकादश गणेश्वर हुए हैं । २६, ३० ॥ ये मानस क्षिणूलवद के  
 धारण करने वाले हैं इनकी तक्षया चौगती करोड हैं और इनके पुत्र तो  
 अक्षय माने गये हैं ॥ ३१ ॥ ये गणेश्वर सभी दिशाओं में रक्षा का काम  
 किया करते हैं । पुत्र, पौत्र और ये सुत सभी सुर भी गर्भ से समूत होन  
 वाले हैं ॥ ३२ ॥

### ६— कश्यपान्वय वर्णन

कश्यपस्य प्रवक्ष्यामि पत्नीभ्यः पुत्रपौत्रकान् ।  
 अदितिदितिदनुश्चैव ऋषिष्टासुरसातया ॥१॥  
 सुरभिविनता नद्वताभ्रा काधवशा इरा ।  
 वद्रविश्वा मुनिस्तद्वतासा पुत्रान्निबोधत ॥२॥  
 तृषता नाम ये देवाश्चाक्षुषस्यान्तरे मनो ।  
 वैवस्वतेऽन्तरे चैते आदित्याद्वादशस्मृताः ॥३॥  
 इन्द्रोधाता भगस्त्वष्टा मित्रोऽयवरुणोयमः ।  
 विवस्वान्सविता पूषा अशुमान् विष्णुरेव च ॥४॥  
 एते सहस्रकिरणा आदित्या द्वादश स्मृताः ।  
 मारीचात् कश्यपादाप पुत्रानदितिहृतमान् ॥५॥  
 भृशाश्वस्य ऋषे, पुत्रा देवप्रहरणाः स्मृताः ।  
 एते देवगणा विप्राः प्रतिपन्वन्तरेषु च ॥६॥



उत्पद्यन्ते प्रलीयन्ते कल्पे त्वे तथैव च ।

दितिः पुत्रद्वयं लेभे कश्यपादिति नः श्रुतम् ॥७॥

श्री सूतजी ने कहा—अब मैं कश्यप ऋषि की पत्नियों से जो पुत्र और पौत्र आदि हुए हैं उनका हाल बतलाने को जा रहा हूँ । कश्यप महर्षि की पत्नियों के नाम अदिति-दिति-दनु-अरिष्टा-सुरसा-सुरभि-विनता-ताम्रा-क्षी-वशा-हरा-कहू-विषवा-मुनि-ये थे । अब इन पत्नियों के उबर से जो पुत्र समुत्पन्न हुए थे उनको भी आप लोग जान सोंजिए ॥१॥२॥ तुबिता नाम वाले जो देवता चाक्षुष भनु के अग्नर में हुए थे वे ही सब वैवश्वत मन्वन्तर में बारह आदित्य कहे गये हैं ॥३॥ उन द्वादश आदित्यों के नाम इन्द्र-धाता भग-रथष्टा-मित्र वसुण-यम विदस्वाम्-साविता-पूषा-अशुमान्-विष्णु-य है ये ही सहस्र करणों वाले बारह आदित्य कहे गये हैं । मारीच कश्यप महर्षि से अदिति ने परमोत्तम पुत्रों को प्राप्त किया था ॥४॥५॥ भृगास्व ऋषि के पुत्र देव प्रहरण कहे गये थे । हे विप्रो ! ये सब देव गण प्रत्येक मन्वन्तर में हुए हैं ॥६॥ ये सब उत्पन्न हुआ करते हैं और प्रलीन भी होते रहते हैं और कल्प कल्प में ऐसा ही होता रहता है । दिति नाम की जो महर्षि कश्यप जी की एक पत्नी थी उसने कश्यप से दो ही पुत्रों की प्राप्ति की थी ऐसा सुना गया है ॥७॥

हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्ष तथैव च ।

हि-ण्यकशिपोस्तद्वज्जात पुत्रचतुष्टयम् ॥८॥

प्रह्लादश्चानुह्लादश्च सहनादोह्लाद एव च ।

प्रह्लादपुत्र आयुष्मान् शिविर्वाष्पिल एव च ॥९॥

विरोचनश्चतुश्च स बलि पुत्रमाप्तवान् ।

बनः पुत्रशतं तालीद्वारण्येष्ठ ततोद्विजा ॥१०॥

धृतराष्ट्रस्तथा सूर्यश्चन्द्रश्च द्वागुतापन ।

निकुम्भनामो गुवत्तः कुक्षिभीमो विभीषणः ॥११॥

ए-मादास्तु बहवो वारण्येष्ठा मुखाधिकम् ।

वाण सहस्रबाहुश्च सर्वास्त्रगणसयुत ॥१२  
 तपसा तापितो यस्य पुरे वसति शूनभृत् ।  
 महाबालत्वमगमत्सारग्य यश्च पिनाग्नि ॥१३  
 हिरण्याक्षस्य पुत्राऽमूढलूक शकुनिस्तथा ।  
 भूतसन्तापनश्चैव महानामस्तथैव च ॥१४

उन दिति के पुत्रों के नाम हिरण्य वसिषु और .हिरण्याक्ष था ।  
 हिरण्य कशिपु के उसी भाँति चार पुत्र हुए थे ॥ ८ ॥ उन चारों पुत्रों  
 के नाम प्रह्लाद-भ्रनुह्लाद-सह्या और हन्नाद य थे । प्रह्लाद के पुत्र  
 आयुष्मान् शिवि वाष्कल तथा चौथा विरोचन हुए थे । विरोचन ने बात  
 नामधारी को पुत्र के रूप में प्राप्त किया था । हे द्विजगण ! राजा बालक  
 सौ पुत्र हुए थे जिन में बाण सबसे बड़ा पुत्र था । ८॥६॥१०॥ धृतराष्ट्र-  
 सूर्य-चन्द्र च द्वाश-नापन-निकुम्भ-गुवक्ष-कुक्षिभीम-विभीषण एव आदि  
 गुणों में सब विक बहुत से पुत्र थे इनमें बाण ज्येष्ठ था । बाण और  
 सहस्र बाहु सभी प्रकार के अस्त्रों के समुदाय से समन्वित थे धर्मार्थ  
 सभी अस्त्रों के पूज्य जाते थे ॥११॥१२॥ तपस्वियों के द्वारा परम  
 स तुष्ट हुए भगवन् शूनभृत् जिस के पुर में ही निवास किया करते  
 थे । और जो पित्रा की प्रभु के साम्य महा कालत्व का प्राप्त होगया  
 था । हिरण्याक्ष के पुत्र उलूक-शकुनि-भूत सन्तापन और महाबाल हुए  
 थे ॥१३॥१४॥

एतेभ्य पुत्रपौत्राणा कोटय सप्तसप्तति ।  
 महाबला महाकाया नानारूपा महोजस ॥१५  
 दनु पुत्रशत लेभे कश्यपाद्भलदर्पितम् ।  
 विप्रचित्ति प्रघ्नानोऽभ्युद्यो मध्येमहाबल ॥१६  
 द्विमूर्द्धा शकुनिश्चैव तथा शकुशिरोधर ।  
 अयोमुख शम्बरश्च कपिशो नामतस्तथा ॥१७  
 मारीचिर्मधवाश्चैव इरा गर्भाशरास्तथा ।

विद्रावणश्च केतुश्च केतुवोर्यः शतह्रदः ॥१८  
 इन्द्रजित् सप्तजिन्ध्रैव वज्रनाभस्तथैव च ।  
 एकचक्रो महाबाहुवज्राक्षस्तारकस्तथा ॥१९  
 असिलोमा पुलोमा च विन्दुर्वाणो महासुरः ।  
 स्वर्भानुर्वृषपर्वा च एवमाद्यादनो मुता ॥२०  
 स्वर्भानोस्तु प्रभा कन्या शची चैव पुलोमजा ।  
 उपदानवी मयस्यासीत्तथा मन्दोदरी कुहू ॥२१

इनसे जो पुत्र और पौत्र आदि हुए थे उनकी संख्या सतत करीब थी । ये महान् बलशाली महान् शरीर के आकार प्रकार वाले, अनेक प्रकार के स्वरूप धारी और महान् बल वाले सभी हुए थे ॥१५॥ दनु ने महा मुनीन्द्र कश्यप से बल के दर्प से समन्वित एक सौ पुत्रों का जन्म दिया था । इन सबके मध्य में महान् बलवान् और प्रधान विप्रचित्ति हुआ था ॥ १६ ॥ उन सौ दनु के पुत्रों में कतिपय प्रधान पुत्रों के नाम यहाँ पर बतलाये जा रहे हैं—द्विभूर्वा-शकुनि-शकुशिरोधर-अपोमुख-शम्बर-तपिश-मारीचि मेघवाक्-इरा-वर्मशिरा-विद्रावण-केतु-केतु वीर्य-शतह्रद-इन्द्रजित-सप्तजित-वज्रनाभ-एक चक्र-महा बाहु-वज्राक्ष-तारक-असिलोमा पुलोमा विन्दु वाण-महासुर-स्वर्भानु वृषपर्वा एव आदि दनु के पुत्र हुए थे जो कि प्रमुख थे ॥१७॥१८॥१९॥२०॥ स्वर्भानु की कन्या का नाम प्रभा था और शची थी तथा पुलोमजा मय की उपदान थी तथा मन्दोदरी और कुहू थी ॥२१॥

शर्मिष्ठा सुन्दरी चैव चन्द्रा च वृषपर्वणः ।  
 पुलोमा कालका चैव वैश्वानरसुते हिते ॥२२  
 वहवपत्ये महासत्वे मारीचस्य परिग्रहे ।  
 तयो. पष्टिसहस्राणि दानवानामभूत्पुरा ॥२३  
 पोलोभान् कालकेयाश्च मारीचोऽजनयत्पुरा ।  
 अवध्या येऽमराणां वै हिरण्यं खासिनः ॥२४

चतुर्मुखात्नव्यवरास्ते हता विप्रयेन तु ।

विप्रचिति सैहिकेयान् सिंहवायामजीजनत् ॥२५॥

हिरण्यकशिपोर्यैवैभाग्नेयास्तयोदत्त ।

व्यस कल्पश्च राजेन्द्र । न नो वातापिरेव च ॥२६॥

इत्वलो नमुचिश्च श्वसृपश्चाजनस्तथा ।

नरक कालनाभश्च सरमाणस्तथैव च ॥२७॥

कालवीर्यश्च विख्यातो दनुवशवियधना ।

सह्लाश्यस्य तु दैत्यस्यनिवातकवचा स्मृता ॥२८॥

वृषपर्वा की शर्मिष्ठा । सु दरो और चन्द्रा भी वैश्वानर की दो सुतायें हुई थी जिनका नाम पुलोमा और कालका था ॥२२॥ महान सत्त्व वाले और बहुत भी स तति से समवित्त मारीच का परिग्रह था उन दोनों व पुरातन काल में साठ हजार दानव हुए थे ॥२३॥ पहले म रीच ने पीनाम और कानकेयो को जन्म दिया था । जो ऐसे बलशाली थे कि ये हिरण्यपुर में निवास करने वाले सब देवगणों के द्वारा बध करने के योग्य नहीं थे ॥२४॥ वे सब चार मुखों वाले ब्रह्मा जी से वरदान प्राप्त करने वाले व विजय के द्वारा हत हुए थे । विप्रचिति सिंहिका र्भ सैहिकेयों को जन्म ग्रहण कराया था । जो हिरण्य कशिपु के वधायी थे वे तेरह हुए थे । हे राजेन्द्र ! उनके नाम ये हैं— व्यस कल्प नल वातापि इत्वल, नमुचि श्वसप, भजन नरक कालनाभ सरमाण और कालवीर्य तथा विख्यात ये दनु के वश के वधन करने वाले हुए हैं । जो सह्ला नामधारी दैत्य था उसके निवात कवच बड़े गये हैं ॥२५॥२६॥२७॥२८॥

अवध्या सवदेवाना ग धर्वोत्तरक्षसम् ।

य हना भगमाश्रित्य त्वर्जुनन रणाजिरे ॥२९॥

पटङ्ग या जनयामास ताग्रा मारीचवीजत ।

गुक्वाश्वनीचभासीचसुषीवीगृध्रिकाशुचि ॥३०॥

शुक्ली शुबानुनूक्वाश्च जनयामास धमत ।

श्यनी श्येनास्तथा भासी कुररानप्यजीजनत् ॥३१॥

गृध्री गृध्रान् कपोतांश्च पारावतविहङ्गमान् ।  
हससारसकौञ्चांश्च प्लवान् शुचिरजीजनत् ॥३२॥  
अजाश्वमेपोष्ट्रखरान् सुग्रीवां चाप्यजीजनत् ।  
एतान्म्रान्वयः प्रोक्तो विनतायांनिबोधत ॥३३॥  
गरुडः पततांनाथो अरुणश्च पतत्रिणाम् ।  
सौदामिनी तथा कन्या येयं नमसि विश्रुता ॥३४॥  
सम्पातिश्च जटायुश्च अरुणस्य सुतानुभौ ।  
सम्पातिपुत्रो बभ्रुञ्च शीघ्रगर्वापि विश्रुत ॥३५॥

ये सभी महान पक्ष विक्रमण सी थे और ऐसे बलिष्ठ थे कि समस्त देवगण तथा रथध्वज-उरग और राक्षस भी इनका वध नहीं कर सकते थे । इनको रणक्षेत्र में मार्ग का समाश्रय ग्रहण करके अश्रुत ने हो निहत किया था ॥३२॥ मारीच के बीच से ताम्रान छै कन्याओं का प्रसव किया था । उन छैओ कन्याओं के नाम ये थे-शुकी, श्येनी, भासी सुग्रीवी, गृध्रिका, शुचि ॥३०॥ शुकी ने शुको को तथा उसूरो को धर्म से जनम कराया था । श्येनी ने श्येनी को प्रसूत किया था और भासी ने कुरंगो को सम्भूत किया था ॥ ३१ ॥ गृध्री ने गिद्धो को और कबूतरगो, पारावत विहङ्गमो, हंस, सारस, कौचो को जन्म दिया था तथा शुचि ने प्लवों को समुत्पन्न किया था ॥३२॥ सुग्रीवी नाम घारिणी ने अज, अश्व, मेघ, उष्ट्र और खरों ( गधो ) को जन्म ग्रहण कराया था । वहा तक यह ताम्र का वरा वर्णित किया गया है अब यहा से आगे आप सब लोग विनता मे समुत्पत्ति हुई थी उसका भी ज्ञान प्राप्त करलो ॥३३॥ पतनशील वपिधयो का स्वामी गरुड और पतत्रियो मे अरुण और सौदामिनी नाये माली एक कन्या जो नम मे विश्रुत है । अरुण के सम्पाति और जटायु दो पुत्र हुए थे । सम्पाति का पुत्र बभ्रु था और शीघ्रगामी प्रविद्ध है । ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

जटायुषः कर्णिकारः शतगातो च विश्रुतो ।

सारसो रज्जुबालश्चभेरुण्डश्चापि तत्सुताः ॥३६॥  
तेषामनन्तमभवत् पक्षिणां पुत्रपौत्रकम् ।

सुरसाया सहस्रन्तु सर्पाणामभवत्पुरा ॥३७॥

सहस्र शिरसाङ्गदू सहस्रञ्चापि सुव्रत ! ।

प्रधानास्तेषु विख्याता पङ्क्तिर्विशतिररिन्दम ॥३८॥

शेषवासुक्तिकर्कोटशङ्खैरावतकम्बलाः ।

धनञ्जयमहानीलपद्माश्वतरतक्षकाः ॥३९॥

एलापत्रमहापद्मधृतराष्ट्रबलाहकाः ।

शखपाल महाशख-पुष्पदण्ड-शुभाननाः ॥४०॥

शकुरोमाङ्गुच बहुलो वामन पाणिनस्तथा ।

कपिलोदुमृखश्चापि पतञ्जलिरितिस्मृताः ॥४१॥

एषामनन्तमभवत् सर्वेषां पूत्रपौत्रकम् ।

प्रायशो यत् पुरादध जनमेजयमन्दिरे ॥४२॥

जटायु के पुत्र कर्णिकार और शङ्खाग्री ये दो परम प्रसिद्ध हुये थे । सारस, रज्जुबाल और भेरुण्ड भी उसी के पुत्र थे ॥३६॥ उनके पुत्र और पौत्र जो हुए थे वे पक्षियों के अनन्त ही हुये थे । पुरातन समय में सुरसा के एक सहस्र सर्प हुये थे । हे सुव्रत ! कद्रू के सहस्र शिर वाली के एक सहस्र सर्प हुए थे किन्तु हे अरिन्दम ! उनमें परम प्रमुख छठ्तीस ही विख्यात हुए हैं ॥३७, ३८॥ उन छठ्तीस प्रकार के प्रधान सर्पों के नाम तथा भेद इस प्रकार हैं—शेष—वासुकि—कर्कोट—शङ्ख—ऐरावन—कम्बल—धनञ्जय—महानील—पद्म—अश्वतर—तक्षक—एलापत्र—महापद्म—धृतराष्ट्र—बलाहक—शखपाल—महाशख—पुष्पदण्ड—शुभानम—शकुरोमा—बहुल—वामन—पाणिन—कपिल—दुमृख और पतञ्जलि—इनमें से छठ्तीस बहेगये हैं । इन सबके पुत्र और पौत्र जो हुए वे सबके अनन्त ही हुए थे । बहुधा जनमेजय ने अपने मन्दिर में सर्पों ने व्यस करने वाले यज्ञ में प्राचीन काल में दण्ड कर दिये थे ॥ ३६।४०।४१।४२ ॥

रक्षोगणं क्रोधवशा स्वनामानमजीजनत् ।  
 दष्टिणा मियुत तेषा भीमसेनादगान्क्षयम् ॥४३॥  
 वृद्धाणाञ्च गण तद्वद्गोमहिष्यो वराहनाः ।  
 मुरमिर्जनयामास वक्ष्यमान् मयनवना ॥४४॥  
 मुनिमुनीनाञ्च गण गणमप्सरसा तथा ।  
 तथा निम्नरगन्धर्वानिरिष्टाऽजनमद्वहून् ॥४५॥  
 वृणु वृक्षततागुल्ममिरा सर्वमजीनत् ।  
 विद्या तु यज्ञरक्षासि जनयामास कोटिसः ॥४६॥  
 तत एकोनवन्धागन्मस्त काव्यपाहितिः ।  
 जनयामास धर्मज्ञान् नरानमरबल्लभान् ॥४७॥

क्रोधवशा नाम बामी पत्नी ने अपने नाम वाले राक्षसों के गण को जन्म दिया था । दाढ़ बामी उनके संग्रह में नियुक्त हो हुए थे बिन्दु भीमसेन ने उनका क्षय हो गया हो था ॥४३॥ उगी भावि मुरमिनाम धारणी वक्ष्य की पत्नी ने वक्ष्य शक्ति से ही रक्षों के गण गौ-भैर और वराहनामी का जन्म सदन जन बामी होकर दिया था ॥ ४४ ॥ मुनि नाम की पत्नी ने मुनियों के गण तथा अप्सराओं के गण को उद्गम दिया था । निरिष्टा पत्नी ने बहुत बिन्दुओं और गन्धर्वों को समुपजन दिया था ॥ ४५ ॥ वृक्ष ने वे मनी वृक्ष लृण, लता और मुष्मों को जन्म दिया था । विद्या नाम बामी वक्ष्यकी पत्नी ने वक्षोरो ही यज्ञों और राक्षसों को उद्गम दिया था ॥ ४६ ॥ हमारे भगवन्तर दिवि ने वक्ष्य की ने धर्म धारण करके उनका मरदूतों को प्रगूण दिया था और धर्म धर्म के और सभी देवताओं के धर्म दिव भी ने ॥४७॥

## ७ - आधिपत्याभिषेचन ।

आदिसगश्च यः सूत ! कथितो विस्तरेण तु ।  
 प्रतिसर्गञ्चयेयेयामधिपास्तान् वदस्व नः ॥१॥  
 यदाभिषिक्त सकलाधिराज्ये पृथुर्धरिष्यामधिपो बभूव ।  
 तदोपधीनामधिप चकार यज्ञव्रताना तपसाञ्च चन्द्रम् ॥२॥  
 नक्षत्र-तारा-द्विज-वक्ष-गुल्मलता-वितानस्य च रुक्मगर्भम् ।  
 अपामधीश वरुण घनाना राजा प्रभु वैश्रवणञ्च तद्वत् ॥३॥  
 विष्णु रवीणामधिप वसूनामग्निञ्च लोकाधिपतिश्चकार ।  
 प्रजापतीनामधिप च दक्षञ्चकार शक्रं महतामधीशम् ॥४॥  
 दैत्य-धिपानामथ दानवाना प्रह्लादमेशञ्चरम पितॄणाम् ।  
 पिशाचरक्षः-पशु-भूत-यज्ञ वेतालराजस्त्वय शूलपाणिम् ॥५॥  
 प्रालेय शूलञ्च पति गिरीणामीश समुद्रं ससरिन्नदानाम् ।  
 गन्धर्वविद्याधरकिन्नराणामीश पुनश्चित्ररथ चकार ॥६॥  
 नागाधिप वागुक्तिमुग्रवीर्य सर्पाधिप तक्षकमादिदेश ।  
 दिशाङ्गजानामधिपञ्चकार गजेन्द्रमैरावतनामधेयम् ॥७॥



किया था प्रजापतियों का प्रधान अधिप दक्ष को और मरुतो का स्वामी इन्द्र को बनाया गया था ॥१॥ देव्यावरों का तथा दानवों का स्वामी प्रह्लाद को किया गया था और सत्र पितृपणों का अधीश यम को नियुक्त किया था । पितामह, राक्षस, पशु, भूत, यक्ष, वेताल इन सबका राजा भगवान् शूलपाणि को बनाया गया था ॥२॥ समस्त गिरियों का अधिप प्रालेय गिरि (हिमालय) का बनाया था तथा सब सर-सरित् और नदों का अधीश्वर समुद्र को नियुक्त किया गया था । गन्धर्व-विद्याधर और किन्नरों का स्वामी फिर चित्ररथ को ही किया गया था ॥ ६ ॥ जितने भी नाग नामगरी थे उनका अधीश उग्रवीर्य वासुकि को किया था और सर्पों का स्वामी तक्षक को नियुक्त किया था । दिशागजों का स्वामी ऐरावत नगभेय बाले गजेन्द्र को किया था ॥७॥

सुपर्णमीशम्वततामयाश्वराजानमुच्चं ब्रवसञ्चकार ।  
 सिंहं मृगाणा वृषम गवाञ्च घृक्ष पुन सर्व्वनस्पतीनाम् ॥८॥  
 पितामहः पूर्व्वमथाभ्यपिञ्चतान् पुनः सप्तदिशाधिनाथान् ।  
 पूर्व्वेण दिक्पालमयाम्यपिञ्चन्ना मुधमणिमरातिकेतुम् ॥९॥  
 ततोऽधिप वक्षिणतश्चकार सर्व्वेश्वर शङ्खपदाभिधानम् ।  
 सकेतुमन्तञ्च दिगीशमीशश्चाकार पश्चाद्भुवनाण्डनम् ॥१०॥  
 हिरण्यरोमाणमुदग्दिगोश्च प्रजापतिर्देवमुनञ्चकार ।  
 अद्यापि कुबन्ति दिशामधीशाः शत्रून् बहन्तस्तु भुवोभिरक्षाम् ॥११॥  
 चातुभिरेमि पृथुनामधेयौ नृपोऽभिपिक्त प्रथम पृथिव्याम् ।  
 गतेऽन्तरे चाक्षुपनामधेये देवस्वतास्ये च पुनः प्रवृत्ते ॥१२॥  
 प्रजापतिः सोऽस्य जगत्तरस्य बभूव सूर्यान्विग्रवसचिन्हः ॥१३॥

जो पवनशील पक्षिपण थे उनका राजा सुपर्ण को किया था और सभी प्रकार के अश्वों का राजा उच्चैः थाय नाम वाले को बना दिया था । जितने भी प्रकार के वन्य पशु हैं उन सबका शिरोभूषण स्वामी सिंह बनाया गया था—गौ जानि का अधिक वृष को

सम्पूर्ण वनस्पतियों का अधीश वृक्ष को बनाया गया था । ८। पितामह ने सबसे पूर्व इनको अभिषिक्त किया और फिर उन्होंने ही इन समस्त दिशाओं के अधिनाथों का अभिषेक किया था । पूर्व दिशा में दिक पात्र मुघर्मा नाथ वाले को बनाया था जो भराति केतु है । ९। इसके अनन्तर दक्षिण दिशा का वालक ऋषीश्वर शङ्खपद अभित्रान वाले सर्वेश्वर को बनाया था । फिर भुवनाब्ज गर्भ ने सवेतुमान ईश को दिगीश किया था । १०। प्रजापति ने उत्तर दिशा का दिक्पाल स्वामी देवमुन हिरण्य रोमा को बनाया था । ये सब दिक्पाल परम पुरातन समय में निपुक्त किये गये थे किन्तु वे सभी से आज तक भी दिशाओं के ऋषीश्वर शत्रुओं का बाह कर रहे हुए इस भू मण्डल की रक्षा कर रहे हैं । ११। इन चारों के द्वारा पृथु नाम वाला राजा सर्व प्रथम पृथ्वी में अभिषिक्त किया गया था । जब वाक्षुप नाम वाला मन्वन्तर समाप्त हो गया था और वैवस्वत नाम वाला मन्वन्तर प्रवृत्त हो गया था उस समय में इस चराचर सम्पूर्ण विश्व का सूर्यान्वय वश के चिन्ह वाला प्रजापति हुआ था । १२, १३॥

## ८ — मनवन्तर वर्णन

एष श्रुत्वा मनु प्राह पुनरेव जनादेनम् ।

पूर्वेषाञ्चरित ब्रूहि मनूना मधुसूदन ॥१॥

मन्वन्तराणि सर्वाणि मनूना चरितञ्च यत् ।

प्रमाणञ्चैवकालस्यतच्छृणुत्वसमाहित ॥२॥

एकचित्त प्रशान्तात्मा शृणु मार्तण्डनन्दन ।

१। यामनामपुरादवासात् स्थायश्चुवान्तरे ॥३॥

सप्तैष्टपयः पूर्वे ये मरी यादयः स्मृता ।

आग्नीध्रश्चानिव ह्युच सह सवन एव च ॥४॥

ज्योतिष्मान्द्युतिमान्हव्योमेघामेघा त्रिविंसुः ।  
 स्वायम्भुवस्यास्यमनोर्दशैतेवशवर्द्धनाः ॥५॥  
 प्रतिसर्गमिमे कृत्वा जग्मुयन्तरमम्पदम् ।  
 एतत्स्वायम्भुवंप्रोक्तं स्वारोचिपमतः परम् ॥६॥  
 स्वारोचिपस्य तनयाश्चत्वारो देववर्चसः ।  
 नमो नमस्यप्रसृतिमानवः कीर्तिवर्द्धनाः ॥७॥

श्री सूत जी ने कहा—इस प्रकार से सबका श्रवण करके मनुने पुनः भगवान् जनार्दन से कहा था कि हे मधुमूदन ! अब आप परमानुग्रह करके पूर्व में होने वाले मनुगण का चरित हमारे सामने वर्णित कीजिए । श्री मत्स्य भगवान् ने कहा—अब आप सब लोग पूर्ण रूप से समाहित हो जाइये और श्रवण करिये । मैं सम्पूर्ण मन्वन्तर और मनुष्यों के चरित्र तथा उनके काल का प्रमाण सभी कुछ बतलाता हूँ । हे मार्तण्ड मन्दन ! एकलिङ्ग चित्त वाले और परम प्रशान्त आत्मा वाले होकर आप सुनिए । पहिले परम पुरातन समय में यामा नाम वाले स्वायम्भुव मन्वन्तर में देवता हुए थे । १। मरीचि आदि पूर्व में ये ही सप्त ऋषि हुए थे । आग्नीध्र-अग्नि वाहू-सह-सवन-ज्योतिष्मान् द्युतिमान्-हव्य-मेघा-मेघातिथि-वसु ये दश ही स्वायम्भुव मनु के वंश के वर्धन करने वाले हुए हैं मर्यान् इन्हींने वंश की बढ़ाया था ॥४॥ ५॥ प्रत्येक सर्ग में ये परम पद को प्राप्त हुए थे—वही स्वायम्भुव मन्वन्तर का चरित है जो तुमको बतला दिया गया है । अब इसके आगे स्वारोचि मन्वन्तर आता है ॥६॥ स्वारोचिप मनु के देवों के समान वर्चस वाले चार पुत्र हुए थे उनके शुभ नाम ये हैं—नम-नमस्य-प्रसृति और मानु । ये सभी कर्त्ति की वृद्धि करने वाले थे ॥७॥

दत्तोनिश्च्यवनस्तम्बः प्राण कश्यप एष च ।  
 और्वो बृहस्पतिश्चैव रुप्तेतेऋषेय स्मृताः ॥८॥  
 देवाश्च तुषितानामस्मृता स्वारोचिषेऽन्तरे ।

हवीन्द्रःमुकुतोमूर्तिरापोज्योतिरयस्मयः ॥६  
 वसिष्ठस्य भुताः सप्त ये प्रजापतयः स्मृताः ।  
 द्वितीयमेतत्कथितं मन्वन्ततमतः परम् ॥१०  
 औत्तमीयं प्रवक्ष्यामि तथामन्वन्तरं शुभम् ।  
 मनर्नामोत्तमियं दशपुत्रानजोजनत् ॥११  
 ईषऊश्व तर्जंश्व शुचिः शुक्रस्तथैव च ।  
 मधुश्च माघश्चैव नभस्योऽथ नभास्तथा ॥१२  
 सह. कनीयानेतेषामुदार. कीर्तिवर्द्धनः ।  
 भावनान्तरं देवाः स्युर्हजाः सप्तपयःस्मृताः ॥ ३  
 कीकुरण्डिश्च दाल्भ्यश्च शङ्खः प्रवहणः शिवः ।  
 सितश्चसस्मितश्चोऽसप्तैतेयोगवर्द्धनाः ॥१४

स्वारोचिष मन्वन्तर में हत्त, निश्च्यवन, स्तम्भ, प्राण, वषट्प, और्व और बृहस्पति ये सात ही सप्तपि कहे गये हैं ॥६ स्वारोचिष मन्वन्तर में देवता तो तुषिस्त नाम वाले ही थे । हवीन्द्र, मुहुत, मूर्ति, आपज्योति, अयस्मय ये सात वसिष्ठ ऋषि के पुत्र ही उस समय में प्रजापति कहे गये हैं । यह दूसरा जो स्वारोचिष नाम वाला मन्वन्तर था उसका भी वर्णन कर दिया गया है । इससे आगे तीसरा मन्वन्तर का वर्णन करते हैं । इसके समय में औत्तमि नाम वाले मनु ने दश पुत्रों को जन्म ग्रहण कराया था ॥११ उन दसों पुत्र के शुभ नाम ये हैं— ईष, ऊर्ज, तर्जं शुचि, शुक्र, मधु, माघश्च, नभस्य, नभा और सह । इनमें कनीयान् जो था वह उदार और कीर्ति वर्द्धन था । उस औत्तमीय मन्वन्तर में मानन. वाले देवगण थे और ऊर्ज सप्तपि हूए थे ॥१२, १३॥ करैकुरण्डि, दाल्भ्य, शङ्ख, प्रवहण, शिव, सित, सरिमत ये ही सात योग की वृद्धि करने वाले थे ॥१४

मन्वन्तर चतुर्थं तु तामस नाम विश्रुतम् ।

वत्रि पृथुस्तथैवाग्निरकपि वपिरेव ॥१५

तथैव अल्पघोमानो मुनयः सप्तनामतः ।  
 साध्या देवगणा यत्र कथितास्तामसेऽन्तरे ॥१६॥  
 अकल्मषस्तथा धन्वी तपोमूलस्तपोधनः ।  
 तपो रति तपस्यश्च तपोधुतिपरन्तपो ॥१७॥  
 तपो भागी तपो योगी धर्माचाररताः सदा ।  
 तामसस्य सुताः सर्वदशवर्षाववर्द्धनाः ॥१८॥  
 पञ्चमस्य मनोस्तद्वर्द्धवत्स्यान्तर शृणु ।  
 ऐन्द्रबाहु सुबाहुश्च पर्जन्यः सोमपो मुनिः ॥१९॥  
 हिरण्यरोमा सप्ताश्वः सप्तते श्रपयः स्मृताः ।  
 देवाश्चाभूतरजसस्तथाप्रकृतय शुभा ॥२०॥

तीन मन्वन्तरो का वर्णन किया जा चुका है अब चौथे मन्वन्तर  
 को बतलाया जाता है जिसका तामस नाम प्रसिद्ध है । कवि, पृथु, अग्नि,  
 अकपि, कवि, अल्प और घोमान् ये ही इन नामों वाले सात मुनिगण और  
 साध्य नाम वाले देवगण इस तामस मन्वन्तर में हुए थे ॥१५, १६॥  
 नापस मनु के भी दश पुत्र हुए थे जो सभी वंश के वर्धन करने वाले थे ।  
 उनके नाम-अकल्मष, धन्वी, तपोमूल, तपोधन, तपोरति, तपस्य,  
 तपोधुति, परन्तप, तपोभागी, तपोयोगी ये हैं और ये सदा धर्म के  
 आधार में ही रति रखने वाले थे ॥१७, १८॥ इसके अनन्तर अब उसी  
 प्रकार से पञ्चममनु रैवत नाम वालेक अन्तर आप लोग श्रवण करिये ।  
 इस पाँचवें मन्वन्तर में ऐन्द्रबाहु-सुबाहु-पर्जन्य-मुनि-हिरण्य सेमा और  
 सप्ताश्व ये सात सप्तपि बहे गये थे । देवता आभूत रजस हुए थे तथा  
 शुभ प्रकृतियाँ थी ॥ १९, २० ॥

अरुणस्तत्त्वदर्शीचघृतिमानूहव्यवान्कविः ।  
 युक्तो निरुत्सुक सत्त्वानिमोहोऽयप्रकाशक ॥२१॥  
 धर्मवीर्यवलोपेता दर्शते रैवतात्मजा ।  
 भृगु सुधामा विरजाः सहिष्णुर्नाद एव च ॥२२॥

विवस्वानतिनामा च पण्डे सप्तपंथोऽपरे ।  
 चाक्षुषस्यान्तरे देवालेखा नाम परिश्रुता ॥ २३  
 ऋभवोऽथ ऋमाद्याश्चवारिमूलादिवीकसः ।  
 चाक्षुषस्या तरेप्रोक्तादेवानापञ्चयोनयः ॥ २४  
 हरप्रभृतयस्तद्वच्चाक्षुषस्य सुता दश ।  
 प्रोक्ताः स्वायम्भुवे वंशे ये मयापूर्वमेव तु ॥ २५  
 अन्तर चाक्षुष नीतन्मया ते परिकीर्तितम् ।  
 सप्तम तत्प्रवक्ष्यामि यद्वैवस्वतमुच्यते ॥ २६  
 अग्निश्चीव वसिष्मूञ्च कश्यपोऽगौतमस्तथा ।  
 भरद्वाजस्तथायोगीविश्वामित्रः प्रतापवान् ॥ २७

अरुण-नस्वदर्शी-धृतिमान्-हव्यवान्-कवि-युक्त-निवस्तुक-सत्त्व-  
 निर्मोह-प्रकाशक इन नामों वाले धर्म तथा कीर्त्यवान् से समन्वित दैवत  
 मनु के दश पुत्र समुत्पन्न हुए थे । भृगु, सुधामा, विरजा, सहिष्णु नाम  
 विवस्वाम, अतिनामा ये छठवें मन्वन्तर में दूसरे सप्तर्षि गण थे । चाक्षुष  
 मन्वन्तर में लेखा नाम वाले देवता हुए थे जो पूर्णतया परिश्रुत हैं ॥ २१,  
 २२, २३ ॥ चाक्षुष मन्वन्तर में देवों की पाँच योनियाँ बतलाई गयीं  
 हैं—ऋष ऋमाद्य-वारिमूल और दिनोवस ये उनके नाम हैं ॥ २४ ॥  
 उसी प्रकार से चाक्षुष मनु के हर प्रभृति दश पुत्र समुत्पन्न हुए थे  
 जिनका वर्णन मैंने स्वायम्भुव के वंश में पहिले ही कर दिया है ॥ २५ ॥  
 इसके अनन्तर मैंने यह चाक्षुष मन्वन्तर परिकीर्तित किया है । अब  
 सातवाँ मन्वन्तर बतलाते हैं जिसको वैवस्वत मन्वन्तर कहा जाता है ।  
 इस मन्वन्तर में अग्नि, वसिष्ठ, कश्यप, गौतम, भरद्वाज तथा प्रतापवान्  
 योगी विश्वामित्र और जय हानि ये सात इस वर्तमान समय में सात  
 महर्षि हैं । ये सब धर्म की व्यवस्था करके परम पद को चले जाते हैं ।  
 ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥

साध्याविश्वेनारुद्राश्चामरुतोवसवोऽश्विनौ ।  
 आदित्याग्नासुरास्तद्वत्सप्तदेवगणाः स्मृता ॥ २९

इक्ष्वाकुप्रमुखाश्चास्य दशपुत्राः स्मृता भुवि ।  
 मन्वन्तरेषु सर्वेषु सप्त सप्तमहर्षयः ॥३०॥  
 कृत्वा धर्म्मोन्मवस्थान प्रयन्तिपरमम्पदम् ।  
 सावर्ण्यस्यप्रवक्ष्यामिमनोर्भावितयान्तरम् ॥३१॥  
 अश्वत्थामा दारद्वान्चक्रीशिकोगालवस्तथा ।  
 शतानन्द काश्यपश्चरामश्चऋषयःस्मृताः ॥३२॥  
 धृतिर्वरीयान् यवसः सुवर्णो वृष्टिरेव च ।  
 चरिष्णुरीड्यः सुमतिर्वसु शुकश्च वीर्यवान् ॥३३॥  
 भविष्यादशसावर्ण्यमनोःपुत्राःप्रकीर्तिताः ।  
 रोच्योदयस्तथान्येऽपि मनवः सगप्रकीर्तिताः ॥३४॥  
 रुचिः प्रजापतेः पुत्रो रौग्यो नाम भविष्यति ।  
 मनुभूतिमुतस्तद्वद्भूतयोनामभविष्यति ॥ ३५॥

इस मन्वन्तर में साध्य, विश्वेदेवा, रुद्र, महर्षगण, वसुगण, अश्विनि  
 कुमार, आदित्य और सुरवे उसी भाँति सात देवगण कहे गये हैं ॥२६॥  
 इस वैदस्वत मनु के इक्ष्वाकु जिनमें प्रमुख थे ऐसे दस पुत्र इस भू मण्डल  
 में बसाये गये हैं । इन रीति से सभी मन्वन्तरो में सात-सात ही महर्षि  
 हुए हैं ॥३०॥ ये सब महर्षि इमीलिये हुमा करते हैं कि अपने २ मन्वन्तर  
 में धर्म की ठीक व्यवस्था कर दें । इसके उपरान्त ये सप्तर्षि परम पद  
 की चले जाया करते हैं । अब भावी मनु सावर्ण्य का अन्तर भी हम  
 बतला दिये देते हैं । इस भावी मन्वन्तर में भी उसी भाँति सात महर्षियों  
 का गण होभा । अश्वत्थामा, दारद्वान्, चक्रीक, गालव, शतानन्द, कश्यप  
 और राम ये सात ऋषि कहे गये हैं । इस मनु के भी दस पुत्र हैं उनके  
 नाम धृति वरीयन् यवस, सुवर्ण, वृष्टि, चरिष्णु, ईड्य, सुमति, वसु,  
 शुक जो महान् वीर्य वाला है । ये आये होने वाले सावर्णि मनु के दस  
 पुत्र होंगे जिनके नाम यहाँ पर कीर्तित कर दिये गये हैं । इनके अतिरिक्त  
 रोच्य प्रभृति अन्य भी मनु बतलाये गये हैं । रुचि नामधारी प्रजापति का

पुत्र रौच्य नाम जाता होगा । इसी प्रकार से भविष्य मे भूतिकी पुत्र एक भोत्य नाम जाता भी मनु होगा ॥३१, ३२, ३३, ३४, ३५॥

ततस्तु मेरुसावर्णिग्रहसूनुर्मनु स्मृत ।

ऋतश्च ऋतधामाचविष्वक्सेनोमनुस्तथा ॥३६

अतीतानागताश्चैते मनव परिकीर्तिता ।

पङ्कन युगसाहस्रत्रमेभिर्व्याप्त नराधिप ॥३७

स्वेस्वेऽन्तरे सर्वमिदमुत्पाद्य सचराचरम् ।

कल्पक्षये विनिवृत्त मुच्यन्तेग्रहाणा सह ॥३८

एतेयुगसहस्रान्तेविनश्यन्तिपुन पुन ।

ब्रह्माद्याविष्णुसायुज्ययातायास्यन्ति वैद्विजा ॥३९

इनके पश्चात् ब्रह्मा का पुत्र मेरु सावर्णि मनु बताया गया है । ऋत, ऋतधामा, विष्वक्सेन भी मनु बहे गये हैं जो सभी आगे समागत समय मे ही होंगे । जो मनु अब तक हो चुके हैं वे अतीत मन्वन्तर और जो अब यहाँ से आने वाले मनु हैं उन सबको परिकीर्तित कर दिया गया है । हे नराधिप ! इन मनुओं के द्वारा छै कम एक सहस्र युगों का समय व्याप्त होता है। ये सभी मनु अपने २ अन्तर मे इस सम्पूर्ण चराचर विश्व का समुत्पादन करके नव कल्प का क्षय होता है उस समय मे कल्प की विनिवृत्ति मे ब्रह्मा के साथ ही मुख्यमान हो आया करते हैं । इसी प्रकार से ये सब एक सहस्र युगों के अन्त मे बारम्बार विनष्ट हो जाया करते हैं । हे द्विजगण ! ब्रह्मा आदि सभी विष्णु भगवान् के सायुज्य मे गये हुए चले जायेंगे ॥ ३६, ३७, ३८, ३९ ॥

## ६—पृथ्वीदोहन

बहुभिर्धरणी भुक्ता भूपालं श्रूयतेपुरा ।

पाथिवा पृथिवीयोगात्पृथिवीकस्य योगत ॥ १



किमर्थञ्चकृतामज्ञाभूमे किपारिभाषिणी ।  
 गौरितीयञ्चविस्थातामृत ! कस्माद्भ्रवीहिनिः ॥१॥  
 वशे स्वायम्भुवस्याग्निदङ्गो नाम प्रजापतिः ।  
 मृत्योस्तु बहिनातेन परिणीतामुदुमुखा ॥२॥  
 सुनीया नाम तम्यास्तु वेनो नाममुतः पुरा ।  
 अघ्नम्मनिरतश्चामोद्वलवान्वसुधाधिपः ॥४॥  
 लोकेऽप्यघ्नमकृञ्जातः परमायपिहारकः ।  
 घ्नमचारस्य सिद्धयर्थजगतोऽयमर्हपिभिः ॥५॥  
 अनुनीतोऽपि न ददावनुज्ञा स यदा ततः ।  
 शापेन भारयित्वैनमराजकमयादिताः ॥६॥  
 ममन्यु ब्रह्मिणास्तस्यवद्देहमकन्मपाः ।  
 पितुरक्षस्य चाशेन घ्नमिको घ्नमचारिण ॥७॥

महर्षि गण ने कहा—यह सुना जाता है कि पहिले बहुत से  
 भूपालों ने इस पृथ्वी का भोग किया है । इस पृथ्वी के नाम से राजाओं  
 को इसका अधिप या भोग करने वाले होने से पार्ष्विद कहा गया है ।  
 पृथ्वी का जो यह नाम हुआ है वह किसके योग से पड़ा है ? भूमि की  
 यह सज्ञा ( पृथ्वी ) किस लिये हुई है और क्या परिभाषण करने वाली  
 है अर्थात् इसमें क्या बननाया जाता है । इस घरणी का 'वी' यह भी  
 नाम कहा जाता है और यह नाम भी परम विस्तार है—यह इसका  
 नाम किस कारण से पड़ा है यह कृपा करके आप हमको बतला दीजिये  
 ॥ १ ॥ २ ॥ सूउजी ने कहा—स्वायम्भुव मनु क वंश में अङ्ग नाम  
 वाला प्रजापति हुआ था । उसने मृत्यु की दुहिता मुदुमुखा से परिणय  
 किया था ॥ ३ ॥ उसका सुनीया नाम था और पहिले वेन नाम का सुत  
 था । यह वेन सर्वदा अघ्नम में ही निरस्त रहा करता था और महार  
 बलवान् वसुधा का स्वामी था ॥ ४ ॥ यह लोक में भी अघ्नम के करने  
 वाला हुआ था और यह पराई भागों के अपहरण करने वाला था ।

जगत् के धर्माचार की सिद्धि के लिये महर्षियों के द्वारा इसको अनुनीत भी किया गया था तो भी जिस समय में अनुशा नही दी तो ऋषिगण ने दाय देकर उसके द्वारा इसका हनन कर दिया था और फिर वे ब्राह्म-  
कता के भय से अदित हो गये थे ॥ ५ ॥ ६ ॥ कल्मष से रहित ब्राह्मणों  
ने बलपूर्वक उसके देह का मन्यन किया था । मन्यन की हुई उसकी काया  
से स्लेच्छ जाति वाले लोग निययतित हुए थे ॥७॥

शरीरे मातुर शेन कृष्णाञ्जनसमप्रभा ।

पितुरंशस्य चाशेन धार्मिको धर्मचारिणः ॥८॥

उत्पन्नो दक्षिणाद्धस्तात्स धनुः सशरोगदो ।

दिव्यतेजोमयवपु सरत्नकवचाङ्गदः ॥९॥

पृथोरेवा भवद्यत्नात् ततः पृथुरजायत ।

स विप्रैरभिषिक्तोऽपितपः कृत्वा मुदाहणम् ॥१०॥

विष्णोर्वरेण सर्वस्य प्रभुत्वमगमत्पुनः ।

नि स्वाध्यायवपटकारनिर्धर्मवीक्ष्य भूतलम् ॥११॥

दग्धुमेवोद्यतः कोपोच्छरेणामितविक्रमः ।

ततो गोरूपमास्थाय भूः पलायितुमुद्यता ॥१२॥

पृष्ठतोऽनुगतस्तस्याः पृथुर्दक्षिशरासनः ।

तत स्थित्वैकदेशे तु किं करोमीतिचाब्रवीत् ॥१३॥

पृथुरस्यवदद्वाक्यमोप्सितं देहि सुव्रते ।

सर्वस्य जगतः शीघ्रं स्थावरस्य चरस्य च ॥१४॥

माता के अश से शरीर में वे कृष्ण अञ्जन के समान प्रभा वाले  
हुए थे पिता के अश के द्वारा जो धर्मचारी था धार्मिक हुआ था  
॥८॥ दाहिने हाथ से धनुष-शर के सहित गदाधारी समुत्पन्न हुआ था ।  
उस समुद्भूत व्यक्ति के शरीर का परम दिव्य तेज था और उसका वह  
दिव्य तेज पूर्ण शरीर रत्न जटित नवच और अङ्गदो से विभूषित था  
॥९॥ यह अधिक यत्न से समुत्पन्न हुआ था इसलिये यह पृथु ही हुआ

या । विश्वों के द्वारा राज्यासन पर उनका अभिषेक भी किया गया था तो भी वह मुद्रारुण तब करके भगवान् विष्णु के वरदान में इस समस्त भू-मण्डल का प्रभु बन गया था । उसने भूमिपति होकर देखा था कि यह सम्पूर्ण भूतल स्वाध्याय वषट्कार और धर्म में रक्षित ही गया है । ॥१०॥११॥ सब ऊपरवर्तित बन विक्रमगाली राजा ने जब भूतल का धर्म दृश्य देखा तो उसे बड़ा भारी क्रोध हो गया था और क्रोध से क्रूर के द्वारा उसको दण्ड कर देने की उद्यत हो गया था । जब रक्षि का इस प्रकार का भीषण शीघ्रावेष्ट देखा तो भूमि भी स्व में ममास्थित होकर सब से बड़ा से भामन की उद्यत हो गई थी ॥१२॥ शीघ्र धरागन वाले महाराज पृथु भी उनो के पीछे २ अनुगमन करने लगे थे । इसके उपरान्त जब उसने देखा था राजा पीछे २ खदेड़ने हुए ही बरबर बने जा रहे हैं तो वह एक ध्यान में पड़कर स्मित हो गई थी और राजा से बोली—मैं क्या करूँ ? मुझे आप ही बनलायें ॥१३॥ पृथु ने भी यही कहा था—हे सुव्रत ! जो भी सबके जमीष्ट पदार्थ हैं उनको तुम दो । म्पावर और वर सम्पूर्ण जगत् का अभीष्ट तुम्हें देना चाहिए ॥१४॥

तर्पय सा प्रवीक्षूमीर्दुदोह स नराधिपः ।

स्वके पाणी पृथुवर्त्म कृत्वा न्वायम्भुव मनुम् ॥१५॥

तदन्नमभवच्छुद्धं प्रजाजीवन्तियेनवै ।

ततस्तु श्रुपिभिर्दुग्धावत्न. सोमन्मदामवत् ॥ १६॥

दोग्धावृहस्पतिरभूत्पात्रं वेदन्तपोरन. ।

वेदैश्च वमुद्या दुग्धा दोग्धामित्रस्तदा भवत् ॥१७॥

इन्द्रोवत्सः समभवत् क्षीरमूजंस्करं वत्सम् ।

देवानां कान्चन पात्रं पितृणां राजततया ॥१८॥

अन्तकश्चामावद्दाग्धायमोवत्स. स्वपा रसः ।

बनाबुपात्रं नागानां तक्षकोवत्स गोमवत् ॥१९॥

विष क्षीरं ततो दोग्धा धृतराष्ट्रोऽभवत्पुन ।

असुरैरपि दुग्धेयमायसे क्षक्रपीडिनीम् ॥२०॥

पात्रे मायामभूदत्स प्राह्लादिस्तु विरोचन ।

दाग्धाद्विमूर्धा नत्रासीन्मायायेनप्रवर्तिता ॥२१॥

भूमि ने उनी भाति कहा था और उस नराधिप ने दोहन किया था । पृथु ने अपन हाथ में स्वायम्भुव मनु को बत्स बनाकर ही दोहन किया था ॥१५॥ वह अन्न शुद्ध हो गया था जिससे प्रजा जीवित रहा करती है । इसके पश्चात् फिर ऋषियो ने दोहन किया था उस समय में बत्स सोम हुआ था ॥१६॥ फिर दोग्धा बृहस्पति हुए थे और पात्र गो वेद था तथा तप रत्न था । वेदों के द्वारा भूमि दोग्ध हुई थी उस समय में दोहन करने वाले मित्र थे ॥१७॥ इन्द्र बत्स बना था और उस का जो क्षीर था वह ऊर्जस्कर बल था । देवों का जो पात्र था वह तो सुवर्णमय अर्थात् सुवर्ण का था और तिस्रणों का पात्र राजत अर्थात् चाँदी का था ॥१८॥ जिस समय में अन्नक यमराज ने भूमि का दोहन किया था और अन्नक स्वयं दोग्धा बने थे उस वक्त यम वरुण और स्वधा रत्न था । मागों का पात्र तो अलावू था और तक्षक बत्स बना था ॥१९॥ उस समय में विष ही क्षीर था । इसके अनन्तर पुनः धृतराष्ट्र दोग्धा हुए थे । इस का दोहन असुरों के द्वारा भी हुआ था मायसे पात्र अर्थात् बोडे के शुक्रपीडिनी थी दोग्ध हुआ । पात्र में माया को दुहा था और उस समय में ग्रहणादि विरोचन बत्स हुआ था । वहां पर दोग्धा दो मूर्धाओं वाला था जिसने माया को प्रवर्तित किया था ॥२१॥

यक्षश्च वसुधा दुग्धा पुरान्तद्धनिमीप्सुभिः ।

कृत्वा वैश्रवण वत्समामपात्रे महीपते ॥२२॥

प्रेतरक्षोगर्णदुग्धा घाग रुधिरमुल्वणम् ।

गोप्यनामोऽभवद् दोग्धा सुमाली वत्सएवच ॥२३॥

गन्धर्वश्चपुरादुग्धा वसुधा साग्नरोगर्ण ।

वत्संचेत्ररथंकृत्वा गन्धान् पद्मदलेतथा ॥२४  
 दोग्धा वररुचिर्नामनाट्यदेवस्य पारग ।  
 गिरिभिवंसुधा दुग्धा रत्नानि वि.धानि च ॥२५  
 औपधानिच दिव्यानि दोग्धा मेरुमहाचलः ।  
 वत्सोऽभृद्धिमवास्तत्र पालंशैलमयंपुनः ॥२६  
 वृक्षोश्चवसुधादुग्धा क्षीरं छिन्नप्ररोहणम् ।  
 पालाशपादादोग्धातु शाल.पुष्पलताकुलः ॥२७  
 प्लक्षोऽभवत्ततो वत्सःसर्ववृक्षोघनाधिपः ।  
 एवम.यैश्च वसुधा तदा दु.धायधेप्सितम् ॥२८

पहिले अन्नधान की इच्छा रखने वाले यक्षों के द्वारा भी वसुधा  
 ढही गयी थी । हे नहींपते ! उस समय में सामवेद को पात्र बनाया या  
 प्रथा वैश्रवण (कुवेर) को वत्स बनाया गया था । २२ । इस घरा का  
 दोहन श्वेत और राक्षस गणों के द्वारा भी किया गया था अथि वलवान्  
 शीघ्र हुआ गया था । रीप्य नाम दोग्धा हुए थे और सुमाली वत्स हुआ  
 था ॥२३॥ (पहिले काल में गन्धर्वों ने भी इस वसुधा को बुद्धा था जो कि  
 प्रत्सरान्त्रों के गणों के साथ मिल कर ही दोहन किया गया था । उन्होंने  
 चैत्र रथ को वत्स बनाया था और पद्मों के दलों में गन्धों को बुद्धा था  
 ॥२४॥ वररुचि नाम वाला तो वसुधा का दोग्धा हुआ था जो कि वर  
 रुचि नाट्य वेद का पारगामी वुरन्धर विद्वान् था । गिरियों के द्वारा इस  
 वसुधा का दोहन किया गया था जिस में विविध भाति के रत्नों का  
 दोहन हुआ था ॥२५॥ मेरुमहाचल के द्वारा दिव्य औपधियों का  
 दोहन हुआ था । उस दोहन के समय में वत्स हिमाचल बना था और  
 शैलमय ही पात्र था ॥२६॥ वृक्षों ने वसुधरा का दोहन किया था जिस  
 दोहन में छिन्न हुए वृक्षों का पुनः प्ररोहण हो जाना क्षीर था । पलाश  
 (टाक) का पात्र था और पुष्प तथा लताओं से समशीर्ष शाल वृक्ष  
 दोग्धा अर्थात् दोहन करने वाला था ॥२७॥ उस काल में प्लक्ष (पाखर)

ही जो समस्त दुष्टों का घनाधिप है वत्स हुआ था । इसी रीति से इस वसुधा का उस काल में अन्यो के द्वारा भी यथेच्छ रूप से दोहन किया गया था ॥२८॥

आयुधनानि सौख्यञ्चपृथो राज्यप्रशासति ।  
न दरिद्रस्तदा कश्चिन्नरोगीन च पापकृत् ॥२९॥  
नापसगभयकिञ्चित् पृथोराजनिशासति ।  
नित्यप्रमुदितालोका दुःखलोकविर्वाजिताः ॥३०॥  
घुङ्कोटश्च शैलेन्द्रानुत्सार्यसमहाबलः ।  
भुवस्तलसमञ्चक्रे लोकानाहितकाम्यया ॥३१॥  
न पुरप्रामदुर्गाणि नचायुधधरा नराः ।  
स्वातिशयदुःखं नार्घ्यशास्त्रस्य चादरः ॥३२॥  
धर्मकवासनालोका पृथो राज्यं प्रशासति ।  
कथितानिचपात्राणि यत्क्षीरञ्चमयातव ॥३३॥  
यथा यत्र रुचिस्तत्तद्देयं तेभ्यो विजानता ।  
यज्ञप्राढे पु सर्वेषु मया तुभ्य निवेदितम् ॥३४॥  
दुहितृत्वङ्गता यस्मात् प्रथोधम्भवतो मही ।  
तदानुरागयोगाच्च पृथिवी विश्रुता दुधौः ॥३५॥

जिस समय में यहाँ पर ब्रूमण्डल में महाराज पृथु राज्य का प्रशासन कर रहे थे उस वक़्त यह आयु-सौख्य और धन सभी कुछ था । उस वक़्त में यहाँ पर कोई भी दीन दरिद्र नहीं था और न कोई रोग से ही तमासाग्र व्यक्तित्व था और न कोई भी पाप कर्मों के ही करने वाला था ॥२९॥ पृथु राजा के शासन काल में किसी भी प्रकार के उगतगं का ध्य किसी को भी नहीं था । सभी लोग नित्य ही परम प्रमुदिन थे और सभी लोग दुःख तथा शोक में रहित थे ॥३०॥ उस महान् धनशाली राजा में अपने धनुर को बोटि के द्वारा बड़े २ विशाल मनुष्य गर्वों को उत्पन्नित करके उस लक्ष्य को समतल कर दिया था तथा

जड़ खावडपन हटाकर लोगों के हित के सम्पादन की कामना से परम  
 पुन्दर इसको बना दिया था ॥३१॥ उस राजा के शासन काल में नगर  
 और ग्रामों में कोई भी सुरक्षा सम्पादनार्थ दुर्ग आदि की आवश्यकता ही  
 नहीं थी। और कोई भी मनुष्य आयुधों को धारण करने वाले भी नहीं थे  
 क्योंकि अस्त्रायुधों की कोई आवश्यकता ही नहीं रही थी। क्षय के  
 प्रतिपक्ष होने का दुःख लेशमात्र भी नहीं था तथा धर्मशास्त्र का कुछ  
 भी समादर उस समय में नहीं रह गया था ॥३२॥ राजा पृथु महाराज  
 ने द्वारा प्रशासन की छागडोर हाथ में ग्रहण करने पर सभी लोग एक  
 मात्र धर्म की बगल में रहने वाले हो गये थे। हमने दोहन के पात्र और  
 और मन्त्र बतला दिये हैं ॥३३॥ जिनकी अहा पर रक्षि थी वही विशेष  
 ज्ञान रखने वाले पुरुष को उनको देना चाहिए। यज्ञों में और यज्ञों में  
 सब में रक्षि के अनुसार ही दान करना चाहिए यह हमने तुम को बतला  
 दिया है ॥३४॥ क्योंकि राजा पृथु के होने पर यह धर्मवती पृथ्वी उसकी  
 दुहिता के स्वरूप वाली हो गई थी। यह उस में एक विशेष अनुराग  
 का ही योग था इसी कारण से पृथु के ही नाम से इस बसुंधा का नाम  
 भी लोक में पृथ्वी यह विस्तृत हो गया था। जिसे बुद्ध लोग कहा  
 करते हैं ॥३५॥

## १०—आदित्याख्यान

आदित्यवंशमखिल वद स्रुत ! यथाक्रमम् ।  
 सोमवशञ्च तत्त्वज्ञ ! यथावद्वक्तुमर्हसि ॥१॥  
 विवस्वान् कश्यपात् पूर्वमदित्यामभवत्सुतः ।  
 तस्यपत्नीत्रयं तद्वत्सज्ञा राज्ञी प्रभा ॥२॥  
 रवतस्थ सुता राज्ञी रेवतं सुपुत्रे सुतम् ।  
 प्रभा प्रभातं सुपुत्रे त्वाष्ट्रीसंज्ञा तथा म म् ।

यमश्च यमुना चैव यमलो तु वभूवतुः ।  
 ततस्तेजामयं रूपमसहन्ती विवस्वतः ॥५॥  
 नारीमुत्पादयामास स्वशरीरादनिन्दिताम् ।  
 त्वाष्ट्रीस्वरूपेणान्ना छायेतिभामिनीतदा ॥५॥  
 किङ्कुगंभीति पुरत स्थिता तामभ्यभाषत ।  
 छाये ! त्व भज भर्तारमस्मदीय वरानने ! ॥६॥  
 अपत्यानि मदीयानि मातृस्नेहेन पालय ।  
 सत्येत्युक्ता तु सा देवमगमत् क्वापि सुव्रता ॥७॥

ऋषियो ने पूछा था—हे मूलजी ! सूर्य का सम्पूर्ण वश आप हमारे सामने वर्णन कीजिए जो कि सब क्रमपूर्वक हो । हे तत्त्वों के पूर्ण ज्ञाता विद्वन् ! इसी भाँति चन्द्रवश का भी यथावत् वर्णन करने के लिये आप परम योग्य हैं ॥ १ ॥ महा भुनीन्द्र सूनची ने कहा—सबसे पूर्व मे कश्यप महर्षि ने अदिति नाम धारिणी पत्नी के उदर से विवस्वान् सुत ही समुत्पन्न हुआ था । उस विवस्वान् ( सूर्य ) की तीन पत्नियाँ थी और उनके नाम सज्ञा - राज्ञी और प्रभा य थे ॥ २ ॥ राज्ञी रंघत की पुत्री थी और उसन रंघत मुन को जन्म दिया था । प्रभा नाम वाली ने प्रभात को प्रसूत किया था तथा त्वष्ट्री सज्ञा ने मनु को समुत्पन्न किया था । ३ । यम ने यमुना समुद्रमूत की थी । ये ययन हुए थे । यह विवस्वान् क उस तेजोमय स्वरूप को सहन करने वाली नहीं थी ॥ ४ ॥ उसने अपने शरीर से एक अनिन्दित नारी को समुत्पादित किया था । उस समय में यह भामिनी स्वरूप से त्वाष्ट्री और नाम से छाया थी ॥ ५ ॥ 'मैं इस समय में क्या करूँ'—यह कहने वाली जब सामने वह स्थित हुई तो उस से कहा था—हे छाये ! हे वर आनन वाली ! तुम हमारे ही स्वामी का भजन करो ॥ ६ ॥ जो मेरी सन्तति हो उसे आप माना के समान स्नेह के द्रव्य ही प्राप्त करो । 'तथास्तु' अर्थात् ऐसा ही होया—यह कह कर वह सुव्रता वहीं पर दय के समीप में पहुँच गई थी ॥ ७ ॥



तामयामास देवोऽपि सन्नेयमिति चादरात् ।  
 जनयामास तस्मांतु पुत्रञ्च मनुष्येणम् ॥ ८ ॥  
 भवन्त्वाच्च सार्वणिभ्यो नो वैवस्वतस्य च ।  
 इतः शनिञ्च तपतो विष्टि चैव क्रमेण तु ॥ ९ ॥  
 छायाया जनयामास सन्नेयमिति भास्करः ।  
 छाया स्वपुत्रेऽभ्यधिक स्नेहं चक्रे मनो तथा ॥ १० ॥  
 पूर्वो मनुस्तु चक्षाम न यमः क्रोधमूर्च्छितः ।  
 सन्तर्जयामास तदा पादमुद्यम्य दक्षिणम् ॥ ११ ॥  
 दाशाय च यम छाया ससृतः कृमिसमुतः ।  
 पादोऽयमेको भविता पृथगोणितविम्बवः ॥ १२ ॥  
 निवेदयामास पितुर्धम्मः शापादमर्पितः ।  
 निष्कारणमहं शप्तो माता देव ! सक्रोपया ॥ १३ ॥  
 बालभावात् मया त्रिञ्चदुद्यतश्चरण सवृत् ।  
 मनुना वार्यमाणापि मम शापमदाद्विभो ॥ १४ ॥

वह देवी भी यह सत्ता है—इसी आदर से उसको चाहने लगे थे ।  
 उससे उन्होंने मनुष्यी पुत्र को जन्म ग्रहण कराया था ॥ ८ ॥ वैवस्वत  
 मनु के सवर्ण होने से वह सार्वणि हुआ था । इसके पश्चात् क्रम में शनि-  
 तपती और विष्टि को समुत्पन्न किया । ॥ ९ ॥ भगवान् भास्कर ने यह  
 सत्ता दी है यह समझ कर छाया में ही समुत्पन्न किये थे । छाया अपने  
 पुत्र मनु में विशेष अधिक स्नेह किया करती थी ॥ १० ॥ पूर्व मनु ने  
 उसे देखा नहीं था किन्तु यम तो क्रोध से अत्यधिक मूर्च्छित हो गया था ।  
 उस समय में उसने अपनी दाहिनी सात उठाकर अपनी भाति उसकी दाढ़  
 पटकार दी थी ॥ ११ ॥ तब ही छाया ने यम को शाप ही दे दिया था  
 कि यह तेरा एक पैर जिसको तूने उठाकर मारने की धमकी दी थी  
 कृमियों से युक्त क्षत वाला और मवाद तथा रक्त से विस्त्रव हो जायगा  
 ॥ १२ ॥ इस शाप से अप्रतिन होकर धम्म ने पिता से निवेदन किया

या — हे देव ! मुझे बिना हा किसी वशेष कारण के माता ने शाप दिया है वह मुझ पर अत्यन्त ही कुपित हो गई हैं ॥ १३ ॥ बल के अभाव होने के ही कारण से मैंने एक ही मार अपना चरण सवरव ही कुछ उद्य किया था। हे बिम्बो! मनु के द्वारा उसे निश्चायि भी किया गया था तो मैं मुझे माता ने शाप देही दिया है ॥ ४॥

प्राप्योन माता सास्माक शापेनाह यतो हतः ।  
 देवोऽप्याह्वयम भूय किङ्करोमिमहामते ॥१५॥  
 मोक्ष्यात्कस्यनदुःखस्यादयवाकर्मसन्तते ।  
 अनिवार्याभवस्यापिकाकथान्येषुजन्तुषु ॥१६॥  
 कृकवाकुम्मया दत्ता य कृमोन भक्षयिष्यति ।  
 बलेदञ्च रुधिररञ्चव वत्सायमपनेष्यति ॥ ७  
 एवमुत्तस्तपस्तेपे यमस्तीव्र महावशा ।  
 गोकणतीर्थे वराग्यात् फलपत्रानिलाशनः ॥ १८॥  
 आराधयन् महादेव यावद्वर्षायुतायुतम् ।  
 वर प्रादान् महादेव सन्तुष्टः शूलभृत्तदा ॥१९॥  
 वज्रसलाकपालत्व पितृलोकेनृपालयम् ।  
 धर्माधर्मात्मकस्यापि जगतस्तुपरीक्षणम् ॥२०॥  
 एव स लोकपालत्वमगम-छूलपाणिन ।  
 पितृणाञ्चधिपत्यञ्च धर्माधर्मस्य चानघ ॥२१॥

प्राय वह हमारी माता शाप के द्वारा मुझे कभी भी हत नहीं किया करती थी इसीलिये बड़ा दुःख है । उस समय मैं देव ने भी फिर यम से कहा था— हे महामते ! बताओ, अब मैं इसमें क्या करूँ ? ॥१५॥ मूर्खता के कारण किसी दुःख नहीं होता है अर्थात् सभी मूर्खता बरा दुःखित हुआ ही करते हैं । अथवा यह कर्मों की सन्तति ऐसी अनिवार्य होती है जो भी जैसा कर्म करता है उसे उसका फल अवश्य ही भोगना ही पड़ता । यह तो साक्षात् भगवान् भव जो भी भोगनी पड़ती है

फिर अन्य साधारण जन्तुओं की तो क्या ही क्या है ॥ १६ ॥ यह मैंने  
 कृकवकृ दे दिया है जो कृमियों को खा जायगा । हे वरुण ! यह क्लेदन  
 और रुधिर का भी अपनपन करेगा ॥ १७ ॥ इस प्रकार से जब उससे  
 कहा गया था तो उस महान् यक्षस्त्री यम ने तीव्र तपश्चर्या का तपन किया  
 था और बहुत तरस्या भी पल-पल और वायु का ही केवल लक्षण करके  
 गोकर्ण नामक तीर्थ में बनी थी ॥ १८ ॥ अयुतायुत अर्चन दशों हजार वर्ष  
 पर्यन्त जगद्वान् महादेव का समाराधन किया था । तब तो इस उन्मुक्त  
 तप से महादेव परम सन्तुष्ट हो गये थे और उसी समय में शूलधारी प्रभु  
 ने वरदान दे दिये थे ॥ १९ ॥ महादेव ने कहा था लोकपालकना हो  
 पायगी और पितृ लोक में नृसत्त्व होगा । तुम्हारा कर्त्तव्य कर्म यही  
 होगा कि सम्पूर्ण जगत् का कर्म और अधर्म का आच परीक्षण किया करोगे  
 कि कौन कितना धर्मनिष्ठ है और कौन घोर पापात्मा है—आपके द्वारा  
 यह निर्णय होने पर ही वह दुःख दण्ड तथा सुख स्वर्ग का उपभोग किया  
 करे ॥ २० ॥ हे धनञ्जय ! इस प्रकार से शूलपाणि के प्रसाद से वह यम  
 लोकपाल हो गया था तथा पितृगण के अधिकारि होने का पद तथा धर्मा-  
 धर्म का निगन्धित बन गया था ॥ २१ ॥

विवस्वानय उज्जात्वा संज्ञायाः कर्मचेष्टितम् ।

स्वष्टु समीपमगमदानचक्षे चरोपवान् ॥ २२

तमुवाच ततस्त्वष्टासान्त्वपूर्वं द्विजोत्तमाः ।

तवामहन्ती भगवन् ! महस्तीव्रतमोनुदम् ॥ २३

वडवारूपमास्थाय मृतकाशमिहागता ।

निवारिता मया तातु त्वया चैव दिवाकर ॥ २४

यस्माद्विज्ञाततया मृतकाशमिहागता ।

तस्मान्मदीय भवन प्रवेष्टु न त्वमर्हसि ॥ २५

एवमुक्तं जगामाय मन्देशमनिन्दिता ।

वडवा रूपमान्धाय भूतले सम्प्रतिष्ठिता ॥ २६

तस्मात्प्रसादं कुरु मे यद्यनुग्रहभागहम् ।

अपनेष्यामि ते तेजो यन्त्रो कृत्वा दिवाकर ! ॥२७॥

रूपतवकरिष्यामि लोकानन्दकरं प्रभो !

तथेत्युक्तः स रविणा भूमौ कृत्वा दिवावरम् ॥२८॥

विवस्वान् ने इसके अनन्तर, संज्ञा के उस बर्णों के चेटित वा  
ज्ञान प्राप्त किया तो वह स्वप्ना के समीप मे आये और अत्यन्त रोप वाले  
होकर कहा था ॥ २२ ॥ हे द्विचोत्तम गण ! इस पर स्वप्ना ने बहुत ही  
सान्त्वना पूर्वक उससे निवेदन किया था—हे भगवन् ! यह विचारी तम  
को छिन-भिन्न कर देने वाले आपके इस तीव्र तेज को सहन न करती  
हुई बड़वा के रूप में समास्थित होकर यहाँ मेरे समीप मे समागत हुई  
थी । हे दिवाकर ! मैंने उसको निवारित किया था और आने भी किया  
था ॥ २३ ॥ २४ ॥ क्योंकि वह अविज्ञानता के कारण से यहाँ पर मेरे  
समीप मे आ गई थी इस कारण से अब आप इस मेरे भवन मे प्रवेश  
करने के योग्य नहीं होती हैं ॥ २५ ॥ मेरे द्वारा इस प्रकार से कही गयी  
यह अनिन्दिता मरु देश मे चली गयी थी और वह बड़वा का रूप धारण  
करके ही इस भूतल मे सम्प्रतिष्ठित हो रही है ॥ २६ ॥ हे दिवाकरदेव !  
यदि मैं आपके अनुग्रह का भागी हूँ तो अब आप मुझ पर अपने प्रसाद  
की वृष्टि कीजिए । अब मैं यन्त्र मे करके आपके इस अत्युत्तम उग्र तेज  
का भी अपनयन कर दूँगा ॥ २७ ॥ हे प्रभो ! आपका मैं अब स्वरूप ऐसा  
सुन्दर बना दूँगा जो लोको के आनन्द करने वाला ही हो जायगा । इस  
प्रकार मे कहे गये उसकी रवि के द्वारा भूमि मे दिवाकर को कर दिया  
था ॥ २८ ॥

पृथक् चकारतत्तेजश्चक्रं विष्णोरकल्पयत् ।

त्रिशूलञ्चापिरुद्रस्यवज्रमिन्द्रस्यचाधिकम् ॥ ६ ॥

दत्त्यदानवसहस्रं सहस्रकिरणात्मकम् ।

रूपञ्चाप्रतिमञ्चकं त्वष्टा पद्मचामृते महत् ॥३०॥

न आशाकाथ तद्द्रष्टुं पादरूपं रेवते पुनः ।  
 अर्चास्वपि तत पादौ न कश्चित्कारयेत् नवचित् ॥३१॥  
 यः करोति स पापिष्टा गतिमाप्नोति निन्दिताम् ।  
 कुष्ठरोगवाप्नोति लोकेऽस्मिन् दुःखसंयुतः ॥३२॥  
 यस्माच्च घर्मंकामार्थी चित्रेऽप्यायतनेषु च ।  
 न क्वचित्कारयेत्पादौ देवदेवस्य धीमतः ॥३३॥  
 ततः स भगवान् ! गत्वा भूलोकममराधिपः ।  
 कामयामास कामार्तो मुक्तएव दिवाकरः ॥३४॥  
 अद्वैतरूपेण महता तेजसा च समावृतः ।  
 सजा च मनसा लोममगमद्भूयविह्वला ॥३५॥

उस घमि के द्वारा उसका जो उपदेश था उसके पृथक् कर दिया  
 था और उस पृथक्कृत तेज से भगवान् विष्णु के सुदर्शन चक्र की रचना  
 कर डाली थी । उस तेज से भगवान् रुद्र के त्रिशूल की और इन्द्रदेव के  
 अधिक प्रभावशाली वज्र की रचना भी की गई थी ॥ २६ ॥ दैत्यो और  
 दानवो के सहार करने वाले का एक सहस्र किरणों वाले स्वरूप से  
 समन्वित अप्रतिम रूप की रचना त्वष्टा ने कर दी थी जो महत् पैरों से  
 रहित था ॥ ३० ॥ फिर वह रवि अपने पदों के रूप को देखने में भी  
 असमर्थ हो गये थे । उसकी अर्चाओं में भी कोई भी कहीं पर उनके पादों  
 की समर्चन न किया करे ॥ ३१ ॥ यदि कोई सूर्य के पादों का समर्चन  
 किया भी करता है तो वह परम निन्दित और घोर पापिष्ठ गति को  
 प्राप्त हुआ करता है । ऐसा करने वाला पुरुष इस लोक में परम दुःख से  
 सयुक्त होता हुआ कुष्ठ जैसे महान् घोर रोग की प्राप्ति किया करता है  
 ॥ ३२ ॥ इसी कारण से जो भी कोई घर्म और काम का अर्थो हो उसे  
 विनो में तथा आयनो में भी कहीं पर भी घीमान् देवों के भी देव के  
 पादों की रचना न करे और करावे ॥ ३३ ॥ इसके पश्चात् यह भगवान्  
 अमरो का अधिप भूलोक में गये थे और केवल मुखरूप, दिवाकर ने

कामार्त्तं होकर कामना की थी ॥ ३४ ॥ अश्व के रूप से युक्ता और महान् तेज से समावृत थे । वह जो सत्ता थी वह भय से अत्यन्त विह्वल होती हुई मन से अत्यन्त लोभ को प्राप्त होगई थी ॥ ३५ ॥

नासापुटाभ्यामुत्सृष्टपरोऽयमिति शङ्कया ।

तद्रेतसस्ततो जातावदिवनाविति निश्चितम् ॥ ३६

दस्रो सुतत्वात्सञ्जातो नासत्यो नासिकाग्रतः ।

ज्ञात्वाचिराच्च तं देवसन्तोषमगमत्परम् ।

विमानेनागमत् स्वर्गं पत्या सह मुदान्विता ॥ ३७

सावर्णोऽपि मनुर्मेरावद्याप्यास्ते तपोधनः ।

शनिस्तपोबलादाप ग्रहसाम्यं ततः पुनः ॥ ३८

यमुना तपती चैव पुनर्नद्यौ बभूवतुः ।

विष्टिर्घोरात्मिका तद्वत् कालत्वेन व्यथस्थिता ॥ ३९

मनोर्व्वस्वतस्यासन् दशपुत्रा महाबलाः ।

इलस्तु प्रथमस्तेषां पुत्रेऽष्टया समजायत ॥ ४०

इक्ष्वाकुः कुशनाभश्च अरिष्टो घृष्ण एव च ।

नरिष्यतः करूपश्च शर्यातिश्च महाबलः ॥

पृषधश्चाथ नाभागः सर्वे ते दिव्यमानुषाः ॥ ४१

अभिषिष्य मनु पुत्रमिल ज्येष्ठ स धार्मिकः ।

जगाम तपसेभूयः स महेन्द्रवनालयम् ॥ ४२

यह पर है—इत शङ्का से नासा के पुटों से ही उत्सर्जन किया था किन्तु इसके अनन्तर उनके बीर्य से अश्विनीकुमार समुत्पन्न हुये थे—यह निश्चित है । नासिका के अग्र भाग से ये नासत्य दस सुत रूप से समुद्भूत हुए थे—बहुत ही अधिक समय के पश्चात् यह जानकर देव को परम सन्तोष हुआ था । वह मुदान्वित होती हुई पति के ही साथ विमान के द्वारा स्वर्ग को गयी थी ॥ ३६, ३७ ॥ सावर्ण मनु भी अधिक तपोधन आज भी मेरु पर्वत से विद्यमान हैं । इसके अनन्तर वह शनि भी बल से

सम्प्रर्षित करते हुए उसने इस मही पर भ्रमण किया था ॥४३॥ प्रताप वाले उसने अश्व के द्वारा समावृष्ट होकर घूमते हुए भगवान् शम्भु के उपवन में वह चले गये थे । वह वन कल्पद्रुम और सताओ से समा कीर्ण था और महत् वन का नाम शरवण था ॥४४॥ जिस वन में सोमाद्रि को पोखर में धारण करने वाले भगवान् शम्भु देवेश्वर उमादेवी के साथ रमण किया करते हैं । पहिले ही समय में वहाँ पर शरवण में समय (सङ्क्रेत) कर दिया गया था ॥४५॥ पुरुष सज्ञा वाला कोई भी जीव यदि तेरे इस वन में समागत होगा तो वह इस दश योजन के मण्डल में तुरन्त ही स्त्रीत्व को प्राप्त हो जायगा चाहे कोई भी हो सभी के लिए यह प्रभाव अवश्य होगा ॥४६॥ यह राजा इस इस समय का ज्ञान ही नहीं रखता था । यह यह भूल तथा अज्ञानवश उस शरवण नामक वन में पहुँच गया था और उसमें प्रवेश करते ही यह भी स्त्रीत्व को प्राप्त होगया था तथा जो इसकी मचारी का अश्व था वह भी बड़वा घोड़ी) होगया था । हे नृप ! जब समस्त पुरुषत्व के लक्षण हूँ हो गये थे तो इस राजा को बहुत ही अधिक विस्मय हुआ था जब कि उसने अपने आपको एक स्त्री के रूप में पाया था । अब तो वह इल इला नाम वाली स्त्री हो गई थी जिसका पीन—उ नत और परम घनस्तन थे ॥४७॥४८॥ उसी वन में भ्रमण करते हुए उस इला भामिनी ने विचार किया था कि ऐसी दशा में मेरा यहाँ कौन तो पिता है अथवा कौन भाई है और कौन मेरी माता ॥४९॥

### ११—स्येवंश वर्णन ।

अथान्विपन्तो राजान आतरस्तस्यमानवा ।

इक्ष्वाकुप्रमुखाजग्मुस्तदाशरवणान्तिकम् ॥९॥

ततस्तेदद्दृशु सर्वे बहवामग्रतः स्थिताम् ।

रत्नपर्याणकिरणदीप्तनायामनत्तमाम् ॥१०॥

पर्याणप्रत्यभिज्ञानात् सर्वे विस्मयमागताः ।  
 अयं चन्द्रप्रभो नाम वाजीतस्य महात्मनः ॥३॥  
 अगमद्वडवा रूपमुत्तमं केन हेतुना ।  
 ततस्तु मैत्रावरुणि पप्रच्छुस्ते पुरोधसम् ॥४॥  
 किमित्येतदमूच्चिन्नवदयोगविदाम्बर ! ।  
 वशिष्ठश्चाग्रधीत् सर्वं दृष्ट्वा तद्धयानचक्षुषा ॥५॥  
 समयः शम्भुदयिताकृतः शरवणे पुरा ।  
 यः पुमान् प्रविशेदत्र स नारीस्वमवाप्स्यति ॥ ६॥  
 अयमश्वोऽपि नारीस्वमगाद्राजा सहैवतु ।  
 पुनः पुरुषतामेति यथासौ धनदोपमः ॥७॥

श्री महर्षि सूतजी ने कहा—इसके अनन्तर मनु के पुत्र मानव उस इस राजा के भाई लोग जब उसको लौटने में बहुत अधिक समय होगया तो उसकी तोज करने हुए इशवाकु प्रमुख सब उस शरवण नामक वन की गये थे ॥१॥ इसके अनन्तर जैसे ही वे उस वन के समीप तक ही पहुँचे थे कि उन्होंने सबने सामने स्थित बडका की देखा था जो रत्नों के पर्याण ( रत्न जटिन जीव ) को किरणों से परम दीप्त शरीर वाली थी धार अनोख उत्तम थी ॥ २ ॥ उसके पर्याण के प्रत्यभिज्ञान से वे सभी लोग अत्यन्त विस्मय हो गये थे । उन्होंने समझ लिया था कि यह तो उमी महारमा इन राजा का चन्द्रप्रभ नाम वाला अश्व है ॥३॥ किन्तु क्या हेतु हो गया है—जिसने इस बडका का ऐसा अत्युत्तम स्वरूप हो गया है । इसके पश्चात् मैत्रा वरुणि नामक अपने पुरोहित से इस विषय में पूछा था ॥४॥ हे योग के ज्ञाताओं में परम श्रेष्ठ ! प्रायः हम को यह बताइये कि यह एक विचित्र घटना क्या और कैसे हो गई है ? तब तो महर्षि वशिष्ठ जी ने ध्यान के नेत्रों से यह सम्पूर्ण घटना को देखा लिया था और उनसे वे फिर बोले थे ॥५॥ प्राचीन समय में भगवान् शम्भु की दयिना उमा देवी ने इस शरवण वन में प्रविष्टा की थी कि जो



कोई भी पुमान् इस शरवण धन में प्रवेश करेगा वह निश्चित रूप से स्त्रीत्व को प्राप्त हो जायगा ॥६॥ यह अश्व भी तो पुस्त्व सत्ता वाला था अतएव यह भी राजा के साथ ही स्त्रीत्व को प्राप्त हो गया है अर्थात् अश्व से बढवा बन गया है । यह धनद के समान उपाय वाला पुन पुष्परत्न को प्राप्त जिस तरस से होता है उसका उपाय करना होगा ॥७॥

तथैव यत्नं कृतव्यस्यचाराध्यं च पिनाकिनम् ।  
 तत्तस्ते मानया जग्मुषस्य देवो महेश्वर ॥८॥  
 तुष्टुबुविविदी स्तोत्रं पार्वतीपरमेश्वरी ।  
 सायूचतुरत्तपथोऽप्य समयं विन्तु साम्प्रतम् ॥९॥  
 इदवाश्वोरद्वयमेधेनयत्पुन स्यात्तदावयो ।  
 दत्त्वा निम्पुरुषोऽश्वोर स भविष्यत्यसदायम् ॥१०॥  
 तथेत्युक्तास्ततस्तेऽस्मिन्नुज्जग्मुर्वैश्वतात्मजा ।  
 इदवाश्वोरवाग्वमेधेननेत् निम्पुरुषोऽभवत् ॥११॥  
 माममेवम्पुमान्श्वोर स्त्री च मासमभूत् पुन ।  
 बुधस्य भवनं तिष्ठन्निना गर्भं धरोऽभवत् ॥१२॥  
 अजीजित् पुत्रमेवमनेऽगुणगयुतम् ।  
 युधामन्युः स्यात् त पुत्र स्वर्लोकागमस्ततः ॥१३॥  
 इत्यस्य नाध्नाः सप्तमिलावृत्तमभूत्तदा ।  
 सामांश्च दशशोरादाविमोऽग्रमन्तरादहम् ॥१४॥

हृषिकेश करने के योग्य नहीं है ॥६॥ इन्द्राकु व द्वारा नित्य मय  
 वमेध से जो भी फल होमा उसको हम दोनों को देकर वह बीर बिना  
 किसी सजय के किम्बुध हो जायगा ॥१०॥ तथास्तु अर्थात् ऐसा हो  
 गा—यह कहकर वे सब देवस्वर्ग मनु के पुत्र वहां स चर दिये थे ।  
 इन्द्राकु ने फिर अश्वमेध यज्ञ किया था और उससे वह इस किम्बुध ही  
 मा था ॥११॥ इस का भी वह परिणाम हुआ था कि वह एक मास  
 क तो नारी होकर रहा करता था और एक मास तृप्त, पुष्ट, यन  
 र, जीवन विनाशता था । जिस समय में वह युध व भुवन स्थित रहा था  
 तीर नारी के रूप में था उसी समय में इस न गण धारण कर शिवा  
 ॥१२॥ फिर इसने अनेक सद्गुण गण म मयन्विन एक पुत्र को जन्म  
 दिया था । युध ने उस पुत्र को इस के उदर में समुत्पन्न करने का  
 फिर स्वर्लोक को चले गये थे ॥१३॥ उसी समय में इस के नाम के उद  
 र में इलाहूत इस नाम से प्रसिद्ध हो गया था । सोम और मृद के उद  
 र में यही इस सबसे प्रथम मनु का पुत्र हुआ था ॥१४॥

एव पुरुरवाः पुंसोरभवद्भगवदन्तः ।

इन्द्राकु कं वशस्य तथैवोत्तमनपोऽथा ॥

इल. किम्बुधरत्वे च सुशून इति वचनम् ।

पुन. पुत्रत्रयमभूत् सुद्युम्नम्याऽर्थात् ॥

उत्कली वं गयस्तद्वद्विज्ञाऽर्थात् ॥

उत्कलस्योत्कलानाम गयस्तद्वद्विज्ञाऽर्थात् ॥

हरिताश्वस्य दिक्पूर्वो दिग्भुज इति वचनम् ।

प्रतिष्ठानेऽभिपिन्याय इति वचनम् ॥

जगामेलाचूत मोक्षु इति वचनम् ॥

इन्द्राकु ज्येष्ठदाता इति वचनम् ॥

नरिष्यन्मस्य पुत्र इति वचनम् ॥

नाभागम्याम्वर्गम् इति वचनम् ॥

धृतवेतुश्चिसनाथो रणघृष्टश्च वीर्यवान् ।

आनर्तो नाम शयति\* सुकन्याचैव दारिका ॥२१॥

इस प्रकार ॥ पुरूरवा पुमान् के वंश का वर्धन करने वाला हुआ था । उसी भाँति सूर्य वंश की वृद्धि करने वाला तपोधन इक्ष्वाकु हुआ ऐसा ही कहा गया है ॥१५॥ इस को किम्बुरुपत्व हो जाने पर सुघुम्न इस नाम से कहा जाता है । इसके पदात् सुघुम्न के तीन कौ राजित पुत्र हुए थे ॥१६॥ उन तीनों के नाम उत्कल, गय और वीर्यवान् हरिताश्व ये थे । उत्कल की उत्कला नाम वाली-गय की ग पुरी मानी गयी है ॥१७॥ हरिताश्व की कुरुश्रो के साथ पूर्वदिक् वि हुई थी । उसने प्रतिष्ठान में पुरूरवा पुत्र का अभिषेक किया था । दिव्य फलों के अशन वाले इला वृत्त वर्ष का उपभोग करने के लिये च गया था । ज्येष्ठ दायद जो इक्ष्वाकु था उसने मध्य देश को प्राप्त किया ॥१८, १९॥ नारिष्यन्त का शुच नाम वाला महाद बल वाला प्रसूत हुआ था । नाभाग का पुत्र अश्वरीप हुआ था और घृष्ट के पुत्र हुए थे ॥२०॥ उन तीनों के नाम घृष्ट के पुत्र चित्र नाम और ती वीर्यवान् रण घृष्ट ये थे । शयति का पुत्र आनत नाम वाला उत्पन्न हुआ था तथा सुकन्या नाम दारिणी एक लड़की हुई थी ॥२१॥

आनतस्याभवत्पुत्रो रोचमान प्रतापवान् ।

आनर्तो नाम देशोऽभून्नगरीच कुशस्थली ॥२२॥

रोचमानस्य पत्न्योऽभूदेवोरेवत एव च ।

यकुदभीचापरान्नामज्येष्ठ पुत्रशतस्य च ॥२३॥

रेवती तस्य सा कन्या भार्या रामस्यविश्रुता ।

वरूपस्य तु कारूपावहव प्रथिताभुवि ॥२४॥

पृषधोगोवधा छूद्रो गुरुशापादजायत ।

इक्ष्वाकुवशं वदयामि शृणुध्वमृषिसत्तमा । ॥२५॥

इक्ष्वाको पुत्रतामाप विवृत्तिर्नाम देवराट् ।

ज्येष्ठः पुत्रश्चतुर्स्यासीद्दश पञ्चच तत्सुतः ॥२६॥

मेरा उत्तरतस्तेनु जाताः पारिवसतमा ।

चतुर्दशोत्तरञ्चान्यन्तु तमस्य तथाभवन् ॥२७॥

मेरो दक्षिणतो य वै राजानः सम्प्रकाशिताः ।

ज्येष्ठः ककुत्स्थो नाम्नाऽभूत्तत्सुतरनु सुयोधनः ॥२८॥

आनर्त्त का पुत्र परम प्रताप वाला रोचमान हुआ था हम राजा के ही नाम ने देश का नाम भी जानल हो गया था और इसकी नगरी का नाम कुशावली था ॥२२॥ रोचमान का पुत्र देव रैवन हुआ था और ककुद्भी अपर नाम था जो सो पुत्रों में सबसे बड़ा ज्येष्ठ था ॥२३॥ इसकी रेवती नाम वाली कन्या समुत्पन्न हुई थी जो बलरामजी की परम प्रतिष्ठ भार्या थी । बरुप के बहूतमों का ह्म नाम धारी पुत्र नू मण्डन में प्रतिष्ठ हुए थे ॥२४॥ गो वध से गृध्रम समुत्पन्न हुआ था जो गुरु के शाप में शूद्र हो गया था । हे ऋषि ज्येष्ठो ! अब मैं इन्द्राकु के वध का वर्णन करता हू उसका आप लोग ध्यान कीजिए ॥२५॥ विदुशि नाम वाले देवराट्ट ने इन्द्राकु के पुत्र का स्थान प्राप्त किया था । यह सो पुत्रों में सबसे बड़ा पुत्र था । इसके माँ दश और पाँच अर्थात् पन्द्रह पुत्र हुए थे ॥२६॥ ये सब मेरे की उत्तर दिशा में ज्येष्ठ पारिव हुए थे । चतुर्दश से उत्तर अन्य हमका वंश ही विधुन हुआ था ॥ २७ ॥ मेरे के दक्षिण भाग में जो भी राजा लोग कीर्तित किये गये हैं उनमें ज्येष्ठ काकुत्स्थ हुआ था । उसका पुत्र सुयोधन नाम वाला था ॥ २८ ॥

तस्य पुत्रः पञ्चुर्नाम विश्वगश्च पृथोः सुतः ।

इन्दुस्तस्यचपुत्रोऽभूत्तु वनाश्वरततोऽभवत् ॥२९॥

आध्वस्तश्च महातेजायत्मकस्तत्पुत्रोऽभवत् ।

निमिता येन आध्वस्तीगोहदंशोद्विजोत्तमा ॥३०॥

आवस्ताद् दृष्टदशवोऽभूत् कुवताम्बुस्ततोऽभवत् ।

धुन्धुमारत्वमगमद् धुन्धु ना न० हत पुरा ॥३१॥  
 तस्य पत्न्यास्त्रया जाता द्वडाश्वो दण्ड एव च ।  
 कपिलाश्वश्च विद्यातो धौन्धुमारि प्रतापवान् ॥३२॥  
 द्वडाश्वस्य प्रमादश्च हयश्वस्तस्थचा मज ।  
 हयश्वस्य निकुन्नाऽभूत्सहताश्वस्तताऽभवत् ॥३३॥  
 अकृताश्वोरणाश्वश्च सहताश्वसुतादुभौ ।  
 युवनाश्वोऽणश्वस्य माघाताचतताऽभवत् ॥३४॥  
 माघातु पुरुन्दरताऽद्वम्ममनन्ता पाथिव ।  
 मुचकुन्दश्च विद्यान शत्रुजिच प्रतापवान् ॥३५॥

सुयोधन क पुत्र का नाम पृथु और पृथु का आत्मज विश्वा  
 नामधारी था । इसके पुत्र का नाम इन्दु था और इन्दु का सुत युवनाश्व  
 हुआ था ॥ ३२ ॥ आबस्त महान् सेज वाला था । इसके सुत का नाम  
 वत्सक था । हे द्विजगणो ! इसी न गौड देश में थावस्ती नाम वाली पुरी  
 का निर्माण किया था । ३० ॥ थावस्त से बृहदश्व ने जन्म प्राप्त किया

१० इन्द्र पुत्र क नाम कुवलाश्व हुआ था । यह धुन्धुमारता को  
 प्रलभ हुआ था । क्योंकि पत्निल धुन्धु नामधारी का हनन किया था ॥ ३१ ॥  
 इसके तीन सुता न ज म ग्रहण किया था । उनके नाम द्वडाश्व और दण्ड  
 ५ तथा तासरा कपिलाश्व था जो प्रताप वाला धौ धुमारि नाम से  
 विद्यात हुआ था ॥ ३२ ॥ द्वडाश्व का प्रमोद और प्रमोद का हयश्व  
 पुत्र हुआ था । हयश्व का निकुम्भ सुत उत्पन्न हुआ था फिर इसका पुत्र  
 सन्तश्व पैदा हुआ था ॥ ३३ ॥ सहताश्व क अकृताश्व और उरणाश्व मे  
 दो सुत हुए थे । उरणाश्व का पुत्र युवनाश्व हुआ तथा फिर इसके  
 म गाता नाम वाल ने ज म ग्रहण किया था ॥ ३४ ॥ माघाता के पुत्र  
 का नाम पुरुन्दरस था घघनमन पाथिव भी हुआ था एव मुचकुन्द परम  
 विद्यान हुआ और प्रतापधारी शत्रुजित् भी हुआ था । ऐसे य चार पुत्र  
 २५ ॥ ३५ ॥

पुत्रकुत्सस्य पुत्रोऽम्बूद्वसूदानम्मेदापति ।  
 मम्भूतिस्तस्यपुत्रोऽभूत्त्रिघन्वा चतुतोऽभवत् ॥३६॥  
 त्रिघन्वन सुतो जातस्त्रय्यारण इति स्मृत ।  
 तस्मात्सत्यव्रतो नाम तस्मात्सत्यरथ स्मृत ॥३७॥  
 तस्य पुत्रो हरिश्चन्द्रा हरिश्चन्द्राच्चरोहित ।  
 रोहिताच्च वृको जातो वृकाद्वाहुरजायत ॥३८॥  
 सगरस्तस्य पुत्रोऽम्बूद्राजा परमधामिक ।  
 द्वे भाव्ये मगरस्यापि प्रभाभानुमती तथा ॥३९॥  
 ताभ्यामाराधित पूर्वमीर्षोऽग्नि पृत्रकाम्यया ।  
 और्वस्तुष्टस्तयो प्रादाद्येष्ट वरमुत्तमम् ॥४०॥  
 एका पण्डिसहस्राणि सुतमेक तथापरा ।  
 गृह्णामु वशवर्तार प्रभाऽगृह्णाद् बहूस्तदा ॥४१॥  
 एक भानुमती पृत्रमगृह्णादसमञ्जसम् ।  
 तत पण्डिसहस्राणि सुपुत्रे यादवीप्रभा ॥४२॥

पृक्षकुत्स का पुत्र बसूद हुआ था जो नर्मद पनि था । इसका सुत  
 मम्भूति था तथा मम्भूति न त्रिघन्वा न जन्म ग्रहण किया था ॥ ३६ ॥  
 त्रिघन्वा के पुत्र का नाम त्रय्यारण कहा गया है । इस सत्यव्रत और  
 सत्यव्रत क पुत्र का नाम सत्यरथ था ॥ ३७ ॥ इस सत्यरथ क हा  
 पुत्र का नाम हरिश्चन्द्र हुआ था त्रिमवा पुत्र रोहित हुआ था । रोहित  
 के वृक का नाम हुआ था और वृक क पुत्र का नाम वाहु था ॥ ३८ ॥  
 इस वाहु के पुत्र का नाम राजा सगर हुआ था जो परम धामिक महापति  
 हुआ है । इस महाराज सगर की दो पत्नियाँ थीं । एक का नाम प्रभा  
 और दूसरी का नाम भानुमती था ॥ ३९ ॥ इन दोनों ही पत्नियों ने  
 पहिल पुत्र प्राप्ति की कामना से और्व अग्नि की समाराधना की थी ।  
 और्व इनके समाराधन से परम सुष्टुष्ट हुआ था और उसने उन दोनों  
 का यष्ट उत्तम वरदान दे दिया था । उनसे एक तो साठ हजार

और दूसरी एक पुत्र कर जो वध की वृद्धि करने वाला था। उस समय  
म प्रभा ने यहूत-स पुत्रों की प्राप्ति का ही ग्रहण किया था ॥४०, ४१॥  
भानुमती नाम धारिणी समर की भार्या ने एक सुत ही प्राप्त किया था  
जिसका नाम असमञ्जस था। इसका अनन्तर यादवी प्रभा ने साठ सहस्र  
पुत्रों को प्रसूत किया था ॥४२॥

खनन्तं पृथिवी दग्धा विष्णुना येऽश्वमागणे ।  
असमञ्जसस्तु तनयोर्योऽशुमान्नामविश्रुत ॥४३॥  
तस्यपुत्रो दिलीपस्तु दिलीपात्तु भगीरथ ।  
येन भागीरथी गङ्गा तपः कृत्वावतागता ॥४४॥  
भगीरथस्य तनयोनाभाग इतिविश्रुत ।  
नाभागस्यावरीपाऽभूत्सिन्धुद्वीपस्ततोऽभवत् ॥४५॥  
तस्यायुतायु पुत्रोऽभूदुत्तुपर्णस्ततोऽभवत् ।  
तस्य कल्माषपादस्तु सर्वकर्मा तत स्मृत ॥४६॥  
तस्यानरण्य पुत्रोऽभून्नघ्नस्तस्य सुतोऽभवत् ।  
निघ्नपुत्राद्युभोजातो अनमित्ररघून्पु ॥४७॥  
अनमित्रो वनमगाद्रविता स कृते नप ।  
रघारभद दिलीपस्तु दिलीपादजकस्तथा ॥४८॥  
दीधवाटुरजाज्जातश्चाजपालस्ततो नृप ।  
तस्माद्दशरथा जातस्तस्य पुत्रचतुष्टयम् ॥४९॥

य साठ हजार जो पुत्र हुए थे इ हान अश्वमघ के घोड़े की खोज  
करने में भूमिका खनन किया था और खनन करत हुए ही विष्णु क द्वारा ये  
दग्ध कर दिये गये थे असमञ्जस का पुत्र अशुमान् नाम से प्रसिद्ध हुआ था  
॥४३॥ इसके पुत्र का नाम दिलीप था और दिलीप नामधारी राजा से ही  
भगीरथ ने जन्म प्राप्त किया था जिसने परभोगु तपश्चर्या करके भागी-  
रथी गङ्गा का अवतरण कराया था ॥ ४४ ॥ भागीरथ के पुत्र का नाम  
नाभाग था जो परम प्रसिद्ध हुआ था। नाभाग का पुत्र अम्बरीष और

उके पुत्र का नाम सिन्धु द्रोण हुआ था ॥४२॥ सिन्धु द्रोण का पुत्र अयुतायु  
 था था और इसके पुत्र का नाम ऋतुपर्ण था । ऋतुपर्ण का कन्यापति  
 और फिर इसका पुत्र सबकर्मो नामधारी हुआ था ॥४३॥ सर्वकर्मो का  
 पुत्र अरुण हुआ और इसका पुत्र का नाम निघ्न हुआ था । इस निघ्न  
 के दो पुत्रों ने प्रसन्न प्राप्त किया था एक का नाम अनमित्र था और  
 दूसरा रघु नृप हुआ था ॥४४॥ अनमित्र जो था वह वन में बसा गया  
 था अनः रघु ने ही राज्यासन ग्रहण किया था । राजा रघु के पुत्र का  
 नाम दिलीप हुआ था । इस दिलीप का पुत्र अन्न हुआ था ॥४५॥  
 अन्न से दोषशत्रु ने जन्म ग्रहण किया था और इसके अनन्तर अजपाल  
 हुआ था । इस अजपाल से महाराज दशरथ ने जन्म ग्रहण किया  
 था जिन महाराज दशरथ के चार पुत्र हुए थे । ये चारों ही पुत्र  
 मारायण स्वरूप थे जिनमें श्री रामचन्द्र सबसे बड़े पुत्र थे । यह रामचन्द्र  
 के अन्त करन वाले तथा रघुकुल के वंश की वृद्धि करने वाले हुए हैं  
 ॥४६, ५०॥

नारायणात्मका सर्वे रामस्तेष्वग्रजोऽभवत् ।  
 रावणान्तकरस्तद्वद्रघूणा वगवधन्तः ॥५०॥  
 वाल्मीकिस्तस्य चङ्गि चक्रे भागवसत्तमः ।  
 तस्य पुत्रो कुशलवाक्किष्वाकुः कुनवर्धनी ॥५१॥  
 अतिथिस्तु कुशाग्रज्ज्ञो निपद्यस्तस्य चात्मजः ।  
 नलस्तु नैपद्यस्तस्मान्नमास्तस्मादजायत ॥५२॥  
 नमसः पण्डरीकोऽभूत् क्षेमघन्वा ततः स्मृतः ।  
 तन्मयः पुत्रोऽभवद्दीरो देवानां प्रतापवान् ॥५३॥  
 अहीनगुस्तस्य पुनः सहस्राश्वस्ततः परः ।  
 ततश्चन्द्रावलाकस्तु ताराशेटस्ततोऽभवत् ॥५४॥  
 तन्मात्मजश्चन्द्रगिरिर्मानुरचन्द्रस्ततोऽभवत् ।  
 अतः पुरभवत्तस्माद्भाग्ये यो निपातितः ॥५५॥



मलौद्वावेवविस्थाती वशे वश्यपसम्भवे ।

वीरसेनमुतस्तद्वर्गनैपघश्च नराधिपः ॥५६॥

एते वैवस्वते वशे गजानो भूरिदक्षिणाः ।

इक्ष्वाकुवशप्रभवाः प्राधान्येन प्रकीर्तिता ॥५७॥

महर्षि प्रवर बाल्मीकि ने जो भागवत श्रौंष्ठ थे उनके चरित का निर्माण पार्थिवार में किया था । महाराज श्रीराम के पुत्र द्रुप और लव ये दो हुए थे जो इक्ष्वाकु कुल के वर्धन करने वाले हुए थे ॥ ५१ ॥ द्रुप से अतिथि ने जन्म ग्रहण किया था और इसके आत्मज का नाम निषध हुआ था । इसी निषध से नैपघ नल हुआ था और नल से नभ ने जन्म लिया था ॥ ५२ ॥ नभ से पुण्डरीक सुत हुआ और इसके पश्चात् क्षेम-घन्वा ने जन्म लिया था । इस क्षेमघन्वा का पुत्र वीर एवं प्रताप वाला देवानीक हुआ था ॥ ५३ ॥ इसका पुत्र अहीन और इसके सुत का नाम सहस्राक्ष हुआ था । इसके उपरान्त चन्द्रावलोक हुआ और फिर इसका सुत तारापीड समुत्पन्न हुआ था । इस तारापीड का सुत चन्द्रगिरि हुआ और चन्द्रगिरि से भानुचन्द्र ने जन्म ग्रहण किया था । इसके पुत्र का नाम श्रुतायु हुआ जो भारत में निपातित कर दिया गया था । कश्यप से सम्भूत वश में दो ही नल विख्यात हुए हैं एक वीरसेन का सुत और उसी भीति नराधिप नैपघ प्रसिद्ध था ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ इस प्रकार से वैवस्वत क वश में भूरि दक्षिणा वाले राजा लोग हुए थे । प्रधानतया ये सब राजागण इक्ष्वाकु वंश से उत्तमव प्रकीर्तित हुए हैं ॥ ५७ ॥

## १२-देवी के एक सौ आठ नाम

भगवन् ! श्रोतुमिच्छामि पितृणां वनमुत्तमम् ।  
 स्वैश्वर्याद्धैर्यं गोमयं च विनोदतः ॥१॥  
 हन्तते कथयिष्यामि पितृणां वनमुत्तमम् ।  
 स्वर्गोपनिषत्तां ममप्रसन्नममममम् ॥२॥  
 मूर्तिमन्तोऽयं चर्यात्, सर्वेषामं मिनीजम् ।  
 अमृतम्, पितृगणा वंराजस्य प्रजापतेः ॥३॥  
 गजन्ति यान् देवगणा वंराजा इति विश्रुता ।  
 दिशि ते गोमयिभ्यः प्राप्य नारायणं गगनान् ॥४॥  
 पुनश्चैतद्विदुः ते तु जायन्ते प्रह्लादादिभिः ।  
 मद्राजं शृतिं भूयो योगं साहस्यमनुत्तमम् ॥५॥  
 मिद्धिद्वयानि योगेन पुनरावृत्तिदुर्लभम् ।  
 योगिनामं देवानि तस्माच्छादयितुमिह ॥६॥  
 तमेव मानमोक्षदायिनीं हिमं रत्नमना ।  
 मेतास्त्वयदाशुदौर्जन्यस्यापजोऽभवत् ॥७॥

क्रिया करत हैं । वे फिर उत्तम साध्य और योग की उसी स्मृति को प्राप्त कर लिया करते हैं ॥ ५॥ योग के द्वारा पुन आवृत्ति करने में अत्यन्त दुर्लभ सिद्धि को प्राप्त कर लेते हैं । अतएव गताओं के द्वारा योगियों को ही श्राद्ध देने चाहिए ॥ ६॥ इनकी जो मानसी कन्या हिमवान् की पत्नी मानी गयी है । उसका दायद मैनाक पर्वत है और क्रौञ्च उसके उदर में अग्रज सुत समुत्पन्न हुआ है ॥ ७॥

ऋञ्चद्वीप स्मृतो येन चतुर्यो घृतसवृत ।  
 मैनाचसुपुवेतिष्ठ कन्यायोगवतीस्तत ॥ ८  
 उमैकपर्णापर्णा च तोव्रव्रतपरायणा ।  
 रद्रस्यैका सितस्यैका जैगीपभ्यस्यचापरा ॥ ९  
 दत्ता हिमवता बाला सर्वा लोक तपाऽधिका ।  
 वस्माद्दाक्षायणी पूष ददाहात्मानमात्मना ॥ १०  
 हिमवद्दुहिता तद्वत् कथं जाता महोत्तमे ।  
 सहरन्ती किमुत्तासो मुता वा ब्रह्मसूनुना ॥ ११  
 दशेण लोहजननी सूत । विस्तरता वद ।  
 दक्षस्य यज्ञे वितते प्रभून्वरदक्षिणे ॥ १२  
 सम दूतेषु दक्षेषु प्रोवाच पितरं सती ।  
 हिमय तात । भर्तामि यज्ञेऽस्मिन्नाभिमन्त्रित ॥ १३  
 अयाग्य इति तामाह दक्षो यज्ञेषु दूतभूत ।  
 उपसहान् बृद्रुद्रस्तेनामंगलभागयम् ॥ १४

सती ने किम कारण से अपने ही आप स्वयं अपने को दग्ध कर दिया था ॥६, १०॥ फिर इस महीतल में उसी भाँति वह हिमवान् की दुहिता कैसे और क्यों उत्पन्न हो गई थी । सहार करती हुई इस सुता से ब्रह्मा के पुत्र दक्ष ने क्या कहा था जो कि समस्त लोको की जननी थी । हे सून जी ! आप कृपा की कृपया कुछ विस्तर के साथ बतलाइये । सूनजी ने कहा—प्रजापति रक्ष यज्ञ विस्तृत रूप में फैला हुआ चल रहा था और यह यज्ञ ऐसा था जिस में प्रसूत मात्रा में श्वत्थ दक्षिणाएँ दी गई थीं ॥११, १२॥ जिस समय में समस्त देवगण समासूत किये गये थे और भगवान् शम्भु को आमन्त्रित नहीं किया था तो यह देखकर सहन न करते हुए सती ने अपने पिता से कहा था—हे तात ! आपने किस कारण से केवल मेरे ही स्वामी को इस महान् विशाल यज्ञ में निमग्नित नहीं किया है ? उस समय में दक्ष ने उस जगदम्बा की यही उत्तर देते हुए कहा था कि वह शूलशानि यज्ञों में सम्मिलित होने की योग्यता ही नहीं रखते हैं अतः अयोग्य हैं क्योंकि वह रुद्र तो सत्कार का उपसहार करने वाला है इसीलिये वह अमङ्गल भागी है ॥११, १४॥

शुक्रपाथ सती देह त्यक्षामीति त्वदुद्धवम् ।  
 दशानान्वञ्च भविता पितृ णामेक पुत्रकः ॥१५  
 क्षत्रियत्वेऽश्वमेधे च रुद्रास्त्व नाशमेप्यसि ।  
 इत्युक्त्वायोगमास्थायस्वदेहोद्धवतेजसा ॥१६  
 निदहन्ती तदात्मान सदेवासुर्गकिन्नरैः ।  
 किं किमेतदिति प्रोक्ता गन्धवगणगुह्यकैः ॥१७  
 उपगम्याब्रवीद्धत्तः प्रणिपत्याथ दुःखितः ।  
 त्वमस्य जगता माताजगत्सोमाय देवता ॥१८  
 दुहितृत्वञ्जिता देवि भमानुग्रहकाम्यया ।  
 न त्वया रहित किञ्चित् ब्रह्माण्डे सचराचरम् ॥१९  
 प्रनास कुरु धमने न मान्यस्तू मिहाहसि ।

प्राह देवी यदारब्ध तत्कार्यं मे न सशयः ॥२०॥

किं त्ववश्यं त्वया मर्त्ये हृतयज्ञेन शूलिना ।

प्रसादेलोकसृष्ट्यर्थं तपःकायं समाहितके ॥२१॥

यह कथन वरमे के अनन्तर ही सती अत्यन्त क्रुपित हो गई थी और उसने कह दिया था कि तुझ में समुत्पन्न मैं इस देह का भी अब त्याग कर दूंगी । और तू दशा पितृगण का एक पुत्र वाला हो जायगा ॥१५॥ इस क्षत्रियत्व वाले अश्व मेघ से ही मुम रुद्र से ही नाश को प्राप्त हो जाओगे । वस, इनना ही बह बर सती योग में समास्थित हो गई थी । उमक देह से ही एक प्रकार के तेज का उद्भव हुआ था ॥१६॥ उसी तेज से उस समय में सती ने आप दाह कर दिया था । निर्दहन कग्नी हुई उससे देव-असुर-किन्न गन्धवगण और गुह्यक सभी ने उससे यही कहा था—'यह क्या हो रहा है' । १७॥ फिर ता दक्ष स्वयं उस सती के समीप में आकर उपस्थित हुआ था और प्रणिपात कर के सती से कहा था—आप ता इस सम्पूर्ण जगत् की माता हैं और जगत् के सौभाग्य की देवता हैं ॥१८॥ हे देवि ! मेरे ऊपर अनुग्रह करने की ही कामना से आप मेरी पुत्री होने को स्वीकार किया था और पुहिता बन गयी थी । आपसे रहित इस ब्रह्माण्ड में सचराचर कुछ भी नहीं है ॥१९॥ हे घमज्ञ ! अब प्रसाद (प्रसन्नता) कीजिए और मेरा त्याग करने के योग्य आप नहीं बनिये । इस पर देवी ने कहा था कि जो मैंने आरम्भ कर दिया है वह मुझे करना ही है क्योंकि यह परम कर्तव्य ही हो गया है—इसमें कुछ भी सशय शेष नहीं है ॥२०॥ किन्तु अब यह परमावश्यक ही है कि अब भगवान् शूलीक द्वारा तेरा यह यज्ञ विध्वस्त हो हो जायगा तब उनके प्रसाद प्राप्त करने के लिये लोको की सृष्टि के वास्तव मर्त्य लोक में मेरे ही समीप में तप करना चाहिए ॥२१॥

प्रजापतिस्त्व भविता दशानामङ्गजोऽप्यलम् ।

मदशेनाङ्गनापटिर्भविष्यत्यङ्गजारतव ॥२२॥

मत्सन्निधौ तपः कुर्वन् प्राप्स्यसेयोगमृतमम् ।  
 एवमुक्तोऽब्रवीद्दक्ष नेपुनेषुमयाऽनघे ॥२३॥  
 तीर्थेषु च त्व द्रष्टव्या स्तोतव्या कैश्च नामभिः ।  
 सर्वदा सर्वभूतेषु द्रष्टव्या सर्वतो भुवि ॥२४॥  
 सर्वलोकेषु यद्विचित्रिद्वहितं न मया विना ।  
 । तथापिपेपुम्यानेषुद्रष्टव्यासिद्धिमोप्सुभिः ॥२५॥  
 स्मर्त्तव्याभूतिकामेर्वानिवक्ष्यामितरवतः ।  
 वाराणस्याविजालाश्रीनमिषेलिङ्गधारिणी ॥२६॥  
 प्रयागे सलिता दवी कामाक्षी गन्धमादने ।  
 मानसे कुमुदा नाम विदवकायातयाम्बरे ॥२७॥  
 गोमन्ते गोमती नाम मन्दरे कामनारिणी ।  
 मदोत्कटा चैत्ररथे जयन्ती हस्तिनापुरे ॥२८॥

दशो वा अङ्गज श्री तुम समर्थ प्रलापनि होओगे और मेरे अश्रु में सठ अङ्गमाएँ होंगी मया तुम्हारे अङ्गज होंगी ॥२२॥ मेरी सन्निधि में तपश्चर्या करत हुए उत्तम योग की प्राप्ति करोगे । जब इस प्रकार मे जगदम्बा ने कहा था तो वह दक्ष देवी से बोला—हे भगवन् ! मुझे आपके दिन ७ तीर्थों में दशन होंगे और दिन २ नामों से प्राप्ति स्तुति करनी चाहिए ? ॥२३॥ देवी ने कहा—इस भू मण्डल में सर्वदा सभी भार ममम्न प्राणियों में मेरा दशन करना चाहिए । २४॥ समस्त लोकों में मेरे बिना कुछ भी रहित पदार्थ या प्राणी नहीं है । तो श्री मिट्टि की ईप्सा रखने वाला के द्वारा दिन स्थानों में मेरा दशन करना चाहिए तथा भूवि की बेमना रखन वाला को मेरा स्मरण करना चाहिए उन नामों की मैं अब तरवतः बतला देती हूँ । यहाँ से ही देवी के षष्टोत्तर शत नामों का आरम्भ होना है—वाराणसी में मेरा विजालाक्षी नाम लेकर स्मरण तथा स्तवन करना चाहिये । नैमिष क्षेत्र में मेरा निङ्गधारिणी नाम प्रसिद्ध है ॥२२, २६॥ प्रयाग में सलिता दवी और

गन्ध मादन मे कामाक्षी देवी है । मानस मे मेरा कुमुदा नाम है तथा  
अम्बर मे विश्वकाया नाम है ॥२७॥ गोमन्त मे गोमती नाम है और  
मन्दर मे मेरा कामधारिणी यह धुम नाम स्मरण के योग्य है । चैत्ररथ मे  
महोत्पटा तथा हस्तिनापुर मे मेरा जयन्ती नाम लेकर ही स्तवन  
करे ॥२८॥

कान्यकृब्जे तथा गौरी रम्भा मलयपर्वते ।

एकाम्भकेभीतिमतीविश्वाश्वेश्वरेविदु ॥२९॥

पुष्करे पुरुहूतेति केदारो मार्गदायिनी ।

नन्दा हिमवत पृष्ठे गोकर्णे भद्रकर्णिका ॥३०॥

स्थानेश्वरे भवानी तु विल्वके विल्वपत्रिका ।

श्रीशैले माधवी नाम भद्राभद्रेश्वरेतथा ॥३१॥

जया वराहशैले तु कामला कमलालये ।

रुद्रकोट्याञ्च रुद्राणी काली बालकृजरेगिरी ॥३२॥

महालिगे तु वपिला मूर्ध्नि मृकुटेश्वरो ।

शालिग्रामे महादेवी शिवालये जलप्रिया ॥३३॥

मायापुर्याकुमारो तु सन्ताने ललिता तथा ।

उत्पलाक्षी सहस्राक्षकमलाक्षेमहोत्पला ॥३४॥

मगाया मगला नाम विमला पुर्योत्तमे ।

विषादायाममोधाक्षी पाटला पुण्ड्रवर्द्धने ॥३५॥

काश्य कृत्त देश मे गौरी-मलय पर्वत मे रम्भा—एकाम्भ मे  
भीतिमती तथा विश्वेश्वर क्षेत्र मे मेरा विश्वा नाम ही लिया जाता है  
॥२९॥ पुष्कर मे पुरुहूता—केदार क्षेत्र में मार्गदायिनी—हिमाचल पर्वत के  
पृष्ठ पर मे नाम नन्दा तथा गोकर्ण मे भद्र कर्णिकर कर्णिकर मुझे याद  
दिया जाता है ॥३०॥ स्थानेश्वर मे मेरा भवानी नाम है तथा विल्व  
मे मेरा विल्व पत्रिका नाम लेकर स्मरण या स्तवन किया जाता है ।  
श्री शैल मे मेरा माधवी नाम है तथा भद्राभद्र मे भद्रा नाम से मेरा

स्मरण किया जाता है ॥३१॥ बराह शैल में जया नाम लेकर मेरा स्मरण किया जाता है और कमलानयन में मेरा ही नाम कामला है । रुद्रकोटि में रुद्राणी कहकर मुझे पूजते हैं तथा बालनगर गिरि में मेरा ही नाम वाली कहलाता है ॥३२॥ महालिङ्ग में मेरा कपिला नाम कहा जाता है और मर्कट में मुकुटेश्वरी मेरा पुष्प नाम है । शालिग्राम में महादेवी तथा शिवलिङ्ग में मेरा ही नाम जल प्रिया है ॥३३॥ मायापुरी में वृषारी मेरा नाम है तथा सन्धान प सतिता कही जाती है । सहस्त्राक्ष में उत्पलानी तथा ममनाल में मुझे ही महोत्पला कहा जाता है ॥३४॥ गंगा में गङ्गला नाम प्रविष्ट है तथा पुरुषोत्तम में मेरा ही नाम बिभला देवी है । विषाखा में मुझे जमोधाणी कहा जाता है और पुण्ड्र वर्धन में मुझे पाटला कह कर पुकारते हैं ॥३५॥

नारायणी सुपावर्णे तु विवृटे भद्रमुन्दरी ।  
विपुने विपुला नाम रूपाणी मलयोचले ॥३६॥  
कीटधीकोटितोर्ये तु मृगन्धा माघवे वने ।  
पुष्पाग्रके त्रिसन्ध्यातुगवाटारेरतिप्रिया ॥३७॥  
शिवकुण्डे सुनन्दा तु नन्दिनी देविकानटे ।  
रश्मिणी द्वारवत्यान्तु राधा वृन्दावने वने ॥३८॥  
शङ्खो मयुरामान्तु पातालं परमेश्वरी ।  
चित्रकूटे तथा सीताग्निधोक्विन्त्यनिशसिनी ॥३९॥  
सह्याद्रावेकवीरा नृ हर्षेनन्द्रेति चन्द्रिका ।  
रमणा गमतीर्थे तु यमुनाया मृगावतो ॥४०॥  
कम्बोरे महालक्ष्मीरमादेवी त्रिनायके ।  
अगगा वीर्यनाथे तु महामालि महेश्वरी ॥४१॥  
अनघेत्युज्जतायेषु चामृता विन्ध्यकन्दरे ।  
माण्डव । माण्डरी नाम स्नाहामाहेश्वरेपुरे ॥४२॥

मुपावर्णे में मेरा नाम नारायणी देवी है और विवृट में भद्र मुन्दरी



मुझे ही कहते हैं । विपुल मे मेरा विपुलेश्वरी नाम है तथा मलयाचल मे  
 कल्याणी नाम लेकर मेरा स्मरण किया जाता है ॥३६॥ कोटि तीर्थ मे  
 कोटवी मेरा शुभ नाम है एव माधव वन मे सुगन्धा मुझे ही कहा जाता  
 है । कुञ्जाप्रक स्थल मे त्रिलोक्या मुझे कहते हैं और गङ्गा द्वार मे रति  
 प्रिया कहकर मेरा ही स्मरण किया जाता है ॥३७॥ शिव कुण्ड मे  
 सुनन्दा—देविका तट मे नन्दिनी—द्वारावतीपुरी मे रुक्मिणी और बृन्दावन  
 मे मेरा ही नाम राधा है ॥ ३८ ॥ मथुरा पुरी मे देवकी—पाताल मे  
 परमेश्वरी—चित्रकूट मे सीता देवी तथा विन्ध्याचल मे विन्ध्यवसिनी  
 देवी मुझे कहा करते हैं . ३९ ॥ सह्याद्रि मे एकवीर-रमं चन्द्र-  
 चन्द्रिका मेरा ही शुभ नाम है । राम तीर्थ मे रमण और यमुना मे मृगा-  
 वती मुझे कहा करते हैं ॥४०॥ करवीर मे मुझे ही मन्त्रालक्ष्मी पुकारा  
 जाता है तथा विनायक मे उमा देवी मेरा नाम विरूपाक्ष है । वैद्यनाथ मे  
 मुझे भरीगा कहा जाता है और महाकाल स्थान मे महेश्वरी मेरा ही  
 नाम है ॥ ४१ ॥ उज्जैन तीर्थ मे मुझे अभया और विन्ध्य के बन्दरा मे  
 अमृता मुझे ही कहा करते हैं । माण्डव्य मे मेरा माण्डवी नाम लेकर  
 स्मरण किया जाता है तथा महेश्वर पुर मे मुझे स्वाहा कहा करते  
 हैं ॥४२॥

छागलण्डे प्रचण्डातु ज्जण्डिका मकरन्दके ।  
 सोमेश्वरे वरारोहा प्रभागे पुटकरावती ॥४३॥  
 देवमाता सरस्वत्या पारा पारातटे मता ।  
 महाभये महाभागा पयोध्या पिङ्गलेश्वरी ॥४४॥  
 मिहिका वृणोचेतु कात्तिकेये यशस्वरी ।  
 उत्पलावर्तके सोमा मुमद्रा दोणसङ्गमे ॥४५॥  
 माता मिहपुरे सप्तमी-ङ्गना भरनाथमे ।  
 जानघरे विन्ध्यमुखी ताग निष्पि-धपवते ॥४६॥  
 देवदारवने पृष्टिर्मघा बाभ्रमोरमण्डले ।

भीमा देवी हिमाद्रौतु पुष्टिविश्वेश्वरे तथा ॥४७॥

कपालमोचने शुद्धिर्माता कायावरोहणे ।

शङ्खोद्वारे घरा नाम धृतिः पिण्डारके तथा ॥४८॥

पालातु चन्द्रभागाया मन्त्रोदे शिवकारिणी ।

वेणायाममृता नाम बदर्यामुवशी तथा ॥४९॥

विभिन्न स्थलों में विभिन्न नामों का स्मरण कर मेरी ही साराधना की जाया करती है—ठागलण्ड में प्रचण्डा—मकरन्दक में चण्डिका, सोमेश्वर में वरारोहा और प्रभास में पुष्करावती मेरा नाम लिया जाता है ॥ ४३ ॥ सरस्वती के क्षेत्र में मुझे दश माता कहा जाता है और शारदा में मेरा ही नाम पारा है । महालय में मुझे महामाया कहते हैं तथा पयोष्णी में मुझे पिङ्गलेश्वरी देवी कहकर मेरा स्तवन—स्मरण किया जाता है ॥ ४४ ॥ कृतबीच में सिंहिका मेरा शुभ नाम है और वार्तिसेय में मुझे ही यशस्करी कहा जाता है । उत्पलक वरक स्थान में मेरा ही सोला नाम लिया जाता है । शोण के सङ्गम क्षेत्र में सुमद्रा नाम का स्मरण किया जाता है ॥ ४५ ॥ सिद्धपुर में मेरा माता नाम लिया जाता है तथा भरताश्रम में सस्त्रीजङ्गना कहते हैं । जालन्धर में मुझे ही विश्व-मुखी इस पवित्र नाम से याद किया करते हैं तथा किष्किन्धा पर्वत में तारा देवी कहकर मेरी उपासना करते हैं ॥ ४६ ॥ देवदारु पन में पुष्टि-मेरा नाम लिया जाता है और काश्मीर मण्डप में मेघा के नाम से मैं ही पुकारी जाया करती हूँ । हिमाद्रि में मेरा ही नाम भीमा कहा जाया करता है तथा विरवेश्वर क्षेत्र में पुष्टि नाम है ॥ ४७ ॥ वरास मोचन में शुद्धि और कायावरोहण में माता कही जाती है । शङ्खोद्वार में घरा नाम स्मरण किया जाता है और पिण्डारक में धृति मेरा नाम याद करने हैं ॥ ४८ ॥ चन्द्रभागा के उद में काला तथा मन्त्रोद में शिवकारिणी मेरा नाम है । वेणा में अमृता कही जाती है तथा बदरी में उर्वशी कहते हैं ॥ ४९ ॥

ओषधा चोत्तरकुरौ कुशद्वीपे कुशोदका ।  
 मन्मथा हेमकूटे तु मुकुटे सत्यवादिनी ॥५०॥  
 अश्वत्ये वन्दनीया तु निधिर्विश्रवणालये ।  
 गायत्री वेदवदने पावती शिवसन्निधौ ॥५१॥  
 देवलोके तथेन्द्राणी ब्रह्मस्येषु सरस्वती ।  
 सूर्य्यविम्बे प्रभा नाम मातृणा वंष्णवीमता ॥५२॥  
 अरुन्धती सतीनान्तु रामासु च तिलोत्तमा ।  
 चित्ते ब्रह्मकला नाम शक्तिःसर्वशरीरिणाम् ॥५३॥  
 एतदुद्देशतः प्राक्तं नामाष्टशतमुत्तमम् ।  
 अष्टोत्तमश्च तोर्यानां शतमेतदुदाहृतम् ॥५४॥  
 यः स्मरेच्छृणुयाद्वापि सर्वपापं प्रमुच्यते ।  
 एषु तोर्येषु कृत्वा स्नानं पश्यति मा नरः ॥५५॥  
 सर्वपापविनिर्मुक्त कल्प शिवपुरे वसेत् ।  
 यस्तु मत्परम काल करोत्येतेषु मानव ॥५६॥  
 म भित्वा ब्रह्मसदन पदमध्येति साङ्करम् ।  
 नाम्नामष्टशतं यस्तु भावयेच्छिवसन्निधौ ॥५७॥  
 तृतीयायामथाष्टम्या बहुपुत्रो भवेन्नरः ।  
 आदाने श्राद्धदाने वा अहम्यहनि वा बुधः ॥५८॥  
 देवाचनविधौ विद्वान् पठन् ब्रह्माधिगच्छति ।  
 एष वदन्ती सा तत्र ददाहात्मानमात्मना ॥५९॥

उत्तर कुरु प्रान्त में ओषधी-कुशद्वीप में कुशोदका—हेमकूट में  
 मन्मथा और मुकुट में सत्यवादिनी मेरा नाम लिया जाता है ॥ ५० ॥  
 अश्वत्य में वन्दनीय—वंशवण के आलय में निधि—वेद वदन में गायत्री  
 तथा भगवान् शिव की सन्निधि में मुझे पावती कहते हैं ॥ ५१ ॥ देवलो-  
 क में जो इन्द्राणी कही जाती हैं वह भी मैं ही हूँ और वितामह ब्रह्माजी के  
 मुख में सत्यवादी भी मैं हूँ । सूर्य के विम्ब में प्रभा मेरा ही नाम एष

रूप है तथा मातृगण में धौलवी में ही कही जाती है ॥ ५२ ॥ समस्त  
 ॥ नारियों में अरुन्धती मेरा ही स्वरूप है । सम्पूर्ण रामाश्री में  
 मोक्षमा में ही ॥ । चित्त में ब्रह्मज्ज्ञा मेरा नाम है तथा समस्त शरीर-  
 रियों में लक्ष्मि मुझे ही समझना चाहिये ॥ ५३ ॥ यह अष्टोत्तर शत  
 ॥ नामावली इसी उद्देश्य से बही गयी है कि यह इसी बहाने से  
 अष्टोत्तर शत तीर्थों के शुभ नाम भी बता दिये गये हैं ॥ ५४ ॥ जो इस  
 ॥ शिव का स्मरण करे या श्रवण करे वह सभी पापों से प्रमुक्त हो जाया  
 जाता है । ये जो उक्त तीर्थ बताये गये हैं उनमें जो भी कोई स्नान करके  
 ॥ दर्शन किया करता है वह सभी प्रकार के पापों से विमुक्त होकर एक  
 ॥ स्वर्ग्यन्त निबपुर में निवास किया करता है और जो मनुष्य उनमें पूरे  
 ॥ वर्ष को मेरे ही रामाराधन में लगा दिया करता है वह तो फिर ब्रह्मगण  
 ॥ भी भेदन करने शक्कर वह जो प्राप्त किया करता है जो इन अष्टोत्तर  
 ॥ ५ नामों की भक्तानु निव की सन्निध में स्थित होकर भगवान् की  
 ॥ सेवा कराया करता है और यह भी तृतीया में या अष्टमी तिथि में श्रवण  
 ॥ करता है तो वह मनुष्य ब्रह्मपुत्र ही हो जाता है । मोक्ष में अवस्था प्राप्ति  
 ॥ में जो कुछ दिन प्रतिदिन देवाचन बिबि में विद्वान् इसका पाठ करता  
 ॥ वह ब्रह्म की अधिपति हो जाता है । इस प्रकार यह जगदम्बा शत क  
 ॥ ॥ मण्डप में बहती हुई ही अपने ही आप अपने स्वयं से उक्त देवी ने अपने  
 ॥ शरीर का दाह कर लिया था ॥ ५५, ५६, ५७, ५८, ५९ ॥

श्यामभुजोऽपिकानेनदक्षः प्रानेनसोऽभवत् ।  
 पावनोसामवददेवी निवदेहादं पारिणी ॥६०  
 मेनागभंसमुह्यन्ता मन्त्रितमुक्तिमत्प्रदा ।  
 अरुन्धती जयन्तेतत् प्र प योगमनुत्तमम् ॥६१  
 पुनरवाञ्च राजपिसौरे ध्वजयनामगात् ।  
 यमानि. पुनसाभञ्च घनसाभञ्च भार्गव ॥६२  
 सप्तान्येदेवदेव्याश्च ब्राह्मणा धनिपारतया ।

वश्या शूद्राश्चबहवः सिद्धिमीयुयथेप्सिताम् ॥६३॥  
 यत्र तल्लिखितं तिष्ठेत् पूज्यते देवसन्निधौ ।  
 न तत्र शोको दौर्गत्य कदाचिदपि जायते ॥६४॥

समय आने पर स्वामम्भुव भी प्राचेतस दक्ष होगया था । वह पार्वती हुई थी जो भगवान् शिव के अर्घ्य शरीर के धारण करने वाली ॥६०॥ वह फिर मेना के गर्भ से समुत्पन्न हुई थी और भक्ति तथा दोनों ही के प्रदान करने वाली थी । इसका जप करती हुई अष्टादश अत्युत्तम योग को प्राप्त कर लिया था ॥६१॥ पुष्करवा नाम वाले राजा ने लोकमें विजय की प्राप्ति की थी । राजा ययाति ने पुत्र का लाभ लिया और भार्गव ने धन का लाभ प्राप्त किया था ॥ ६२ ॥ इसी काल अग्न भी बहुत से देवगण, दैत्य वंश, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ने भी इसी के समाराधन से यथेष्ट सिद्धि की प्राप्त किया था ॥ ६३ ॥ यह देवी का अष्टोत्तर शत नामक स्तोत्र जहां पर लिखित रूप में स्थित रहता है और देव की सन्निधि में इसकी अर्चा की जाया करती है और पर कभी भी किसी भी प्रकार का शोक एवं बंसी भी दुर्गति कभी नहीं हुआ करती है ॥६४॥

### १३—पितृ वंश कीर्तन

विभ्राजानाम चान्येतु दिविसन्ति सुवर्चसः ।  
 सोवावर्हिषदोयत्र पितरः सन्तिभुवता ॥१॥  
 यत्र वर्हिण्युक्तानि विमानानि सहस्रशः ।  
 सङ्कल्प्य वर्हिषो यत्र तिष्ठन्ति फलदायिनः ॥२॥  
 यत्राभ्युदयशालागु मोदन्ते श्राद्धदायिनः ।  
 याञ्च देवासुगणा गन्धर्वाप्सरसागणा ॥३॥

यक्षरक्षोगणाश्चैव यजन्ति दिवि देवताः ।

• पुनस्त्यपुत्राः शनशस्तपोयोगममन्विताः ॥४॥

महात्मानो महाभागा भक्तानामभयप्रदाः ।

एतेषा पीवरी कन्या मानसां दिविविश्रुता ॥५॥

• योगिनी योगमाता च तपस्वक्रे सुदारुणम् ।

प्रसन्नो भगवांस्तस्यावरं व्रजेतु सा हरेः ॥६॥

योगवन्त सुरुपं च भर्तार विजितेन्द्रियम् ।

देहि देव ! प्रसन्नस्त्वं पतिं मे वदताम्बरम् ॥७॥

मूतजी ने कहा—दिव्य लोक में विघ्नज नाम वाले भग्न भी हैं जहां पर सुवन बहियह पितर लोक हैं ॥१॥ जहां पर बहियह सहस्रो विमान हैं और जहां सत्त्व करके बहियह पत्नी के प्रदान ले वाले समन्वित रहा करते हैं ॥२॥ जहां पर अम्बुद्वय शालाओं में दू देने वाले परम मोह से समन्वित होकर रहा करते हैं और जिनका इन देशमुरगज तथा गन्धर्वों एवं अप्सराओं का समूह भी किया करता ॥३॥ यक्ष और राजसों के गण भी तथा दिवलोक में देवता भी जिन भजनार्चन किया करते हैं । संबन्ध ही पुनस्त्य मुनि के पुत्र जो तपस्व योगों से भी समन्वित हैं महान् आत्मा वाले—महान् भाग वाले भक्तों को अभय का दान देने वाले हैं । इनकी पीवरी मानसी कन्या इन्द्रोक्त में विद्युत है ॥४॥ बह योगिनी और योगमाता थी जिसने तपस्व तपस्व का भी । उसपर जब भगवान् प्रसन्न हुए और उसने दान की याचना करने की कहा यथा तो उसने हरि से यही वरदान पाया ॥५॥ उसने कहा—हे देव ! आप कृपा कर योग माता—रूप विषय से समन्वित—इन्द्रियों को जीतने वाला, जीतने वालों में परम श्रेष्ठ के भरण करने वाला प्रधान कीजिए यदि आप मेरी तपश्चर्या से परम मनन हो गये हैं ॥६॥

उपाय देवो भविता व्यामपुत्रोयदा नृत्र ।

भविता तस्य भार्यात्वं योग,चार्य्यस्य सुव्रते ॥८॥  
 भविष्यन्ति च ते कन्या कृत्वी नाम च योगिनी ।  
 पाञ्चालाधिपतेर्देया मानुष्यस्य स्वया तदा ॥९॥  
 जननीब्रह्मदत्तस्ययोग सिद्धा च गौःस्मृता ।  
 वृष्णागौर प्रभुशम्भुभविष्यन्तिचतेसुताः ॥१०॥  
 महात्मानोमहाभागमप्यग्नि परम्पदम् ।  
 तानुत्पाद्य पुनर्योगात्सवरा मोक्षमेव्यसि ॥११॥  
 सुभूर्तिमन्तः पितरो वंशिष्ठस्य सुता स्मृताः ।  
 नाम्ना तु मानसा सब सर्वेते धम्ममूर्त्तयः ॥१२॥  
 ज्योतिर्भासिपुलोकेपुये वसन्ति दिवः परम् ।  
 विराजमाना क्रीडन्ति यत्ततेश्चाददायिनः ॥१३॥  
 सर्वकामसमृद्धे पुत्रिमानेष्वपिपादभाः ।

[ कि पुनः आददा विप्राभक्तिमन्तक्रियान्विता ॥१४॥

मगवान् ने कहा— जिस समय मे कृष्ण द्विपादन व्यास जी व  
 गुरुदेव नामक पुत्र प्रसूत होगा तब उसकी तुम भार्या होगी । हे सुव्रत  
 वह योग के परम प्रमुख आचार्य ही होंगे ॥८॥ उप समय मे कृत्वी नाम  
 धारिणी योगिनी कन्या तारी उत्पन्न होगी । उस कन्या को तुम्हें पाञ्चाल  
 देश के अधिपति मानुष्य को ही प्रदान करनी होगी ॥९॥ ब्रह्मदत्त के  
 जन्म देने वाली और योगसिद्धा भी कहो गयी है । उस समय मे कृष्ण-  
 गौर-प्रभु और शम्भु तेरे पुत्र समुत्पन्न होंगे ॥१०॥ महान् आत्मा व स  
 महाभाग परम पद को गमन करेंगे । उनका समुत्पादन करके पुनः यो  
 से वर सहित मोक्ष को प्राप्त करोगी ॥११॥ महापुनीन्द्र वसिष्ठ के पुत्र  
 सुभूर्तिमान् पितर वहे गये हैं । नाम से तो ये सभी मानस पुत्र थे किन्तु  
 वे सभी धम्ममूर्ति थे ॥ १२ ॥ दिवलोक से भी रर ज्योतिर्भासी लोको  
 म जो निवास किया करते हैं जहां पर वे आद देने वाले विरामान होते  
 हुए आनन्द की गीटा किया करते हैं, सर्व कामो से समृद्ध विमानो मे भी

काम और भोग के फल देने वाले थे ॥१६॥ सुन्दर व्रत वाले सुत्वचा नाम वाले पितृगण जहाँ पर अवस्थित रहा करते हैं वे प्रजापति कदम के लोको म आज्यया नाम वाले हैं ॥२०॥ वे प्रसहाङ्गज के दायाद हैं और उन में वैश्य गण हो भक्ति की भावना रखा करते हैं । जहाँ पर सब थ डो के करने वाल एक साथ गये हुए देखा करते हैं ॥२१॥

मातृभ्रातृपितृष्वसृ सखिसम्बन्धिवान्धवान् ।

अपिजन्मायुतं दृष्टाननुभूतान्सहस्रशः ॥२२॥

एतेषा मानसी कन्या विरजानाम विश्रुता ।

या परनीनहुपस्यासीद्ययातेजननी तथा ॥२३॥

एकाष्टकाऽभवत् पदचाद् ब्रह्मलोके गता सती ।

त्रय एतेगणाः प्रोक्ताश्चतुर्थं नुवदाम्यतः ॥२४॥

लोकास्तु मानसा नाम ब्रह्माण्डोपरि सस्थिता ।

येषाम्तु मानसी कन्या नर्मदा नाम विश्रुता ॥२५॥

सोमपानाश्रितरोयत्र तिष्ठन्ति शाश्वताः ।

दृष्ट्वा सृष्ट्यादिक सर्वं मानसे साम्प्रतस्थिताः ॥२६॥

नर्मदानाम तेषां तु कन्यातोयबहासरित् ।

भूतानि या पावयति दक्षिणापथगामिनी ॥२७॥

तेभ्य सर्वे तु मनव प्रजा सर्गेषु निर्मिताः ।

ज्ञात्वा श्राद्धानि कुर्वान्त धर्माभावेऽपि सर्वदा ॥२८॥

तेभ्य एव पुनः प्राप्तु प्रसादाद्योगसन्ततिम् ।

पितृणां मादिसर्गो तु श्राद्धमेव विनिमित्तम् ॥२९॥

वही पर वे उन सबका दर्शन प्राप्त किया करते हैं त्रिनदी दर्शो महान् ज.मों में भी ब.मों देया था और सहस्रो की सख्या में उनका वृष्ट भी अनुभव नहीं है । उनमें माता-पिता-भ्राता-भगिनी-तथा-महामात्री और बाधव ये सभी होते हैं ॥२२॥ इनकी मानसी कन्या विरजा नाम में विद्यमान है जो राजा नट्य की पत्नी हुई थी तथा राजा ययाति



जननी थी ॥२१॥ पीछे ब्रह्म लोक में गयी हुई यह सती एकाष्टका गई थी । ये तीन गण तो हमने पित्रो के आप लोगों को वनला दिये । अब आगे चतुर्गण वतलात है ॥२४॥ जो भानस लोक है वे सब ह्याण्ड के ऊपर सस्थित हैं । जिनकी मानसी बन्धा नर्मदा-रस नाम से वधुन है ॥२५॥ जहां पर सोमप नाम वाले शारवन पितृगण स्थित रहा करते हैं मृष्टि आदि सब कुछ कन्व इग समय में भानस में ही सस्थित है ॥२६॥ उनकी नर्मदा नाम धारिणी बन्धा तोप बहा सरित् है जो दक्षिण पथ का गमन करने वाली भूतों को पावन किया करती है ॥ ७॥ उनसे सब मनुगण और सभी म निर्मित प्रजा आदों का ज्ञान प्राप्त करके उनकी सर्वदा धर्म के अभाव में भी क्रिया करते हैं ॥२८॥ उनमें ही पुनः प्रमाद से पाप सन्तति को प्राप्त करने के लिये पितृगणों के आदि सग म यह आठ ही विशेष रूप में निर्मित किया गया है ॥२९॥

### १४—श्राद्ध प्रकरण

श्रुत्वैतत्सवमखिल मनुः पप्रच्छ केशवम् ।  
 श्राद्धकालञ्च विविध श्राद्धभेद तथैव च ॥१॥  
 श्राद्धे पुभोजनीयायेये च वर्ज्याद्विजातय ।  
 इस्मिन्वामरभागेवापितृभ्य श्राद्धमाचरेत् ॥२॥  
 यस्मिन्दत्त कथयाति श्राद्धन्तु मधुसूदन ।  
 विघ्नावेनकत्तव्यं कथं प्राणात्तितत्पितृ नृ ॥३॥  
 दुर्यादहरह श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा ।  
 पयामूलफलवापि पितृभ्य प्रातिमावहन् ॥४॥  
 नित्यन्नेमित्तिकाम्यत्रिविधश्राद्धमुच्यते ।  
 नित्यनावत्प्रवदयामिअर्घावाहनवर्जितम् ॥५॥

अर्धव तद्विजानीयात् पार्वणं पर्वसु स्मृतम्  
 पार्वणं त्रिविधं प्रोक्तं शृणुतावन्महीपते !  
 पावणे ये नियोज्यास्तु ताञ्छृणुष्व नराधिप ॥६॥  
 पञ्चाग्निः स्नातकश्च वत्रिसुपर्णः पटङ्गवित् ।  
 श्रोत्रियः श्रोत्रयसुः विधिवाचय विशारदः ॥७॥

महर्षि सूनजी ने कहा—यह सब कुछ श्रवण कर के मनु ने फिर भगवान् कशव से पूछा था कि आठ क जो अनेक काल होने हैं वे क्या हैं और आठो क जो बहुत से भेद हुआ करते हैं वे कौन से हैं ? ॥१॥ आठो मे जिन विप्रो को भोजन कराना चाहिए उन के समुचित स्वरूप क्या होने चाहिए और जो द्विजातिभण आठ में वर्जनीय है उनके क्या लक्षण होते हैं ? आठ दिन के किस भाग मे करना चाहिए जो कि पितृ-गण के लिये समाचरित किया जाता है ? ॥२॥ हे मधु सूदन ! किस में दिया हुआ आठ दिन प्रकार से जाकर बड़ा पहुँचता है ? यह भी कृपा बननाइये कि यह आठ किस विधि-विधान से करना चाहिए और यह किस प्रकार से पितृगणो को प्रसन्नता दिया करता है ? ॥३॥ मत्स्य भगवान् ने कहा—आठ प्रतिदिन ही करना चाहिए । इसे चाहे तो घग्नादि के द्वारा सम्पन्न करे अथवा उदक के द्वारा ही पूर्ण करे या पय-मूत्र और फलो के द्वारा भी आठ करे जो कि पितृगण की प्रीति का समावहन करने वाला है । आठ देने वाले का कर्तव्य है कि उसकी भावना सदा पितृगण की प्रीति को प्राप्त करने की अवश्य होनी चाहिए ॥४॥ नित्य-नैमित्तिक और काम्य-इस प्रकार से तीन तरह के आठ हुआ करते हैं । अब मैं नित्य जो आठ होता है जो अर्घ्य और आवाहन स यजित है उसे बतलाता ॥ ॥५॥ उसे अर्ध ही जानना चाहिए । पर्व मे होने वाला पार्वण आठ कहा गया है । हे महीपते ! यह पार्वण नामक आठ भी तीन तरह का कहा गया है—इसका भी श्रवण करिये ॥६॥ हे नराधिप ! पार्वण आठ मे जो नियोजन करने के योग्य होते हैं उनके

विषय में भी सुन लीजिए । इसमें नियोजन करने के योग्य ब्राह्मण पंचाग्नि तपने वाला—स्नातक—त्रिसुपर्ण—छहअङ्गनाथों का ज्ञाता—श्रोत्रिय—श्रोत्रिय पण्डित का पुत्र और विधि वाक्य का विशेष विद्वान् ही होना चाहिए । तात्पर्य यह है कि ऋग्यजुः गुणों में से उक्त विप्र में कोई भी एक गुण अवश्य ही होना चाहिए ॥७॥

सर्वशेवेदविभन्त्री ज्ञातवशः कुलान्वितः ।  
पुराणवेत्ता धर्मज्ञः स्वाध्यायजपतपः ॥८॥  
शिवभक्तः पितृपरः सूर्य्यमवतोऽप्य वैष्णवः ॥९॥  
ब्रह्मण्यो योगविच्छान्तो विजितात्मा च शीलवान् ।  
भोजयेच्चापि दोहित्रं यत्नतः स्वसृहदुहम् ॥१०॥  
विद्यति मातुल बन्धुमृत्विगाचायसामयान् ।  
यश्च व्याकुलते वाक्ययश्च भीमासतेऽश्वरम् ॥११॥  
सामवरावदिज्ञश्च पक्तिपावनपावनः ।  
सामो ब्रह्मचारी च वेदयुक्तोऽप्यब्रह्मवित् ॥ २॥  
यक्षये भुञ्जते श्राद्धे तदेव परमार्थवित् ।  
एते भोज्या प्रमत्तेन व्रजनीयान्निबोध मे ॥१३॥

पार्षण आद्य में वही नियोज्य होता है जो या तो सर्वज्ञ हो या वेदों का वेत्ता, मन्त्र शास्त्री—ऐसा जिसके धर्म का पूर्ण ज्ञान हो—सुन्दर कुल में समुत्पन्न—पुराणों का ज्ञाता—धर्म का ज्ञान रखने वाला—वेदों के स्वाध्याय करने में तथा मन्त्र आप में तत्पर हो ॥८॥ जो विप्र भगवान् शङ्कर का परम भक्त हो वह—पितृगण में भक्ति रखकर पराधन रहने वाला—भगवान् भुवन भास्कर का भक्त—विष्णु का भक्त—ब्राह्मण्य अर्थात् ब्राह्मणों पर दया तथा भक्ति रखने वाला—योग ज्ञात्र ॥ ज्ञाता—परम सान्त स्वभाव से सम्पन्न विजितात्मा और शील वाला ब्राह्मण को ही पार्षण आद्य में भोजन कराना चाहिए । यदि दोहित्र प्राप्त हो तो यत्न पूर्वक उसे ही भोजन करावे अथवा अपने मित्र के

गुरु वर्ग को भोजन कराना चाहिए ॥ ६ ॥ १० ॥ विद्यति-मातुल-  
वन्धु-श्वरिष्वक—आचार्या—सोमय—वह जो वाक्य का व्याकरण करता  
हो—वह जो आधार के विषय में भीर्भासा कर सकता हो—सामवेद  
के स्वरों की विधि का ज्ञाता—पाण्डित्यावन—सामय—ग्रन्थकारी—  
वेद से युक्त अथवा ग्रन्थ का वेत्ता इनमें से कोई भी जिस श्राद्ध में भोजन  
किया करता है वह ही उत्तम प्रकार का श्राद्ध है और वही परमार्थ का  
वेत्ता श्राद्धदाता होता है । इतने प्रकार के जो ब्राह्मण बतलाये हैं उन्हीं  
में से किन्हीं को प्रयत्नपूर्वक भोजन श्राद्ध में कराना चाहिए । अब वे भी  
बतलाये जाते हैं जो श्राद्ध में वर्जित विप्र होते हैं उनको भी मुझसे ही  
जानलो ॥ ११, १२, १३ ॥

पतितोऽभिषस्त बलावश्च पिशुनव्यङ्ग्यरोगिणः ।  
कुनलीश्यावदन्तश्चकुण्डगोलाश्वपालकाः ॥ १४  
परिवित्तिनियुक्तात्मा प्रमत्तोन्मदाहणाः ।  
वैडाली वकृत्तिश्च दम्भोदेवलकादयः ॥ १५  
कृतधनान्नास्तिकास्तद्वन्म्लेच्छदेशनिवासिनः ।  
त्रिशङ्खर्वरद्राववीतद्रविडकोकणान् ॥ १६  
वजयेल्लिङ्गिनः सर्वान् श्राद्धकाले विशेषतः ।  
पूर्वेद्युरपरेद्युर्वा विनीतात्मा निमन्त्रयेत् ॥ १७  
निमन्त्रितान् हि पितर उपतिष्ठन्ति तान् द्विजान् ।  
वायुभूतानुगच्छन्ति तथासीनानुपासते ॥ १८  
दक्षिण जानुमालभ्यत्वमयातुनिमन्त्रितः ।  
एव निमन्त्रयन्मथावयेत्पितृवान्धवान् ॥ १९  
अत्राघन शौचपरं सततं ग्रहाचारिमि ।  
भविष्य-यं भवद्भिश्च मया च श्राद्धकारिणा ॥  
पितृयज्ञं विनिवर्त्य तपणाह्यन्तु योऽग्निमान् ।  
पिष्टान्वाहायकं कुर्यान्छिदमिन्दुक्षये मुदा ॥ २०

जो ब्राह्मण तो है किन्तु किसी कर्म वश पतित हो गया हो उसे—  
 वह जो ममिषास्त हो—बलीब—निघुन—विगत या विशेष अङ्ग बासा—  
 रोगी—कुन्धो—कृष्ण वर्ण वाले जिसके दाँत हो वह—कुण्ड—गोलक  
 और अश्वपालक ये ब्राह्मण आद्य में वर्जित हैं । ( पति के रहते हुए पर  
 पुरुष से समुत्पन्न और पति के मृत होने पर पर पुरुष से उत्पन्न कुण्ड  
 और गोलक सजा वाले होते हैं ) ॥ १४ ॥ परिवर्ति—नियुक्तारना—  
 प्रमत्त—उन्मत्त—आरुण—धैर्यालो—बह के समान वृत्ति वाला—दन्धी—देवलन  
 आदि विप्र भी आद्य में वर्जनीय होते हैं ॥ १५ ॥ जो किये हुए उपकार को  
 नहीं मानने वाले हैं—ईश्वर की सत्ता के नहीं मानने वाले—श्लेष्मो के  
 देश में निवास करने वाले—पुण्ड्र—वर्बर—द्रावनीय—द्रविड—कोरण  
 में भी सब विप्र आद्य में नियोजन के योग्य नहीं हैं और वर्जित हैं ॥ १६ ॥  
 आद्य के समय में जितने भी लिङ्गधारी हैं उन सभी को विशेष रूप से  
 वर्जित कर देना चाहिए पहिले दिन में या उससे भी पूर्व दिन में ही आद्य  
 में ब्राह्मण को निमन्त्रित दे देना चाहिए और परम विनीत भाव से सम्पन्न  
 होते हुए निमन्त्रित करे ॥ १७ ॥ जो ब्राह्मण आद्य में निमन्त्रित होते हैं  
 पितृगण उन्हीं द्विजों पर उपस्थान किया करते हैं । वे वायु भूत होते हुए  
 उनका ही अनुगमन किया करते हैं अतएव जब वे समासीन हों तो  
 उनकी उपासना करे । दक्षिण जानु का आसथन करके मैंने आपको  
 निमन्त्रित किया है—इस रीति से निमन्त्रित करके पितृ गण्यों को  
 निमर्गों का श्रवण कराना चाहिए ॥ १८, १९ ॥ उन ब्राह्मणों से प्रार्थना  
 करते हुए आद्य कर्त्ता को कहना चाहिये कि आप सोचो को प्रोच से  
 रहित भोज में परायण और निरन्तर ब्रह्मचर्या व्रत का परिपालन पूर्ण  
 रूप से करने वाले होना ही चाहिए । मैं आद्य का करने वाला हूँ मुझे भी  
 पितृयज्ञ को पूर्णतया सम्पन्न करके जिसका नाम तर्पण है जो अग्निमान्  
 है उस इन्दुलय में परम प्रसन्नता से पिण्डान्तर दायक आद्य करना  
 चाहिए ॥ २० ॥ २१ ॥

गोमयेनोपलिप्ते तु दक्षिणप्रवणेस्थले ।  
 धाढ्यं समाचरेद्भक्त्या गोष्ठे वा जलसन्निधौ ॥२२॥  
 अग्निमान्निर्वपेत्पितृय चरुञ्छसाममुष्टिभिः ।  
 पितृभ्योनिर्वपामीतिसर्वदक्षिणतोऽन्यसेत् ॥२३॥  
 अभिघाय ततः कुर्यान्निर्वापत्रयमग्रतः ।  
 तेन तस्यायताः कार्य्यश्चतुरङ्ग लविस्तृता ॥२४॥  
 दर्श्यात्रयन्तु कुर्वीत स्वादिर रजनान्वितम् ।  
 रत्निमात्र परिश्लक्ष्णं हस्ताकाराग्रमुत्तमम् ॥२५॥  
 उदपात्रञ्च कास्यञ्च मेक्ष्णञ्चसमित्कुशान् ।  
 तिला पाप्मानिसद्वासोगन्धधूपानुलेपनम् ॥२६॥  
 आहरेदपसव्यन्तु सर्वं दक्षिणतः शनैः ।  
 एवमासाद्य तत्पर्वं भवनस्याग्रतो भुवि ॥२७॥  
 गोमयेनोपलिप्तायागोमूत्रेणतुमण्डलम् ।  
 अक्षताभि सपुष्पाभिस्तदभ्यर्च्यपसव्यवत् ॥२८॥

जो स्थल दक्षिण दिशा की ओर हो उसे ही गोमय से उपलिप्त  
 कर लेना चाहिए और वही पर परम भक्ति की भावना से पूरित होकर  
 धाढ्य का समाचरण करना चाहिए । अथवा गोष्ठ में धाढ्य करने का  
 उत्तम स्थल रखे या किसी भी जलाशय की सन्निधि में धाढ्य का  
 समाचरण करे ॥२२॥ जो अग्निमान् अर्थात् साग्निक हो उसे पितृय  
 चरुका साम मुष्टियो से निर्वपण करना चाहिए । 'मैं पितृगण के लिये  
 निवपन करता हूँ'—यह कहते हुए सभी को दक्षिण की ओर न्यस्त करना  
 चाहिये ॥२३॥ इसने उपरान्त आगे निवपित्रय अभिघार्य्य को करना  
 चाहिए । ये भी उसके चार अंगुल के विस्तृत आयत ही करने चाहिये  
 ॥२४॥ वही पर तीन दर्श करे । ये चाह खादिर निर्मित हों या रजत  
 में समन्वित हों । रत्निमात्र—परिश्लक्ष्ण घोर एक हाथ के आकार वाला  
 उत्तम जोना चाहिए ॥२५॥ जल का पात्र—कास्य-मेक्ष्ण-सामिधा-कुशा-

उत्त-पान-मुन्दर वस्त्र-गन्ध धूप और अनुनेपन इन समस्त पदार्थों का पत्र-र में धीरे से दक्षिण की ओर ही आहरण करना चाहिए । इस उक्ति से सबका समावाहन करके नवन के अगले भाग में भूमि में या कि मिमय से उत्तलिप्त की हुई है उसमें योमूत्र सम-डप करे और कि पत्र व्यवहृ पुत्रों के सहित वस्त्रों से उसका सम्पर्कन करना चाहिए । ही सब आष्ट करने के स्थल पर करके ही आष्ट का समाारम्भ करे ॥२६॥ २७॥ २८॥

विप्राणा क्षासयेत्पादावभिनन्द्य पुन. पुन ।  
 आसनेपूपनल्प्तेषु दभंवत्सु विधानवत् ॥२६॥  
 उपस्पृष्टोदकान्विप्रानुपवेशयानुमन्त्रयेत् ।  
 द्वौ दैव पितृकृत्ये श्रीनेकरुमुभयत्र च ॥३॥  
 भोजयेदोश्वरोऽनीह न कुर्याद्विस्तर बुध ।  
 दैवपूर्वं नियोज्यायविप्रानध्यादिनावुधः ॥३१॥  
 जनी कुर्यादनुजानो विप्रंविप्रो यथाविधि ।  
 स्वगृहोक्तविधानेन कास्येकृत्वाचरु तत ३२  
 अग्नीषोमयमाभ्यान्तु कुर्यादाप्यायन बुध ।  
 दक्षिणाग्नीरतातेवा य एकार्निद्विजोत्तर. ॥३३॥  
 यज्ञापवीतो निर्वर्त्य तत पयुंक्षणादिकम् ।  
 प्राचै.नावांतिना कायमत सर्वे विजानता ॥३४॥  
 पट्घतस्माद्धवि शेषात्पिण्डान्कृत्वाततोदकम् ।  
 दद्यादुदकपात्रंस्तु सतिल सब्यपाणिना ॥३५॥

अब विप्रगण जो कि आष्ट में निमन्त्रित किए गए हैं उस स्थल पर पशार्पण करें तो उनकी बारम्बार बन्दना करके सर्व प्रथम उनके चरणों का प्रणामन करना चाहिए । फिर विधान पूर्वक दधों से समन्वित उपवक्ष्य आसन हैं उन पर उन विप्रों को जिन्होंने अल से अपना उपस्य-गन कर लिया है उपवर्तिन करे और अनुमञ्चन करना चाहिए ।

कृत्य मे दो तथा पितृ कृत्य मे तीन अथवा इन दोनों मे ही एक-एक विप्र को निमन्त्रित करना चाहिए । इन्ही बाह्याणो को भोजन करावे चाहे कोई आर्थिक पूर्ण समर्थता भी क्यों न रखता हो श्राद्ध व्रम में पुत्रपुत्र को इससे अधिक विस्तार नहीं करना चाहिए । हेव पूर्व निषेध करके इसके अनन्तर ही बुध पुरुष को चाहिए कि निमन्त्रित विप्रों के अर्घ्य आदि उपचारो से उपसेवित करे ॥२६, ३०, ३१॥ विप्र को विप्र के ही अनुसार उन निमन्त्रित विप्रा से अनुज्ञा प्राप्त करके अग्नि में हुन का आरम्भ करना चाहिए । अपने गृह्य सूत्र के विधान के अनुसार फिर वांस्य पात्र मे चरु को कर लेवे । फिर “अग्नि त सोमयम्”—इस बुध पुरुष को आश्वयजन करना चाहिए । जो एवाग्नि द्विजोत्तम होवे दक्षिणाग्नि मे अथवा प्रतीत मे यज्ञोन्वीती होते हुए पशुधन आदि के निवर्तन करना चाहिए । इसलिय सबका ज्ञान रखने वाले पुरुष को प्राचीनाचीति होकर ही करना चाहिए । उस हवि दोष से छै पिण्डों को रचना करने फिर उदक देव और तिसो के सहित उदक को सव्य पार्श्व से ही उदक पात्रा व हाग देना चाहिए ॥३२, ३३, ३४, ३५॥

जान्यान्य सध्य यत्नेन दभ्युक्तो विमरसर ।

विधाय लेष्टा यत्नेन निर्वापेत्प्रवनेजमम् ॥३६॥

दक्षिणाभिमुख ब्रुव्यात् करे दर्वी निधाय वै ।

निधाय पिण्डमेव सव्येदभ्येद्व्यनुव्रमात् ॥३७॥

निनयेदथ दभ्ये नमगोत्रानुचीतनैः ।

संगु दभ्ये तु त हस्त निमृज्यास्तेभागिनाम् ॥३८॥

सपेव च ततः ब्रुव्यात् पुन प्रत्यवनेजमम् ।

पष्टप्येनाग्नमश्रुय मधधूपार्हणादिभिः ॥३९॥

एवमावाह्य सन्तव वेदमन्त्रं ययोः सं ।

एवागोत्रवैव रयाग्निर्वातादक्षिणा तथा ॥४०॥

तत शृवा तरेदद्यात्परीक्ष्योन्नतुः पुनः ।



तद्वत्पिण्डादिकेवूर्यादावह्नविसर्जनम् ॥४१॥

ततो गृहीत्वा पिण्डेभ्योमात्राः सर्वाः क्रमेणतु ।

तानेवविश्रानुप्रथमप्राशयेचलतोनर ॥४२॥

सम्यक् आन्वाध्य होकर यत्न पूर्वक भस्मरता से रहित और दर्म-  
कृत होकर लेखा करे तथा फिर यत्न से साथ दक्षिणाभिमुख हो बाँ  
ते हाथ से रखकर निर्वायो से अवनेशन करना चाहिये । एक-एक पिण्ड  
मे रखकर अनुक्रम से सम्पूर्ण दमों में विनीत करे और उन दमों में उक्त  
अमय नाम और गोत्र का भी कीर्तन करते हुए यह क्रिया सम्पन्न करनी  
चाहिए ॥ ३६, ३७, ३८ ॥ उसी भाँति मे इनके पश्चात् पुनः प्रत्यवनेशन  
करना चाहिए । इन छत्रों पिण्डों को मन्त्र छूट आदि की अह्ना व द्वारा  
भस्मकार करे ॥ ३६ ॥ यद्योदित जो वेद के मन्त्र हैं उनके द्वारा इसी  
प्रकार से उन सबका आवाहन करना चाहिए । जो एकामि हो उनका  
एक ही होना चाहिए तथा निर्वापोदक क्रिया भी बँता ही होवे ॥ ४० ॥  
इसके अनन्तर यह सब सम्पादित करके उसे अन्तर मे कुशो मे उतकी  
तन्निषो के लिये घन देना चाहिए । और इनके लिये भी उसी भाँति  
पिण्ड आदि मे आवाहन और विसर्जन करने चाहिए ॥ ४१ ॥ इसके  
पश्चात् उन्हें ग्रहण करके पिण्डो से सब मात्रा प्रयोग अर्थात् क्रमपूर्वक  
इस आद्यदाता पुरुष को यत्नपूर्वक उन्ही विशेषो को सर्व प्रथम खिला देनी  
चाहिये ॥ ४२ ॥

यस्मादभ्रातृ घृता मात्रामधयन्तिद्विजातयः ।

अन्वाहार्यकमित्युक्तं तस्मात्तच्चन्द्रसस्ये ॥४३॥

पूर्वं दत्त्वातु तद्वस्तेसपवित्रं तिलोदकम् ।

तत्पिण्डाग्रप्रयन्तेतस्वर्धेयामस्त्वितिब्रूवन् ॥४४॥

वर्णयन् भोजवेदघ्नं मिष्टं पूतञ्च सर्वदा ।

वजयेत् क्रोधपरता स्मरन्नाशयण हरिम् ॥४५॥

तृप्तान् आत्वा तत्तु कुर्याद्विकिरन् सावर्वाणकम् ।

सोदक चात्रमुद्धृत्य सलिल प्रक्षिपेद्भुवि ॥४६॥  
 आचान्तेषु पुनर्दद्याज्जलपुष्पाक्षतोदकम् ।  
 स्मस्तिवाचनकं सर्वं पिण्डोपरिसमाहरेत् ॥४७॥  
 देवायत्तं प्रकुर्वीतश्चाद्धनाशोऽन्यथाभवेत् ।  
 विसृज्य ब्राह्मणास्तद्वत्ते पाकृत्वा प्रदक्षिणम् ॥४८॥  
 दक्षिणा दिशमाकाङ्क्षन् पितॄन् याचेत मानव ।  
 दातारो नोऽभिवर्धन्ता वेदा सन्ततिरेव च ॥४९॥

जिस अन्न से जो मानव वहाँ पर धृत की गई है द्विजाति या  
 उसका भक्षण करते हैं । इसको अन्वाहार्यक कहा गया है । इस कारण  
 से उस चन्द्र के सक्षय में पहिले पवित्री के सहित तिलोदक को उनके  
 हाथ में देकर फिर एषा स्वधा भस्तु' अर्थात् इनको स्वधा होवे—यह  
 मुख से बोलना हुआ उस पिण्ड का अग्रभाग देवे । फिर सर्वदामिष्ट ॥४४॥  
 पूर्त मन्त्र की प्रशंसा का वर्णन करते हुए उनको भोजन कराना चाहिए ।  
 उस समय में त्रोद्य का भावना को सर्वथा वर्जित कर देना चाहिए और  
 श्री हरिनारायण का स्मरण करते हुए ही यह सब कम सम्पन्न करे ॥४५॥  
 ४४ ४५ ॥ जब यह जान लेवे कि विप्र भोजन से पूणतया तृप्त हो गये  
 हैं तो फिर सर्व वर्णिक विकिरण करना चाहिये । उदक के सहित अन्न  
 को उद्धृत करके भूमि में जल का प्रक्षयण करे ॥ ४६ ॥ जब विप्र  
 साचान्त हो जावें तो उन्हें पुनः जल पुष्प, अक्षत और उदक देव ।  
 स्मस्ति वाचनक सत्र का पिण्ड का ऊपर से समाहरण करना चाहिये ।  
 सब देवायत्त कर अन्यथा श्राद्ध का नाश हो जाता है । फिर ब्राह्मणों  
 का विसर्जन करके उनकी प्रदक्षिणा कर । दक्षिण दिशा की ओर  
 आकाशा करत हुए मनुष्य को पितृगण से याचना करनी चाहिये कि  
 आप सब दाता हैं और हमारे वेदों तथा सन्तति का अविवर्धन करें  
 ॥ ४७, ४८, ४९ ॥

अथाचनोमाध्यगमत्वद्वयञ्चनोऽन्विति ।  
 अन्ञ्चनो बहुभवेदतिथीश्च तन्नामह ॥५०॥  
 याचितारश्च न सन्तुमाचयाचिप्मकञ्चन ।  
 एतदन्वितितत्प्रोक्तमन्वहायन्तुपावणम् ॥५१॥  
 यथेष्टमक्षये तद्वदन्यत्रापि निगद्यते ।  
 पिण्डास्तुगोऽजविप्रध्यादद्यादग्नी जलेऽपिवा ॥५२॥  
 विप्राग्रता वा विकिरेद्वयोभिर्भुविवाञ्चयेत् ।  
 पत्नीतुमध्यमपिण्ड प्राश्नयेद्विनयान्विता ॥५३॥  
 आघत्त भिनरोगभमत्र सन्तानवधनम् ।  
 तावदुच्छेपण तिष्ठेद्यावद्विप्रा विमर्जिता ॥५४॥  
 वैश्वदेव ततः कुर्मोन्निवृत्ता पितृकर्मणि ।  
 इष्टं सह ततः शान्ताभुञ्जीत पितृमवितम् ॥५५॥  
 पुनर्भोजनमध्वान यानमायासमैश्वर्यम् ।  
 श्राद्धकृच्छ्राद्धभुक् चैवसर्वमेतद्विबजयत ॥५६॥  
 स्वाध्याय कलह चैव दिवास्वप्नञ्च सर्वदा ।  
 अनेन विधना श्राद्ध निन्दन्त्येह निवपेत् ॥५७॥  
 कन्धाकुम्भवृषभ्येऽर्कं कृष्णपक्षेपु सर्वदा ।  
 यत्र यत्र प्रदातव्यं सपिण्डिकरणात्परम् ।  
 तत्रानेन विधानेन दयर्मानिमता सदा ॥५८॥

पितृगण स करबद्ध हाकर परमपूज भावना स यह भी याचना  
 है कि आप ऐसी कृपा करें कि हमारे हृदय स कभी भी श्रद्धा का व्यय-  
 म न होवे और हमारे हृदय स बहुत अधिक दातृत्व शक्ति की वृद्धि  
 आवे । हमारे पास अत्यधिक अन्न हाव और उस अतिथि गण प्राप्त करत  
 है ॥ ५० ॥ हम लोगों से याचना करन बात नाग हाव जिनकी याच  
 ना की पूर्ति हम किया करें तब हम कभी भी किसी स याचना करन  
 गले न बने । ऐसी ही कृपा आप लाग कर कि हमारी हो जावे ।

इसी को अन्वाहार्य पार्वण श्राद्ध कहा गया है ॥ ५१ ॥ जिस प्रकारसे इन्दु के सक्षय में इसे कहा गया है उसी भाँति अन्यत्र भी इसको कहा जाता है । इन पिण्डों को फिर गौ-अना और विप्रों को दे देना चाहिए अथवा इनको किसी पवित्र जलाशय में या अग्नि में प्रसिप्त कर देना चाहिए ॥ ५२ ॥ विप्रों के आगे विकिरण कर देवे अथवा पक्षियों को खिला देना चाहिये । पत्नी को मध्यम पिण्ड का प्राशन विनयसे समन्वित होकर करना चाहिए ॥ ५३ ॥ इसमें पितृगण सन्तान के वर्धन करते वाला गभ रख दिया करते हैं । जब तक विप्रगण वहाँ से विसर्जित न हों तब तक वह उनका उच्छिष्ट वैसे ही स्थित रहना चाहिये ॥ ५४ ॥ इस पितृकर्म के साङ्ग सम्पन्न होकर निवृत्त हो जाने के पश्चात् बर्त-वैश्वदेव करना चाहिए । इसके भ्रमन्तर अपने समस्त इष्ट मित्रों तथा बन्धु-बांधवों के साथ मिलकर परम शान्त भाव से युक्त हो उस पितृ सेवक अन्न को खावे ॥ ५५ ॥ श्राद्ध करने वाले पुरुष को उसी दिन में दूसरी बार भोजन करना, मार्ग का गमन करना, यान में समारोहण करना, विशेष श्रम का कार्य करना, मैथुन नहीं करना चाहिये । इस भाँति श्राद्ध भोजन करने वाले विप्र को भी इन नियमों का परिपालन करना चाहिए तथा दोनों को ही इनका विवर्जन कर देना चाहिए ॥ ५६ ॥ श्राद्ध वाले दिन में स्वाध्याय भी न करे तथा किसी प्रकार का कलह और दिन में निद्रा भी न लेवे और सर्वदा इसका ध्यान रखना चाहिए । इसी विधि-विधान में यहाँ पर श्राद्ध का निर्वपण करना चाहिए । कम्पा राशि, कुम्भ और वृष राशि पर सूय के स्थित होने पर सर्वदा कृष्ण-पक्षों में ही श्राद्ध देना चाहिए । सापिण्डोत्तरण से आगे ही जहाँ-जहाँ पर श्राद्ध देना चाहिये । जो साम्निक हो उसे भी इसी विधान से श्राद्ध देना चाहिए ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

## १५—साधारण अम्युदय कीर्तन

अतः परं प्रवक्ष्यामि विष्णुना यदुदीरितम् ।  
 आद्यं साधारणनामभुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥१॥  
 अयने विपुले युग्मे सामान्ये चार्कसंक्रमे ।  
 अमावास्याष्टकाकृष्णपक्षे पञ्चदशीषु च ॥२॥  
 आर्द्रामघारोहिणीषु द्रव्यब्राह्मणसङ्गमे ।  
 गगनच्छायाव्यतीपाते विष्टि बंधतिवासरे ॥३॥  
 वैशाखस्य तृतीयाया नवमी कार्तिकस्य च ।  
 पञ्चदशी च माघस्य नभस्येचत्रयोदशी ॥४॥  
 युगादयः स्मृता ह्येता दत्तस्याक्षयकारिकाः ।  
 तथा मन्वन्तरादीचदेयश्चाह विजानता ॥५॥  
 अश्वयुक् शुक्लनवमी द्वादशोकार्तिके तथा ।  
 तृतीया चैत्र मासस्य तथा भाद्रपदस्य च ॥६॥  
 फाल्गुनस्यह्यमावास्यापोषस्यैकादशीतथा ।  
 आपाटस्याऽपिदशमीमाघमासस्यसप्तमी ॥७॥  
 श्रावणस्याष्टमी कृष्णातथापादोचपूर्णिमा ।  
 कार्तिकीफाल्गुनीचैत्रीज्येष्ठपञ्चदशीसिता ॥  
 मन्वन्तरादयश्चैता दत्तस्याक्षयकारिकाः ॥८॥

महा महर्षि श्री भूतजी ने कहा—इसने आये मैं साधारण आद्य  
 की वनलाजंग जो भगवान् विष्णु ने कहा था । यह आद्य भुक्ति-मुक्ति  
 के फल देने वाला है । १॥ इस आद्य के देने के समय बतलाये जात हैं  
 अयन-विपुल-युग्म-सामान्य सूर्य संक्रांति-अमावस्या-अष्टकाकृष्ण प  
 पञ्चादशी-आर्द्रा-मघा-रोहिणी-द्रव्यब्राह्मण सङ्गम-गगनच्छाया व्य  
 गन-विष्टि-बंधतिवासर वैशाख की तृतीया-कार्तिक मासकी नव  
 मिषि-माघ की पञ्चदशी-नभस्य माघ की त्रयोदशी तिथि ये युगा  
 दिर हूँ आद्य को रख्य करने वाले कहे गये हैं । तथा भक्ति मन्व

के आदि में विशेष ज्ञान रखने वाले पुरुष को श्राद्ध देना चाहिए ॥१॥  
 ॥२, ४, ५॥ अश्वयुज की शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि तथा कार्तिक  
 द्वादशी तिथि चैत्र और भाद्र पद मास की तृतीया तिथि-फाल्गुन की  
 अमावस्या और पौष मास की एकादशी तिथि-आषाढ की भी दशम  
 तथा माघ मास की पक्षमी तिथि-श्रावण की अष्टमी कृष्ण पक्ष वाली-  
 आषाढी पूर्णिमा तथा कार्तिकी-फाल्गुनी-चैत्री और ज्येष्ठ की निव  
 पक्षदशी तथा मन्वन्तर दिये हुए श्राद्ध के अग्रय करने वाली तिथि  
 हैं ॥२, ७, ८॥

यस्या मन्वन्तरम्यादी रथमास्तेदिवाकरः ।

मात्रमानस्यमप्तम्यामातु स्याद्रथसप्तमी ॥ ६

पानाग्रमप्यत्र तिलैर्द्रिमिश्र दद्यात्पितृभ्यः प्रयतोमनुष्यः ।

श्राद्ध कृत तेन समाः सहस्र गृहस्यमेतत् पितरो वदन्ति ॥१॥

वैशाख्यामुपरामेपु तथोत्सवमहारथे ।

तीर्थायनगोष्ठेषु द्वीपोद्यानगृहेषु च ॥११॥

विविक्तपूपलिप्तेषु श्राद्ध देय विजानता ।

विप्रान् पूव परेचाह्निदिनीतात्मानिमन्त्रयेत् ॥१२॥

शीलवृत्तगुण येनान् वयारूपममन्वितान् ।

द्वौ दवे स्त्रीस्तथा पेत्ये एकैकमुभयत्रवा ॥१३॥

भोजयेत्सुसमृद्धोपिनप्रसज्जेतविस्तरे ।

विश्वान्देवान्पदेः पुष्पैरभ्यर्चयन्पूषकम् ॥१४॥

मन्वन्तर क आदि में जिस तिथि में दिवाकर रथ में विराजमान होते हैं वह मात्र मान की सप्तमी तिथि है, अतएव वह रथ सप्तमी का भी जानी है ॥६॥ इस तिथि में यदि कोई प्रयत्न मनुष्य अपने पितृगणों को तिलों से विमिश्रित जल मात्र भी समर्पित कर देना है तो ऐसा मान लिया जाता है कि उस व्यक्ति ने एक सहाय वर्षों तक का श्राद्ध कर दिया है — इस गृह में जो पितृगण ही कहा करते हैं ॥१०॥ वैशाख

। मा मे-उपरागो मे-उत्सव महालय मे-तीर्थ-देवायतन और गोष्ठ मे-  
 १-उद्यान गृह मे तथा परम विविक्त (एवा-त) और गोमय से उप-  
 न स्वत मे विशेष ज्ञाना पुरुष का पितृगण के लिये आद देना चाहिए ।  
 । या पर दिन मे ही नियोजन के योग्य अधिकारी विप्रों को विनीत  
 रना वाला परम विनम्र होकर निमन्त्रित कर देना चाहिए ॥११, १२॥  
 । भी विप्र आद मे निमन्त्रित किये जावें वे क्षील-वृत्त और गुणा से  
 न तथा वय एव रूप मे समन्वित होन चाहिए । दैव मे दो और पद्व्य  
 तीक्ष्ण ही विप्रों को आद मे निमन्त्रण देना चाहिए अथवा इन दोनों  
 । ही एक-एक विप्र को निमन्त्रित कर देना पर्याप्त होता है ॥१३॥  
 । हे कोई कितना ही अधिक समृद्धिशाली भी क्यों न हो जिस धन के  
 अधिक व्यव होने की कुछ भी परवाह न हो तो भी आद से विस्तार  
 करने के लिए प्रसज्जित नहीं होना चाहिए । विश्व देवों को यवों के तथा  
 पुरुषों के द्वारा आर्चन करत हुए पहिले आसन ग्रहण करना  
 चाहिए ॥१४॥

पूरयेपात्रयुग्मन्तु स्थाप्य दध्नं पवित्रकम् ।

शन्नो देवीत्यप. कुय्याद्यवोऽसीति यधानपि ॥१५॥

१ गन्धपुष्पैश्च संपूज्य वेश्वदेव प्रतिन्यसेत् ।

२ विश्वेदेव. मङ्गलाभ्यामावाह्यविकिरेद्यवान् ॥१६॥

गन्धपुष्परलङ्कृत्ययादिव्यत्यपस्तसृजेत् ।

अभ्यर्च्यताभ्यामुत्सृष्टपितृकार्यं समारभेत् ॥१७॥

दर्भासनन्तुतत्त्वादीन् त्रीणि पात्राणि पूरयेत् ।

सपवित्राणि कृत्वा दोशन्नो देवीत्यप. क्षिपेत् ॥१८॥

तिलोऽसीति निलान् कुय्याद्विगन्धपुष्पादिक पुन ।

१ पात्र वनस्पतिमय तथा पणमय पुनः ॥१९॥

जलज वायु कुर्वीत तथा नागरसम्भवम् ।

१ सोवर्णं राजन चापि पितृणां पात्रमु-यते ॥२०॥

रजतस्य कथा वापि दर्शनं दानमेव वा ।

राजतैर्भजिनैरेषामथवा रजतान्वितः ॥२१॥

दो पात्रों की स्थापना करके दम और पवित्री के सहित उन  
उन्हे पूरित करे तथा "शन्नोदेवी"—इत्यादि मन्त्र के द्वारा जल का  
चाहिए । 'यवोऽसीति"—इत्यादि मन्त्र को उच्चारण करते हुए यवों  
भी डाल देवे ॥ १५ ॥ मध और पुष्पो से वैश्वदेव का भली भाँति पूः  
करके प्रतिन्यास कर देना चाहिये । 'विश्वेदेवास"—इत्यादि मन्त्रों  
द्वारा आवाहन करके यवों को त्रिकीर्ण करना चाहिये ॥ १६ ॥ मध पुष्प  
से ममलकून करके 'या दिव्य'— इत्यादि मन्त्र को बोलते हुए जल का  
उत्सर्ग करे, उन दोनों से अभ्यर्चन करके फिर उत्सृष्ट पितृ कार्य का  
समारम्भ कर देना चाहिए ॥ १७ ॥ यदि मैं दर्भासन देकर तीन पात्रों  
को पूरित कर देवे और यदि मैं उन पात्रों को पवित्री के सहित करे  
फिर "शन्नोदेवी रभिष्ठये"—इत्यादि मन्त्र के द्वारा जल का क्षेपण  
करना चाहिए ॥ १८ ॥ "तिलोऽसीति" मन्त्र को पढ़ते हुये तिलों का  
क्षय करे और फिर मध, पुष्प आदि का क्षेपण करना चाहिये । पात्र की  
वनस्पतियो से पूर्ण तथा पर्णमय कर देवे ॥ १९ ॥ अथवा जलज की  
तथा सागर सम्भव कर देवे । पितृगणों के पात्र सुवर्ण निमित्त अथवा  
रत्न ( चाँदी ) से बने हुए राजत कहे जाया करते हैं ॥ २० ॥ राजत का  
कथा भी दर्शन और दान ही होना है । इन पितृगणों के लिये आठ प्राणि  
जों कुछ भी दिया जावे वह चाँदी के निमित्त पात्रों के द्वारा ही देना  
चाहिए अथवा चाँदी से समन्वितों के द्वारा करना चाहिये ॥२१॥

वार्यपि श्रद्धया दत्तमक्षयायोपकल्पते ।

तथाध्यपिण्डभोग्यादौ पितृणा राजतंमतम् ॥२२॥

शिवनेलोद्भव यस्मात्तस्मात्तत्पितृवल्लभम् ।

अमङ्गल तद्यत्नेन देवकार्येषु वर्जयेत् ॥२३॥

एव पात्राणि संस्पृश्य यथालाभविमत्सरः ।



यानिव्येतिपितुर्नामिगोत्रं दंभेकरोन्यसेत् ॥२४॥

पितृनावाहयिष्यामि कुर्वित्युक्तस्तु तं पुनः ।

उगन्तस्त्वा तयायन्तु ऋग्ध्यामावाहयेत्पितृन् ॥२५॥

यादिव्येत्यप्यभुत्सृज्य दद्याद् गन्धादिकास्ततः ।

हस्तात्तदुदकं पूर्वं दत्त्वा सश्रवमादितः ॥२६॥

पितृपार्थं निषायाऽन्युजमुत्तरतो न्यसेत् ।

पितृभ्यः स्थानमसीति निघाशं परिषेचयेत् ॥२७॥

तत्रापि पूर्ववत् कुर्यादग्निकार्यं विमत्सरः ।

उभाभ्यामपि हस्ताभ्यामाहृत्य परिषेचयेत् ॥२८॥

जो अन्नपूर्वक नेवन जन भी दिया गया है वह जो अन्नर  
ही उपकालीन हो जाना है । इसी भाँति से अर्घ्य-पिण्ड भोज्य आदि के  
कर्म में पितृगणों के लिये राजन माना गया है ॥ २२ ॥ भगवान् शिव के  
भैरवों से उत्पत्ति होती है इसी कारण से यह पितृगण का प्रिय है । जो  
अमङ्गल है उसे यत्नपूर्वक देव कार्यों से वञ्चित करना चाहिए ॥ २३ ॥  
इस रीति से पात्रों का सङ्कल्प करके लाभानुसार मत्सरता के  
भाव से रहित होकर ही “या दिव्या” —इत्यादि मन्त्र से पिता  
के नाम गोत्रों से हाथ में दर्भ ग्रहण करने वाले को ग्राम कर्मा चाहिये  
॥ २४ ॥ “पितृन् आवाहयिष्यामि” —अर्थात् मैं अपने पितृगणों का आवा-  
हन करूँगा —इस रीति से अनुज्ञा प्राप्त करने के लिये पूछे । जब ब्राह्मण  
ब्रह्म देवे कि ‘कुह’ —अर्थात् आवाहन करो सभी आवाहन पूछकर प्राप्ता-  
भूत हाकर हाँ करे । ‘उगन्तस्त्वा’- ‘तयायन्तु’ —इन दो ऋचाओं के द्वारा  
पितृगण का आवाहन करे ॥ २५ ॥ ‘या दिव्या’ —इस मन्त्र को पढ़कर  
अर्घ्य का उत्सर्ग करके फिर पीछे मन्त्र आदिक अन्य पूजनोपचारों का  
देना चाहिये । हाथ में पूर्व प उम जल को लेकर आदि से शश्रव को  
पितृगण के पात्र में रखकर उत्तर की ओर न्युज्ज न्यास करना चाहिये ।  
‘पितृभ्यः स्थानमसि’ —इस मन्त्र से रखकर परिषेचन करे ॥ २६, २७ ॥

वहाँ पर भी पूर्व की ही भांति मात्स्य से रहित होकर ही अग्नि काय करना चाहिये । दोनों हाथा से समाहरण करके ही परिवेषण करना चाहिये ॥ २८ ॥

प्रशान्तचित्त सतत दर्भपाणिरशेषत ।

गुणाढ्यं सूपशाकंस्तु नानाभक्ष्यंविशेषत ॥२९॥

अनन्तु सदधिकीर गोघृत शकतान्वितम् ।

मासम्प्रोणातिवैसर्वान्पितृ नित्याहकेशः ॥३०॥

यत्किञ्चिन्मधुसमिध्र गोक्षीर घृतपायसम् ।

दत्तमक्षयमित्याहु पितर पूवदेवता ॥३१॥

स्वाध्याय ध्यायत पितृ पुराणान्यखिलानि च ।

ब्रह्मविष्णवकरुद्राणां स्यवानि विविधानि च ॥३२॥

इन्द्राग्निसोमसूक्तानि पावनानि स्वशक्तित ।

बृहद्रथन्तरतद्वज्र्यष्टसामसरोहिणम् ॥३३॥

तथैव शान्तिकाध्याय मधु ब्राह्मणमेव च ।

मण्डल ब्राह्मणतद्वत्प्रीतिकारितुयत् पुन ॥३४॥

विप्राणामात्मनश्च तत्सर्व समुदीरयत ।

भुक्तवत्सु ततस्तेषु भोजनोपान्तिके नृप ॥३५॥

निरंतर आद्य कम मे प्रशान्त चित्त वाला रहकर ही उसे करे और सबदा हाथ मे दभ रखे । गुणी से युक्त सूप तथा शाक आदि अनेक प्रकार के भक्ष्य पदार्थों का विशेष रूप से परिवेषण करे ॥ २९ ॥ जो भी अन्न दिया जावे वह दधि-और और शकरा से समन्वित ही देना चाहिये । भगवान् वेङ्ग ने कहा है कि इस तरह से दिया हुआ आद्य एक मास पर्यन्त पितृगण को प्रसन्न किया करता है ॥ ३० ॥ जो कुछ भी मधु से समिध्रन जो का क्षीर घृत पायस दिया हुआ है वह सब अक्षय अक्षय रूप से रहित हो जाया करता है —ऐसा पितृगण और पूर्व देवता को ॥ ३१ ॥ पितृ अर्थात् पितृगण से सम्बन्धित स्वाध्याय वा श्रवण

करावे तथा सभी पुराणों को सुनाना चाहिये । ब्रह्मा, विष्णु और मद् के विविध स्तवों का श्रवण कराना चाहिए ॥ ३२ ॥ इन्द्र-अग्नि और सोम के जो परम पावन सूक्त हैं उनका श्रवण अपनी शक्ति से करावे । इसी भाँति बृहद् अन्तर और ज्येष्ठ साम सरोहिण का श्रवण भी शक्ति के अनुसार वन पड़े तो कराना चाहिए ॥ ३३ ॥ इसी तरह से शान्तिका-ध्याय और माधु ब्राह्मण एवं मण्डल तथा ब्राह्मण का श्रवण करावे । तात्पर्य यही है कि जो भी कुछ पित्र्गण के लिये प्रीति का करने वाला हो वही उस समय में श्रवण कराना उचित होता है । ३४ ॥ हे नृप ! इसके पश्चात् उन सबके मुक्तवान् हो जाने पर ही भोजन के समय में ही विभो का तथा अन्ना सब उद्देशित करना चाहिए ॥ ३५ ॥

सावेवर्णिकमश्राद्य सन्नीयाहपाव्य वारिणा ।

समुत्सृजेद् भुक्तवतामग्रतो विकिरेद्भुवि ॥३६

अग्निदग्धास्तु ये जीवा यऽप्यदग्धाकुले मम ।

भूमौ वत्तेन तृप्यन्तु प्रयान्तु परमाङ्गतिम् ॥३७

येषां न माता न पिता न बन्धुर्न गोत्रशुद्धिर्न तथाऽन्नमस्ति ।

सत्तृप्तयेऽन्नं भुवि दत्तमेतत् प्रयातु लोके पुसुखाय तदत् ॥३८

असंस्कृतप्रमीतानान्यक्तामा कुलयोपिताम् ।

उत्सृष्टभागकेय स्याद्दर्भे विकिरयोश्चय ॥३९

तृप्ता ज्ञात्वोदक दद्यात् सकृद्विप्रकरे तथा ।

उपलिप्ते महीपृष्ठे गोशकृन्मूत्रवारिणा ॥४०

निधाय दर्मान् विविधदक्षिणान्प्रयत्नतः ।

सर्वदर्शने चार्शे न विण्ढातु वितृयज्ञवत् ॥४१

अवनेजनपूर्वन्तु तामगोत्रेण मानवः ।

गन्धधूपादिकं दद्यात् कृत्वा प्रत्यवनेजनम् ॥४२

सभी वर्णों का अन्न आदि का ग्रहण कर लेवे और उसको लाकर अन्न से प्लावित कर लेना चाहिए फिर उसको मुक्त हुआ के सामने

समुत्कृष्ट करना चाहिए और भूमि में विकीर्ण कर देवे ॥ ३६ ॥  
 जिस समय में भूमि में अन्न को विकीर्ण करे उस समय में "अग्नि-  
 दग्धास्तु ये जीवाप्येज्यदग्धाः कुलेमम । भूमि-----" इत्यादि मन्त्र  
 का मुख से समुच्चारण करना चाहिए । इसका अर्थ है जो भी कोई  
 जीव मेरे कुल में आग से जलकर मृत हो गये हों अथवा जिनका कभी  
 दाह ही नहीं किया गया हो और ऐसे ही वही मृत शव पड़कर  
 विनष्ट हुआ हो वे सभी भूमि में समर्पित इस विकीर्ण अन्न से तृप्ति  
 को प्राप्त कर तथा परम शांति की प्राप्ति भी करें ॥ ३७ ॥ जिनके  
 कोई भी माता—पिता और बन्धु नहीं हैं—न उनके गोत्र की ही शुद्धि  
 हो और न अन्न ही प्राप्त है उन सबकी तृप्ति के लिये ही यह अन्न  
 भूमि में विकीर्ण करके दिया गया है । यह लोको में उन सबको उसी  
 भाँति सुख के लिये होवे ॥ ३८ ॥ असंस्कृत प्रसीत रसक्त कुल गोपियों  
 का उत्कृष्ट भाग घेय और और ओ दध्न में विकीर्ण है वह होवे ॥ ३९ ॥  
 जिस समय में यह समझ लेवे कि भोजन करके विप्र प्राय तृप्त हो चुके  
 हैं तब एक बार विप्र क कर में उदक देना चाहिए । गौमय और गौमूत्र  
 के द्वारा उपलिप्त भूमि के पृष्ठ भाग पर उन दध्नों को निष्ठापित कर देवे  
 किन्तु विधिपूर्वक दक्षिण की ओर ही उनका अग्रभाग होने चाहिये ऐसा  
 भी प्रयत्न पूर्वक करे । सभी वर्णों वाले पुरुषों के अन्न से पितृ यज्ञ की  
 भाँति पिण्डों की रचना करनी चाहिए ॥ ४०, ४१ ॥ मानव को अन्वजेन  
 पशुक नाम और गोत्र के द्वारा गन्ध—धूप आदिक सभी समर्पित करे और  
 फिर प्रत्यन्वजेन करना चाहिए ।

जान्वाच्यसव्य सव्येनपाणिनाथ प्रदक्षिणम् ।

विध्यमानीय तत्कार्यं विधिवद्भपाणिना ॥ ४३

दीपप्रज्वालनतद्वत् कुर्यात्पुष्पाचनं बुधः ।

अयाना-तेषु चाचम्यवारिद्ध्यात्सकृत्सकृत् ॥ ४४

अथ पुष्पः तान् पश्चादक्षरयोदकमेव च ।

सतिल नामगोत्रेण दद्याच्छक्त्या च दक्षिणाम् ॥४५॥

गोमूहिरण्यवासांसि भव्यानि शयनानि च ।

दद्याच्च दिष्टं विप्राणामात्मनः पितुरेव च ॥४६॥

वित्तज्ञाठयेन रहितः पितृभ्यः प्रीतिमावहन् ।

ततः स्वध्यावाचनकं विश्वेदेवेषु चोदकम् ॥४७॥

दत्त्वाशौ प्रतिगृह्णोयाद्विश्वेभ्यः प्राङ्मुखो बुधः ।

अधोरा पितरः सन्तु सन्निवत्युक्तं पुनर्द्विजं ॥४८॥

गोत्रं तथा च दत्तान्नाश्रयेत्युक्त्वा श्वत्तं पुनः ।

दातारो नोऽभिवदन्तामिति चैव मुदीरयेत् ॥४९॥

सम्यग् ग्राहि से जाग्या बाध्य करे इसके अनन्तर पितृय को प्रदक्षिण  
ई लाकर दक्षिण हाथ से विधिपूर्वक धृष्ट करना चाहिए ॥४३॥ उसी  
ग्रह दीपक का प्रज्वालन करे और बुध पुरुष को पुष्पार्चन करना चाहिए ।  
उसके पश्चात् उन विप्रों के आवाप्त होने पर और आचमन करके एक-  
एक बार जल देवे ॥४४॥ इसके अनन्तर पुष्प और अक्षतों को तथा  
प्रसन्न उदक जो तिलों के सहित हो नाम और गोत्र का उच्चारण करके  
देना चाहिए तथा शक्ति के अनुसार दक्षिणा भी देवे ॥४५॥ दक्षिणा में  
गोमूत्र-मुषर्ष-वस्त्र और अन्य शय्या इनमें अपना जो अत्यन्त प्रिय एवं  
प्रसीद्य हो तथा पिता को जो परम इष्ट पदार्थ हों वही को दक्षिणा  
देना चाहिए ॥४६॥ दक्षिणा आदि को देने में वित्तज्ञाठय से रहित  
होकर ही पितृगण की प्रीति प्राप्त करता हुआ सकीर्णता दूर रहकर  
करे । इसके उपरान्त फिर विश्वेदेवों में प्रेरणा करने वाला स्वधा का  
वाचन करे ॥४७॥ यह सब समाप्त करके बुध पुरुष का पूर्व की ओर  
मुख वाला होकर विश्वेदेवों से आशीर्वाद का प्रतिग्रहण करना चाहिए ।  
फिर द्विजों के द्वारा पितृगण अधोरा होवें—इस प्रकार से कहा हुआ श्राद्ध-  
कर्ता हो—फिर उनके द्वारा कहा जावे—स्माद्य गोत्रं वृद्धिशीलं होवे और

इसके अनन्तर हमारे दातागणों का वर्धन होवे—इस प्रकार से यह कहना चाहिए ॥४८, ४९॥

एता. सत्याशिपः सन्तु सन्तिवत्युक्तश्च तं. पुनः ।  
 स्वस्तिवाचनक कुर्यात् पिण्डानुद्धृत्य भक्तितः ॥५०॥  
 उच्छेपणन्तु तत्पिण्डेद्यावद्विप्रा विसर्जिताः ।  
 ततो ग्रहवलि कुर्यादिति धर्ममध्यवस्थितिः ॥५१॥  
 उच्छेपण भूमिगतमजिह्वास्यास्तिकस्य च ।  
 दासवर्गस्य तत्पित्र्य भागधेय प्रचक्षते ॥५२॥  
 पितृभनिर्मितं पूर्वमेतदाप्यायन सदा ।  
 अपुत्राणा सपुत्राणा स्त्रीणामपि नराधिपः ॥५३॥  
 ततस्तानग्रतः स्थित्वा परिगृह्योदपाकम् ।  
 वाजेवाज इतिजपन् कुशाग्रेण विसर्जयेत् ॥ ४ -  
 वहिः प्रदक्षिणान्कुर्यात् पदान्यष्टावनुव्रजन् ।  
 बन्धुवर्गेण सहितः पुत्रभार्यासमन्वितः ॥५५॥

ये सभी आशीर्वाद सत्य होवे—उनके द्वारा पुनः यह कहा जावे कि अवश्य सत्य हो। भक्ति भाव से पिण्डों को उद्धृत करके स्वस्तिवाचन करना चाहिये ॥५०॥ जब तक उस श्राद्ध के स्थल से ब्राह्मण लोग विसर्जित होवें तब तक उन के भोजन का उच्छिष्ट उसी वंश में स्थित रहना चाहिए। इसके अनन्तर ग्रहवलि करे—यही इतनी धर्म की व्यवस्था होती है ॥५१॥ जो भूमि पर गिरा हुआ उच्छेपण है वह भी जिह्वा न हो तथा आस्तिक हो ऐसे दास वर्ग के लिये ही वह पितृ भाग धेय कहा जाता है ॥५२॥ हे नराधिप । पितृगण के द्वारा यह सदा आप्यायन (तृप्त होना) पहिले ही निमित्त किया गया है। यह सभी के लिये है चाहे वे पुत्र पूरित हो या सपुत्र हो या स्त्रियाँ हो ॥५३॥ इसके अनन्तर उन आये स्थित होकर उदक पात्र को परिगृहीत करके “वाजे वाज”—यह जप करता हुआ वृद्धा के अग्रभाग से पितृगण के

विमर्जन करना चाहिये ॥ ५४ ॥ आठ बरस तक अनुव्रजन करते हुए  
अर्थात् विप्रों के पीछे २ चलते हुए प्रदक्षिणा करनी चाहिये । जिस  
समय में प्रदक्षिणा करे उस समय में सब बन्धु वर्ग को भी साथ में रखना  
चाहिये तथा अपनी भार्या और पुत्रादि को भी साथ में ले लेना  
चाहिए ॥ ५५ ॥

निवृत्य प्रणिपत्याय पर्युक्ष्याग्निं समन्वत् ।  
वैश्वदेव प्रकुर्वीत नैत्यक बलिमेव च ॥ ५६ ॥  
ततस्तु वैश्वदेवान्ते सभृत्यसुतबान्धवः ।  
भुञ्जीतातिथिसयुक्तः सब पितृनिषेविनम् ॥ ५७ ॥  
एतच्चागुपनीतोऽपि कुर्यात् रावेषु पर्वसु ।  
आद्य साधारण नाम सबकामफलप्रदम् ॥ ५८ ॥  
भार्याविरहितोऽप्येतत् प्रवासस्थोऽपि भक्तिमान् ।  
शूद्रोऽप्यमन्त्रवत् कुर्यादनेन त्रिभिन्ना बुधः ॥ ५९ ॥  
तृतीयमाभ्युदयिक वृद्धिश्चाद्यं तदुच्यते ।  
उत्सवानन्दसम्मारे यज्ञोद्वाहादिमङ्गले ॥ ६० ॥  
मातरं प्रथम पूज्या, पितरस्तदनन्तरम् ।  
ततो मातामहा राजन् विश्वेदेवास्तथैव च ॥ ६१ ॥

इस विमर्जन की क्रिया से निवृत्त होकर प्रणिपात करे और इसके  
उपरान्त समन्वत् अग्नि का पर्युक्षण करना चाहिए । वैश्वदेव और  
नैत्यक बलि दत्ते ॥ ५६ ॥ इसके अनन्तर वैश्वदेव के अग्न में भृत्य-सुत  
और बान्धवों के सहित अतिथियों में सयुक्त होकर सभी पितृगण के द्वारा  
निषेवित किये हुए पदार्थों का भोजन करना चाहिए ॥ ५७ ॥ इस आद्य  
का वह भी समस्त बर्षों में करे जिसका उपनयन संस्कार न हुआ हो ।  
यह साधारण नाम बापा आद्य है जो सम्पूर्ण वामनाश के पत्नों को  
प्रदान करने वाला है ॥ ५८ ॥ जो कोई भार्या से भी विरहित हो तथा  
प्रवास में स्थिति रखने वाला हो और भक्ति भाव से सम्पन्न शूद्र भी हो

जो मन्त्र रहित होता है उस बुध पुरुष को यह श्राद्ध विधिपूर्वक करना चाहिए ॥ ५६ ॥ तीसरा आभ्युदयिक श्राद्ध होता है जिसको वृद्धि श्राद्ध के नाम से कहा जाया करता है । उत्सवों के आनन्द सम्भार में तथा यज्ञ और उद्वाह आदि के मङ्गलमय समय में सर्व प्रथम मातृगण का अभ्यर्चन करना चाहिए और इसके पश्चात् फिर पितरों का पूजन करे । हे राजन् ! इसके अनन्तर मातामहों का पू न करे और पीछे उसी भाँति विश्वे देवाओं का अर्चन करना चाहिए ॥ ६०, ६१ ॥

प्रदक्षिणोपचारेण दध्यक्षतफलोदकैः ।

प्राङ्मुखो निवपेत्पिण्डान् दूर्वायाच कुशैर्युतान् ॥६२॥

सम्पन्नमित्यभ्यदये दद्यादध्यं द्वयोर्द्वयोः ।

युग्मा द्विजातय पूज्या वस्त्रकातंस्वरादिभिः ॥६३॥

तिलायस्तु यवैः कार्यो नान्दिशब्दानुपूर्वकः ।

माङ्गल्यानि च सर्वाणिवाचयेद्द्विजपुङ्गवैः ॥६४॥

एव शूद्रोऽपि सामान्यवृद्धिश्राद्धेऽपि सर्वदा ।

नमस्कारेण मन्त्रेण कुर्यादामान्नतः सदा ॥६५॥

दानप्रधानं शूद्र स्यादित्याह भगवान्प्रभुः ।

दानेन सर्वकामाप्तिरस्य सञ्जायते यतः ॥६६॥

प्रदक्षिणा के उपचार से दधि-अक्षत-फल और जल के द्वारा पूर्व दिशा की ओर मुख वाला होकर दूर्वा और कुशा से युक्त पिण्डों का निर्वपण करे ॥ ६२ ॥ यह श्राद्ध आभ्युदय में सम्पन्न होता है इसी लिये दो-दो को अर्घ्य देना चाहिए । वस्त्र और वाक्स्वरा (सुवर्ण) आदि के द्वारा युग्म द्विजातियों का पूजन करना चाहिये ॥६३॥ नान्दि शब्दानु पूर्वक निमार्ग की धर्मों से ही सम्पन्न करना चाहिए । द्विज ध्येष्ठों के द्वारा सम्पूर्ण माङ्गल्यों का व्यञ्जन करना चाहिए ॥६४॥ इसी प्रकार से सामान्य वृद्धि श्राद्ध में भी सर्वदा शूद्र को भी नमस्कार मन्त्र के द्वारा कच्चे अन्न से ही सदा करना चाहिये ॥६५॥ भगवान् प्रभु ने कहा है



शूद्र को दान देने की प्रधानता वाला अवश्य होगा ही चाहिये वारण है कि इस शूद्र वर्ग वाले गुरुष को केवल दान से ही समस्त कामनाओं को की प्राप्ति हो जाया करनी है इसी लिये शूद्र के लिये दान देन विशेष महत्व होता है ॥६६॥

### १६—एकोद्दिष्टश्राद्धप्रकरण

एकोद्दिष्टमतावश्ये यदुक्त चक्रपाणिना ।  
मृते पुनर्यथाकार्यमागोचञ्च पितृयपि ॥१॥  
दशाह द्वावमाशौच ग्राह्यणेषु विधीयते ।  
क्षत्रियेषु दश द्वेच पक्ष वैश्येषु चैवहि ॥२॥  
शूद्रेषु मासमाशौच सपिण्डेषु विधीयते ।  
नैशाम्वाऽऽकृन्तूडस्य त्रिरात्रम्परतः स्मृतम् ॥३॥  
जननेऽऽश्वमेव स्यात् सर्ववर्णेषु सर्वदा ।  
तथास्थिसञ्चयादूर्ध्वमङ्गस्पर्शो विधीयते ॥४॥  
प्रेनाय पिण्डदानन्तु द्वादशाह समाचरेत् ।  
पायेय तस्य तत् प्रोक्त यत् प्रीतिकर महत् ॥५॥  
तस्मात् प्रेतपुर प्रेतो द्वादशाह न नीयते ।  
गृहं पुन कलत्रञ्च द्वादशाह प्रपश्यति ॥ ६॥  
तस्मान्निधेयमाकाशे दक्षरान पयस्तथा ।  
सर्वदाहोपशान्त्यर्थमध्वश्रमविनाशनम् ॥ ७॥

महर्षि प्रवर सूतजी ने कहा—अब तक पार्वण तथा साधारण ऋद्धि आदि का वर्णन किया जिनके साथ आध्यात्मिक श्राद्ध को भी तला दिया गया था । अब एकोद्दिष्ट श्राद्ध के विषय में बतलाते हैं जिसे गवान् चक्र पाणि ने कहा है । पुत्रों के द्वारा पिता के मृत हो जाने पर वेस प्रकार तो आशौच करना चाहिये—यह सभी बहा जाता है ॥१॥

ब्राह्मणों में दाह (मृतक) आशीर्वाद दण दिन का माना जाता है-अर्थात्  
 में बारह दिन का मृताकाशीर्वाद होता है धीरे वैश्यों में एक पक्ष का दाह  
 आशीर्वाद हुआ करता है ॥२॥ शूद्रों में जो भी सपिण्ड होते हैं एक पक्ष  
 का आशीर्वाद रहा करता है । ओ बालक बूढ़ा सत्स्कार से रहित हो गया  
 आशीर्वाद एक निशा का या अधिक से अधिक तीन रात्रि का ही रह  
 गया है ॥३॥ सर्वदा जिस प्रकार स विभिन्न वर्णों में मृतकाशीर्वाद हो  
 है उसी भाँति जनन से भी हुआ करता है । तथा घस्त्रियों के स्पर्श  
 करने से ऊर्ध्व में अङ्ग स्पर्श का विधान है ॥४॥ प्रेत के लिये पिण्डों का  
 दान बारह दिन समाचरण करे । यह उसका यमपुरी के मार्ग का पक्ष  
 कहा गया है अर्थात् मार्ग भोजन है क्योंकि यह उसको महान् प्रीति का  
 करने वाला हुआ करता है ॥५॥ इसलिये यह सुसिद्ध है कि बारह दि  
 तक प्रेत प्रेतों के पुर में नहीं पहुँचाया जाता है । वह प्रेत बारह दिन का  
 अपने घर को, पुत्र को और भार्या को बराबर देखता रहता है ॥६॥ इति  
 दश रात्रि पर्यन्त आकाश में अर्थात् पीपल आदि वृक्ष पर पय (जलकुम्भ  
 रखना चाहिये अर्थात् जलका घट भरे । यह सब प्रकार के दाह की श  
 शान्ति के लिये और मार्ग के श्रम का विनाश करने के लिये ही होता  
 है ॥७॥

तत एकादशाहे तु द्विजानेकाश्व तु ।  
 क्षत्रादिः सूतकान्ते तु भोजयेदयुतो द्विजान् ॥८॥  
 द्वितीयेऽह्नि पुनस्तद्वदेकोद्दिष्ट समाचरेत् ।  
 आवाहनाग्नीकरणं देवहीन विधानतः ॥९॥  
 एक - विभ्रमेकोर्ध्व एकः पिण्डो विधीयते ।  
 उपतिष्ठतामित्येतद्देय पश्चात्तिलोटकम् ॥१०॥  
 स्वादित्त विकिरेद्ब्रूयाद्विसर्गे चाभिरभ्यताम् ।  
 शेष पूर्ववदत्रापि कार्यं वेदविदा पितुः ॥११॥  
 सपिण्डोकरणादूर्ध्वं प्रेतः पार्वणभाग् भवेत् ।

वृद्धिपूर्वेषु योग्यश्च गृहस्थश्च भवेत्ततः ॥१२॥  
 सपिण्डीकरणे श्राद्धे देवपूर्वं नियोजयेत् ।  
 पितृ नेवासयेत्तत्र पृथक् प्रेत विनिर्दिशेत् ॥१३॥  
 गन्धोदकतिलैर्मुक्तं कुर्यात्पात्रचतुष्टयम् ।  
 अर्घ्याय पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं प्रसेचयेत् ॥१४॥

इसके पश्चात् दश रात्रि समाप्त होने पर ग्यारहवें दिन एकादश  
 दिनों को और सत्रियादि को मूनव के अन्त में मृगुनों दिनों को भोजन  
 कराना चाहिये ॥१०॥ दूसरे दिन में उसी तरह से फिर एकोद्दिष्ट श्राद्ध  
 करे । आश्विनातिथि में विज्ञान से दैवहीन करे ॥११॥ एक पवित्री-एक  
 अर्घ्य और एक पिण्ड किया जाता है । 'उपनिष्णाम्'-दद्यादि के द्वारा  
 पीछे तिलोदक देना चाहिये ॥१०॥ 'स्वादित विस्तिरेत्'-इसकी बोली  
 और विसम में 'यधिरम्यताम्'-यह बोलना चाहिये । सेष सभी पूर्व की  
 ही भाँति इन पिण्ड के श्राद्ध में भी बंदों के ज्ञाता पुरुष करना चाहिये ।  
 ॥११॥ सपिण्डी करण के पश्चात् ही वह प्रेत पार्वण श्राद्ध ग्रहण करने  
 का हस्तक्षर हुमा करना है । वृद्धि पूर्वों में योग्य और फिर गृहस्थ होता  
 है ॥१२॥ सपिण्डी करण श्राद्ध में देव पूर्व का नियोजन करना चाहिये ।  
 वहा पर पितृगण का ही अधिवास करे और प्रेत को पृथक् विनिर्दिष्ट  
 करना चाहिये ॥१३॥ गन्ध-उदक और निसों से युक्त चार पात्रों को  
 वहा पर रखना चाहिये । अर्घ्य के लिये पितृ पात्रों में प्रेत पात्र का प्रसे-  
 चन करे ॥१४॥

उद्धत्संक्लृप्य चतुरः पिण्डान् पिण्डप्रदस्तदा ।  
 ये समाना इति द्वाभ्यामन्त्यन्तु विभजेत्त्रिधा ॥१५॥  
 चतुर्थस्य पुनः कार्यं न कदाचिदतोभवेत् ।  
 ततः पितृत्वमापन्नः सर्वतस्तुष्टिमागतः ॥१६॥  
 अग्निज्वात्तादिमध्यस्त्वं प्राप्नोत्यमृतमुत्तमम् ।  
 सपिण्डीकरणादूर्ध्वं तस्मै तस्मान्नदीयते ॥१७॥

पितृष्वेव तु दातव्यं तत् पिण्डोद्येषु सस्थितः ।  
 ततः प्रभृतिः सक्रान्ताद्युपरागादि पर्वसु ॥१८॥  
 त्रिपिण्डमाचरेच्छाद्धमेकोद्दिष्टं मृताहनि ।  
 एकोद्दिष्टं परित्यज्य मृताहे यः समाचरेत् ॥१९॥  
 स देवः पितृहा स स्यान्मातृभ्रातृविनाशकः ।  
 मृताहे पावणं कुर्वन् अघोऽधोयाति मानवः ॥२०॥  
 सपृक्तोऽप्याकुलीभावः प्रतेषु तु यतो भवेत् ।  
 प्रतिसवत्सरं तस्मादेकोद्दिष्टं समाचरेत् ॥२१॥

उस समय में उसी भाँति सङ्कल्प करके पिण्डों के प्रदाता को चार पिण्ड करने चाहिये । जो समान होते हैं । दो से जो अन्य है उसका तीन भागों में विभाजन करे ॥१८॥ जो चौथा है उसका पुनः कदाचित् इससे नहीं होवे । इसके उपरान्त ही सब ओर से तुष्टि भी प्राप्त होना हुआ वह युत पितृत्व को प्राप्त हो जाया करता है ॥१९॥ अग्निष्वात्तादि जो पितृगण हैं उनके मध्यत्व को वह प्राप्त कर लेता है जो कि अमृत और उत्तम है । सपिण्डीकरण कर्म क करने के ऊर्ध्व में फिर उन युत के लिये इसी कारण से कुछ नहीं दिया जाया करता है ॥२०॥ फिर तो पितृगण में ही देना चाहिये जिनमें पिण्ड सस्थित होता है । तभी से लेकर सूय सक्रान्ति में भी उपराग आदि पर्वों में मृत होने वाले दिन में तीन पिण्डों का समाचरण करे । यही एकोद्दिष्ट आद्ध होता है । एकोद्दिष्ट का परित्याग करके जो मृत दिन में किया करता है वह सदा ही पितृगण का हनन करने वाला है और माना तथा भाई का विनाश करने वाला है । मृत दिन में पावण आद्ध करने वाला मानव अधोभाग से भी अधोभाग में जाया करता है क्योंकि सपृक्त प्रेतों में आकुली भाग हा जाया करता है । इसी कारण से प्रत्येक सवत्सर में एकोद्दिष्ट आद्ध का अवश्य ही समाचरण करना चाहिये ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥

यावदब्दन्तु योदद्यादुदकुम्भ विमत्सर ।  
 त्वेतायान्नसमायुक्त सोऽश्वमेघफल लभेत् ॥२२॥  
 आमश्राद्धं यदा कुर्याद्विधिज्ञ श्राद्धदस्तदा ।  
 तेनाग्नीकरणकुर्यात्पिण्डारतेनैवनिवपेत् ॥२३॥  
 त्रिभिः सपिण्डिकरणे भक्षेयत्रितये पिता ।  
 यदा प्राप्स्यतिकासेनतदामुच्येतवन्धनात् ॥२४॥  
 मुक्तार्जपलेपभागित्वश्राप्नोति कुशमार्जनात् ।  
 लेपभाजश्चतुर्थाद्या पित्राद्याः पिण्डभागिनः ॥  
 पिण्डद रुप्तमस्तेषा सपिण्डयं साप्तपोत्पम् ॥२५॥

जब तक मृत को एक वर्ष पूरा हो उस वर्ष में बराबर जो कोई विगत मत्सगता माला होकर श्राद्ध के सहित जन का कुम्भ दिया करता है और घ्रेन के लिये उसे अन्न से समायुक्त करके देता है वह एक अश्व-मेघ यज्ञ के करने के पुण्य-फल का लाभ करता है ॥२२॥ जिस समय में विधान का ज्ञान रखने वाला श्राद्ध दाता आम श्राद्ध करे अर्थात् कच्चा ही अन्नादि बिना पाक किये हुए देवे तो उससे अग्निकरण अवश्य ही करना चाहिए और उसी से पिण्डों का भी निर्वपण भी करे ॥२३॥ चीनो के द्वारा भक्षेय त्रितय सपिण्डी करण में जब वित्त प्राप्त होगा तो समय से वह उन समय में वन्धन से मुक्त हो जागा है ॥२४॥ मुक्त हुआ भी कुश के माजन लेप भागित्व को श्राप्न किया करता है । चतुर्थाद्य लेप भागी है और पित्राद्य सब पिण्ड भागी हुआ करते हैं । तात्पर्य यह है कि चौथी पीढ़ी से ऊपर वाले बंधन लेप भागी ही हुआ परत हैं और चार पुत्र तक पिण्डों के भागी होते हैं । उनका पिण्ड देने वाला सत्क होना है अतएव साप्त पोरुष सपिण्डय हुआ करता है ॥२५॥

## १७—श्राद्धयोग्यतीर्थानां विवर्णनम् ।

यस्मिन्काले च तच्छ्राद्धमनन्तफलदं भवेत् ।  
 कस्मिद् वासरभागे तु श्राद्धकृच्छ्राद्धमाचरेत् ॥१॥  
 तीर्थेषु केषु च कृतं श्राद्धं बहुफलं भवेत् ।  
 अपराह्णे तु संप्राप्ते अभिजिद्रोहिणोदये ॥२॥  
 यत्किञ्चिद्दीयते तत्र तदक्षयसुदाहृतम् ।  
 तीर्थानि कानि शस्तानि पितृणां वस्त्रभानि च ॥३॥  
 नामस्तस्तानि वक्ष्यामि संक्षेपेण द्विजोत्तमाः ! ।  
 पितृनाथं गयां नाम सवतीथं च शुभम् ॥४॥  
 यत्रास्ते देवदेवेश स्वयमेव पितामहः ।  
 तत्र वा पितृभिर्गीता गायामागमभीप्सुभिः ॥५॥  
 एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ।  
 यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥६॥  
 तथा वाराणसी पुण्या पितृणां वस्त्रभासदा ।  
 यत्राविमुक्तसाम्निध्यभुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥७॥

ऋषिगण ने कहा—हे भगवन् ! अब आप हम लोगों को यह बताने की कृपा कीजिएगा कि किस समय में वह किया हुआ श्राद्ध अनन्त फल का देने वाला होता है । दिन के किस भाग में श्राद्ध का करने वाला उस श्राद्ध का समचरण करे । वे कौन से तीर्थ हैं जिनमें किया हुआ श्राद्ध बहुत अधिक फल का देने वाला हुआ करता है ? “महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—दिन में जिस समय में अपराह्न सम्प्राप्त हो जावे उसी समय में अभिजिद्रोहिणोदय में जो कुछ भी दिया जाया है वह अक्षय कहा गया है । कौन २ से तीर्थ परम प्रशस्त हैं और पितरों के अधिक प्रिय हैं उनका भी सबका नाम से लेकर हम बतलाते हैं । हे द्विजोत्तमो ! यह सब संक्षेप में ही हम बतलायेंगे । गया नाम वाला पितृ तोष है जो कि समस्त तीर्थों में परम श्रेष्ठ एवं अति शुभ तीर्थ है ॥१, २, ३, ४॥ यह

गया वह उत्तम तीर्थ है जहाँ पर देवों के भी देवेश्वर पितामह स्वयमेव विराजमान रहा करते हैं। वहाँ पर पितृगणों के द्वारा यह एक गीता बही गयी है। इस गाथा के भाग को खीप्सा रखने के लिये यह है ॥४, ५॥ यह यही है कि सर्वदा बहुत से पुत्रों के प्राप्त करने की इच्छा रखनी चाहिये। उन बहुत सारे पुत्रों में यदि कोई एक भी बन्नी गया तीर्थ में चला जावे जयया अश्वमेध यज्ञ के द्वारा बन्नी यजन करे या नील घृण का वसजन करे। तात्पर्य यही है कि जब बहुत पुत्रों की कामना के अनुसार वे उत्पन्न होंगे तो उन में बन्नी कोई एक ऐसा भी समुत्पन्न हो सकता है जो गया श्रद्धादि करने वाला होवे। इसी भाँति वाराणसी परम पुण्यमयी पुरी है जो कि सदा ही पितृगण की अत्यन्त वल्लभा रही है जहाँ पर अविमुक्त सान्निध्य प्राप्त होता है जो भुक्ति और मुक्ति दोनों ही के फल को प्रदान करने वाला है ॥६, ७॥

पितृणा वल्लभं तद्वत् पुण्यञ्च विमलेश्वरम् ।

पितृतीर्थं प्रयागन्तु सर्वकामफलप्रदम् ॥८

वटेश्वरस्तु भगवान् माधवेन समन्वितः ।

योगनिद्राशयस्तद्वत् सदावसति केशव ॥९

दशादशमेधिकं पुण्यं गङ्गाद्वारं तथैव च ।

नन्दाथ ललिता तद्वत्तीर्थं मायापुरी शुभा ॥१०

तथा मित्रपदं नाम ततः केदारमुत्तमम् ।

गङ्गासागरमित्याहुः सर्वतीर्थमयं शुभम् ॥११

तीर्थं ब्रह्मसरस्तद्वच्छतद्रुसलिले ह्यनदे ।

तीर्थान्तु नमिषं नाम सर्वतीर्थफलप्रदम् ॥१२

गङ्गोद्भूतस्तु गोमत्या यतोद्भूतं सनातनम् ।

तथा यज्ञवराहस्तु देवदवश्च शूलभूत् ॥१३

यत्र तत्काञ्चनं द्वारमष्टादशभुजोहरम् ।

नमिस्तु हरिचक्रस्य शीर्षं यत्रामवत्पुरा ॥१४

उसी भाँति पितृगणों का अत्यन्त प्रिय और परम पुण्यमय विमलेश्वर है तथा पितृनीय प्रयाग तो समस्त कामनाओं के फलों का प्रदान करने वाला है ॥८॥ वटेश्वर भगवान् माधव से समन्वित है उसी भाँति से याग निद्रा में शयन करने वाले केशव वहाँ पर सदा ही निवास किया करते हैं ॥९॥ दशाश्वमेधिक परम पुण्यशील है और उसी तरह से गङ्गा द्वार है । उसी रीति से नन्दा और सलिता एव अतीव शुभ माया पुत्री तीर्थ है ॥१०॥ तथा मितपद नाम वाला और उससे माने अत्युत्तम केशव तीर्थ है । गङ्गा सागर जिसको कहा करते हैं वह तो सभी तीर्थों से परिपूर्ण शुभ है ॥११॥ ब्रह्मर एक महान् तीर्थ है और शतद्रु सलिल वाले हृद में नर्मिप नाम वाला तीर्थ है जो सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाला और सम्पूर्ण तीर्थों के फल को प्रदान करने वाला है ॥१२॥ गोमती में गङ्गोदभेद है जहाँ पर सनातन उद्भूत हुए हैं । तथा यज्ञ वराह और देवों के भी देव नृ भूत प्रभु हैं ॥१३॥ जहाँ पर वह नाचचन द्वार है और अठारह भुजाओं वाला भगवान् हर है । जहाँ पर प्राचीनी काल में भगवान् हरि व गुदभन पद्म की नेमि शीलें हा गयी थी ॥१४॥

तदेतन्नैमिपारण्य सर्वतीर्थनिषेवितम् ।

देवदेवस्य तत्रापि वाराहस्य तु दशनम् ॥१५॥

॥ प्रयाति न पूतात्मा नारायणपद यजेत् ।

शृतशील महापुण्य सर्वगापनिपूदनम् ॥१६॥

यत्रागते नारमिहस्तु स्त्रयमेव जनादन ।

तीर्थमिष्टमता नाम पितृणा वरलभ सदा ॥१७॥

मङ्गमे यत्र तिष्ठति गङ्गाया पितरः सदा ।

गुरुक्षेत्र महापुण्य सर्वतीर्थमन्वितम् ॥१८॥

तथा च मरयू पुण्या सर्वदेवनमस्तृता ।

इरावती नदा तद्वन् पितृतीर्थाधिवासिनो ॥१९॥

यमुना देविता वाल्मी चन्द्रभागा द्रुपदती ।



नदी वेणुमती पुण्या परा वेनवती तथा ॥२०

पितृणा वल्लभा ह्येताः श्राद्धोकोटिगुणा मताः ।

जम्बूमागं महापुण्यं यत्त मार्गोहिलक्ष्यते ॥२१

वह ही यह नैमिषारण्य है जिसको सभी तीर्थों ने समागत होकर निषेवित किया है । वहा पर भी देवों के भी देव बराह भगवान् के दर्शन होते हैं ॥ १५ ॥ जो भी कोई वहा पर जाया करता है वह परम पूत आत्मा वाला होकर फिर भगवान् नारायण के ही पद की चला जाया करता है । यह शीघ्र कर देने वाला, महान् पुण्य से युक्त और समस्त प्रकार के पापों का हनन कर देने वाला तीर्थ है ॥ १६ ॥ जहा पर स्वयं साक्षात् नारसिंह जनार्दन भगवान् विराजमान रहा करते हैं । एक मिथु-मती नाम वाला तीर्थ है जो सदा ही पितृगणों का परम वल्लभ है ॥ १७ ॥ जहाँ पर भार्गवरी गङ्गा के सङ्गम में पितर गण सदा ही समवस्थित रहा करते हैं । कुदक्षेत्र महान् पुण्यशाली तीर्थ है जो सम्पूर्ण तीर्थों से समुत्त रहा करता है ॥ १८ ॥ उसी प्रकार से सरयू नाम वाली सरिता अतीव पुण्यशालिनी है जिसको समस्त भगवत् नमस्कार किया करते हैं । उसी भाँति डरावनी नाम वाली नदी है जो पितृ तीर्थों की अधिवासिनी है ॥ १९ ॥ यमुना-देविका-काली-चन्द्रभागा-हृषिकेशी-वेणुमती नदी तथा परम पुण्यमयी वेनवती नदी ये सभी सरितायें पितृगणों की अतीव प्यारी हैं और श्राद्ध में करोड़ों गुण वाली मानी गयी हैं । जम्बूमागं महान् पुण्य-शाली है जहाँ पर मार्ग दिखलाई दिया करता है ॥ २०, २१ ॥

अद्यापि पितृतीर्थं तत्सर्वकामफलप्रदम् ।

नीलकुण्डमितिरुष्यात् पितृतीर्थं द्विजोत्तमा । ॥२२

तथा रुद्रसर. पुण्यं सरामानसमेव च ।

मन्दाकिनी तथाच्छोदा विपाशाय सरस्वती ॥२३

पूर्वमित्रपदन्तद्वद्वचनाय महाफलम् ।

शिप्रा नदी मह कालस्तथाकालञ्जर शुभम् ॥२४

वंशोद्भेद हरोद्भेदं गङ्गोद्भेदं महाफलम् ।  
 भद्रेश्वरं विष्णुपदं नमदाद्वारमेव च ॥२५॥  
 गयापिण्डप्रदानेन समान्याहुर्महर्षयः ।  
 एतानि पितृतीर्थानि सर्वपापहराणि च ॥२६॥  
 स्मरणादपि लोकानां किमु श्राद्धकृतानृणाम् ।  
 ओङ्कारपितृतीर्थञ्चकावेरीकपिलोदकम् ॥२७॥  
 सम्भेदश्चण्डवेगायास्तथैवामरकण्टकम् ।  
 कुरक्षेसाच्छतगुण तस्मिन् स्नानादिकं भवेत् ॥२८॥

हे उत्तम द्विजगणो ! आज भी वह पितृतीर्थ है जो सभी मनोरथों के फलों को प्रदान करने वाला है । वह पितृतीर्थ नीलकुण्ड इस शुभ नाम से विख्यात है ॥ २२ ॥ उसी तरह से रुद्रसर पुण्यमय है और मान-सरोवर भी महान् पुण्ययुक्त है । मन्दाकिनी-अञ्छोदा-विषाश-सरस्वती ये सभी सरिताये महान् पुण्यशालिनी हैं ॥ २३ ॥ उसी भाँति पूर्व में मित्र पद है और घैघनाथ तीर्थ महान् फल देने वाला है । भद्रेश्वर-विष्णुपद—नमंदा द्वार—क्षिप्रा नदी महाकाल तथा परम शुभ कालजर वंशोद्भेद—हरोद्भेद और गङ्गोद्भेद महान् फल प्रदान करने वाले सभी पुण्य तीर्थ एव स्थल हैं ॥ २४, २५ ॥ इन सभी तीर्थों को महर्षि-गण गयातीर्थ में पिण्ड प्रदान करने के समान ही कहा करते हैं । ये सभी पितृतीर्थ हैं और समस्त प्रकार के पापों का सहरण करने वाले हैं ॥ २६ ॥ इन उपर्युक्त सभी तीर्थों की ऐसी महिमा है कि इनके केवल स्मरण मात्र से ही सब पाप नष्ट हो जाया करते हैं और जो लोग इनमें जाकर श्राद्ध किया करते हैं उनके पुण्य-फल के विषय में तो कहा ही गया जाये । ओङ्कार पितृतीर्थ है और कावेरी—कपिलोदक—चण्डवेगा का सम्भेद तथा अमर कण्टक ऐसा महान् तीर्थ है उसमें स्नानादिक का फल कुरक्षेत्र से भी सौ गुना अधिक हुआ करता है ॥ २७, २८ ॥

शुक्रतीर्थस्य विख्यातं तीर्थं सोमेश्वर परम् ।

सवव्याघ्रिहर पुष्प नतकोटिफनाग्रिम् ॥२६॥  
 श्राद्धे दाने तदा हामे म्याघ्राये जलमग्निघी ।  
 कामाग्रहेण नाम तदा चर्मणनानदी ॥२७॥  
 गामती वरुणा तद्वतीर्यमाशनसम्परम् ।  
 भैरव भृगुतुङ्गश्च गोतीतीर्थमम् ॥२८॥  
 तीर्थ वनायक नाम भद्रेश्वरमत परम् ।  
 तथा पापहर नाम पुष्पाय तपती नदी ॥२९॥  
 मूलनापीपयोष्णी च पयाष्णासङ्गमस्तथा ।  
 महाबोधि पाटला च नागतीथमवन्तिका ॥३०॥  
 तयावेणा नदी पुण्या महाशाल तथैव च ।  
 महारद्र महालिङ्ग दशार्णा च नदी शुभा ॥३१॥  
 शतस्र्वा शताह्वा च तथा विश्वपद परम् ।  
 अङ्गारवाहिका तद्वन्नदी ती शोणपथरी ॥३२॥

शुक्र तीर्थ परम विख्यात है तथा सोमेश्वर भी परमोत्तम तीर्थ है जो सभी व्याघ्रियों के हरण करने वाला तथा महान् पुष्पमयी और शत-कोटि फलों से भी अधिक फल प्रदान करने वाला है ॥२६॥ श्राद्ध करने में—दान देने में—होम करने में—स्वाध्याय करने में तथा केवल जल की सन्निधि में ही निवास करने में अतीव अधिक पुष्प फल होता है । एक कामाग्रहेण नाम वाला तीर्थ है तथा चर्मण्वती नदी है उसी भाँति गोमती एवं वरुणा नदी महान् तीर्थ हैं । उसी भाँति आशनस परम तीर्थ है । भैरव भृगुतुङ्ग और गोती तीर्थ सर्वोत्तम तीर्थ हैं ॥२८॥ २९॥ एक वनायक नाम वाला तीर्थ है और इसमें भी परे भद्रेश्वर तीर्थ है तथा पापहर तीर्थ है । एवं परम पुष्पमयी तपती नाम वाली नदी है ॥३०॥ मूलनापी—पयोष्णी तथा पयोष्णी सङ्गम—महाबोधि—पाटला—नागतीर्थ—अवन्तिका तथा पुण्य मयी वरुणा नदी—महाशाल—महारद्र—महालिङ्ग—तथा दशार्णा परम शुभ श्रुति है । शतस्र्वा—शताह्वा—परम विश्वपद—अङ्गार

वाहिका और इसी प्रकार से शोण और घर्षर ये दो परम विनाश पुण्य शाली नद हैं । ये सभी अत्युत्तम तीर्थ स्थल हैं ॥३३, ३४, ३५॥

कालिका च नदी पुण्या वितस्ता च नदी तथा ।  
 एतानि पितृतीर्थानि शस्यन्ते स्नानदानयोः ॥३६॥  
 श्राद्धमेतेषु यद्दत्तन्तदनन्तफल स्मृताम् ।  
 द्रोणी वाटनदी धारासरित् क्षीरनदी तथा ॥३७॥  
 गोकर्णं गजकर्णञ्च तथा च पुरुषोत्तम ।  
 द्वारका कृष्णतीर्थञ्च तथा बुधसरस्वती ॥३८॥  
 नदी मणिमती नाम तथा च गिरिकर्णिका ।  
 धूतपाप तथा तीर्थं समुद्रो दक्षिणस्तथा ॥३९॥  
 एतेषु पितृतीर्थेषु श्राद्धमानस्यमशुते ।  
 तीर्थं मेघकरं नाम स्वयमेव जनादेन ॥४०॥  
 यत्र शाङ्गधरो विष्णुर्मुखलायामवस्थित ।  
 तथा मन्दोदरी तीर्थं तीर्थं चम्पा नदी शुभा ॥४१॥  
 तथा सामलनाथश्च महाशालनदी तथा ।  
 चक्रवाक चर्मकोट तथा जन्मेश्वर महत् ॥४२॥

कालिका नदी परम पुण्य शालिनी ॥ तथा वितस्ता नाम धारिणी नदी है । ये सब जो यहा तक बनाये गये हैं पितृ तीर्थ कहलाते हैं और ये सभी स्नान तथा दान करने में अधिक प्रशस्त माने गये हैं ॥३६॥ इन उक्त तीर्थों में जो भी कोई श्राद्ध दिया जाता है वह अनन्त फलों का प्रदान करने वाला हुआ करता है ऐसा ही बताया गया है । इनके भी अनिरुक्त और भी महान् तीर्थ हैं—द्रोणी—वाट नदी—धारा सरित्—क्षीर नदी—गोकर्ण—गजकर्ण—पुरुषोत्तम—द्वारका—कृष्णा तीर्थ—बुध सरस्वती—मणिमती नदी—गिरिकर्णिका—धूतपाप नाम वाला तीर्थ तथा दक्षिण समुद्र ये सभी महा महिमा भव तीर्थ हैं, इनमें जो कि पितृतीर्थ हैं जो भी श्राद्ध दिया जाता है उसकी अनन्त फल शानिना हो जाया करती है ।

एक मेष कर नामक तीर्थ है जहाँ पर साक्षात् भगवान् जनार्दन स्वयं ही विराजमान रहा करते हैं ॥३७, ३८, ३९, ४०॥ जिस पुण्य मय क्षेत्र में शाङ्ग घनुष को धारण करने वाले भगवान् विष्णु उमरी मेखला में समवस्थित रहा करते हैं ; उसी प्रकार से एक मन्दोदरी नाम वाला तीर्थ है जोर दूसरा चम्पा नाम वाली परम धुम नदी है जो एक तीर्थ स्थल है ॥४१॥ उसी तरह से सामल नाथ और महा शाल नदी है । चक्रवाक, चर्म कोट और महान् तीर्थ जन्मेश्वर नाम वाला है ॥४२॥

अजुंन त्रिपुर चैव सिद्धेश्वरमतः परम् ।  
 श्रीशैल शाङ्कर तीर्थं नारसिंहमतः परम् ॥४३॥  
 महेन्द्रञ्च तथा पुण्यमथ श्रीरङ्गसंज्ञितम् ।  
 एतेष्वपि सदा श्राद्धमनन्तफलदं स्मृतम् ॥४४॥  
 दशनादपि चैतानि सद्यः पापहराणि वै ।  
 तुङ्गभद्रा नदी पुण्या तथा भीमरथी सरित् ॥४५॥  
 भीमेश्वरं कृष्णवेणा कावेरी कुङ्कुमलानदी ।  
 नदी गोदावरी नाम त्रिसंख्यातीर्थमुत्तमम् ॥४६॥  
 तीर्थं सौपम्यकं नाम सर्वतीर्थं नमस्कृतम् ।  
 यत्रास्ते भगवानीशः स्वयमेव त्रिलोचनः ॥ ४७॥  
 श्राद्धमेतेषु सर्वेषु कोटिकोटिगुणं भवेत् ।  
 स्मर- १) दीप पापानि नश्यन्ति शतघा द्विजः ॥४८॥  
 श्रीपर्णी ताम्रपर्णी च जयातीर्थं नमुत्तमम् ।  
 तथा मत्स्यनदी पुण्या शिवधारं तथैव च ॥४९॥

अजुंन-त्रिपुर-इससे भी परे सिद्धेश्वर-श्रीशैलशाङ्कर तीर्थ और इससे पर नारसिंह नामक तीर्थ है ॥४३॥ उसी भाँति पुण्य घाली महेन्द्र और श्रीरङ्ग नाम वाले तीर्थ हैं । इन तीर्थों में भी दिया हुआ आद्य अन्न फलों के प्रदान करने वाला हुआ करता है । आद्य स्नान आदि के द्वारा होने वाले पुण्य के विषय में तो कहा ही क्या जावे ये तो ऐसे महान्

प्रभाव शाली तीर्थ हैं कि इनसे केवल दशन भात्र से ही तुरन्त सब पापों का हरण हो जाया करता है । तुङ्गभद्रा पुण्यमयी नदी है तथा भीमरथी नाम वाली सरित् है—भीमेश्वर—कृष्ण वेणा—बावरी—कुड्ममा नदी—गोदावरी सरिता और उत्तम त्रिमन्व्या नाम वाला तीर्थ है । त्रैलोक्यक नामधारी तीर्थ सभी तीर्थों के द्वारा बन्धमान होता है जहाँ पर भगवान् ईश स्वयं ही साक्षात् त्रिलोचन प्रभु विराजमान रहा करते हैं । इन उल्लिखित समस्त तीर्थों में किया या दिया हुआ आठ कराडो-करोडो गुणों वाला हुआ करता है । हे द्विज गण ! इन तीर्थों की तो ऐसी विलक्षण महिमा है कि इनके केवल स्मरण मात्र से ही पाप शतघा हरण हो जाया करते हैं । श्रीपर्णी—ताम्रपर्णी—उत्तमजगा तीर्थ—पुण्यमयी मत्स्य नदी और शिवधार ये भी महान् तीर्थ हैं ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

भद्रतीर्थञ्च विख्यात पम्पातीर्थञ्च शाश्वतम् ।

पुण्य रामेश्वर तद्वदेलापुरमल पुरम् ॥५०॥

अङ्गभूतञ्च विख्यातमानन्दकमल बुधम् ।

आम्रातकेश्वर तद्वदेकाभ्रकमत परम् ॥५१॥

गोवधन हरिश्चन्द्र कृपुचन्द्र पृथूदरम् ।

सहस्राक्ष हिरण्याक्ष तथा च इदली नदी ॥५२॥

रामाधिवासस्तनापि त । सौमित्रिसङ्गम ।

इन्द्रकील महानादन्तथा च प्रियमेलकम् ॥५३॥

एतान्यपि सदा आदौ प्रशस्तान्यधिकानि तु ।

एतेषु सर्वदेवानां सान्निध्यं दृश्यते यतः ॥५४॥

दानमेतेषु सर्वेषु दत्ता कोटिशताधिकम् ।

वाहूदा च नदी पुण्या तथा सिद्धवन शुभम् ॥५५॥

तीर्थं पाशुपत नाम नदी पार्वतिका शुभा ।

आदमेतेषु सर्वेषु दत्ता कोटिशतोत्तरम् ॥५६॥

भद्र तीर्थ परम विष्णुत तीर्थ है तथा शाश्वत पम्मा तीर्थ है—  
परम पुण्यमय रामेश्वर है और उसी भक्ति एलापुर नाम वाला परमोत्तम  
पुर है—अङ्गभूत विष्णुत तीर्थ है—आनन्द कमल—बुध—धाम्नात-  
केश्वर—इसके आगे एकाम्भक तीर्थ है ॥५०, ५१॥ गोवर्द्धन—हरिश्चन्द्र  
—कुपुचन्द्र—पृथूदक—महासाल—हिरन्याक्ष—कवली नदी—बही पर  
रामाचिवास है तथा सीमित्रि सङ्गम नाम वाला तीर्थ है । इन्द्रकील—  
महानाद— प्रिय मेलक नाम वाले तीर्थ हैं ॥५२॥ ये सभी तीर्थ सब  
आद देने के लिये परम अधिक प्रशस्त माने गये हैं । एक बाहुदा नाम  
वाली भक्ति पुण्य मयी नदी है तथा परम शुभ सिद्ध बन नाम वाला तीर्थ  
है ॥५३, ५४॥ एक पाशुपत नाम वाला तीर्थ है तथा परम शुभ पार्वतिका  
नाम धारिणी नदी है—इन तीर्थों में दिया हुआ आद कोटिघात से भी  
अधिक पुण्य-फल के प्रदान करने वाला हुआ करता है ॥५५, ५६॥

तथैव पितृतीर्थेऽन्तु यत्र गोदावरी नदी ।  
युतालिङ्गसहस्रेण सर्वान्तरजलावहा ॥५७॥  
जामदग्न्यस्य तत्तीर्थं क्रमादायातमुत्तमम् ।  
प्रतीकस्य भयाद्भिन्नं यत्र गोदावरी नदी ॥५८॥  
तत्तीर्थं हृदयकव्यानामप्सरोयुगसंशितम् ।  
आद्याग्निकार्यदानेषु तथा कोटिघाताधिकम् ॥५९॥  
तथा सहस्रलिङ्गञ्च राघवेस्वरमुत्तमम् ।  
सेन्द्रफेना नदी पुण्या यत्रेन्द्रः पतितः पुरा ॥६०॥  
निहत्य नमुचि शक्रस्तः सा स्वर्गमाप्तवान् ।  
तत्र दत्त नरं आदमनन्तफलदं भवेत् ॥६१॥  
तीर्थेऽन्तु पुष्कर नाम शालग्राम तथैव च ।  
सामपाजञ्च विद्यात यत्र बंश्वानरान्यम् ॥६२॥  
तीर्थं सारस्वत नाम स्वामितीर्थं तथैव च ।  
मलन्दरानदी पुण्या कौशिकीचन्द्रिका तथा ॥६३॥

उसी भाँति वह पितृ तीर्थ है जहाँ पर गोदावरी नदी है जो सहस्र लिङ्गों से समुत सर्वान्तर अलावहा है ॥५७॥ वह महर्षि जामदग्न्य का तीर्थ है जो अत्युत्तम है और त्रम से समायाग हुआ है । प्रतीक के भय से भिन्न है जहाँ पर गादावरी नदी है ॥५८॥ वह तीर्थ हव्य और कश्यप का है जो अप्सरो युग की सजा वाला है । यह श्राद्ध—अग्नि वाय्य और दानों के देने में सँवडो करोड अधिक फल देने वाला है ॥५९॥ उसी भाँति सहस्र लिङ्ग—उत्तम राघवेश्वर—पुन्य दालिनी सेन्द्रपेना नदी है जिस स्थल पर प्राचीन काल में इन्द्र पतित हो गया था । इन्द्र ने नभुवि का निहृनन करके फिर धीरे तपश्चर्या की थी जिसके प्रभाव से उसने स्वर्ग को प्राप्त किया था । वहाँ पर मानवी के द्वारा दिया हुआ श्राद्ध अनन्त फल का प्रदान करने वाला हुआ करता है ॥६०, ६१॥ पुष्कर नाम वाला तीर्थ है और उसी तरह से शालग्राम तीर्थ है । सोमपान तीर्थ भी परम विख्यात तीर्थ है जहाँ पर वन्वानर का आलय है । एक सारस्वत नाम वाला तीर्थ है तथा वही पर कौशिकी और चन्द्रिका नामों वाली भी दो नदियाँ हैं जो कि महान् तीर्थ हैं ॥६२, ६३॥

वेदभावाथ वैरा च पयोष्णी प्राङ्मस्तापरा ।

कावेरी चोत्तरापुण्या तथाजालधरोगिरि ॥६४॥

एतेषु श्राद्धतीर्थेषु श्राद्धमानन्त्यमश्नुते ।

लोहदण्ड तथा तीर्थं चित्रकटस्तथैव च ॥६५॥

विन्ध्ययोगश्च गङ्गायास्तथा नदीतट शुभम् ।

कुब्जाम्रन्तु तथा तीर्थं उवशी पुलिनतथा ॥६६॥

ससारमोचन तीर्थं तथैव ऋणमोचनम् ।

एतेषु पितृतीर्थेषु श्राद्धमानन्त्यमश्नुते ॥६७॥

अट्टहास तथा तीर्थं गौतमेश्वरमेव च ।

तथा वशिष्ठ तीर्थं तु हारित तु तत परम् ॥६८॥

ब्रह्मावर्त कुशावत हयतीर्थं तथैव च ।

पिण्डारवञ्च विख्यात शङ्खोद्धार तथैव च ॥६९॥



घण्टेश्वरं विल्वकञ्च नीलपवंतमेव च ।

तथा च धरणीतीर्थं रामतीर्थं तथैव च ॥५०॥

इनके अतिरिक्त वेदार्थ-वैरा-पयोप्पु-प्राङ् मन्त्रापण-कावेरी-उत्तरा  
पुण्या नदियाँ भी परम पुण्यमय तीर्थं स्वहृत्पा हैं तथा आलम्बर नामक  
बही पर एक गिरि है ॥६४॥ ये सभी आद्य देने वाले तीर्थ हैं जिनमें  
दिया हुआ आद्य अनन्तता के फल दाता हो जाता करता है । लोहदण्ड  
नाम बानों तीर्थ है तथा चित्रवूट तीर्थ है ॥६५॥ विन्ध्य योग और  
गङ्गा का भुम नदी तट है । एक कुम्भार तीर्थ है और चर्वशा पुलिन  
तीर्थ है । संसार मोचन और ज्ञान मोचन नाम वाले भी तीर्थ हैं—इन  
पितृ तीर्थों में दिया हुआ आद्य आद्य दे करने वाले मानव को अनन्त कर्मों  
का भोग कराया करता है ॥६६, ६७॥ अट्टहास तीर्थ है गीतनेश्वर  
तीर्थ है । एक वणिष्ठ नामक तीर्थ है और इत्थं जाये हारिठ नाम वाला  
तीर्थ है । ब्रह्मावर्त—कुमावर्त—हयतीर्थ—विन्ध्यात निम्नांक तीर्थ  
तथा शङ्कोधार—घण्टेश्वर—विल्वकञ्च—नील पवंत—धरणी तीर्थ तथा  
रामतीर्थ ये सभी पितृ तीर्थ हैं जिनमें आद्य दाता आद्य देकर परमरत की  
प्राप्ति किया करते हैं ॥६८, ६९, ७०॥

• अश्वतीर्थञ्च विष्णोस्तमनन्त आर्घदानयोः ।

तीर्थं वेदधिरो नाम तथैवोषधती मदी ॥७१॥

तीर्थं वसुप्रदं नाम न्छागलाण्डं तथैव च ।

एतेषु आद्यदातारः प्रयान्ति परम पदम् ॥७२॥

तथा च बदरीतीर्थं गङ्गतीर्थं तथैव च ।

जयन्त विजयञ्चैव शुक्रतीर्थं तथैव च ॥७३॥

ग्रीपतेश्च तथा तीर्थं तीर्थं रं वतकं तथा ।

तथैव शारदातीर्थं भद्रकलिेश्वरं तथा ॥७४॥

वैकुण्ठतीर्थञ्च परं भीमेश्वरमपि वा ।

एतेषु आद्यदातारः प्रयान्ति परमा गतिम् ॥७५॥

तीर्थं मातृगृह नाम करवीरपुर तथा ।  
 कुशेशरञ्च विख्यात गौरीशिखरमेव च ॥७६॥  
 नकुलेशस्य तीर्थञ्च कदमास तथैव च ।  
 दिण्डिपुण्यकरं तद्वत् पुण्डरीकपुर तथा ॥७७॥

श्राद्ध और दान—इन दोनों ही के लिये अश्व तीर्थ परम विख्यात है । एक वेदशिर नाम वाला तीर्थ है और ओधवती नदी है । वसुप्रद तीर्थ है और उसी तरह से एक छागलाण्ड नामक तीर्थ है । इन तीर्थों में श्राद्ध दाना लोग परमोत्तम फल को प्राप्त किया करते हैं ॥७१॥ ७२॥ बदरी तीर्थ—गण तीर्थ—जयन्त—विजय—शुक्र तीर्थ—श्रीपति का तीर्थ—रैवनक तीर्थ—शारदा तीर्थ—मङ्गलेश्वर—बैकुण्ठ तीर्थ—भोमेश्वर तीर्थ—ये सभी तीर्थ पितृ तीर्थ हैं और इन तीर्थों में पहुँच कर श्राद्धों के देने वाले मानव परम गति की प्राप्ति का लाभ लिया करते हैं ॥७३॥ ७४॥ मातृगृह नाम वाला तीर्थ—करवीरपुर—कुशेश्वर—विख्यात गौरी शिखर नाम का तीर्थ—नकुलेश का तीर्थ—कदमास—दिण्डि पुण्यकर और पुण्डरीक पुरनाम वाला तीर्थ है ॥७५॥ ७६॥ ७७॥

सप्त गोदावरी तीर्थं सवंतीर्धेश्वरम् ।  
 तत्र श्राद्धं प्रदातव्यमनन्तफलमोप्सुभिः ॥७८॥  
 एषतृदशतः प्रोक्तस्तीर्थानां सग्रहोमया ।  
 धामोशोऽपिनशक्नोतिविस्तरान् किमुमानुषः ॥७९॥  
 सत्य तीर्थं दया तीर्थं तीर्थं मिन्द्रियनिग्रहः ।  
 वर्णाश्रमाणां गेहेऽपि तीर्थन्तु समुदाहृतम् ॥८०॥  
 तएत्तीर्थेषु यच्छाद्धं तत्कोटिगुणमिष्यते ।  
 यस्मात्तस्मात् प्रयत्नेन तीर्थं श्राद्धं समाचरेत् ॥८१॥  
 प्रातः कालोमुहूर्तास्त्रीन् सङ्गवस्तावदेव तु ।  
 गान्ध्याह्नस्त्रिमुहूर्तस्यादपराह्णस्ततः परम् ॥८२॥  
 सापाह्नस्त्रिमुहूर्तः स्याच्छाद्धं सत्रनकारमेव ।

राक्षसी नामसा वेला गहिता सर्वं रमंसु ॥८३

अहनो मुहूर्तो विख्याता दश पञ्च च सर्वदा ।

तत्राष्टमो मुहूर्तोय सकाल कुतपः स्मृत ॥८४

सप्त गोदावरी तीर्थं समस्त तीर्थों का ईश्वर तीर्थ है । जो श्राद्ध के देने के अनन्त फल प्राप्त करने के इच्छुक मनुष्य हैं उनको वहा पर श्राद्ध अवश्य ही देना चाहिये ॥७८॥ यह श्राद्ध क उद्देश्य को लेकर हमने तीर्थों का एक सग्रह आप लोगों के समक्ष में कह दिया है । इन समस्त तीर्थों का विस्तार तो बहुत ही विशाल है जिसको विचारे मानव की तो शक्ति ही क्या है वृद्धस्पति भी नहीं कह सकते हैं जो बाणी के ईश कहे जाते हैं ॥७९॥ वस्तुतः विचार किया जावे तो सत्य का पूर्ण परिपालन करना भी तीर्थ है—प्राणिमात्र पर दया करना भी एक प्रकार का महान् तीर्थ है तथा अपनी सब इन्द्रियों पर पूर्ण निग्रह रखना भी तीर्थ है । वनों और आश्रमों का गेह में भी इस प्रकार से तीर्थ विद्यमान है जो समुद्राह्वन किये गये हैं । इन तीर्थों में जो भी श्राद्ध दिया जाता है उसका करोड़ गुना फल हुआ करता है । अतएव जिस-तिस प्रयत्न से तीर्थ में अवश्य ही मनुष्य को श्राद्ध देना चाहिये ॥७९, ८०॥ प्रातः काल में तीन मुहूर्तों तक उतना ही सङ्गव होता है । फिर मध्याह्न में तीन मुहूर्तों वाला होता है उसके पश्चात् अपराह्न होता है । सायाह्न में तीन मुहूर्तों वाला है उसमें श्राद्ध कभी नहीं करना चाहिये । यह राक्षसी नाम वाली वेला हुआ करती है जो सभी कर्मों में गहिता मानी गयी है । सर्वदा दिन के मुहूर्तों की दश ओर पाँच घटियाँ विख्यात हैं । उनमें जो अष्टम मुहूर्त होता है उसी काल को कुतप काल कहा गया है ॥८१, ८२, ८३, ८४॥

मध्याह्ने सर्वदा यस्मान्मन्दोभवति भास्करः ।

तस्मादनन्तफलदस्तदारम्भो भविष्यति ॥८५

मध्याह्नसङ्ग पात्रञ्च तथा नेपालवम्बल ।

रूप्यं दर्भास्तिला गात्रो दौहित्रश्चाष्टमः स्मृतः ॥८६॥  
 पाप कुत्सितमित्याहुस्तस्य सन्तापकारिणः ।  
 अष्टावेतेयतस्तस्मात् कुतपाइति विश्रुता ॥८७॥  
 ऊर्ध्वं मूहूर्त्तं कुतपाद्यन्मूहूर्त्तचतुष्टयम् ।  
 मूहूर्त्तपञ्चकञ्चतत्स्वघाभवन मिष्यते ॥८८॥  
 विष्णोर्देहसमुद्भूता कुशाः कृष्णास्तिलास्तथा ।  
 श्राद्धस्य रक्षणायासमेतत् प्राहुर्दिवौकसः ॥८९॥  
 तिलोदकञ्जालिर्देय जलस्थोस्तीर्थवासिभिः ।  
 सदर्भहस्तेनैकेन श्राद्धमेव विशिष्यते ॥९०॥  
 श्राद्धसाधनकाले तु पाणिनैकेन दीयते ।  
 तर्पणन्तु भयेनैव विधिरेप सदा स्मृतः ॥९१॥

अतः मध्याह्न काल में सर्वदा जिस समय में भगवान् भास्कर मन्दीभूत हो जाया करत हैं। उस काल में थोड़ा दिया हुआ अनन्त फल देने वाला होता है सभी उसका आरम्भ होना ॥८५॥ मध्याह्न खज्ज-पात्र-नेपाल-जम्बल-रूप्य-दर्भ-तिल-गोएँ और आठवा दौहित्र कहा गया है। सन्ताप वाली उसका कुत्सित पाप कहा जाता है। क्योंकि ये आठ हैं इसी लिये ये कुतुप बहे गये हैं और इसी नाम से विद्युत भी हैं ॥८६, ८७॥ कुतुप मूहूर्त्त से ऊर्ध्व में जो चार मूहूर्त्त हैं इस तरह ॥ यह मूहूर्त्त पञ्चक स्वघा का भवन अभीष्ट हुआ करता है ॥८८॥ कुश और कृष्ण तिल ये भगवान् विष्णु के देह से ही समुद्भूत हुए हैं ये थोड़ा की रसा करने के लिये समय होते हैं—ऐसा देवगण ने कहा है ॥८९॥ तिलों से युक्त जल की अञ्जलि जल में स्थित हुए तीर्थवासियों को देनी चाहिए। दर्भ के सहित एक हाथ से करे। इस प्रकार से थोड़ा विशेषता वाला होता है ॥९०॥ श्राद्ध के साधन काल में एक ही हाथ से दिया जाता है। जो तर्पण होता है भय ही से हाता है। सदा यह विधि बही गयी है ॥९१॥

पुण्यं पवित्रमायुष्यं सर्वपापविनाशनम् ।

पुरा भवत्येन कथितन्तीर्थं श्राद्धानुकीर्तनम् ॥

मृणोति यः पठेद्वापि श्रीमान् सञ्जायते नरः ॥६२॥

श्राद्धकाले च वक्तव्यं तथा तीर्थनिवासिभिः ।

सर्वपापोपशान्त्यर्थं मलक्ष्मीनाशनं परम् ॥६३॥

इदं पवित्रं यशसो निधानमिदं महापापहरञ्च पुंसाम् ।

ब्रह्माकरं रुरपि पूजितञ्च श्राद्धस्य माहात्म्यमुच्यते तद्वत् ॥६४॥

मन्त्रि भूमजी ने कहा—इन तीर्थों में श्राद्ध करने का उत्तुष्टीर्तन प्राचीन काल में भक्तस्य भगवान् ने कहा था । यह वस्तु दुःखद—मृत्यु का वर्धन करने वाला और सब प्रकार के मृत्यु में मृत्यु वृत्तों का विनाश करने वाला है । जो इन तीर्थों श्राद्ध-पूजा का करण करता है अथवा इसको पढ़ता है वह मृत्यु का दुःख हटाने की काम प्रवृत्ति किया करता है ॥६२॥ श्राद्ध के समय में मृत्यु-वृत्तों का दूध बोलना चाहिये । यह सर्व पापों के तद्वत्ति के मृत्यु वृत्तों को दूर करने का मास करने वाला होता है ॥६३॥ यह वस्तु मृत्यु के मृत्यु वृत्तों का दूध है और पुण्य के महाद पापों का मृत्यु वृत्त के दूध है । ब्रह्मा-अकरं और वर के द्वारा भी विनाश है । मृत्यु वृत्त के दूध । पुण्य इस श्राद्ध के माहात्म्य को मृत्यु वृत्त के दूध है ॥६४॥

ताभिः सखीभिः सहिताः सर्वाभिर्मुदिता भृशम् ।  
 क्रीडन्त्योऽभिगताः सर्व्वाः पिबन्त्यो मधु माधवम् ॥३॥  
 खादन्त्यो विविधान् भक्ष्यान् फलानि विविधानि च ।  
 पुनश्च नाहुपो राजा भुगलिप्सुर्द्वन्द्वया ॥४॥  
 तमेव देशः संप्राप्तो जललिप्सुः प्रतपितः ।  
 ददर्श देवयानीञ्च शमिष्ठान्ताश्च योषितः ॥५॥  
 पिबन्त्यो ललनास्ताश्च दिव्याभरणभूषिताः ।  
 उपविष्टाञ्च ददृशे देवयानी शुचिस्मिताम् ॥६॥  
 रूपेणाप्रतिमा तामा स्त्रीणामर्चयेवराननाम् ।  
 शमिष्ठया सेव्यमाना पादसम्वाहनादिभिः ॥७॥

शौनक मुनि ने कहा—हे नृपोत्तम ! इसके अनन्तर बहुत लम्बे समय के बाद वर वर्णिनी वह देवयानी उसी वन में क्रीड़ा बिहार करने के लिये निकल कर गयी थी ॥१॥ उस समय में एक सहस्र दासी और शमिष्ठा के साथ उसी देश में वह सम्प्राप्त हुई थी और उसने इच्छा के अनुसार वहाँ पर विश्ररण किया था ॥२॥ उन्हीं सब सखियों के साथ अत्यन्त ही मुदिन थी । सब क्रीड़ा करती हुई अभिरत थी तथा माधव मधु का पान कर रही थी । अनेक प्रकार के भक्ष्यों को खा रही थी तथा नाना भौति के फलों का अशन करती जा रही थी । पुनः भृगया को इच्छा रखने वाला नाहुप राजा द्द्वन्द्व्या से उसी देश में सम्प्राप्त हो गया था । वह राजा जल की लिप्सा रखने वाला और अस्याधिक प्यासा था । उसने देवयानी को तथा शमिष्ठान्त अन्य सभी योषितों को वहाँ पर देखा था । ॥३, ४, ५॥ वे सभी ललनाएँ दिव्य आभरणों से विभूषित थीं और पान कर रहीं थी । वही पर उसने शुचि स्मित वाली उपविष्ट देवयानी को भी देखा था ॥६॥ वह देवयानी उन समस्त ललनाओं के मध्य में विराजमान रूप लावण्य से अनुपम और परम सुन्दर एवं श्रेष्ठ मुख वाली थी शमिष्ठा के द्वारा वह सेव्यमान थी जो कि देवयानी के पादों का सम्वाहन आदि कर रही थी ॥७॥

द्वाभ्यां कन्यासहस्राभ्यां द्वे कन्ये परिवारिते ।  
 गोत्रे च नामनी चैव द्वयोः पृच्छाम्यतो ह्यहम् ॥८॥  
 आरुषास्याम्यहमादस्ववचनमेनराधिपः ।  
 शुक्रो नाम, सुरगुरः सुता जानीहितस्य माम् ॥९॥  
 इयं च मे सखी दासी यत्राह तत्र गामिनी ।  
 दुहिता दानवेन्द्रस्य शर्मिष्ठा वृषपर्वणः ॥१०॥  
 कथं तु ते सखी दासी कन्येय वरवर्णिनी ।  
 अमुरेन्द्रसुता मुञ्चु ! पर कौतूहलं हि मे ॥११॥  
 सवमेव नरव्याघ्र ! विधानमनुवर्त्तते ।  
 विधिना विहितं ज्ञात्वा मा विवित्रमन कृथाः ॥१२॥  
 राजवद्रूपवेपी ते ब्राह्मी वाचं विशपि च ।  
 किं नामा त्वं कुतश्चासिकस्य पुत्रश्च शंसते ॥१३॥  
 सहाचर्येण वेदो मे कृतस्नः क्षुतिपथं गतः ।  
 राजाहं राजपुत्रश्च ययातिरिति विवृतः ॥१४॥

राजा ययाति ने कहा—ये दो सहस्र कन्याओं के द्वारा तो कन्याएं परिवारित हैं । अतएव मैं आप दोनों के गोत्र और नाम पूछता हूँ ॥८॥ देवयानी ने कहा—हे नराधिप ! मैं अब कहती हूँ, आप मेरे वचन को सहज कीजिए । सुक्राचार्य नाम वाले असुरों के गुरु हैं उन्हीं की पुत्री मुझको आप जानिये ॥९॥ यह मेरी सखी दासी है । जहाँ पर भी मैं जाती हूँ वहाँ पर यह भी मेरी ही साथ में गमन करने वाली होती है । यह तो दानवेन्द्र वृषपर्वा की दुहिता शर्मिष्ठा है ॥१०॥ राजा ययाति ने कहा—यह वरवर्णिनी कन्या तुम्हारी दासी सखी कैसे हो गई है ? हे मुञ्चु ! यह तो अमुरेन्द्र की सुता है । यह आपकी दासी कैसे बन गई है ? मेरे हृदय में इस बात का अत्यधिक कौतूहल हो रहा है । ॥११॥ देवयानी ने कहा—हे नर व्याघ्र ! इस ससार में सभी कुछ विधाता के द्वारा किये हुए विधान वा ही अनुवर्त्तन किया करता है ।

विधि के द्वारा किये हुए विधान को समझ कर मन में किसी भी प्रकार का कीतूहल मत करिये ॥१२॥ आपका रूप और वेष-भूषा तो एक राजा के ही समान है और जो वाणी बोल रहे हैं वह ब्राह्मी है । आप यद वतलाइये कि आपका शुभ नाम क्या है और घाघ वहा से आये हैं तथा किसके आप पुत्र हैं ? ॥१३॥ ययाति ने कहा—सम्पूर्ण वेद का अध्ययन मैंने ग्रहण्यं का पूर्ण पावन करते हुए किया है—मैं अवश्य ही एक राजा और राजा का ही पुत्र हूँ तथा मेरा नाम ययाति—यह विधुत है ॥१४॥

केन चार्थेन नृपते ! ह्येन देश समागत ।  
 जिष्णुर्ध्वारि यत्किञ्चिदथवा मृगलिप्सया ॥१५॥  
 मृगलिप्मुरह भद्रे ! पानीयार्थमिहागत ।  
 बहुधाप्यनुयुक्तोऽस्मि त्वमनुज्ञातुमर्हसि ॥१६॥  
 द्वाभ्याकन्यासहस्राभ्यादास्याशमिष्ठयासह ।  
 त्वदधीनास्मिभद्र तेसखे । भर्ताचमेव ॥१७॥  
 विध्यौशनसिभद्रतेनत्वदर्होऽस्मिभामिनि ।  
 अविवाह्या स्मराजानोदेवयानि । पितुस्तव ॥१८॥  
 ससृष्ट ब्रह्मणा क्षत्र क्षत्र ब्रह्मणि सश्रितम् ।  
 ऋपिश्च ऋपिपुत्रश्च नाहुषाद्यभजस्वमासु ॥१९॥  
 एकदेहोद्भवा वर्णश्चित्त्वारोऽपिवरानने ।  
 पृथक्धर्मा पृथक् शोचास्तेपावैर्ब्राह्मणोवरः ॥२०॥  
 पाणिग्रहो नाहुषाय न पु । भः सेवितः पुरा ।  
 त्वमेनमग्रहीदग्रे वृणोमि त्वामह ततः ॥२१॥  
 कथं तुमेमनस्विन्या.पाणिमन्य.पुमान्स्पृशेत् ।  
 गृहोत्तमृपिपुत्रेणस्वयवाप्यपिणात्वया ॥२२॥

देवगानी ने कहा—हे राजन् ! यहाँ पर इस देश में किस प्रयोग से समागत हुए हैं ? आप क्या कुछ जलपान करने के इच्छुक हैं या



मृगमा की इच्छा से ही इन स्थान पर आपने पदार्पण किया है ? ॥ १५ ॥  
 पद्मावि ने उत्तर दिया—हे मन्त्रे ! मैं मृग की शिकार को करने का इच्छुक  
 ही हूँ यहाँ पर तो केवल जल पीने के ही लिये आ गया हूँ । मैं बहुधा  
 अनुपुक्त भी हुआ हूँ । आपकी कुछ सेवा हो तो आप मुझे अनुता प्रदान  
 कीजिए ॥ १६ ॥ देवयानी ने कहा—हे मन्त्रे ! आरका परम वन्द्याण ही—  
 मैं दो महत्त कम्पाओं से युक्त तथा दानो धर्मिष्ठ के गहिन भद्र मानके  
 ही अङ्गीत होगई हूँ । अब आर ही मेरे मर्ता हो जाइये ॥ १७ ॥ राजा  
 ययानि ने उत्तर दिया—हे ययानि ! आप विप्र के उगता अर्थात्  
 गुणाचार्य की पुत्री हैं । आपका परम वन्द्याण हूँ । मैं आपके पति बनने  
 के योग्य नहीं हूँ । हे देवयानि ! आपका पिता के यहाँ राजा लोग विवाह  
 करने के योग्य नहीं हो सकते हैं ॥ १८ ॥ देवयानी ने कहा—ब्रह्मा ने ही  
 सबका सृजन किया है । अब ब्रह्मा के द्वारा क्षत्रिय वर्ण समुत्प है तथा  
 ब्रह्मा में क्षत्र समिन्धित है । अथ और अर्थात् के पुत्र सभी तो उन्हीं  
 से हुए हैं । इनमें कुछ का भेद-भाव नहीं है । हे नाट्य ! अब आप मुझे  
 स्वीकार कर लीजिए ॥ १९ ॥ ययानि ने कहा—हे वरानने ! यह ठीक है  
 कि चारों ही वण एक ही ब्रह्माजी के देह से समुद्भूत हुए हैं किन्तु यह  
 भी तो है कि प्रत्येक वर्ण के पृथक् २ धर्म-शौच और आचार हुआ करने  
 हैं और उन सब वर्णों में ब्राह्मण वण सर्वश्रेष्ठ वर्ण होता है ॥ २० ॥  
 देवयानी ने कहा—हे नरुह महाराज के पुत्र ! मेरे पाणि ( हाथ ) का  
 प्रक्षण इत नमय से पूर्व में किसी भी पुरुष के द्वारा सेवित नहीं हुआ है ।  
 आपने ही सबसे आगे इसे सङ्ग किया है । इसीलिए मैं तो आरको ही  
 वरण करती हूँ ॥ २१ ॥ अब मनन्विनी मेरा यह पाणि किस तरह कोई  
 अन्य पुरुष स्पर्श करेगा । आप अथ के पुत्र ने ययानि स्वयं नाभात् अथि  
 मानन इसको ग्रहण किया है ॥ २२ ॥

त्र दादाशीविपात्मर्पाग्ज्वलनात्सर्वेनोनुद्यात् ।

दुराध्वनरो विप्र पुरुषेण विजानना ॥ २३ ॥

कथमाशीविषात्सर्पज्ज्वलनात्सर्वतोमुखात् ।

दुराघपतरोविप्र इत्यात्य पुरुषर्षभ ॥२४॥

दशेदाशोविपस्त्वेक द्वास्त्रेणकमच बध्यते ।

हन्तिविप्र सराष्ट्राणि पुराण्यपिहिकोपितः ॥२५॥

दुराघपतरो विप्रस्तस्मान् भोक ! मतोमम ।

अतो दत्ताञ्चपित्रात्वा भद्रे ! नविवहाम्यहम् ॥२६॥

दत्ता वहस्व पित्रामान्वहिराजन् ! वृतोमया ।

अयाचतो भयं नास्ति दत्ताञ्चप्रतिगृह्णतः ॥२७॥

राजा ययाति ने कहा—अत्यन्त क्रुद्ध सर्प से तथा सर्वतोमुख अग्नि से भी अधिक विप्र विज्ञान रखने वाले पुरुष के द्वारा दुराघर्षतर हुआ करता है ॥ २३ ॥ देवयानी ने कहा—हे पुरुषो मे परमश्रेष्ठ ! आप यह समझाइये कि आशीविष सर्प से और सभी ओर मुख वाले अग्नि से विप्र दुराघर्षतर कैसे होता है ? ॥ २४ ॥ राजा ययाति ने कहा—आशीविष सर्प तो एक ही क्रिमी का दशन किया करता है और वह एक शस्त्र के द्वारा बध किया जाता है । यदि कोई कुपित हो जाता है तो वह राष्ट्रो के सहित समस्त पुरो का दाह कर दिया करता है । विप्र के वचन और शाप मे तो महान् प्रबल शक्ति विद्यमान रहा करती है । हे भीष्ट ! इसी कारण से विप्र अधिक दुराघर्ष मेरे विचार से माना गया है । इसीलिये हे भद्रे ! आपके पिता के द्वारा भी दी हुई आपके साथ मैं विवाह नहीं करता हूँ ॥ २५, २६ ॥ देवयानी ने कहा—हे राजन् ! आप मेरे पिता के द्वारा प्रदान की हुई मुझे वरण करो क्योंकि मैंने तो आपको ही वरण कर लिया है । बिना याचना किये हुए आपको कुछ भी भय नहीं है और दी हुई मुझको आप ग्रहण कीजिए ॥ २७ ॥

त्वरितदेवान्याथ प्रेषिता पितुरात्मनः ।

सर्वं निवेदयामास धात्री तस्मै यथातथम् ॥२८॥

श्रुत्वाँवच स राजान दर्शयागास भार्गव ।  
 द्रष्टव्यमागत विप्र ययाति पृथिवोपति ॥२६  
 यवन्दे ब्राह्मणं काव्य प्राञ्जलि प्रणन स्थित ।  
 त चाप्यभ्यवदत्काव्यसाम्नापरमवल्गुना ॥३०  
 राजाय नाहुपस्तात दुग्मे पाणिमग्रहीत् ।  
 नमस्ते देहि मामस्मै लोकेनान्य पति वृणे ॥३१  
 वृनोज्जया पतिर्धीर । सुतया त्व ममेष्टया ।  
 गृहाणे मा मया दत्ता महिषो नट्टपात्मज । ॥३२  
 अधर्मोमा नृक्षेदव पापमस्याश्चभागव ।  
 यणसकरताग्रहान् । इतित्वा प्रवृणाम्यहम् ॥  
 अधर्मात् त्वा विमुञ्चामि वर वरय चेप्सिमम् ।  
 अस्मिन् विवाहे त्व स्लाक्ष्यो रहापापद्गुशमि ते ॥३३  
 वहम्ब भाया धर्मेण दवयानी शुचिस्मिताम् ।  
 अनया सह सप्रीतिमतुला समवाप्नुहि ॥३४  
 इय चापि कुमारी ते शमिष्ठ वापपवणी ।  
 सपूज्य सन्तत राजन् । नचंनाशयनेह्वय ॥३५  
 एवमुक्तो ययातिस्तु शुभ वृत्वा प्रदक्षिणम् ।  
 जगामस्वपुर हृष्ट सोऽनुज्ञाता महात्मना ॥३६

शौनक महर्षि ने कहा—इसके अनन्तर देवयानी ने तुरन्त ही  
 अरुने शिवा के समीप में घात्री को प्रेषित कर दिया था । उस भेजो गयी  
 घात्री ने उनसे सभी कुछ ओङ-ओङ निवेदन कर दिया था । घात्री के  
 द्वारा राजा का वहाँ पर आगमन सुनते ही भार्गव मुनि ने राजा का वहाँ  
 उगृहीत होकर दर्शन किया था । राजा ययाति ने वहाँ पर ममाधान  
 हुए जब विप्र का दर्शन किया तो जड़े वग के साथ उठकर ययाति ने  
 पादार्पण गुरु की चरना की ओर दोनों हाथ आठकर प्रणत हात हुए  
 उनका समक्ष में स्थित हो गया था । भार्गव मुनि ने भी राजा हान

नाते परम वल्गु साम के द्वारा उस ययाति का प्रत्याभिवाहदन किया था ॥ २८, २९, ३० ॥ देवयानी ने कहा—हे तात ! यह नहुष के पुत्र ययाति नामधारी राजा हैं । इन्होंने दुग्ध दशा में मेरा पाणि का ग्रहण किया था । मैं आपकी सेवा में प्रणाम समर्पित करती हूँ । आप मुझको इसी की पत्नी के रूप में प्रदान कर दीजिये क्योंकि मैं लोक में अन्य किसी को पति के रूप में वरण नहीं करूँगी ॥ ३१ ॥ शुक्र ने कहा—हे वीर ! इस कन्या देवयानी ने आपको ही अपना पति वरण कर लिया है । यह मेरी परम प्रिय इष्ट सुता है । हे नहुषात्मज ! अब मेरे द्वारा समर्पित की हुई इसको ग्रहण कीजिए और अपनी महिषी इसे बना लीजिये ॥ ३२ ॥ राजा ययाति ने कहा—हे मागँव ! इस प्रकार से करने पर तो अश्वर्षि मुझे स्पृश करेगा और इसे स्वीकार करने में पाप होगा । हे ब्रह्मन् ! यह तो वधू का सङ्कट हो जायगा—इसीलिये मैं आपसे निवेदन करना हूँ । शुक्राचार्य ने कहा—मैं इस अ-म से आपका विमोचन किये देता हूँ । आपको जो भी कुछ अभीष्ट वरदान हो वह अब मुझसे मागँवो इस विवाह के करने में आप श्लाघ्या के ही योग्य होंगे और यह भी कुछ भी पाप है उससे मैं आपका उद्धार कर दूँगा ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! अम से इस शुचि स्मित वाली देवयानी को आप भार्गव के स्वरूप में बहन कीजिये । इसके साथ आप आपुला प्रीति प्राप्त करेंगे ॥ ३४ ॥ यह सुम्हारी कुमारी शनिष्ठा य प'पवर्णी है । हे राजन् ! निरन्तर भली भाँति पूजन करके इसके साथ शयन मन करना ॥ ३५ ॥ महर्षि शनिकजी ने कहा—इस प्रकार से कहे हुए ययाति ने शुक्राचार्य की परिक्रमा दी और परम प्रसन्न होकर अनुज्ञा प्राप्त होन पर जो कि महात्मा शुक्र ने दी थी वह अपने पुर में चला गया था ॥ ३६, ३७ ॥

## १६—ययात्यष्टकसम्वादवर्णन

यदा वसन्नन्दने कामरूपे सवत्सराणामयुतं शतानाम् ।  
 किं कारणं कस्तंयुगग्रधानं हित्वा तद्वै वसुधामन्वपद्यः ॥१॥  
 जाति मुहुत् स्वजनो यो यथेह क्षीणे वित्ते त्यज्यते तानवर्हिः ।  
 तथा स्वर्गे क्षीणपुण्य मनुष्यन्यजन्ति सद्यः खेचरा देवसपाः ॥२॥  
 कथं तस्मिन् क्षीणपुण्या भवन्ति संमुह्यते मेऽत्र मनोऽतिमात्रम् ।  
 किं विशिष्टाः कस्य धामोपयान्ति तत्र ब्रूहि क्षेत्तवित्त्व मतो मे ॥३॥  
 इमं भीम नरकन्ते यतन्ति सालप्यमाना नरदेव ! सर्वे ।  
 ते कङ्कगामायुपलाभनार्थं क्षितौ त्रिवृद्धिं बहुधा प्रयान्ति ॥४॥  
 तस्मादेवं वर्जनीयं नरेन्द्र दुष्टं सोके गर्हणीयञ्च कर्मम् ।  
 अस्यात् ते पायिव सर्वमेतत् भूयश्चेदानो वद किन्ते वदामि ॥५॥  
 यदा तु तांस्ते वित्तुदन्ते वयांसि तथा गृध्राः शितिकण्ठाः पतङ्गाः ।  
 कथं भवन्ति कथमाभवन्ति त्वत्तो भीम नरकमहं शृणोमि ॥६॥

अष्टक ने कहा—काम रुद्र नन्दन बन में एक से अयुत ( दस सहस्र ) सम्बत्सरो तक वास करते हुए कस्तं युग प्रधान उत्तम स्थान करके पुनः इस वसुधा पर प्राण हो गया या—इसका क्या कारण है ? ॥१॥ ययानि ने कहा—जिन तरह से यहाँ पर वित्त के क्षीण हो जाने पर मानवों के द्वारा भगनी जाति वाता-मुहुत् और स्वजन त्याग दिया जाता करता है उसी जति स्वर्ग में खेचर देवों के साथ में भी क्षीण पुण्य वाले मनुष्य को तुरन्त ही त्याग दिया करते हैं ॥२॥ अष्टक ने कहा—वहा पर पुण्यों को क्षीण करने वाले बंसे हो जाते हैं—इस विषय में मेरा मन अत्यधिक मोहित हो जाना है । निम विवेचना ॥ युक्त पुरुष क्रिडने धाम को जाया करते हैं—यह सब आप हमको बतलाइये क्योंकि मेरे विचार में आप पूर्णतया क्षेत्त के भेता है ॥३॥ ययानि ने कहा—हे नरदेव ! तालप्यमान सब इस आपसे भूमि में रहने वाले नरक में बिरा करते हैं ।

वे कङ्क-गोमायु पलाशन के लिये बहुधा भूमि में विशेष वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥४॥ हे नरेन्द्र ! इस कारण से इस प्रकार से लोक में दुष्ट और गहंणा के योग्य कर्मों का वर्जन कर देना चाहिए । हे पार्थिव ! यह सभी कुछ आपको बता दिया गया है और फिर अब बतलाइये कि आपको मैं क्या बतलाऊँ ? ॥५॥ अष्टक ने कहा—जिस समय में वे पक्षी तथा पृथ्वी-शितिकण्ठ और पतङ्ग उनको उत्प्रेषित किया हैं ? मैं आपसे ही इस मत्स्य-त भयानक नरक के विषय में श्रवण करना चाहता हूँ ॥६॥

ऊर्ध्वं दहाकर्मणो नृम्भमाणात् व्यक्तं पृथिव्यामनुसञ्चरन्ति ।  
 इमं भीमं नरकन्ते पतन्ति नावेक्षन्ते वर्षपूगाननेकान् ॥७॥  
 पण्डित्सहस्राणि पतन्तिव्योम्नि तयाशीतिञ्चैव तु वत्सराणाम् ।  
 तान्वै तुदन्ते प्रपतन्त प्रयातान् भीमा भीमा राक्षसास्तीक्ष्णदष्टाः ॥८॥  
 यदेतास्ते सपततस्तुदन्ति भीमा भीमा राक्षसास्तीक्ष्णदष्टाः ।  
 कथं भवन्ति कथमाभवन्ति कथं भूगर्भभूता भवन्ति ॥९॥  
 अमृप्रेत पुष्परसानुयुक्तं अन्वेति सद्यः पुरुषेण सृष्टम् ।  
 तद्ध तस्यारज आपद्यते च स गर्भभूतः समुपैति तत्र ॥१०॥  
 वनस्पतीनोपघीश्चाविशन्ति अपो वायु पृथिवीञ्चान्तरिक्षम् ।  
 चतुष्पद द्विपदञ्चापि सर्वे एव भूता गर्भभूता भवन्ति ॥११॥  
 अन्यद्वपुर्विदधातीह गर्भं उताहोस्वित् स्वेन कामेन याति ।  
 आपद्यमानो नरयोनिमतामाचक्ष्व मे सशयात् पृच्छतस्त्वम् ॥१२॥  
 शरीरदेहादिसमुच्छयञ्च चक्षुःश्रोत्रे लभते केन सजाम् ।  
 एतत् सर्वं तात आचक्ष्व पृष्ट क्षेत्रज्ञ त्वा मन्यमाना हि सर्वे ॥१३॥

यथाति ने कहा—जुम्भमाण देहाकर्म से ऊर्ध्व में व्यक्त रूप से पृथिवी में अनुगञ्चरण किया करते हैं । वे इस भूमि में रहने वाले आपके नरक में गिरा करते हैं और अनेक वर्षों के समूह को वहीं देखते हैं ॥७॥ साठ सहस्र तथा अरबी सहस्र वर्ष तक व्योम में गिरा करते हैं प्रयाण करते हुए उनकी प्रवृत्ति करत हुए तीक्ष्ण दाढ़ा वाले महा भयानक भीम

राक्षस पीडित किया करते हैं ॥८॥ अष्टक ने कहा—जिस समय मैं वे सपनन करते हुए तीक्ष्ण दृष्टियों वाले भयानक भीम राक्षस इनको उन्नीडित किया करते हैं तो मैंने हाने हैं—कैसे चारों ओर होते हैं और और कैसे भूमि के गर्भ में गत हुआ करते हैं ॥ ८ ॥ ययाति ने कहा—  
पुरुष के द्वारा सृष्ट रत्न पुष्प रत्न से अनुयुक्त असृक् ( रक्त ) तुरन्त ही घनुगमन करता है । वह उसका रज आपन्न होता है और वह वहाँ पर गर्भभूत होता हुआ समुपगमन किया करता है ॥१०॥ वनस्पति और औषधियों में आविष्ट होते हैं—जल-वायु-पृथिवी-अन्तर्जित-चतुष्पद-द्विपद ये सब इस प्रकार से होने हुए गर्भभूत होते हैं ॥११॥ अष्टक ने कहा—यहाँ गर्भ में कोई अन्य वस्तु धारण करता है अथवा अपनी ही इच्छा में जाया करता है जब कि इस नर योनि की प्राप्ति होता हुआ रहना है—यह सब मुझे बनलाइये, मैं समझ होने के कारण से आपसे पूछ रहा हूँ ॥ १२ ॥ शरीर देहादि का समुच्छय—क्षु और धीन किमम सज्ञा को प्राप्त किया करता है ? हे तात ! आप से पूछा गया है और यह सभी कुछ बनलाइये । आपको सभी क्षेपण मानते हैं ॥१३॥

वायु समुत्कपति गर्भयानिमृती रेतःपुष्परसानुयुक्तम् ।  
स तत्र तन्मात्रकृत्वाधिकारः क्रमेण सवर्धयतीह गर्भम् ॥१४॥  
स जायमानाऽय गृहीतगन्धः सज्ञानमिच्छाय ततो मनुष्यः ।  
स श्रोत्राभ्या वेदयतीह शब्दं स वै रूपं पश्यति चक्षुषा च ॥१५॥  
घ्राणेन गन्धं जिह्वापायो रसञ्च त्वचा स्पर्शमनसा वेदभावम् ।  
इत्यष्टके होषचित हि विद्धि महात्मनः प्राणभूतः शरीरे ॥१६॥  
यः संस्थितः पुरुषो दहते वा निखन्यते वापि निवृष्यते वा ।  
अभावभूतः स विनाशमेत्य केनात्मानं चेतयते पुरस्तात् ॥१७॥  
हित्वा सोऽमृतं सुप्तवन्निष्ठितत्वात् पुरोधाय मुहृतं दुष्टतञ्च ।  
अन्या योनिं पुष्यपापानुसारा हित्वा देहं भजते राजसिंह ॥१८॥

पुण्या योनिं पुण्यवृत्तो विशन्ति पापां योनिं पापवृत्तो यजन्ति ।  
 कीटाः पतङ्गाश्च भवन्ति पापन् मे विवक्षास्ति महानुभाव ॥१६॥  
 चतुष्पुदा द्विपदा पक्षिणश्च तथा भूता गर्भभूता भवन्ति ।  
 आख्यातमेतन्निखिल हि सर्वं भूयस्तु किं पृच्छसि राजसिंह ॥२०॥

राजा ययाति ने कहा—पुष्प रस से अनुपुक्त रेत को श्वेतु बाल मे वायु समुत्कर्षित किया करता है । चतना ही अधिकार करने वाला वह वहा पर क्रम से गर्भ को सर्वाधिक किया करता है ॥१४॥ इसके उपरान्त जब वह जायमान होता है तो गान्ध को ग्रहण करने वाला हो जाता है । इसके पश्चात् वह मनुष्य सजा को अधिष्ठित हुआ करता है । वह ओत्रो से यहा पर शब्द का ज्ञान करता है और वह रूप को चक्षु से देखता है ॥१५॥ घ्राण से गन्ध को पहिचानता है तथा जिह्वा से रस और रसचा से स्पर्श और मन से भेदभाव को जानता है । प्राणघारी महात्मा के शरीर मे इस अष्टक मे उपचित समझलो ॥१६॥ अष्टक ने कहा—जो स्थित पुरुष जला दिया जाता है—गाढ दिया जाता है अथवा निकृष्ट किया जाता है अभावभूत वह विनाश को प्राप्त होकर फिर किस के द्वारा आगे आत्मा को चैतन्य स्वरूप देकर प्रदर्शित किया करता है ॥१७॥ राजा ययाति के कहा—वह प्राणो का त्याग करके एक सुप्त की भांति निष्ठित होने से अपने जीवन मे विहित सुकृत और दुसकृत आगे रखकर ही पुण्य पाप के अनुसार अन्य योनिको भजता है और इस देह का त्याग कर दिया करता है । हे राजसिंह ! प्रथम शरीर के त्याग के बाद ऐसा ही हुआ करता है जिसमें पुण्य-पाप की प्रधानता होती है । ॥१८॥ जो पुण्य कर्मों के करने वाले लोग होते हैं वे पुण्य योनि मे ही प्रवेश किया करते हैं और जो पापकर्म करने वाले हैं वे पाप योनि मे जाया करते हैं । हे महानुभाव ! कीट और पतङ्ग पाप से होते हैं यह मेरी विवक्षा नहीं है ॥१९॥ चतुष्पद—द्विपद और पक्षी वर्ग उस प्रकार से हुए गर्भभूत होते हैं यह हमने सभी कुछ कह दिया है । हे राजसिंह ! पुनः अब क्या पृच्छते हैं ? ॥२०॥



किंस्वित् कृत्वा लभते सात संज्ञा-मर्त्यः श्रेष्ठं तपसा विद्यया वा ।  
तन्मे पृष्टः शंस सर्वं यथावच्छुमान् लोकान् येन गच्छेत् क्रमेण ॥२१॥  
तपश्च दानञ्च शमो दमश्च ह्यीराजं सर्वमृतानुकम्पा ।  
स्वर्गस्य लोकस्य वदन्ति सन्तो द्वाराणि सप्तव महान्ति-पुत्रांम् ॥२२॥  
सर्वाणि चेतानि यथोदितानि तत्र-प्रधानान्यभिमतकेन ।  
वदन्ति मानेन तमाऽभिभूताः पुंस्तः सदैवेति वदन्ति सन्तः ॥२३॥  
द्वयोयानः पण्डित मन्यमानो यो-विद्यया हन्ति यतः परस्य ।  
तस्यान्तवन्तः पुरुषस्य लोकानवास्य तद्द्रव्यफल-वदाति ॥२४॥  
चत्वारि कर्माणि भयङ्कराणि भवं प्रयच्छन्त्ययमाकृतानि ।  
मानाग्निहोत्रमुतमानमीनं मानेनाघोतमुतमानयज्ञः ॥२५॥  
न मान्यमानो मुदमाददोत न सन्तापं प्राप्नुयाच्चावमानात् ।  
सन्तः सतः पूजयन्तीह लोके नासाधवः साधुबुद्धि लभन्ते ॥२६॥  
इति दद्यादिति यत्रेदित्यधीयीत मे श्रुतम् ।  
इत्येतान्यभयान्याहृस्तान्यवज्यानिनित्यशः ॥२७॥  
येनाश्रयं वेदयन्ते पुराणं मनोपणो मानसे मानमुक्तम् ।  
तन्निश्चयस्तेन संगममत्य परां शान्तिं प्राप्नुयुः प्रेत्य चेह ॥२८॥

अष्टक ने कहा—हे तात ! क्या कर्म करके मनुष्य घेष्ठ सजा को प्राप्त किया करता है तपश्चर्या से अथवा विद्या से ? यही मेरे द्वारा आप पूछे या रहे हैं सो सभी यथावत् कहिए और यह भी बतलाइये कि जिस कर्म से वह शुभ लोको को समझा जाता है ॥२१॥ यियाति ने कहा—तप-दान-शम-दम-संज्ञा-आर्जव और समस्त प्राणियों पर दया—ये सात ही पुरुषों के महान् द्वार हैं जिनको स्वर्ग लोक के भी सन्त लोग कहा करते हैं ॥२२॥ ये सब जो भी उदित किये गये हैं वे तपः प्रधान ही होते हैं अर्थात् इन सभी में तपश्चर्या की ही प्रमुखता हुआ करती है । जो तपोगुण से अभिभूत होते हैं वे अभिमर्शक मान से नष्ट हो जाते हैं । वह पुरुष को सदा ही होता है—यही सन्त पुरुष कहते हैं ॥२३॥ अधी-

यान अर्थात् पूर्णतया पठित पुरुष अपने आपको पण्डित मानता हुआ  
 संघात् अपने पाण्डित्य का अभिमान रखने वाला है और जो विद्या के  
 बल से दूसरे के यश का हनन किया है उस पुरुष के अंत में होने वाले  
 लोभ नहीं हुआ करते हैं और न उसको वह ब्रह्मफल ही दिया करता  
 है ॥२४॥ ये चार कर्म महान् भयङ्कर हुआ करते हैं और अयदाकृत ये  
 भय दिया करते हैं—मानामिहोत्र—मान मौन—मानसे आधीत और मान  
 यज्ञ वे ये ही चार हैं ॥२५॥ माम्य मान वाला कभी मुक्त प्राप्त नहीं  
 किया करता है और ब्रह्मसत्ताप को भी अब मान होने से नहीं प्राप्त  
 किया करता है इस लोक में सत् पुरुष सत्गुणों का ही पूजन किया करते  
 हैं और जो असाधु पुरुष होते हैं वे कभी भी साधु बुद्धि को प्राप्त नहीं  
 किया करते हैं ॥२६॥ मेरा श्रुत तो यह बतलाता है कि इसका इतना  
 दान करे—यह यजनाचन करना चाहिये और यह अध्ययन करे—इसी हेतु  
 से यह भय से रहित है और उनको नित्यही अनजनीय कहा जाता है ।  
 ॥२७॥ पुराण जिससे आध्यय का वेदन मनीषिण्य किया करते हैं जो  
 मानस में मानयुक्त है वही निश्चय है उससे सबोध प्राप्त करके यहाँ मृत  
 होकर परा शास्त्र को प्राप्त किया करते हैं ॥२८॥ । । । । ।

## २०—ययात्यष्टकसंवाद वर्णन

चरन् गृहस्थः कथमेति देवान् कथं भिक्षां कथमाचार्य्यं कर्मा ।  
 वानप्रस्थ सत्पथे सन्निविष्टो बहून् यस्मिन् संप्रति वेदयन्ति । १  
 आहूताध्यायी गुरुकमसु चोद्यत पूर्वोत्थायी चरमर्थाध्यायी ।  
 मृदुर्दान्तो धृतिमानप्रमत्त स्वाध्यायशील सिद्धयति ब्रह्मचारी ॥२॥  
 धर्मागत प्राप्य धनं यजेत दद्यात्सदैवातिथीन् मोजये च ।  
 अनाददानश्च परं रदत्तं सैषां गृहस्थोपनिषत्पुराणी ॥३॥

स्वकीय्यंजीवी वृजिनामिवृत्तो दाता परेभ्यो न परोपतापी ।  
 तादृङ्मुनिः त्रिद्विभुर्पति मुखा वसन्नरण्ये नियताहारवेष्टः ॥४॥  
 अशिल्पजीवी विगृहश्च नित्यं त्रितेन्द्रियः सर्वज्ञो विप्रमुक्तः ।  
 धनोकलायी तपु निष्प्रमाणाचरन् देशानेकाम्बरं च मिश्रुः ॥५॥  
 रात्र्या यथा चाभिरताश्च लोका भवन्ति कामाभिजिताः सुखेन च ।  
 तामेव रात्रिं प्रयतेत विद्वानख्यसंस्थो भविनु यतात्मा ॥६॥  
 दधौ पूर्वान् नग चापरांस्तु ज्ञातोस्तथात्मानमयंकविशम् ।  
 जरणवासो मुकृतं दधाति मुक्तवात्वरण्ये स्वगरीरघातून् ॥७॥

--- बट्ट ने कहा—एक माहंभ्य आश्रम में मन्त्ररूप करने वाला  
 पुण्य किस प्रकार से देवों को प्राप्त किया करता है मिश्रु (संन्यासी)  
 किस विद्वान से और आचार्य का कर्म करने वाला है वह किस रीति से  
 देवदल के समीप में पहुँचा करता है तथा जो बानप्रस्थायमी पुण्य है  
 और सन्निधि में सम्निविष्ट है उसकी क्या विधि है ? इस विषय में अब  
 बहुत सी बातें बतलाने की जाती हैं ॥१॥ राजा यथाति ने कहा—जिस  
 समय में उसको अध्ययन करने के लिये आहूत करें तभी तब आपार्य  
 वर की सन्निधि में समुपस्थित होकर अध्ययन करने वाला—गुरुजी के  
 सम्पूर्ण कर्मों के सम्पादन करने के लिये तथा उद्यत रहने वाला—गुरुवरण  
 से पहिने शय्या त्याग कर उठने वाला और उनके गायन करने के पश्चात्  
 सोने वाला—उपन मृदु हननजीव—वृत्रिमान्—धनस्त एवं जो सर्वेश  
 म्वाध्याय करने के लीन वाला है वही ब्रह्मवासी सिद्धि प्राप्त किया करता  
 है ॥२॥ कर्म के द्वारा समाप्त वन से दबन करना चाहिए और सदा  
 ही अतिथियों को, दान देवे तथा—उनकी बोधन करावे—दुष्टों के हाथ  
 नहीं दिये हुए को नहीं रहन करता हुआ गृहस्थ को होना चाहिए—यही  
 माहंभ्याश्रम में रहने वाले की परम-परात्म उपनिषद् है ॥३॥ अपने ही  
 वन वीर्य से जीवन यावन करने वाला—याप कर्म से निवृत्त रहने वाला—  
 दूसरों को दान देने वाला तथा दूसरों को कभी भी उपताप न देने वाला इस

प्रकार की रहनी रहने वाला मुनि जो नियत आहार करने की चेष्टा रखते हुए मन में निवास किया करता है वही परम मुख्य सिद्धि का लाभ लेता है ॥४॥ जो किसी भी प्रकार के शिल्प कोशस से जीवन का यापन नहीं किया करता है तथा बिना गृह वाला है—नित्य ही अपनी इन्द्रियों को जीत कर रखने वाला है और सभी ओर से प्रमुक्त अर्थात् बाधन से रहित है—किसी भी गृह में समय न करने वाला तथा बहुत ही स्वल्प लिप्ता रखने वाला—एक ही वस्त्र का धारी और अनेक देशों में विचरण करने वाला जो होता है वही भिक्षु (सन्यासी) है ॥५॥ जिस रात्रि से लोक अभिरत होते हैं तथा सुख से कामाभिजित होते हैं विद्वान् पुरुष को उसी रात्रि में प्रयत्न करना चाहिये कि वह प्रयत्न आत्मा वाला अरण्य में संस्थित रखने वाला होवे ॥६॥ वह अरण्य में निवास करने वाला अपने शरीर की धातुओं को अरण्य में ही त्याग करके परम सुकृत को धारण किया करता है । वह अपने से पूर्व में हुए दश पुरुषों को और दश वृत्तरे ज्ञातियों को तथा इवकीसवीं अपने आपको सभी का अपने, तपोबल से उद्धार कर दिया करता है ॥७॥

कतिस्विद्देवमुनयो मीनानि कतिचाप्युत ।  
 भवन्तीति तदाचक्ष्व श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥८॥  
 अरण्ये वसतो यस्य ग्रामा भवति पृष्ठत ।  
 ग्रामे वा वसतोऽरण्ये स मुनि स्याज्जनाधिप ॥९॥  
 कथस्विद्वसतोऽरण्ये ग्रामो भवति पृष्ठत ।  
 ग्रामे वा वसतोऽरण्ये कथं भवति पृष्ठत ॥१०॥  
 न ग्राम्यमुपयुञ्जोत य आरण्यो मुनिर्भवेत् ।  
 तथास्य वसतोऽरण्ये ग्रामो भवति पृष्ठत ॥११॥  
 अनग्निरनिवेतश्चाप्यगोत्रचरणो मुनिः ।  
 वापीनान्छादनं यावत्तावदिच्छेच्च श्रीगरम् ॥१२॥  
 यावत्प्राणाधिसन्धानं तावदिच्छेच्च भोजनम् ॥

तदास्यवसतोग्रामेऽरण्यमभवति पृष्ठतः ॥१३॥

अष्टक ने कहा—इतने देवगण और मुनिगण मौन होते हैं—

५६ सब बाप मुझको बतलाइये । हम सब यह श्रवण करना चाहते हैं ।

॥८॥ यथाति ने कहा—हे जनाधिप ! अरण्य में निवास करने वाले विष्णुको

ग्राम पृष्ठ भाग में रहता है तथा ग्राम में निवास में अरण्य को पृष्ठ में

छोड़ देता है वही मुनि होता है ॥९॥ अष्टक ने पूछा—अरण्य में निवास

करने वाले का ग्राम किस तरह से पृष्ठ में होता है अथवा ग्राम में निवास

करने वाले का अरण्य कैसे पृष्ठ में होता है ? ॥१०॥ राजा यथाति ने

कहा—जो आरण्य मुनि हो उसे कभी भी ग्राम का उपयोग नहीं करना

चाहिए । इसी तरह से अरण्य में निवास करने वाले इसका ग्राम पृष्ठ

भाग में ही जाया करता है ॥११॥ बिना अग्नि वाला अर्थात् निरग्नि-

बिना घर बनाकर रहने वाला—अशोकधरम वाला—जो मुनि है उसको

जितना भी कौपीन और समाच्छादन करने के लिये चाहिये उतने ही वस्त्र

की इच्छा करनी चाहिये ॥१२॥ इतने से बरने प्राची का अमिसन्धान

रह उतना ही आहार प्राप्त करने की इच्छा रखनी चाहिये । उस समय

में ग्राम में निवास करने वाले इसको अरण्य भी पृष्ठ भाग में यह जाया

करता है ॥१३॥

यस्तुकामान्परित्यज्यक्त कर्मजितेन्द्रियः ।

आतिष्ठेत्मुनिमौनसलोकेसिद्धिमाप्नुयात् ॥१४॥

घोतदन्तं कृत्स्नसं सदास्नातमलङ्कृतम् ।

असितं सितकमंस्थ कस्तन्नाचितुमर्हति ॥१५॥

तपसाकथितः क्षामः क्षीणमासास्त्यघोषितः ।

यदाभवतिनिर्द्वन्द्वो मुनिमौनं समास्थितः ॥१६॥

अदलोकमिमञ्जित्वा लोकञ्चापि जयेत्परम् ।

आस्थेन तु यदाहारं गोवन्मृगयते मुनिः ॥

अथास्य लोकः सर्वो यः सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥१७॥

जो समस्त प्रकार की इच्छाओं का त्याग करने भग्नों को छोड़ कर पूर्णतया इन्द्रियों के ऊपर अपना नियन्त्रण रखने वाला समास्थित हुआ करता है और मौनब्रत धारण करता है वही मुनि लोक में सिद्धि को प्राप्त किया करता करता है ॥१५॥ जो घीत दन्तो वाला है— माखून जिसके कटे हुए रहा करते हैं—सदा स्नान करके साफ-सुधरा रहता है और भली भाँति अलकृत रहा करता है और अक्षित तथा सित कर्मों में स्थित रहने वाला सम्यासी है उस कौन अवित करने की भावना रखता है अर्थात् ऐसे भिक्षु की समर्चा की योग्यता ही नहीं होती है । ॥१६॥ जो तपश्चर्या से कण्ठ-दुबला-पतला-क्षोण मांस अस्थि और रक्त वाला जिस समय में निर्दग्ध होता है वह मुनि भीरु ब्रत में समास्थित हुआ करता है ॥१७॥ इसके अनन्तर इस लोक को जीतकर वह परलोक पर भी विजय प्राप्त किया करता है । मुनि अपने मुख से गी की भाँति ही जब आहार को ग्रहण किया करता है तथा खोजता है इस वशा के होने के अनन्तर इसको जो भी सब लोक है वह अमृतत्व के लिये ही कल्पित होते हैं ॥१७॥

## २१—यदुवंश वर्णन

इत्येतच्छोनकाद्राजा क्षतानीकोनिशम्य तु ।

विस्मित परयाप्रीत्यापूर्णचन्द्र इवाब्रमो ॥१॥

पूजयामास नृपतिविधिवच्चाय शौनकम् ।

रत्नर्गोभि सुवर्णैश्च वासोभिर्विविधैस्तथा ॥२॥

प्रतिगृह्य ततः सर्वं यद्राजा प्रहित धनम् ।

दत्त्वा च ब्राह्मणेभ्यश्च शौनकोऽन्तरधीयत ॥३॥

ययातिवं शमिच्छाम श्रोतुं विस्तरतो वद ।

यदुप्रभृतिभिः पुत्रैर्यदा लोके प्रतिष्ठितः ॥४॥

यदोर्वंशं प्रवक्ष्यामि ज्येष्ठस्योत्तमतेजसः ।

विस्तरेणानुपूर्व्या च गदतो मे निबोधत ॥१॥

यदोः पुत्रा बभूवुर्हि पञ्च देवसुतोपमाः ।

महारथा महेष्वासानामतस्तांश्चिबोधत ॥२॥

सहस्रजिरयोज्येष्ठऋष्योदनीलोऽन्तिकोत्तमः ।

सहस्रजेस्तुदायादोद्यतजिर्नामर्षिवः ॥३॥

महा महर्षि श्री भृगुजी ने कहा—उत्तमोक्त राजा ने चीनक से यह जब सवग किया था तो वह विस्मित हो गया था और परामीति से पूर्ण चन्द्र की भाँति प्रकाशमान हो गया था ॥१॥ फिर उत्त राजा ने पूर्ण विधान के साथ शोकक जा पूजन किया था । पूजन के उपचारों में बहुतस्य रत्न-मो-तुवर्ण और अनेक भाँति के वस्त्र आदि समीपे ॥२॥ जो भी राजा के द्वारा छत्र अर्पित किया था उस सवका अतिग्रहण करके और आहारों को दान करके फिर महर्षि शोकक वहाँ पर अन्तर्हित हो गये थे ॥३॥ अध्वियो ने कहा—हे भगवन् ! अब हम सब लोग राजा यदाति के वस्त्र का विस्तार सवग कराया चाहते हैं । आज परमानुकम्पा करके उसका सवित्पूत भगन कीजिए जिस समय में वह इस लोक में यदु प्रभृति पुत्रों से समन्वित होकर प्रतिष्ठित हुआ था ॥४॥ श्री भृगुजी ने कहा—सबसे ज्येष्ठ और उत्तम तेज वाले यदु के वंश का मैं वर्णन करूँगा और विस्तार तथा आनुपूर्वी के साथ ही कहूँगा । आप नीचे सब कहने वाले मुझसे सब कुछ समझ लीजिए ॥५॥ महाराज यदु के देवताओं के समान पाँच पुत्र सुमुत्पन्न हुए थे । ये पाँचों ही महारथी और महान् इष्वास की धारण करने वाले थे ॥ ६ ॥ इनसे सबसे बड़ा जो था वह सहस्रजि ॥ और सबसे छोटा जो जन्तम पुत्र था ऋष्योत्तम था । सहस्रजि का दायाद अन्ति नाम छोटी पाँचवें समुद्रपूत हुआ था ॥ ७ ॥

यतजेरपि दायादास्त्रयः परमकीर्तयः ।

हैहयश्च ह्यश्चैव तथा वेणुहयश्च यः ॥८॥

हैहयस्य तु दायादो धर्म्मनेत्रः प्रतिश्रुतः ।

धर्म्मनेत्रस्य कुन्तिस्तु सहतस्तस्य चात्मजः ॥९॥

सहतस्य तु दायादो महिष्मान्नाम पार्थिवः ।

आसीन्महिष्मतः पुत्रोरुद्रश्चेत्य प्रतापवान् ॥१०॥

धाराणस्यामभूद्राजां कथितं पूर्वमेव तु ।

रुद्रश्रेणस्य पुत्रोऽभूदुर्मो नाम पार्थिवः ॥११॥

दुर्मस्य सुतो घीमान् कनको नाम वीर्यवान् ।

कनकस्य तु दायादश्च त्वारो लोकविश्रुताः ॥१२॥

कृतवीर्यं कृताग्निश्च कृतवर्मा तथैव च ।

कृतोजाश्च चतुर्थोऽभूत्कृतवीर्यात्तु सौजुनः ॥१३॥

जातः करसहस्रेण सप्तद्वीपेश्वरो नृपः ।

वर्षायुत तपस्तेपे दुश्चर पृथिवीपतिः ॥१४॥

॥८॥ जि नाम वाले पुत्र के भी दायाद परम कीर्ति वाले तीन हुए थे जिनके शुभ नाम हैहय-हय और वेणुहय थे ॥८॥ हैहय का ओ दायाद उत्पन्न हुआ था वह धर्म्मनेत्र इस शुभ नाम से प्रतिश्रुत हुआ था । धर्म्मनेत्र का दायाद कुन्ति हुआ और कुन्ति का आत्मज सहत नाम वाला हुआ था ॥९॥ सहत के पुत्र महिष्मान् नाम वाला पार्थिव हुआ था । महिष्मान् का पुत्र परम प्रताप धारी रुद्रश्चेत्य ने जन्म ग्रहण किया था ॥१०॥ यह धाराणसी में राजा हुआ था जिसका वर्णन पूर्व में ही किया जा चुका है । रुद्रश्रेण का पुत्र दुर्म नाम वाला राजा हुआ था ॥११॥ फिर इस दुर्म का पुत्र परम बुद्धिमान् और बल वीर्य से समुत कनक नाम वाला हुआ था । इस कनक के चार दायाद लोक में परम प्रतिष्ठ हुए थे ॥१२॥ इन चारों के नाम कृतवीर्य-कृताग्नि-कृतवर्मा और चौथा कृतोजा थे । कृतवीर्य ने पुत्र से ही सहसाजुन समस्तपन्न हुआ था ॥१३॥ इसके एक-एक हाथ में जब इनने जन्म ग्रहण किया था और यह सातों द्वीपों का



राजा हुआ था । इस राजा ने दश सहस्र वर्ष तक परम दुश्चर तपस्या की थी ॥१४॥

दत्तमाराधयामास कार्तवीर्योऽत्रिसम्भवम् ।  
तस्मै दत्तावरास्तेनचत्वारः पुरुषोत्तम ॥१५॥  
पूर्वं बाहुसहस्रान्तु वद्रे राजसत्तमः ।  
अधर्मं चरमाणस्य सद्भिश्चापिनिवारणम् ॥१६॥  
युद्धेन पृथिवी जिस्वा धर्मेणैवानुपासनम् ।  
सप्रामे वर्तमानस्य धृष्टश्चैवाधिकाद्भवेत् ॥१७॥  
तेनेय पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सगर्वता ।  
समोदधिपरिक्षिप्ता क्षाप्तेन विधिना जिता ॥१८॥  
जज्ञे बाहुसहस्रं वै इच्छतस्तस्य धीमतः ।  
रथो ध्वजद्वयं सजज्ञे हत्येतमनुशुश्रुमः ॥१९॥  
दशयज्ञसहस्राणि राजा द्वीपेषु वै तदा ।  
निरगता निवृत्तानि श्रूयन्ते तस्यधीमतः ॥२०॥  
सर्वे यज्ञा महाराजस्तस्यासन्भूरिदक्षिणाः ।  
सर्वेकाञ्चनयूपास्तेसर्वाः काञ्चनवेदिका ॥२१॥

इन कार्तवीर्य ने अत्रि के पुत्र दत्तात्रेय की सभाराधना की थी ।  
'हे पुरुषोत्तम ! उसके द्वारा इसकी चार वरदान दिये गये थे ॥ १५ ॥  
सबसे प्रथम उस राजभेष्य ने एक सहस्र बाहु प्राप्त करने का वरदान  
माँगा था । अधर्म का समाचरण करने वाले का सत्पुरुष से निवारण  
करना प्राप्त किया था ॥ १६ ॥ युद्ध के द्वारा सम्पूर्ण भूमण्डल पर विजय  
प्राप्त करके धर्म के हो द्वारा सब पृथ्वी का अनुपासन करना प्राप्त किया  
था । सप्रामे वर्तमान का वध भी हो तो किसी अधिक से ही होवे ॥१७॥  
उस सहस्रबाहु ने इस पृथिवी को जो सम्पूर्ण सात द्वीपों से युक्त पर्वतों के  
सहित घोर समुद्र से घिरी हुई थी उस सबको शाय विधि के द्वारा ही  
जोत लिया था ॥ १८ ॥ उस धीमान् की जैसी इच्छा थी उसी के अनुसार

एक सहस्र बाहु समुत्पन्न हो गयी थी । रथ और ऋज भी समुत्पन्न हुए थे ऐसा ही अनुश्रवण करते हैं ॥ १६ ॥ उस समय में उस राजा के द्वारा द्वीपों में दश सहस्र यज्ञ निगल उस धीमान् के, निवृत्त हुए थे ऐसा भी सुना जाता है ॥ २० ॥ उस महान् राजा के सभी यज्ञ अत्यधिक दक्षिणा वाले सम्पन्न हुए थे । उन सभी यज्ञों में सुवर्ण के-यूपों के और सभी सुवर्ण की वेदियों वाले थे ॥ २१ ॥

सर्वे देवः सम प्राप्तैर्विमानस्थैरलङ्कृताः ।  
 गन्धर्वैरप्सरोग्रिहैश्च नित्यमेवोपशोभिता ॥ २२ ॥  
 तस्य यज्ञं जगो गाथा गन्धर्वानारदस्तथा ।  
 क तं वीर्य्यं स्थराजं यमहिमाननिरीक्ष्य सः ॥ २३ ॥  
 न नूनं कातवीर्य्यस्य गतिं यास्यान्ति क्षत्रिया  
 यज्ञं दानं स्तपो भिक्षुचक्रमेणश्च तेन च ॥ २४ ॥  
 स हि सप्तसु द्वीपेषु खड्गी चक्रीशरासनी ।  
 रथी द्वीपान्यनुचरन् योगी पश्यति तत्स्करान् ॥ २५ ॥  
 पञ्चाशीतिसहस्रगणि वर्षाणां स नराधिप ।  
 स सर्वरत्नसम्पूर्णश्च ऋवर्त्सी बभूव ह ॥ २६ ॥  
 स एव पशुपालोऽभूत् क्षेपपालः स एव हि ।  
 स एव वृष्ट्या पवन्यो योगित्वादज्जुनोऽभवत् ॥ २७ ॥

सब विमानों में स्थित देवों के साथ प्राप्त हुए गन्धर्व और अप्सराओं से समलङ्कित नित्य ही उपशोभित रहा करते थे ॥ २२ ॥ उसके यज्ञ में गन्धर्व तथा माद के कातवीर्य्य राजा की महिमा को देखकर उनकी गाथा का गायन किया था ॥ २३ ॥ निश्चय ही क्षत्रिय गण कातवीर्य्य की गति को नहीं प्राप्त हाने जिस प्रकार क इसके यज्ञ-दान-तप-विद्वत् और धृति आदि हैं इस तरह क सभी विद्यान अन्य क्षत्रियों के श्रेष्ठ हैं ही नहीं ॥ २४ ॥ बहुत महसूबाहु राजा खड्ग धारण करने वाला तथा पशुपाल अथवा विप हुए रथी सालों द्वीपों में अनुचरण करते हुए

योगी तस्करों को देखा करता था ॥ २५ ॥ वह नराधिप विवाही सहस्र वर्षों तक सम्पूर्ण रत्नों से सम्पन्न होता हुआ इस भूमण्डल का चरित्रों सम्राट् हुआ था ॥ २६ ॥ वही पशुओं के पालन करने वाला हुआ था और वह ही क्षेत्रपाल भी हुआ था । वह वृष्टि के द्वारा पत्रन्य हुआ था और योगी होने के कारण से वही अर्जुन हो गया था ॥ २७ ॥

योऽसी बाहु सहस्रेण ज्याघातकटिनत्वचा ।  
भाति रश्मिसहस्रेण शारदेनैवभास्कर ॥२८॥  
एष नाग यनुष्येषु माहिष्मत्या महाश्रुतिः ।  
कर्कोटकसुतजित्वापुष्या तत्रन्यवेशयत् ॥२९॥  
एष वेग समुद्रस्य प्रावृट्काले भजेन वै ।  
क्रीडान्नेव सुखोद्भिन्न प्रतिस्नानोमहीपति ॥३०॥  
ललता क्रीडता तेन प्रतिल्ल वामभालिनो ।  
कर्मिं भ्रुकुटिसन्त्रासाच्चकिताभ्येतिनर्मदा ॥३१॥  
एका बाहुसहस्रेण वगाहे स महार्णव ।  
करोत्युह्यतवेगान्तु नर्मदाप्रावृडुह्यताम् ॥३२॥  
तस्य बाहुसहस्रेण क्षोभ्यमाने महोदधी ।  
भवन्त्यतीव निश्चेष्टा पातालस्था महासुरा ॥३३॥  
धूर्णोवृतमहावीचिनीनमीनमहातिमिम् ।  
माहताविद्वफेनोपमावर्त्ताक्षिप्तदुसहम् ॥३४॥  
करोत्पालोडयन्नेव दोसहस्रेण सागरम् ।  
मन्दारक्षोभचकिता ह्यमृतोत्पादशङ्खिता ॥३५॥  
तदा निश्चलमूर्धनो भवन्ति च महोरगाः ।  
सायाह्नेन्दलीखण्डानिर्वातिस्तिमिताह्व ॥ ६

यह सम्राट एक सहस्र बाहुओं के द्वारा धनुष की शरी के घातों से कटित त्वचा से युक्त शरदक्षल का एक सहम् रात्रि-मया से सम्पन्न हो

रहा था ॥२८॥ महान् द्युति वाले इसने महिष्मती पुरी में मनुष्यों के मध्य में कर्कोटक के पुत्र नाग को जीतकर उसी पुरी में निवेशित कर दिया था ॥२९॥ यह प्रावृद्ध काल में भी समुद्र के वेग का सेवन किया करता था । यह महापति प्रतिस्वोत में सुख से उद्भिष्ट होता हुआ क्रीडा करता हुआ था विचरण किया करता था ॥ ३० ॥ उसने प्रातस्सदाय मालिनी सलता क्रीडित की थी । कर्म मृकुटी में सन्नास से नमंदा चकित होकर उसके समीप में आ गई थी ॥ ३१ ॥ वह एक अपनी सहस्रबाहुओं से महार्णव के अवगाहन करने पर उद्यत वेग वाली नमंदा को प्रावृद्ध हाता करता है ॥ ३२ ॥ उसकी सहस्रबाहुओं से महोदधि के क्षोभ्यमान होने पर पाताल में स्थित महासुर अत्यन्त ही निश्चेष्ट हो जाते हैं ॥ ३३ ॥ सहस्र हाथों से सागर का धालोडन करता हुआ ही उसको तोड़ी हुई महान् तरङ्गों में किसीन भीम और महातिमि वासा—मास्त से आविष्ट फेनों के भोष वासा तथा भावनों ( भँवरों ) के समक्षित होने से दुःसह करता है । उस समय में मन्दार के क्षोभ से चकित अमृत के उत्पादन की शक्ती वाले महारङ्ग निश्चल मूर्धा वाले हो जाते हैं । जिस प्रकार से सायाहन समय में निर्वात से स्थित कदली खण्डों की दशा होती है वैसी दशा महोरणों की थी ॥ ३४, ३५, ३६ ॥

एव धध्वा घनुर्ज्यायामुत्सिक्तं पञ्चभिः शरैः ।  
 सङ्क्राम्यांभो ह्यित्वा तु स बलरावणवलात् ॥ ३७  
 निजित्यवध्वा चानीयमाहिष्मत्याम्बवन्धव ।  
 सतो गत्वा पुलस्त्यस्तु जर्जुन स प्रसादयत् ॥ ३८  
 मुमोच रक्ष पौलस्त्य पुलस्त्येनेह नान्त्वितम् ।  
 तस्य बाहुसहस्रेण बभूव ज्यातलखन ॥ ३९  
 युगान्ताग्नसहस्य आस्फोटस्वशनेरिव ।  
 अहोदत विधर्षीयं भागवोऽयं यदाच्छिनत् ॥ ४०  
 स द्वे सहस्रं बाहूनां हेमतानवन यथा ।

यत्रापवस्तु संक्रुद्धो ह्यर्जुनं शप्तवान् प्रभुः ॥४१॥  
यस्माद्धनं प्रदग्धं वै विश्रुतं मम हैहय ।  
तस्मात्ते दुष्करं कर्म कृतमन्योहरिष्यति ॥४२॥

लङ्कापुरी में सबत रावण को बलपूर्वक मोहित करके पाँच गजों में उत्तित्त करके धनुष की ज्या में इस प्रकार से बाँध दिया था और उसको जीत करके तथा बद्ध करके माहिष्मती अपनी पुरी में ले आया था तथा बाँधकर रख छोड़ा था । इसके अनन्तर पुलस्त्य ऋषि वहाँ आये थे और उन्होंने सहनार्जुन को प्रसन्न किया था ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ पुलस्त्य ऋषि ने यहाँ पर सागरवना दी थी और फिर वीरस्य ( रावण ) को छोड़ दिया था । उसकी सहस्र बाहुओं से ज्या तत्व का दग्ध हुआ था ॥ ३९ ॥ यह घोष उसी भाँति हुआ था जैसा कि युगान्त के समय में होने वाले सहस्रों मेघों के आस्फोट से अशनि का घोष हुआ करता है । वही ही प्रसन्नता की बात है कि विघाता के बीघे इन भागवत ने छिन्न किया था ॥ ४० ॥ जिस समय में भागवत प्रभु ने इसकी सहस्रबाहुओं का छेदन हेमताल वन की भाँति किया था और जहाँ पर घाप प्रभु ने संक्रुद्ध होकर धनुष की घाप दिया था—हे हैहय ! क्योंकि मेरा परम विश्रुत बल तुमने प्रदानकर दिया था इसलिये इस दुस्तर कर्म को कृतमन्य हरण करो ॥ ४१, ४२ ॥

छिन्ना बाहुसहस्रं ते प्रयमन्नरसा बली ।  
तपस्वी ग्राह्याणश्च त्वासवधिष्यतिभागवत् ॥४१॥  
तस्य रामस्तदा त्वासीत् मृत्युः क्षापेन धीमता  
वरदत्तवन्तु राजपः स्वयमेव वनः पुरा ॥४२॥  
तस्य पुलस्तं त्वासीत् पञ्च तत्र महारथाः ।  
कृतास्त्रा बलिनि शूरा घम्भीरमानो महाबलाः ॥४३॥  
शूरसेनश्च शूरश्च धृष्टः क्रोष्टुस्तपव च ।  
जयध्वजश्च वैकर्ता अवन्तिश्च विशाम्पते ॥४४॥

जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजघो महाबल ।

तस्य पुत्रशतान्येव तालजंघा इति श्रुता ॥४७॥

तेपापञ्चकुलास्याता हैहयानामहात्मनाम् ।

वीतिहोत्राश्चशार्याताभोजाश्चावन्तयस्तथा ॥४८॥

कुण्डिकेराश्चविक्रान्तास्तालजघास्तथैवच ।

वीतिहासमुतश्चापिआनर्त्तानामवीर्यवान् ॥

दुर्जयस्तस्य पुत्रस्तु वभूवामित्रकर्शनः ॥४९॥

बलवान् तपस्वी और ब्राह्मण भार्यब पहिले वेग के साथ तैरी सहल बाहओ का छेदन करके फिर तेरा वही वध भी कर दोगे ॥४३॥ सूतजी ने कहा—उस समय मे उसकी मृत्यु शाप के द्वारा राम ही थे । घीमान् ने राजर्षि से पहिले ही इस प्रकार का वरदान स्वय ही वरण कर लिया था ॥४४॥ उसके एक सौ पुत्र हुए थे उनमें पाँच सौ महारथ थे । ये सब कुटाल बलशाली—दूरवीर—सम्मतिमा और महान् बल वाले थे । ॥४५॥ हे विश्वाम्पते ! शूरसेन—शूर—धूष्ट—कोष्ट—जयध्वज—वैकर्त्ता और अवन्ति ये उनके नाम थे ॥४६॥ जयध्वज का पुत्र महान् बलवान् तालजङ्घ हुआ था । उसके भी एक सौ पुत्र थे जो सब तालजङ्घ—इसी नाम से प्रसिद्ध थे ॥४७॥ उन हैहय महात्माओ के पाँच कुल विख्यात थे । वीतिहोत्र—शार्यात—भोज—अवन्तिप—कुण्डिकेर—विक्रान्त और तालजघ थे । वीतिहोत्र का पुत्र भी आनर्त्त नाम वाला महान् वीर्यवान् हुआ था । उसका पुत्र दुर्जय था जो शत्रुओ का कशन करने वाला था । ॥ ४८, ४९ ॥

सद्भावेन महाराज । प्रजा धर्मेण पालयन् ।

कातवीर्यार्जुनो नामराजा बाहुसहस्रवान् ॥५०॥

येन सागरपयन्ता धनुषा निजिता मही ।

यस्तस्य कीर्तयेन्नाम कल्पमुत्थाय मानव ॥५१॥

न तस्य वित्तनाश स्यान्नष्टञ्च लभते पुनः ।

कातवीर्यस्य यो जन्म कथयेदिह धीमतः ॥

॥ यथावत् स्विष्टपूतात्मा स्वर्गलोके महीयते ॥१२॥

हे महाराज ! कातवीर्यार्जुन नाम वाला राजा एक सहस्रबाहुओं से समन्वित था और सद्भावना से धर्म के साथ प्रजा का परिपालन किया करता था ॥ ५० ॥ वह ऐसा प्रतापी राजा हुआ था जिसने अपने धनुष के द्वारा सागर पर्यन्त भूमि को जीत लिया था । जो मानव प्रातः काल में ही उठकर उसके शुभ नाप का कीर्तन किया करता है उसके वित्त का कभी भी नाश नहीं होता है और जो किसी का वित्त मष्ट भी हो गया हो तो वह मष्ट हुआ धन पुनः प्राप्त हो जाया करता है । परम धीमान् कातवीर्य के जन्म की भाषा को कोई कहता है तो वह मानव यथावत् स्विष्ट पूतात्मा होकर स्वर्गलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है ॥ ५१, ५२ ॥

## २२—कोट्टुवंश वर्णन

‘अमर्थं तद्वनं दायमापवस्य महात्मनः ।

कातवीर्येण विक्रम्य सूत ! प्रब्रूहि तत्त्वतः ॥१॥

रक्षिता स तु राजपि प्रजानामिति नः श्रुतम् ।

सकर्परक्षितामृत्वा अदहत्तत्तपोवनम् ॥ २

आदित्यो द्विजरूपेण कातवीर्यमपस्वितः ।

तृप्तिमेकां प्रयच्छस्व आदित्योऽहनरेष्वर ॥३॥

भगवन् ! केन तृप्तिस्ते भवत्येव दिवाकर ।

‘वीद्वत्सं भोजनंददिमथ त्वातु विदधाम्यहम् ॥ ४

स्थावरन्देहि मे सर्वमाहारन्ददता वर ।

‘तेन तृप्तो भवेयं वं सा मे तृप्तिहिं पार्थिव ॥५॥

न शक्याः स्थवराः सर्वे तेजसाद्यवलेतच ।

निदग्धु तपतांश्रेष्ठ ! तेन त्वांप्रणमाम्यहम् ॥ ६

ऋषिमण ने कहा—हे सूत जी ! महात्मा आपव का वल किस प्रयोजन के लिए कात्तवीर्य ने विनम्र करके दग्ध कर दिया था ? इस गाथा को तात्त्विक रूप से बतलाइये ॥१॥ यह राजर्षि तो प्रजाओं की रक्षा करने वाला था ऐसा ही हमने सुना है फिर वह रक्षित होते हुए उस तपोवन को दग्ध करते वाला कैसे और क्यों बन गया था ? ॥२॥ सूत जी ने कहा—एक बार ऐसा हुआ था कि भगवान् आदित्य एक द्विज के स्वरूप में होकर कात्तवीर्य के समीप में समुपस्थित हुये थे और उन्होंने कात्तवीर्य से कहा था कि हे नरेश्वर ! मैं आदित्य ॥ हमको एक तृप्ति दीजिये ॥३॥ राजा ने कहा—हे भगवन् ! हे दिवाकर देव ! किस से आपकी तृप्ति होती है ? आप मुझे बतलाइये कि किस प्रकार का भोजन मैं आपको समर्पित करूँ । यह आप जब मुझे आज्ञा देंगे तो उसका श्रवण करके ही मैं प्रस्तुत करूँ ॥४॥ आदित्य देव ने कहा—हे पार्थिव ! आप तो दानशीलो में परम श्रेष्ठ महानुभाव हैं । आप मुझे स्थावरों का सब आहार प्रदान कीजिये उमर्ते मैं तृप्त हो जाऊँगा । बही मेरी पूर्ण तृप्ति होगी ॥५॥ कात्तवीर्य ने कहा—हे तपनशीलो में परम श्रेष्ठ ! तेज के द्वारा और बल के द्वारा सम्पूर्ण स्थावर निर्दग्ध नहीं किये जा सकते हैं । इसलिये मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥६॥

तुष्टस्तेऽह शरान् ददिम अक्षयान् सर्वतोमुखान् ।

ये प्रक्षिप्ता ज्वलिष्यन्ति मम तेज समन्विता ॥ ७

॥ आविष्टाममतेजोऽग्नि शोषयिष्यन्ति स्थावरान् ।

। शुष्णान् भस्मीकरिष्यन्ति तेन तृप्तिर्नराधिप ॥ ८

॥ तत शरास्तदादित्यस्त्वजुं नाय प्रयञ्जत ।

ततो ददाह संप्राप्तान् स्थावरान् सद्यमेव च ॥ ९

॥ ग्रामास्तथाश्रमाश्चैव घोषाणि नगराणि च ।



तथा वनानि रम्याणि वनान्युपवनानि च ॥१०॥  
 एव प्राचीसमदहत् ततः सर्वाश्चपक्षिणः ।  
 निवृक्षा निस्तृणानूमिहनाघोरेण तेजसा ॥११॥  
 एतस्मिन्नेव काने तु आपवी जलमास्थितः ।  
 दश वषसहस्राणि तत्रास्तेसमहानृपिः ॥१२॥  
 पूर्णे श्रुते महातेजा उददिष्टस्तपोधनः ।  
 सोऽपश्यदाश्रम दग्धमजुनेन महामुनिः ॥१३॥  
 प्रोप्राञ्छशाप राजर्षि कीर्तित वो यया मया ।  
 क्रीष्टो शृणुतराजपर्वेणमुत्तमपीरुपम् ॥१४॥

आशिर्य देव ने कहा—मैं तुमसे परम संतुष्ट हूँ । मैं आपको  
 अक्षय और सर्वतोमुख वाले शरों की प्रदान करता हूँ । जो प्रतिष्ठ  
 किए हुए जला देंगे क्योंकि वे सब मेरे तेज से समाहित होंगे ॥७॥ मेरे  
 तेज से मनावेश होने से वे समस्त स्थावरों का शोषण कर देंगे । है  
 भराधिप ! वे सुष्ठों को भस्मीभूत कर देंगे । उषी से मेरी तृप्ति होगी ।  
 ॥८॥ मून जी ने कहा—इसके अनन्तर आशिर्य देव ने उन शरों की  
 मजुन के लिए दे दिये थे । इसके पश्चात् सभी सम्प्राप्त स्थावरों को  
 दग्ध कर दिया था ॥९॥ ग्राम, आश्रम, धोप, नगर, वन और सुरम्य  
 उपवन सभी का दाह कर दिया था ॥१०॥ इस प्रकार से सम्पूर्ण प्राची  
 दिशा की तथा सभी पक्षिओं को निर्दोष कर दिया था । उस समय मैं  
 इस महादाह के होने से सम्पूर्ण भूमि वृक्षों से रहित और तृणों से एकदम  
 शुन्य उस महान् घोर तेज से हो गई थी तथा हवप्राया हो गई थी ॥११॥  
 इसी काल में आपवी जल में समास्थित थे । वह महान् शृपि दश सहस्र  
 वर्ष पर्यन्त वहा पर थे ॥१२॥ जब उनका यह जल में स्थित रहकर  
 किये जाने वाला वृत्त पूरा हो गया था तो वह तपोधन उठकर छटे हुए  
 थे । उस समय मैं उन महामुनि ने देखा था कि उनका यह सम्पूर्ण आश्रम  
 मजुन ने दग्ध कर दिया था ॥१३॥ उस महामुनि को महान् शोष समुत्पन्न

होगया था उन्होंने राजपि कान्धोय्य को तभी शाप दे दिया था जैसे कि  
मैंने आरको बतलाया था । हे राजपिवर ! अब मुझसे श्रोतु को २८  
पीछे वापस वश थवग करो ॥ १५ ॥

यस्यान्ववाये सम्भूतो विष्णुर्वृष्णिकुलोद्बह ।  
क्रोष्णरेवाभवत् पुत्रो वृजिनीवान् महारथ ॥१५॥  
वृज्जनीवतश्च पुत्रोऽभूत् स्वाहोनाममहाबल ।  
स्वाहपुत्रोऽभवद्वाजन् । रपगुर्वदत्तावर ॥१६॥  
स तु प्रसूतिमिच्छन् वरुपङ्ग सौम्य गार्मजम् ।  
चित्रश्चित्ररथश्चास्य पुत्र रमभिरन्वित ॥१७॥  
अथ चत्ररथिर्वीरो जज्ञे विपुलदक्षिण ।  
शशबिन्दुरिति स्यात्तश्चक्रवर्त्ती बभूव ह ॥१८॥  
अत्रानुवशश्लोकाऽय गीतस्तस्मिन्पुराऽभवत् ।  
शशविन्दोस्तु पुत्राणां शतानामभवच्छतम् ॥१९॥  
धोमता चाभिरूपाणां भूरद्रविणतेजसाम् ।  
तेषां शतप्रधानानां पृथुसाहस्य महाबला ॥२०॥  
पृथुश्रवा पृथुयशः पृथुधर्मा पृथुञ्जय ।  
पृथुकीर्त्ति पृथुमना राजानः शशबिन्दव ॥२१॥

जिसके वश में वृष्णि कुल का उद्भवन करने वाले भगवान् विष्णु  
ने समुद्रगति प्राप्त की थी उस श्रोतु के महारथ वृज्जनीवान् नाम वाला  
पुत्र प्रसूत हुआ था ॥१५॥ वृज्जनी का पुत्र महान् बल विक्रम शाली स्वाह  
नाम वाला समुत्पन्न हुआ था । हे राजन् ! स्वाह के पुत्र का नाम  
रपगु था जो बोलने वाले वक्ताओं में अतीव श्रेष्ठ था । ॥१६॥ उपङ्ग,  
ने जब अपनी परम सौम्य सन्तति के हाने की इच्छा की दी तो इससे  
चित्र और चित्ररथ हुए थे । इसके कमों से समन्वित चत्ररथी वीर ने  
जन्म ग्रहण किया था जोकि बहुत ही अधिक दक्षिणा देने वाला था । यह  
शशबिन्दु - इसी नाम ॥ विख्यात हुआ था और चक्रवर्ती राजा होगया



परमोत्तम था ॥ २५ ॥ इस मरुत का पुत्र अनिवीर कम्बल वहिप नाम  
 व ला हुआ था । कम्बल वहिप के पुत्र का नाम रुक्म कवच था जो महान्  
 विद्वान् हुआ था ॥ २६ ॥ इस रुक्म कवच ने दूसरे रुक्मचन्द्रो और  
 धनिवशो का अनेक प्रकार के वाणों के द्वारा मित्रनम करके इस पृथिवी  
 को प्राप्त किया था ॥ २७ ॥ फिर उस राजा ने इस भूमि को अपने  
 बल विक्रम से प्राप्त करके भी अश्वमेध यज्ञ में ब्राह्मणों के लिए दक्षिणा  
 के रूप में प्रदान कर दी थी । किसी समय में वीर शत्रुओं के हनन करने  
 वाले रुक्म कवच ने यज्ञ में पाँच पुत्रों को जन्म दिया था । ये पाँचों पुत्र  
 महान् बलवीर्य वाले और धनुषधारी हुए थे । रुक्मों में पृथुरुक्म-ज्यामघ-  
 परिध-हरि थे ॥ २७, २८ ॥

परिध च हरि चैव विदेहेऽस्थापयत्पिता ।  
 रुक्मेपुरभवद्राजा पृथुरुक्मस्नदाश्रयः ॥ २८  
 तैभ्य प्रवाजितो राज्यात् ज्यामघस्तुतदाश्रमे ।  
 प्रशान्तश्चाश्रमस्थश्च ब्राह्मणेनाववाधितः ॥ ३०  
 जगाम धनुरादाय देशमन्य ध्वजी रथी ।  
 नम्मदा नृपएकाकी केवल वृत्तिकामतः ॥ ३१  
 श्रक्षवत्तं गिरिं गत्वा भुक्तमन्यैरुपाविशत् ।  
 ज्यामघस्याभवद्भार्या चैत्रापरिणतासती ॥ ३२  
 अपुत्रो न्यवसद्राजा भार्यामन्यान्नविन्दत ।  
 तस्यार्साद्विजयो युद्धे तत्र कन्यामवाप्सतः ॥ ३३  
 भार्यापुत्रावच सन्त्रासात् स्नुषेय ते शुचिस्मिते ।  
 एवमुत्ताग्रवीदेन कस्यचेयस्नुषेति च ॥ ३४

पितान् परिध और हरि को विदेह में स्थापित किया था । रुक्मों  
 में पृथुरुक्म राजा उसके आश्रय वाला हुआ था ॥ २८ ॥ उनमें ॥ ज्यामघ  
 राज्य से प्रवाचिन हो गया था और उस आश्रम में रहने लगा था । वह  
 परम प्रशान्त होकर आश्रम में स्थित रहता था तथा ब्राह्मण के द्वारा भव

घोषित किया गया था ॥३०॥ ध्वजो रथां घनुय लेकर अन्य देश को चला गया था । वह नृप केवल वृत्ति की कामना से अकेला ही नर्मदा पर चला गया था ॥३१॥ जलों के द्वारा मुक्त श्वशमान् नाम गिरि पर जाकर वह उपविष्ट हो गया था । ज्यामल की भार्या चैत्रा परिणत और सती थी । ॥३२॥ यह राजा बिना ही पुत्र बना रहा करता था और इसने क्षय किसी भी भार्या को नहीं प्राप्त किया था । उसने मुद्र में विजय हुआ था वहां पर एक कन्या को प्राप्त किया था ॥३३॥ उसने सम्प्राप्त से अपनी भार्या से कहा था कि हे शुचि स्मिन् ! यह कन्या तेरी स्तुपा है अब राजा ने भार्या से इस तरह ने कहा था तो वह उसमें बोली थी कि यह किस की स्तुपा है ? ॥३४॥

यस्तेजनिष्यते पुत्रस्तस्य भार्या भविष्यति ।  
तस्मात्सुतपत्नीमणवन्त्याया सम्प्रयूयत ॥३५॥  
पुत्रं विदर्भं सुमगा चैत्रा परिणता सती ।  
राजपुत्र्यार्वाविद्वान्सस्तुपायाक्रयकेशिकी ॥  
लोमपाद तृतीयन्तु पुत्र परमघामिहम् ॥३६॥  
तस्या विदर्भोऽजन्मच्छरान्गणविशारदान् ।  
लोमपादान्मनुपुत्रोज्ञातिन्तन्मनुचात्मज ॥३७॥  
कैशिकस्य चिदि. पुत्री तस्माच्चैवा नृपाः स्मृताः ।  
कयो विदर्भपुत्रस्तु कुन्तिस्तस्यात्मजोऽमवत् ॥३८॥  
कुन्तेवृष्टः सुतो जज्ञे रघुवृष्टः प्रतापवान् ।  
वृष्टस्यपुत्रोऽष्टमात्मानिवृत्तिपरवीरहा ॥३९॥  
तदेको निर्बृतेः पुत्रो नाम्ना सतुविदूरयः ।  
दशाहंस्तस्यवैपुत्रोऽयोमस्तस्यचवन्मृत ॥  
राज्ञार्हात्त्वैव व्योमात् पुत्रो जीमूत उच्यते ॥४०॥  
जीमूतपुत्रो विमनस्तस्यभामरथ मुतः ।  
मुता भौमगम्यासीत् स्मृतो नवरथ विन ॥४१॥

तस्य चासीदृढरथः शकुनिस्तस्यचात्मजः ।

तस्मात्करम्भ कारम्भिर्देवरातोवभूवह ॥४२॥

राजा ने अपनी भार्या के इस प्रश्न पर उत्तर दिया था कि जो पुत्र तेरे उदर से जन्म ग्रहण करेगा उसी की यह भार्या होगी इससे उसने अत्यन्त उग्र तपश्चर्या की थी फिर उस सुभाग-परिणता-सती चैत्रा ने उस कन्या के लिये विदर्भ पुत्र को प्रसूत किया था उस विद्वान् ने राजपुत्री में क्रथ-कैशिक और तृतीय परम धार्मिक सोमपाद को जन्म दिया था । ॥३५, ३६॥ उसमें विदर्भ ने रण के महान् विशारद अत्यन्त शूरवीर पुत्रों को समुत्पन्न किया था । सोमपाद से मनु पुत्र उत्पन्न हुआ था और उसका आत्मज ज्ञाति हुआ था । कशिक का पुत्र विदि नामधारी उत्पन्न हुआ था । उससे जो समुत्पन्न हुए थे वे चैत्रा नुर कहे गये थे । विदर्भ का पुत्र क्रथ हुआ था और उसका आत्मज कुन्ति नाम वाला उत्पन्न हुआ था ॥३७, ३८॥ कुन्ति से धृष्ट नामक सुत ने जन्म ग्रहण किया था जो रण में परम धृष्ट ही था और परमाधिक प्रताप वाला था । धृष्ट का पुत्र धर्मात्मा निर्वृति नामधारी हुआ जो शत्रुवीरो का हनन करने वाला था ॥३९॥ उस निर्वृति से केवल एक ही पुत्र उत्पन्न हुआ था जिसका नाम विदूरथ था । इसके जो पुत्र प्रसूत हुआ था उसका नाम दशार्ह था तथा इस दशार्ह के ही पुत्र का नाम व्योम हुआ था । इस दशार्ह व्योम का जीमूत कहे जाने वाले पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था ॥४०॥ जीमूत का पुत्र विमल हुआ था और फिर हय्य का पुत्र भीमरथ उत्पन्न हुआ था । इस भीमरथ का जो दग्याद हुआ था वह नवरथ कहा गया है । ॥४१॥ इसका पुत्र दृढरथ हुआ तथा दृढरथ का शकुनि नाम वाला आत्मज उत्पन्न हुआ था । इससे करम्भ और कारम्भ से कारम्भि देवरात ने जन्म प्राप्त किया था ॥४२॥

देवसूत्रोऽमदद्राजा देवरातिर्नृपयशाः ।

दग्धभयमाजश दग्धनक्षत्रगन्धन ॥४३॥

मधुनाम महातेजा मधोः पुरवसस्तथा ।  
 बासीन् पुरवसः पुत्र- पुम्हान् पुरुपोत्तमः ॥४१॥  
 जन्तुजं जेऽय वेदभ्यां भद्रसेन्यां पुरुद्वजः ।  
 ऐश्वर्यकोचामयद्रोपजित्तोस्तस्यामजायत ॥४२॥  
 सात्वतः सत्वम युक्त-सात्वतां कीर्तिवर्द्धनः ।  
 इमा वितृष्टिर्विज्ञायमानधम्यमहात्मनः ॥  
 प्रजावानेति सायुज्य राज्ञः नामस्य धीमतः ॥४३॥  
 सात्वतान्सत्वसम्पन्नान्कोशल्यानुपुन्रेनुतान् ।  
 भजिनं भजमानन्नुदिव्यदेवावृध्वनय ! ॥४४॥  
 अश्वकश्च महामोजं वृष्णि च यदुनन्दनम् ।  
 तेषां तु सर्गाश्चत्वारो विस्तरं वतच्छृणु ॥४५॥  
 भजमानस्य नृञ्जय्या वाह्यकायाञ्च वाह्यगाः ।  
 मृञ्जयस्य भुतद्वेनुवाह्य-स्तुनदामवन् ॥४६॥  
 तस्य मार्गे मणिनी द्वे नुपुत्रास्ते बहून् मृतान् ।  
 निर्मिद्वद्विमिनः चंदवृष्णिपरस्-ञ्जयभु ॥  
 ते वाह्यगाया मृञ्जय्या भजमानाद्विजनिरे ॥४७॥

देवरान का पुत्र देवराति देवरात्र ने प्रमथ प्राप्त किया था जो  
 महान् यश बाता राजा हुआ था । देवरात्र का पुत्र देवगर्भसम जन्म  
 हुआ था ॥४१॥ मधु नाम बाता महान् तेजस्वी हुआ था इन मधु से पुत्र-  
 पुरव ने जन्म प्राप्त किया था । पुरवस का पुत्र पुरयो में उत्तम पुरुहान्  
 हुआ था ॥४२॥ पुम्हान् ने वेदभ्यां भद्रसेना में जन्तु ने जन्म लिया था ।  
 इन जन्तु की भार्या ऐश्वर्यको नाम बाती हुई थी । उस भार्या में सत्व से  
 सम्पन्न सात्वत नाम बाना सात्वतों की कीर्ति के दर्शन करने बाना  
 पैग हुआ था । महान्ना जगामन की इन विशेष सृष्टि का इन प्राप्त  
 करलो जो उपपुक्त रीति से हुई थी । घामान् राजा सोम का सद्युज्य  
 जावान् बलजा है ॥४६॥ रीजल्या ने सत्व से भुमम्पन्न सात्वतों के

प्रसूत किया था । हे नृप ! भजिन—भजमान—दिव्य—देवावृद्ध—अन्धक—महाभोज और वृष्णि हे यदु नन्दन ! ये उत्पन्न हुए थे । उनके चार प्रमुख संग थे । अब विस्तार से उनका श्रवण करो ॥४७, ४८॥ भजमान के सृञ्जयी मे और बाधुका मे बाह्यक हुए थे । सृञ्जय की दो सुताएँ थी । उस समय मे बाह्यक हुए थे ॥४९॥ उसको दोनो बाहिनें भाग्यैँ थीं जिन्होंने बहुत से सुतो को प्रसूत किया था । निमि—कृमिल—वर्णि और परपुरञ्जय ये सब बाह्यका और सृञ्जयी मे भजमान से समुत्पन्न हुए थे ॥५०॥

जज्ञो देवावृद्धो राजा बन्धूना मित्र-वर्द्धनः ।  
 अपुत्रस्त्वभवद्राजा चचार परमन्तपः ॥  
 पुत्र. सर्वगुणोपेतो मम भूयादिति स्वहन् ॥५१॥  
 सयोज्य मन्त्रमेवाथ पर्णाशजलमस्पृशत् ।  
 तदोपसंक्षानात्तस्य शकार प्रियमापगा ॥५२॥  
 कल्याणत्वान्नरपतेस्तस्मै नानिन्मनोत्तमा ।  
 चिन्तयाथ परीतात्मा जगामाथ विनिश्चयम् ॥५३॥  
 नाधिगच्छाम्यहं नारी यस्यामेव विधः सुतः ।  
 जायेत तस्माद्द्याहं भवाम्यथ सहस्रशः ॥५४॥  
 अथ भूत्वा कुमारी सा विभ्रती परमं वपुः ।  
 ज्ञापयामास राजानं तामियेष महाव्रतः ॥५५॥  
 अथ सा नवमे मासि सुपुत्रे मरिता वरा ।  
 पुत्रं सर्वगुणोपेतं वभ्रुं देवावघान्नुपात् ॥५६॥

वापुत्रों का मित्र बधन राजा देववृद्ध ने जन्म ग्रहण किया था किन्तु यह राजा पुत्रहीन ही हुआ था और इसने परम उत्तम तप का समाचरण किया था । उसकी यही इच्छा थी कि मेरा जो पुत्र हो वह समस्त गुणों से सुगुण्य होना चाहिये ॥५१॥ इसके अनन्तर मन्त्र का संयोग करके उसने पर्णाश के जल का उपस्पर्शन किया था । उस समय मे उसके



उपस्थान से उस सरिता ने उसका प्रिय कर दिया था ॥५२॥ नरपति के कल्याण के हेतु से वह नदी उसके लिये अत्युत्तमा हुई थी । वह जित्ता से परोत आत्मा वाक्ता था किन्तु इसके उपरान्त वह विनिश्राम को प्राप्त हो गया था ॥५३॥ मेरे पास ऐसी नारी ही नहीं प्राप्त है जिसमें इस प्रकार का सकल गुणाही समन्वित पुत्र समुत्पन्न होवे । इसलिये मैं आज सहस्रतः होता हूँ ॥ ५४ ॥ इसके अनन्तर वह परम सुन्दर शरीर धारण करने वाली कुमारी होकर उसने राजा को सापित किया था और उस महाव्रत न उसा कुमारी का प्राप्त करने का इच्छा की थी ॥५५॥ फिर इसके उपरान्त उस सरिताया में परम श्रेष्ठा न नवम मास में देववृष नृप से समस्त गुणगण से युक्त वधू नामक पुत्र को प्रसूत किया था ॥५६॥

अनुवशे पुराणज्ञा गायन्तोतिपरिश्रुतम् ।

गुराण् देवावृषस्यापि तीत्यन्तो महात्मनः ॥५७॥

यथैव शृणुमो दूरादपर्यामस्तथान्तिकात् ।

वधूः श्रेष्ठोमनुष्याणा देवदेवावृषसम ॥५८॥

पट्टिदृश्व पूवपुरुषाः सहस्राणि च सप्तति ।

एतेऽमृतत्व संप्राप्ता वभ्रोदेवावृषान्पु । ॥५९॥

यत्वा दान पतिर्वीरो ब्रह्मपदं च वृद्धव्रत ।

रूपवान्मुमहातेजाः श्रुतवीर्यधरस्तथा ॥६०॥

अथ कङ्कस्य दुहिता सुपुत्रे चतुर सुतान् ।

कुङ्कुर भजमानञ्च शशि कम्बलवर्हिपम् ॥६१॥

कुङ्कुरस्यसुतोवृष्णिवृष्णेस्तुननयाधृति ।

कपोतरोमातस्याथततिरिस्तस्यचात्मजः ॥६२॥

तस्यासीत्तनुजापुत्रो सखाविद्वान्नल किल ।

स्थापतेनस्यनाम्नाचनन्दनादरदुन्दुभि ॥६३॥

पुराणों के ज्ञाता विद्वान् इस अनुवज म इस परिश्रुत आख्यान का गायन किया करते हैं और महान् आत्मा वाल देववृष व गुणों का भी

कीर्ति किया करते हैं। जिस तरह से हम दूर से व्यवहार किया करते हैं उसी भाँति समीप में पहुँच कर देखते हैं—वधू मनुष्यों में परम श्रेष्ठ है और देवा वृषदेवों के ही समान है ॥५७॥ हे नृप ! साठ और सत्तर सहस्र पूर्व पुरुष देवावध वधू के अमृतत्व को प्राप्त हो गये थे । ॥५८॥ यह यजन करने वाला—दानबलि—वीर—ब्रह्मण्य—वृद्धव्रत वाला—रूप लावण्य से युक्त—महान् तेज वाला तथा श्रुतवीर्यधर था ॥५९॥ इसके अनन्तर कच्छ की पुत्री ने चार सुतों को प्रसूत किया था । उनके नाम कुकुर—मममान—शशि और कम्बल बहि थे ॥६०॥ कुकुर का पुत्र वृष्णि समुत्पन्न हुआ था और वृष्णि का सुत धृति हुआ था । इसका दामाद कपोतरोमा था और उसका आत्मज तैत्तिरि सनु-पन्न हुआ था । ॥६१॥ उसके तनुत्रा का पुत्र सखा तथा विद्वान् नल था । उसके नाम न नन्द नोदर दुग्धुभि ख्यात होता है ॥६२॥

तस्मिन्प्रदितते यज्ञे अभिजातः पुनर्वसुः ।  
 अश्वमेध च पुत्रार्थमाजहार नरोत्तमः ॥६४॥  
 तस्यमध्येतिराश्रयसभामध्यात्समुत्थितः ।  
 अतस्तुषिद्वान्कर्मज्ञोयज्वादातापुनर्वसु ॥६५॥  
 तस्यासीत् पुनर्मिथुन बभूवाविजित किल ।  
 आहुकश्चाहुकी चैव ख्यातमतिमतावरः ॥६६॥  
 इन्द्राश्चोदहरन्त्यत्रश्लोकान्प्रतितमाहुकम् ।  
 सोमासङ्ग नुकर्षाणासध्वजानावहथिनाम् ॥६७॥  
 रथाना मेघघोषाणा सहस्राणि दशैव तु ।  
 नासत्यवादी नातेजा नायज्वा नासहस्रद ॥६८॥  
 नाशुचि नाप्यविद्वान् हियाभोजेऽप्यभ्यायनः ।  
 आहुकस्यमूर्ति प्रोत्पादयेतद्वेदुष्यते ॥६९॥  
 अद्भुतश्चाप्यवन्तीपुस्तसारवाहुकी ददौ ।  
 आहुकान्वाप्यदुहिता द्वौ पुत्रौसमसृजतः ॥७०॥

तस यज्ञ के वितत होने पर पुनर्वसु अभिजात हुआ था । नरो में उत्तम उसने पुत्र की प्राप्ति के लिये अश्वमेध यज्ञ किया था ॥ ६४ ॥ अतिरात्र उसके मध्य में समा के मध्य से समुत्पन्न हुआ था । इसीलिये पुनर्वसु यक्षा ( यज्ञ न करने वाला )—विद्वान्—कर्मों का ज्ञान रखन वाला और दानशील था । हे मतिमानो मे परमश्रेष्ठ ! आश्वके प्रविजित पुत्रों का एक जोड़ा समुत्पन्न हुआ था जिनके नाम आहुक और आहुकी प्रसिद्ध हुए थे ॥ ६५ ॥ यहाँ पर उस आहुक के प्रति इत बलावा बो च सहस्र करते हैं कि उपासकानुकर्मों के सहित और ध्वजाभा के सहित—बक्यी—मेघघोष रथों की दम सहस्र सख्या उसका पास थी । वह पसह्यवाधी नहीं था—तेजहीन—यजमान करने वाला और एक सहस्र स कम देने वाला नहीं था ॥ ६६, ६७ ॥ वह अशुचि—अविद्वान् भी नहीं था । जो मोघो मे अभिजात हुआ था । आहुक की मूर्ति का प्राप्त हुए थे—यज्ञो कहा जाता है ॥ ६८, ६९ ॥ आहुक ने अबन्तीयो मे आहुकी को दिया था । आहुक से काश्य दुहिता ने दो पुत्रों को प्रसूत किया था ॥ ७० ॥

देवकश्चोग्रसेनश्च देवगन्धर्माबुधौ ।  
 देवकस्य सुता वीरा जनिरे त्रिदशापमा ॥७१॥  
 देववानुपदवश्च सुदवो देवरक्षित ।  
 तेषां स्वसार सप्तासन् यमुदेवान तां वदौ ॥७२॥  
 देवकी धनुदेवी च यशादा च यशापरा ।  
 श्रीदेवो सत्यदेवी चसुतापो चेतिसप्तमौ ॥७३॥  
 नवाग्रमनस्या सुता कशस्तेपातु पूर्वज ।  
 म्यग्राधश्च सुतामा च रुद्धु शङ्कुश्च भूयस ॥७४॥  
 सुनन्तुराष्ट्रगतश्चपृद्धमुष्ट सुमुष्टिद ।  
 तेषां स्वसार यज्वामन् कमाकसत्रना तथा ॥७५॥  
 उत्तम राष्ट्रगती च कङ्का नेवगङ्गना ।

उग्रमेन सहापत्यो व्याख्यातःकुकुरोद्भवः ॥७६॥

भजमानस्य पुत्रोऽथ रथिमुख्यो विदूरथः ।

राजाधिदेव. शूरश्च विदूरथसुतोऽभवत् ॥७७॥

उन दोनों का देवक और उग्रसेन ये दो नाम थे । ये दोनों देव-  
गर्भ के समान थे । देवक के सुत गरम वीर और देवो के ही समान थे  
॥ ७१ ॥ उनके नाम देववान्—उपदेव—सुदेव और उपरक्षित थे । इनकी  
सात भगिनियाँ थीं जो वे सब बसुदेव के लिये ही गयी थीं ॥ ७२ ॥  
इन सातों के नाम देवकी—श्रुतदेवी—यशोदा—यशोधरा—श्रीदेवी—सत्यदेवी  
और इनमें सातवी बहिन का नाम यमुतापी हुआ था ॥ ७३ ॥ महाराज  
उग्रसेन के नौ सुत हुए थे उन सबमें कस सबसे बड़ा प्रथम पुत्र था ।  
दोष नी में से घाठ के नाम—न्यग्रोध—मुनामा—कङ्क—बकु—सुतनु—  
राष्ट्रपाल—बुद्धमुष्टि और समुष्टिद थे । उनकी बहिनें भी पाँच थीं—  
कना—वसावती—सुत-तु—राष्ट्रगती और कङ्का ये उन पाँचों के  
नाम हैं । ये सभी बराङ्गनाएँ थीं । उग्रमेन सहापत्य कुकुरोद्भव व्या-  
ख्यान किया गया है । यजमान का पुत्र रथियो में प्रमुख और राजाधिदेव  
विदूरथ हुआ था । विदूरथ के यहाँ शूर नामक पुत्र में जन्म लिया था ।  
॥ ७४, ७५, ७६, ७७ ॥

राजाधिदेवस्य सुतो जज्ञाते देवसमिती ।

नियमव्रतप्रधानो क्षोणाश्व इवेतवाहन. ॥७८॥

क्षोणाश्वस्यमुताः पञ्चशूरारणविशारदाः ।

समीच वेदसर्मा च निरुन्तःशक्रश जित् ॥७९॥

समिपुत्रः प्रतिक्षत्र प्रतिदात्रस्य चात्मजः ।

प्रतिक्षेत्र मुतोभोजोद्दृक्करतस्य चात्मजः ॥८०॥

हृदीकस्याभवन् पुत्रा दश भीमपराक्रमाः ।

शृनवर्माप्रजस्तेषां शतधन्वा च मध्यम. ॥८१॥

देवाहर्षच नाभश्च भीष्मश्च महाबल. ।

अजातो वनजातश्च कर्तृयकारम्भकौ ॥८२॥

देवाहंस्य मुनीविद्वान्जनेकम्बलवह्निपः ।

असमञ्जाः सतस्तस्य तमोजास्तस्यचात्मजः ॥८३॥

अजातपुत्रा विक्रान्तास्त्रयः परमकीर्त्तिपः ।

सुदष्टश्च सुनामश्च कृष्ण इत्यन्धकामता ॥८४॥

अन्धकानामिमं वशं यः कीर्त्तयति नित्यशः ।

आत्मनो विपुलं वशं प्रजावानाप्नुते नरः ॥८५॥

राजाधिदेव के दो पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया था और ये दोनों ही देवों के सहाय थे। दोनों के नियम और वश की प्रधानता थी। इनके पुत्र नाम शोभाश्व और श्वेन बाहून थे ॥ ७८ ॥ शोभाश्व के परम शूरवीर और रण विद्या के महा विद्वान् पाँच पुत्रों ने जन्म ग्रहण किया था। शमी-वेदशर्मा-निकुन्त-ककनवृत्रित-ये उन पाँचों के पुत्र नाम हैं। शमी का पुत्र प्रतिक्षत्र हुआ और प्रतिक्षत्र का आत्मज प्रतिक्षेत्र था। प्रतिक्षेत्र का पुत्र भोज और उसका आत्मज हृदीक उत्पन्न हुआ था ॥ ७९, ८० ॥ हृदीक के भीम पराक्रम वाले दश पुत्रों ने जन्म लिया था। उनमें इन्वर्मा सबसे प्रथम उत्पन्न हुआ था और शतधा उनमें मध्यम पुत्र था ॥ ८१ ॥ दोष देवाह — नाम — भीयण — महाबल — अजात — वनजात कनीषक — हरम्भक ये नाम हैं ॥ ८२ ॥ देवाह की भार्या में देवाह से अतिशय विद्वान् कम्बल वह्नि ने प्रसव प्राप्त किया था। उसके पुत्र असमञ्जा था और इसके पुत्र तमोजा समुत्पन्न हुआ था ॥ ८३ ॥ अजात के परम विक्रान्त भार्या से चक्रवर्तिन वाले और वयस कीर्त्तिशाली तीन पुत्र हुए थे। सुदष्ट-सुनाम और कृष्ण ये उन तीनों के पुत्र नाम थे। ये सब अन्धक माने गये हैं ॥ ८४ ॥ अन्धकों के इस वश का जो कोई पुण्य नित्य ही कीर्त्तन किया करता है वह प्रजावान नर अपने आपका विद्वान् वश प्राप्त किया करता है ॥ ८५ ॥

## २३—स्यमन्तकमणि का संक्षिप्त चरित्र

गान्धारी चैव माद्री च वृष्णिभार्येवभूवतु ।  
 गा-धारी जनयामास सुमित्रं मित्रनन्दनम् ॥१॥  
 माद्री युधाजित पुत्र ततो वं देवमीदृशम् ।  
 अनमित्र शिबिचैव पञ्चम कृतनक्षणम् ॥२॥  
 अनमित्रसुतो निघ्नो निघ्नस्यापितुद्रो सुतो ।  
 प्रसेनश्चमहावीर्यं शक्तिसेनश्च तावुभौ । ३॥  
 स्यमन्तक प्रसेनस्य मणिरत्नमनुत्तमम् ।  
 पृथिव्या सर्वरत्नानाराजावं सोऽभवन्मणि ॥४॥  
 हृदि कृत्वा तु बहुशो मणिं तमभियाचितम् ।  
 गाविन्दोऽपिनत लेभेशक्तोऽपिनजहारस ॥५॥  
 यदाचिन्मृगया यात प्रसेनस्तेन भूपित ।  
 यथाशब्द स पुत्राव बिले सत्वेन पूरिते ॥६॥  
 ततः प्रविश्य स बिल प्रसेनो ऋक्षमञ्जित ।  
 ऋक्ष प्रमेनञ्च तथा ऋक्ष षोडशप्रसेनजित् ॥७॥

ने भी उसको प्राप्त नहीं किया था । वह सर्व समय होने हुआ भी उसका हृण्ड उन्होंने नहीं किया था ॥ ५ ॥ किसी समय में उसी मणि से भूषित होकर प्रसेन मृगया को ब्रीडा करने के लिये चला गया था । किसी दिवस पशु जैसा उसने वन में मन्द का शवण किया था जो कि तत्तः पूरित था ॥ ६ ॥ इसका पशुवात् मृगया के मत्त प्रसेन ने उसमें प्रवेग किया था । वही पर उसका श्वश्रु को देखा था । वही पर दोनों श्वश्रु और प्रसेन में युद्ध हुआ अन्त में श्वश्रु ने प्रसेन पर विजय प्राप्त करली थी ॥ ७ ॥

हत्वा श्वश्रुः प्रसेनन्तु ततस्त मणिमाददात् ।  
अदृष्ट्वन्तु हतस्तेन अन्तर्विलगतस्तदा ॥  
प्रननन्तु हत जात्वा गोविन्द परिशङ्कितः ।  
गाविन्देन हताश्रक्तं प्रमेनो मणिकारणात् ॥६॥  
प्रसेनस्तु गतोऽरण्य मणिरस्तेन भूषितः ।  
त दृष्ट्वा स हतस्तेन गोविन्दः प्रत्युवाच ह ॥  
हन्मि नोन दुराचारं शत्रुभूतं हि वृष्णिषु ॥१०॥  
अथ दीर्घेण कालेन मृगयानिर्गतः पुन ।  
यद्वच्छयाच गोविन्दो विलम्बाम्यासमागमत् ॥११॥  
त दृष्ट्वा तु महाशब्दसचक्रे श्वश्रुः शरी ।  
शब्द श्रुत्वा तु गोविन्द सङ्गपाणि प्रविश्य स ॥  
अपश्यञ्जाम्बवन्त त श्वश्रुः राज महाबलम् ॥१२॥  
ततस्तूर्णं हृषीकेशस्तमृच्छपतिमञ्जसा ।  
जाम्बवन्त स जयाह प्रोद्य स रक्त लोचनः ॥१३॥  
तुष्टार्चनं तदा श्वश्रुः कर्मभिर्वर्णवैः प्रभुम् ।  
ततस्तुष्ट्वन्तु भगवान् वरेण्यं नमरोचयत् ॥१४॥

श्वश्रु ने प्रसेन का यथ वरने उसका वह मणि ग्रहण करली थी ।  
उत समय में वह हन हुआ विमो के द्वारा भी नहीं देखा गया था सो

विल के अन्दर चला गया था ॥ ८ ॥ प्रसेन को हृन् जानकर गोविन्द बहुत अधिक परितप्त हो गये थे । यही उम समय में स्पष्टतया प्रतीत हो गया था कि गोविन्द ने ही स्वयम्भुव मणि के कारण से उसका हनन किया है ॥ ९ ॥ प्रसेन तो उम मणि रत्न से विभूषित होकर ही अरण्य में गया था । उसको देखकर उसी के द्वारा उसको हृत किया गया है— यही गोविन्द ने उत्तर दिया था । मैं वृष्णियों क्षत्र के समान उस दुष्ट-पारी का अश्व्य हो हनन करूँगा ॥ १० ॥ इसके अनन्तर बहुत लम्बे समय के पश्चात् यह इच्छा से गोविन्द पुनः मृगया के लिये निकल कर गये थे । विचरण करते हुए यह इच्छा से ही गोविन्द उसी विल के समीप में प्राप्त हो गये थे ॥ ११ ॥ उनको देख कर बली ऋक्षराट् ने महान् शब्द किया था । उस ऋक्ष के महारथ को श्रवण करके गोविन्द ने हाथ में खड्ग धारण करके उस विल में प्रवेश किया था और वहाँ पर महान् बलशाली ऋक्षराज उस आमवन्त को जाकर देखा था ॥ १२ ॥ उसको देखकर क्रोध से रक्त नेत्रों वाले होकर हृषीकेश ने तुरन्त ही एकदम उस ऋक्षपति आमवन्त को पकड़ लिया था ॥ १३ ॥ उस समय में ऋक्षराज आमवन्त ने वैष्णव कर्मों के द्वारा इन प्रभु की स्तुति की थी । इसके पश्चात् भगवान् परम सन्तुष्ट हो गये थे और वरदान के द्वारा इसको भी प्रसन्न कर दिया था ॥ १४ ॥

इच्छे चक्र प्रहारेणत्वत्तोऽहं मरणंप्रभो ! ।

कन्याचेयममशुभा भर्तारत्वामवाप्नुयात् ॥

योऽयं मणिः प्रसेनन्तु हत्वा प्राप्तो मया प्रयो ॥ १५ ॥

तत् सजाम्बवन्त त हत्वाचक्रेणवै प्रभुः ।

कृतकर्मा महाबाहुः सख्यं मणिमाहरत् ॥ १६ ॥

ददौ सत्राजितार्येन सर्वसात्वदससदि ।

तेन मिथ्यापवादेन सन्तप्ता ये जनार्दने ॥ १७ ॥

ततस्ते यादवाः सर्वे वासुदेवमथाब्रुवन् ।



अस्माकन्तु भतिह्यासीत्प्रसेनस्तुत्वयाहतः ॥१८

ककेयस्य सुता भार्यादिशसत्राजितः शुभाः ।

तामूत्पन्नाः सुतास्तस्य सर्वलोकेपुत्रिश्रुताः ॥

ख्यातिमन्तो महावीर्या भङ्गकारस्तु पूरजः ॥१९

अथ व्रतवती तस्मात् भङ्गकारात्तु पूषजान् ।

सुपुत्रे शुक्रुमारीस्तु तिस्रः कमललोचनाः ॥ २०

सत्यमामा वरास्त्रीणा व्रतिनीचट्टव्रता ।

तथा पद्मावतीनीवत्ताश्च कृष्णायसोऽददात् ॥२१

जाम्बवन्त ने कहा—हे प्रभो ! मैं तो जब आप से ही चक्र के प्रहार के द्वारा प्रभु की ही इच्छा करता हूँ । यह एक मेरी परम शुभ एक कन्या है वह आप को ही अपना भर्ता प्राप्त कर लेवे । हे प्रभो ! मैंने ही प्रसेन का हनन करके यह मणि प्राप्त की है ॥१८॥ इसके अनन्तर उन प्रभु ने चक्र के द्वारा जाम्बवन्त का उमरी को इच्छा के अनुसार हनन कर दिया था और कर्म समाप्त करके महान् बाहुओं वाले प्रभु उस कन्या के साथ ही मणि का समाहरण कर लिया था ॥१९॥ फिर द्वारका में समस्त सास्वतों की सभा में बुलाकर उस मणि को सत्राजित को दे दिया था । फिर जो जनार्दन प्रभु के विषय में मिथ्या अवज्ञा लगा रहे थे वे बहुत ही सतप्त हुए थे ॥२०॥ इसके उपरान्त सभी यादवों ने भगवान् वासुदेव से कहा था कि हमारा सबका विचार तो यही निश्चित हो गया था कि प्रसेन को मारने ही मार दिया है ॥२१॥ ककेय की दश शुभ मुनाएँ सत्राजित् की भाग्यिणीं । उस सत्राजित् के उन दश भार्याओं में समुत्पन्न पुत्र समस्त लोगों में विद्वत् थे ॥२२॥ ये सब बड़ी ही अधिक स्मार्ति वाले थे और महान् बल—वीर्य में सुसम्पन्न हुए थे । इनमें भृङ्गकार सबसे प्रथम उत्पन्न हुआ ज्येष्ठ था । इसके अनन्तर उस पूर्वज भृङ्गकार से जनवती पत्नी ने कमल के मदश नेत्रों वाली परम सुन्दरी तीन मुकुमारी कन्याओं को प्रभु को दिया था ॥२३॥ सत्यमामा सभी स्त्रियों में परम ज्येष्ठ थी—

वतिनी सुदृढवत घाली थी और तीमरी पद्मापती थी । उन तीनों के हो उसने श्रीकृष्ण के लिये दे दिया था ॥ १॥

अनमित्रात् शनिर्जज्ञे कनिष्ठाद् दृष्टिर्नन्दनात् ।  
 सत्यवार्तस्य पुत्रस्तु सात्यकिरतस्य चात्मजः ॥२२॥  
 सत्यवान्युयुधानस्तु शिनेनंप्ताप्रतापवान् ।  
 असङ्गोऽयुधानरयश्चमिरतरयात्मजोऽभवत् ॥२३॥  
 द्युम्नेयुर्गन्धर्गः पुत्र इति शीन्याः प्रकीर्तिताः ।  
 अनमित्रान्वयो ह्येष श्याख्यातौ वृष्णि वंशजः ॥२४॥  
 अनभिद्रस्य सजज्ञे पृच्छया वीरो युधाजितः ।  
 अयौ तु तनयो वीरौ वृषभः क्षत्रपय च ॥२५॥  
 वृषभः काशिराजस्य सुता भार्यामिन्दत ।  
 जयन्तस्तु जयन्त्यान्तु पुत्र समभवत् क्षुभः ॥२६॥  
 सदा यज्ञोऽति धीरश्च श्रुतवानतिविप्रियः ।  
 अक्रूरः सुपुत्रे तस्मात्सदा यज्ञोऽतिदक्षिणः ॥ २७॥

॥३१॥ इन के पश्चात् आम्बिनी जो पुत्र हुए थे उनके शुभ नाम ये होते हैं—पृथु, विपृथु, अश्वत्थामा, सेवाहु, सुपार्श्वक, गवेपण, वृष्टिनेमि, सुप्रर्मा, शर्याति, अभूमि, वरुणभूमि, श्रमिष्ठ, श्रवण । इस मिथ्या अभिषक्ति को जो जो भगवान् कृष्ण से अपोहित की गयी है जो भी कोई जानना है तथा नित्य नियम से इसका पाठ तथा श्रवण किया करता है वह पुरुष कभी भी किसी के भी द्वारा मिथ्याभिषाप से अभि-  
शाप्य नहीं होगा ॥३२॥३३॥३४॥

## २४—कृष्णोत्पत्ति वर्णन

ऐश्वर्याः सुपुत्रे शूर रूपातमद्भुतमीदुपम् ।  
 पौरपाज्जजिरे शूरात् भोजायापुलकादसः ॥१॥  
 वसुदेवो महाबाहु पूर्वमानकदुग्दुभिः ।  
 देवमार्गस्ततो जज्ञे ततो देवश्रवाः पुनः ॥ २॥  
 अनाधृष्टिः शिनिश्चोत्र नन्दश्चैव ससृज्जगत् ।  
 दयाम दामाक सयूपपञ्चवाक्यवराद्भुताः ॥ ३॥  
 भूतकोटिः पृथा श्वश्रुतदेवीश्रुतश्रवाः ।  
 राजाधि देवो च तथा पञ्चीता धीरमातरः ॥४॥  
 वृत्तग्य तु श्रुता देवो मुग्रह सुपुत्रे सुतम् ।  
 शंख्यः श्रुतकोर्यान्तु जज्ञे सोऽनुप्रतोन्पः ॥ ५॥  
 श्रुतश्रमि धीरस्य मुनीषः ममपद्यन् ।  
 नागिका धर्मगारीर म दभृशारिमर्दनः ॥६॥  
 भय गह देन वृद्धो गो बुनिमोज्जुनाददी ।  
 एवमुन्नीगमात्पातायमदेववता पथा ॥ ७॥

पष्ठो भद्र विदेहश्च कंसः सर्वानघातयत् ॥११॥  
 प्रथमाया अमावास्या वापिकी तु भविष्यति ।  
 तस्या जज्ञे महाबाहुः पूर्वकृष्ण प्रजापतिः ॥१४॥

वसुदेव ने उस को पाण्डु के लिये प्रदान कर दी थी जो कि उस की परम प्रशस्त भार्या हुई थी । उसने पाण्डु के अर्थ के द्वारा महारथ देव पुत्रों का जन्म दिया था ॥२॥ धर्म से युधिष्ठिर ने जन्म लिया था । वायु देव से बृकोदर ने प्रसव प्राप्त किया था । इन्द्रदेव से धनञ्जय को समुत्पन्न किया था जो शक्र के ही सुतय वल पराजय वाला हुआ था । ॥६॥ माद्रवती ने तो ऐसा सुनते हैं अश्विनी कुमारों से दो पुत्र मकुल और सह समुत्पन्न हुए थे जो रूप लावण्य शील और अनेक गुण गणों से समन्वित थे ॥ १० ॥ पौरवी रोहिणी नाम वाली भार्या ने आनक दुग्धुभि से परम विख्यात ज्येष्ठ सुत अश्वराम की प्राप्ति का लाभ उठाया था और उस प्रिय सुत का साग्न भी हुआ था ॥११॥ अन्य सुन जो हुए थे उनके नाम इस प्रकार से हैं—दुर्दम—इमन—सुध्रु—पिण्डारक महा-हनु । उस समय में चित्रा अक्षी दो कुमारियों ने भी रोहिणी में जन्म ग्रहण किया था ॥१२॥ देवकी में शौर से वीर्तिमान् सुपेण—उदासी—मद्रतेन तथा अश्विवास—छटर्वा पुत्र भद्र नाम वाला था और विदेह में पुत्र समुत्पन्न हुए थे किन्तु कंस ने सभी का घात कर दिया था ॥१३॥ प्रथम अमावास्या से वापि की होगी । उसमें महान् बाहुओं वाले प्रजापति श्री कृष्ण पूर्व में समुत्पन्न हुए थे ॥१४॥

अनुजात्वं भवत् कृष्णात् सुभद्राभद्रभाषिणा ।  
 देवक्यान्तु महातेजा जज्ञे श्रोमहायशा ॥१५॥  
 सहदेवस्तु ताम्राया जज्ञे शौरिकुलोद्बहः ।  
 उपासङ्गघर लेभे तनय देवरक्षिता ॥  
 एवा वन्यञ्च सुभगाङ्क सस्तामभ्यघातयत् ॥१६॥  
 विजय राचमानञ्च बद्ध मानन्तु देवलम् ।

एते सर्वे महात्मानो ह्यपदेव्याः प्रजतिरे ॥१७॥  
 अथगाहो महात्मा च वृकदेव्यामजायत ।  
 वृकदेव्यां स्वयं जज्ञे नन्दको नामनामतः ॥१८॥  
 सप्तमं देवकी पुत्रं मक्षन् सुपुत्रे नृप ।  
 गवेपणं महाभागं सप्तमेऽप्यपराजितम् ॥१९॥  
 श्रद्धां देव्या विहारे तृधने हि विचरन् पुरा ।  
 वेश्यायामदघात् शौरिः पुत्रं कौशिकमग्रजम् ॥२०॥  
 सुतनू रथराजो च शौरिस्तथा परिग्रहौ ।  
 पुण्ड्रश्च कपिलश्चैव वसुदेवात्मजौ वतौ ॥२१॥

कृष्ण से पीछे एक अनुजा सुभद्रा नाम कासी समुत्पन्न हुई थी जो परम भद्र भाषण करने वाली थी । देवकी में तेजस्वी लक्ष्मी महा यशस्वी शूर ने जन्म ग्रहण किया था ॥१५॥ शौरिकुल का उद्भूत करने वाले महर्षि ने ताम्रं में जन्म प्राप्त किया था और देवकी ने उपसङ्ग-घर पुत्र प्राप्ति करने का सोच उठाया था । परम सुमया एक कन्या समुत्पन्न हुई थी किन्तु उसी समय में वृष्ट कंस ने उसका घात कर दिया था ॥१६॥ विजय-बोधमान-बर्द्धमान-देवल ये समस्त महान् आत्माओं वाले पुरुषों ने उपदेवी के उदर से जन्म प्राप्त किया था ॥१७॥ महात्मा अथगाह वृकदेवी से उत्पन्न हुआ था । वृकदेवी से नन्दक नाम धारी ने स्वयं जन्म प्राप्त किया था ॥१८॥ हे नृप ! देवकी ने सातवा पुत्र म. न. त. का प्रवृत्त किया था और सप्तमों में पराजित न हो । काले महाभाग गवे-पण नामक पुत्र की उत्पन्न किया था ॥१९॥ परम प्राचीन समय में श्रद्धा देवी से धन में विहार के समय में विचरण करते हुए शौरि ने वेश्या में अग्रज पुत्र कौशिक को प्रारण किया था ॥२०॥ सुतनू रथराजो ये दो शौरि के परिग्रह हुए थे ॥२१॥

अराताम निपादोऽभूत् प्रथमः स धनुर्धरः ।

सोभद्गश्च भद्र-दीव महासत्त्वो बभूवतुः ॥२२॥

देवभागसुतश्चापि नाम्नाऽसाबुद्धवः स्मृतः ।  
 पण्डितं प्रथमं प्राहुर्देवश्रवः समुद्भवम् ॥२३॥  
 ऐश्वर्यवलयभतापस्य अनाघृष्टेयंशस्विनी ।  
 निधूं तसत्त्वं शत्रुघ्न आद्वस्तस्मादजायत ॥२४॥  
 करुपायानपत्याय कृष्णस्तुष्टः सुतन्ददौ ।  
 सुचन्द्रन्तु महाभाग वीर्यवन्त महाबलम् ॥२५॥  
 जाम्बवत्याः सुतावेती द्वौ च सतृक् तलक्षणी ।  
 धारदेष्णश्च साम्बश्चवीर्यवन्तौ महाबलौ ॥२६॥  
 तन्तिपालश्च तन्तिश्च नन्दनस्य सुसाबुधौ ।  
 शमीकपुत्राश्चत्वारो विक्रान्ताः सुमहाबलाः ॥  
 विराजश्च अनुश्चोव श्याम्यश्च सञ्जयस्तथा ॥२७॥  
 अनपत्योऽभवच्छयाम शमीरुस्तुवनंययौ ।  
 जुगुप्समानोभोजत्वं राजपितृवमवाप्तवान् ॥२८॥  
 शृष्णास्य जन्माभ्युदय उ कीर्तयति नित्यशः ।  
 शृणोति मानवो नित्यसर्वपादः प्रमृश्यते ॥२९॥

ये जिनके नाम विराज—धनु—श्याम और सुवर्ण्य थे ॥२७॥ इनमें श्याम अत्यन्त से रहित हो गया था अर्थात् उसने कोई भी सन्तान नहीं हुई थी। शमीक तो वन में चला गया था और भोजन की जुगुप्सा करना हुआ वह राजपि के पद को प्राप्त हो गया था ॥२८॥ यह श्रीकृष्ण के जन्म का अद्भुतदय है इसको जो पुरुष नित्य ही नियम से कीर्तित किया करता है अथवा इसका श्रवण किया करता है वह मानव समस्त प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है ॥२९॥

## २५--कृष्णमन्तान वर्णन

अथ देवो महदेव पूर्वं कृष्णः प्रजापतिः ।  
 विहारार्यं स देवेणा मानुषेष्विह जायते ॥१॥  
 देववयं वसुदेवस्य तपसा पुष्करेक्षण ।  
 चतुर्वर्द्धस्तदा जातोदिव्यरूपोज्ज्वलन्प्रिया ॥२॥  
 श्रीवत्सलक्षणं देवं दृष्ट्वा लक्ष्मणः ।  
 उवाच वसुदेवस्त रूपं सह्य वै प्रभो ॥३॥  
 भीतोऽहं देव ! कमस्य ततस्त्वेतद्गवामि ते ।  
 ममपुत्राहतास्तेनग्नेष्टास्तेभ्योमविष्मता ॥४॥  
 वसुदेववधः श्रुत्वा रूपं सह्यतेऽब्रुवत् ।  
 क्षनुषाप्य ततः श्रीमि नन्दगोपगृहेऽनयत् ॥५॥  
 दार्वेन नन्दगोपस्य रह्यनामिति चाग्रवीन् ।  
 अतस्तु मय कल्याणदवानामविष्मति ॥६॥

महामहर्षि श्री गुरुजी ने कहा—इसके अन्तर महान् देव देव प्रजापति श्री कृष्ण पूर्व में विह्वल के निचे ही यह देवेश्वर यही समार में मनुष्यों में समुत्पन्न हुआ करने हैं ॥१॥ वसुदेव श्री तपस्वी म हो देशकी में पुष्करेक्षण—चाहूँ मुदाओ जाने दिख कर मैं समझिये थीं ते जागस्त-

मान होते हुए उस समय मे प्रादुर्भूत हुए थे ॥२॥ श्रीवत्स के कारण कर्मे के लक्षण वाले तथा दिव्य लक्षणों से समुत देव का उस समय मे दर्शन करके ही वसुदेव ने उनसे प्रार्थना की थी कि हे प्रभो ! आप अपने स्वरूप को सहित कर लीजिए ॥३॥ हे देव ! मैं राजा कस से अत्यन्त ही भय-भीत हो रहा हूँ इसीलिये आपसे यह निवेदन करता हूँ । इस दुष्ट कस ने आपसे पहिले समुत्पन्न हुए आपके ज्येष्ठ भाई मेरे पुत्रों का हनन कर डाला है जो कि भीम बल पराक्रम से युक्त थे ॥४॥ वसुदेव की प्रार्थना के इन वचनों का ध्वन्य करके भावान् अच्युत ने अपने उस दिव्य स्वरूप का संवरण कर लिया था । इसके उपरान्त उन्होंने क्षौरिकी अनुज्ञापन दिया था और वह उनको नन्द गोप के गृह मे ले गये थे ॥ ५ ॥ इनको वसुदेव ने नन्द गोप के सुपुत्र करके यह कहा था कि आप ही मेरे इस पुत्र की रक्षा कीजिए । इनसे ही सब यादवों का बचाव होगा ॥६॥

क एष वसुदेवस्तु देवकी च यशस्विनी ।  
 नन्दगोपश्च कस्त्वेव यशोदा च महाव्रता ॥७॥  
 या विष्णुं जनयामास यच्च तातेत्यभाषत ।  
 या गर्भं जनयामास याचैनं स्वभ्यवर्द्धयेत् ॥८॥  
 पुरुष कस्यपस्त्वासीददितिस्तु प्रिया स्मृता ।  
 ग्रहाण कस्यपस्त्वाशं पृच्छिष्यास् दितिस्त्वया ॥९॥  
 अथ कामान् महाबाहूर्देवक्याः सम्पूरयत् ।  
 ते तथा काङ्क्षितान्त्यमजातस्यमहात्मनः ॥१०॥  
 सोऽवतर्णो मही देव प्रविष्टो मानुषीतनुम् ।  
 मोहयन्सर्वभूतानियोगात्मा योगमायया ॥११॥  
 नष्टे धर्मे तथा जने विष्णुर्दृष्टिं जितुं प्रभुः ।  
 वस्तु धर्मस्य सम्पन्नममुराणां प्रणाशनम् ॥१२॥  
 रविमणोसत्यमामाचरत्याना नजितो तथा ।



सुभामाचतयायैव्यागाधारीलक्ष्मणा तथा ॥१२

मित्रविन्दा चकालिन्दीदेवीजाम्बवतीतथा ।

सुशोलाचतयामाद्रीकौशल्याविजयातथा ॥

एवमादीनि देवीनां सहस्राणि च षोडश ॥१४

मुनिगण ने कहा—यह वसुदेव कौन थे और परम यशस्विनो यह देवकी कौन थी ? शब्द नाम वाला यह जो गोप आपने बतलाया था यह भी कौन हुआ था तथा महान् जन वालो यज्ञोदा कौन थी ? ॥१७॥ जिसने भगवान् विष्णु को पुत्र के रूप में जनन दिया था और जिसकी लाल करुणा पुकारा था जिसने अपने गर्भ में रखकर इनको जन्म ग्रहण कराया था और जिसने इनका वात्सल्यवत्ता में परिचर्जन किया था ॥१८॥ मूनजी ने कहा—कश्यप नाम वाले पुरुष से और अदिति नाम वाली उनकी प्रिया स्त्री से गयी है । यह कश्यप तो ब्रह्मा जो क जल का और अदिति पृथ्वी का अद्य हुई थी ॥ ६ ॥ इसके उपरान्त महान् बाहुओं वाले प्रभु ने देवकी की वामनाओं को पूर्ण कर दिया था । वा निरप ही अज्ञात है ऐसे अजन्मा प्रभुको उसने पुत्र के रूप में देखने की इच्छा की थी ॥१०॥ इसी लिये वह देव इत मही मण्डल में अवतीर्ण हुए थे और फिर मानुषी तनु में उगहोने प्रवेश किया था । यह प्रभु तो योगात्मा थे । इन्होंने अपनी योग माया से ही समस्त भूतों को मोहित कर दिया था ॥११॥ जिस समय में इस मही मण्डल में घमें नष्ट हो गया था उसी समय में प्रभु विष्णु ने बृष्णि कुल में जन्म ग्रहण किया था । इनके बृष्णि कुल में उत्पन्न शूकर अवतार धारण करने का प्रमुख प्रयोजन ही घम का सत्थापित करना और बढ़े हुए दृष्ट प्रभुओं का नश करना ही था ॥ १२ ॥ जब प्रभु ने श्री कृष्णवतार धारण किया था उस समय में प्रभु की यादग सहस्र परिनयी थी । उनमें प्रमुख नामों का ही थोड़ा सा प्रदर्शन यहाँ पर किया जाना है—कश्यपो—पत्यभामा—तथा—नारदत्रिणी—सुभामा—जम्बा—गाधारी—लक्ष्मण—मित्रविन्दा—चकालिन्दी देवी—

जाम्बवती—सुशीला—माद्री—कौशल्या तथा विजया एव मादि देविषा  
यी ॥१३, १४॥

रुक्मिणी जनयामास पुत्रं रणविशारदम् ।  
चारुदेष्ण रणे शूरं प्रद्युम्नञ्च महाबलम् ॥१५॥  
सुचारुं भद्रचारुं च सुदेष्ण भद्रमेव च ।  
परशुञ्चारु गुप्तञ्च चारु भद्रं सुचारुकम् ॥  
चारुहास कनिष्ठञ्च कन्या चारुमती तथा ॥१६॥  
जज्ञिरे सत्यभामाया भानुभ्रमरतेक्षणः ।  
रोहितोदीप्तिभाश्चैव साम्रश्चक्रो जलन्धमः ॥१७॥  
चतस्रो जज्ञिरेतेपास्वसारस्तु यवीयसी ।  
जाम्बवत्या सतोजने साम्प्र समिति शोभनः ॥१८॥  
मित्रवान् मित्रविन्दश्च मित्रविन्दावसङ्गना ।  
मित्रबाहु मुनीयश्चना नजित्वाः प्रजाहिता ॥१९॥  
एयमादीनि पुत्राणा सहस्राणि निबोधत ।  
अशीतिश्च सहस्राणिवासुदेव सुतास्तथा ॥  
लक्षमेक तथा प्रोक्तं पुत्राणाञ्च द्विजोत्तमा ॥२०॥  
उपासङ्गस्य तु सुती वज्र सत्सिप्त एव च ।  
भूगीन्द्रमेनो भूरिश्च गवेपण सुताबुधौ ॥२१॥

रुक्मिणी देवी ने रण मे विशारद पुत्र को जन्म दिया था । चारु-  
देष्ण रणविद्या में महान् शूर बन्धु—प्रद्युम्न महान् बलवान् था—सुचारु—भद्र-  
चारु—सुदेष्ण—भद्र—परशु—च, रगुण चारुभद्र—सुचारु—चारुहास—कनिष्ठ ये  
पुत्र हुए थे तथा चाम्बवती नाम नामी एक कन्या थी ॥१५, १६॥ सत्य-  
भामा मे भानुवमरतेक्षण—रोहित—दीप्तिमान्—साम्रश्चक्र—जलन्धम  
य पुत्र हुए थे और उन सबकी चार छोटी बहिनो न जन्म ग्रहण दिया  
था । जाम्बवती के समिति शोभन साम्प्र पुत्र ने जन्म दिया था ॥१७॥  
॥१८॥ मित्रविन्दा व मित्रवन् और मित्रविन्द पुत्र हुए थे । नाम्नजिना

की प्रजा मित्रदाहू और सुनीय दृढ़ थी अर्थात् इन नाम्नों वाले पुत्र ने प्रपन्न प्राप्त किया था । इस प्रकार से महर्षों ही पुत्र समुत्पन्न हुए थे—  
ऐसा ही समस्त तेना च हिए । अस्सी सहस्र तो बामुदेन प्रभु के ही पुत्र समुत्पन्न हुए थे । हे द्विजों में परमोत्तम वन ! फिर उन पुत्रों के जो पुत्र हुए थे उनकी सहस्रा एक लाख थी ॥१६, २०॥ उपामङ्ग के वन और सशिल में दो भुव हूँ ये । भूरोन्म सेन और भूरि ये दो पुत्र गवेषण के समुत्पन्न हुए थे ॥२१॥

प्रद्युम्नस्य तु दायारो वंदर्ष्या वुष्टिसत्तमः ।  
अनिरुद्धः १णे रुद्धः जज्ञेऽस्यमृगकेननः ॥२२॥  
पाश्या मुपाश्वननयानाम्बान्तेभेतरस्विनः ।  
सत्यप्रवृत्तयोद्देवापञ्चवीराप्रकीर्तिताः ॥२३॥  
निश्र बोष्ट्य प्रबोराणां यादवानां महात्मनाम् ।  
पट्टिः क्षत्रसहस्राणि वीर्यवन्तो महाबलाः ।  
देवांशाः मय एवंह उत्पन्नास्ते महोन्नतः ॥२४॥  
देवामुरे हता ये च अमुरा ये महाबलाः ।  
इहोत्पन्ना मनुष्येषु यादवन्ते सवमान्वान् ॥२५॥  
तेषामुन्नतानामानि उत्पन्ना यादवे कुत्रे ।  
मुन्नानां दत्तमेष्ट्य यादवानां महात्मनाम् ॥ ६॥  
मयमेतत् कुत्त यावद्वर्तते वीर्यवै कुत्त ।  
दिष्णन्तेषां प्रणेता च प्रभुन्वे च ध्यवस्थितः ॥  
निदेनम्पायिनस्तस्य वर्यन्ते मयंवादया ॥२७॥

वाले और महान् बलवान् हुए थे । ये महान् ओज वाले सभी यहा पर देवताओं के अशावतार ही समुत्पन्न हुए थे ॥२४॥ देवातुर संग्राम मे जो महान् बलवान् अमुर हत हो गयेथे । वे ही सब यहाँ पर मनुष्यों में समुत्पन्न होगये थे जो कि सब मानवो को बाघाएँ पहुँचाया करते हैं । उन सबके उत्पादन करने के लिये ही यादव कुल मे उत्पन्न हुए थे । महात्मा यादव कुलो का एक शत परिवार था यह समस्त कुल अब तक ब्रह्मण्य कुल मे वर्त्तमान है । भगवान् विष्णु उनके प्रणेता थे और प्रभुत्व में व्यवस्थित थे । समस्त यादवगण उनके निर्देश मे स्थित रहने वाले कहे जाते हैं ॥२६, २७॥

## २६— ययाति वंश की शाखाओं का वर्णन

तुवसोस्तुसुतो गर्भो गोभानुस्य चात्मजः ।

गोभानोस्तुसुतो वीरस्त्रिसारिरपराजितः ॥१॥

करन्धमस्तु त्रिसारिभरतस्तस्य चात्मजः ।

दुष्यन्त पौरवस्यापि तस्य पुत्रो ह्यकल्मषः ॥२॥

एव ययातिशपेन जरासकमणे पुरा ।

तुवसो पौरव वश प्रविवेश पुरा किल ॥३॥

दुष्यन्तस्य तु दायादावरूथो नाम पार्थिवः ।

वरूथात् तथा वीरः सन्धानस्तस्य चात्मजः ॥४॥

पाण्ड्यश्चैकेरलश्चैव चोलः कर्णेस्तथैव च ।

तेषां जनपदास्फीताः पाण्ड्यश्चाश्चोलाः सकेरलाः ॥५॥

द्रुह्यस्य तनयो शूरी मेतुः केतुस्तथैव च ।

संतु पुत्रः शरद्वीस्तु गन्धारस्यस्य चात्मजः ॥६॥

ख्यायते यस्य नाम्नास गन्धारविषयो महान् ।

आरुद्रदेवजास्तस्य सुरगावाजिनावराः ॥७॥

महा महर्षि प्रवर धो गूतजा ने कहा — तुवंमु का सुत गर्भ हुआ था पौर इसका आत्मज गोभानु था । गोभानु का पुत्र अपराजित वीर

त्रिसारि तत्पुत्रं हुश्रा या ॥१॥ अरन्धम त्रिसारि का अरन्धम या और  
इसका पुत्र भरत समुत्पन्न हुश्रा या । पौरव का पुत्र दुष्यन्त या तथा  
उसका पुत्र अकृतमघ हुश्रा या ॥२॥ इस प्रकार से प्राचीन काल में ययाति  
के शाण से पहिले जरा के सक्रमण में तुवस्तु के पौरव वंश ने प्रवेश किया  
था । १॥ दुष्यन्त का दायाद वरुथ नाम वाला पार्थिव हुआ था । वरुथ  
में सम्मान और पुत्र हुआ था । इससे आत्मज पाण्डय-केरल-बोल और  
कण थे । इनके जनपद भी महान् स्फीत थे जो पाण्डय-बोल और  
केरल नाम वाले ही हुए थे ॥४, ५॥ दुह्य के दो पुत्र थे जो बड़े ही शूर  
थे उनके नाम सतु और वेतु थे । सेतु का पुत्र शरद्वान् हुआ था और फिर  
इसका पुत्र गान्धार नाम वाला था ॥ ६॥ इसी के नाम से महान् देश भी  
गान्धार क्यात हुआ था । उसके आरट्ट देश में जरा-ज होने वाले तुवस्तु  
आओ म परम श्रुत थे ॥७॥

गन्धारपुत्रोऽग्रम्भरतु धृन्तस्तस्यात्मजोऽभवत् ।  
धृता चविदुषोज्जो प्रचेतास्तस्यचात्मज ॥८॥  
प्रचेतसः पुत्रशत राजानः सब एव ते ।  
स्नेहठराष्ट्राधिपा सर्वे उदोवाग्निशमाश्रिता ॥९॥  
अनोश्चैव सुता वीरास्तथ परमधार्मिकाः ।  
समानरश्वाक्षुपश्च प०मेतु तथैव च ॥ १०॥  
समान स्यपुत्रस्तु विद्वान्कोलाहलो नृप ।  
कोलाहलस्य धर्मात्मा सञ्जयोनामविश्रुतः ॥११॥  
सञ्जयस्याभवत् पुत्रो वीरो नाम पुरञ्जयः ।  
जनमेजयो महाराज । पु०ञ्जयसुतोऽभवत् ॥१२॥  
जनमेजयस्य राजर्षेर्महाशालोऽभवत् सुत ।  
आसीदिन्द्रममो राजा प्रतिष्ठितगशाभवत् ॥१३॥  
महामना सुतस्तस्य महाशानस्य धार्मिक ।  
सतद्दीपेश्वरी जज्ञ चक्रवर्ती महामनाः ॥१४॥

उस गांधार का पुत्र धम्म हुआ था और उसका आत्मज धृत नाम वाला था । विद्वान् धृत से प्रचेता न जन्म प्राप्त किया था ॥८॥ प्रचेता के एक ही पुत्र हुए थे वे सभी राजा हुए थे । ये सब स्नेच्छ राष्ट्री के अधिप थे और सभी ने उत्तरी दिशा का समाश्रय ग्रहण किया था । ॥९॥ अनु के तीन परम धार्मिक तथा वीर पुत्रों ने जन्म प्राप्त किया था । उन तीनों के नाम सभानर-चाक्षुष और परमेष्णु ये तीन थे ॥१०॥ सभानर का पुत्र परम विद्वान् कोलाहल नामधारी नृप हुआ था फिर इस कोलाहल का पुत्र भी धर्मात्मा सञ्जय नाम से विश्रुत उत्पन्न हुआ था । ॥११॥ सञ्जय के पुत्र का नाम वीर पुरञ्जय हुआ था । हे महाराज । के जनमेजय पुरञ्जय के ही आत्मज हुए थे । ॥१२॥ राजर्षि जनमेजय महाशाल नाम वाले पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था । यह राजा इन्द्र के ही समान प्रतिष्ठित यश वाला हुआ था ॥१३॥ इस महाशाल के महामना नाम वाला परम धार्मिक पुत्र उत्पन्न हुआ था । महामना सातों द्वीपों का स्वामी चक्रवर्ती सम्राट् पैदा हुआ था ॥१४॥

महामनास्तु द्वौ पुत्रौ जनयामास विश्रुतौ ।  
 उशीनरञ्च धमश तितिक्ष चैव तावुभौ ॥१५॥  
 उशीनरस्य पुत्रस्तु पञ्चराजपिसम्भवा ।  
 भृशा कृशानवा दर्शा या च देवी दृषद्वती ॥१६॥  
 उशीनरस्य पुत्रास्तु तासुजाता कुलोद्वहा ।  
 तपसा ते तु महता जातावद्ब्रह्मधामिका ।  
 भृशायास्तु नृग पुत्रो नवायानव एवच ।  
 कृशायास्तु कृशो जज्ञे दर्शया सुद्वतोऽभवत् ॥  
 दृषद्वत्या सुतश्चापि शिविरीशीनरो नृप ॥१८॥  
 शिवेस्तु शिवस्य पुत्राश्चत्वारो लोके विश्रुता ।  
 प्रयुदध सुवीरश्च केकयो भद्रकस्तथा ॥१९॥  
 तेषां जनपदा स्फीता कवयामद्रवास्तथा ।

सौवीराश्चैवपौगण्डव नृगस्यकेकयास्तथा ॥२०॥

सुव्रतस्य तथाऽम्बष्ठा कृशस्य वृषला पुरी ।

नवस्य नवराष्ट्रन्तु तितिक्षोस्तु प्रजा शृणु ॥२१॥

महाराज महामना ने परम प्रसिद्ध दो पुत्रों को अन्न दिया था ।  
उन दोनों में धर्म का ज्ञाता एक उशीनर था और दूसरे का नाम तितिक्षु  
था ॥ १५ ॥ उशीनर के पुत्र वज्र राजवि सम्मय थे । उशीनर की मृगा  
कृशानवा—दर्श और हृयदती देवी ये पत्नियाँ थीं ॥ १६ ॥ उन्हीं में उशी-  
नर के कुल के उद्बहन करने वाले पुत्र समुत्पन्न हुए थे । वे महान् तन के  
कारण परम धार्मिक हुए थे ॥ १७ ॥ मृगा के पुत्र का नाम नृग था ।  
नवा का नव था । कृश का कृश हुआ था और दर्श के पुत्र का नाम  
सुव्रत था । तथा हृयदती के पुत्र का शुभ नाम जोशीनर शिवि नृप हुआ  
था ॥ १८ ॥ राजा शिवि के शिष्य चार पुत्र लोक में परम प्रसिद्ध समु-  
त्पन्न हुए थे । उनके नाम वृमुदध—सुधीर—वैक्य और भद्रक थे ॥ १९ ॥  
उन चारों के जो जनपद थे वे भी अतीव फीके हुए विशाल थे जो उन्हीं  
के नाम से प्रसिद्ध थे । वैक्य—भद्रक—सौवीर—वीर तथा नृग वैक्य थे ।  
सुव्रत की अम्बष्ठा तथा कृश की पुरी का नाम वृषला था । नव के नव  
राष्ट्र था । सब महीं से आगे तितिक्षु की जो प्रजा हुई थी उसको  
सुनिये ॥२०, २१॥

तितिक्षुरभवद्राजा पूर्वरस्यां दिशि विश्रुतः ।

दृपद्रयः सुतस्तस्य तस्य सेनोऽभवत्सुतः ॥ २२ ॥

सेनस्य सुतपा जज्ञं मुतपस्तनयोवलि ।

जातो मानुष्योन्यान्तु क्षीणे वसे प्रजेच्छया ॥ २३ ॥

महायोगी तु स बलिवन्द्यो वर्धर्महात्मना ।

पुलानुत्पादयामास चैत्रजान्पञ्चपार्थिवान् ॥ २४ ॥

अङ्गं स जनयामास वङ्गं सुहृदं तथैव च ।

पुष्ट्रं कलिङ्गं च तथा बालेयं क्षेत्रमुच्यते ॥

वालेया ब्राह्मणाश्चैव तस्य वशकरा प्रभो ॥२५॥  
 बलेश्च ब्रह्मणा दत्ता वर प्रीतेन धीमत ।  
 महायोगित्वमायुश्च कल्पस्य परिमाणकम् ॥२६॥  
 संग्रामे च प्यजेयत्व धर्मं चैवोत्तमा मति ।  
 त्रैकाल्यं चैव प्रधान्य प्रसवे तथा ॥२७॥  
 जयञ्चामतिम युद्धे धर्मं तत्त्वार्थदशनम् ।  
 चतुरो नियतान् वर्णान् सर्वं स्थापयिताप्रभु ॥२८॥  
 तेषाञ्च पञ्च दायदावङ्गाङ्गा सुहृकास्तथा ।  
 पुण्ड्रा कलिङ्गाश्च तथा अङ्गस्यतुनिबोधत ॥२९॥

तितिक्षु पूर्वं दिशा मे एक महान् प्रसिद्ध राजा हुआ था । इसके  
 जो पुत्र उत्पन्न हुआ था उसका नाम वृषद्वय था और इसके पुत्र का  
 नाम सेन था ॥ २२ ॥ सेन के यही सुतपा नामधारी पुत्र ने जन्म लिया  
 था तथा सुतपा का पुत्र बलि हुआ था । वंश के क्षीण होने पर प्रजा की  
 दृष्टि से यह मानुष योनि में प्रसूत हुआ था ॥ २३ ॥ यह महान् योगी  
 बलि महात्मा के द्वारा वन्द्यों से बद्ध हुआ था । इसने क्षेत्रज्ञ पाँच पापिष  
 पुत्रों को समुत्पादित किया था । उसने अङ्ग—वङ्ग—सुहृ—पुण्ड्र और  
 कलिङ्ग को जन्म दिया था । बातेयक्षेत्र कहा जाता है । हे प्रभो ! बातेय  
 और ब्राह्मण उसके वशकर हुए थे ॥ २४, २५ ॥ बुद्धिमान बलि को  
 परम प्रसन्न होकर ब्रह्माजी ने वरदान प्रदान किया था कि महायोगित्व  
 प्राप्त होवे—एक कल्प पयन्त आयु हो जावे—संग्राम में अजेयत्व की  
 प्राप्ति हो—धर्म में अत्युत्तम मति होवे—तीनों कासों के देखने का ज्ञान  
 होव—प्र व में प्रधानता हो तथा युद्ध में अत्रिमत विजय हो और धर्म  
 में तत्त्वार्थ का दर्शन प्राप्त होवे । ये सभी ब्रह्माजी के प्रदान विष हुए  
 वरदान थे । चारों नियत वर्णों का स्थापन करने वाला प्रभु हुआ  
 था ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥ उनका पाँच दायद ध—वङ्ग—अङ्ग—



मुद्राक—पुण्ड्र और कलिङ्ग । अब अङ्ग के विषय में ज्ञास प्राप्त करो ॥ २६ ॥

वतिस्तानभिनन्धाहपञ्चपुत्रानकल्मषान् ।  
 कृतार्थः सोऽपि घर्मात्मा योगमायावृतः स्वयम् ॥ ३० ॥  
 अदृश्यः सवभूतानां कालापेक्ष स वै प्रभुः ।  
 सत्राङ्गस्य तु दायादो राजा सीदधिवाहनः ॥ ३१ ॥  
 दधिवाहनपुत्रस्तु राजा दिविरथः स्मृतः ।  
 आसीद्विरथपरमं विद्वान् घर्मरथो नृपः ॥ ३२ ॥  
 स हि घर्मरथः श्रीमास्तेन विष्णुपदे गिरौ ।  
 सोमः शुक्रेण वै राजा सहपोतो महात्मना ॥ ३३ ॥  
 अथ घर्मरथस्याभूत् पुत्रश्चित्ररथः किल ।  
 तस्य सत्यरथः पुत्रस्तस्मादक्षरथः किल ॥ ३४ ॥  
 , लोमपाद इति कथा तस्तस्य शान्ता सुताभवत् ।  
 अथ दाक्षरथिर्वीरश्चतुरङ्गो महामथा ॥ ३५ ॥

महा राज बलि ने उसे अकल्मष पाँचों पुत्रों का अभिनन्दन किया था और वह घर्मात्मा भी कृतार्थ हो गया था । फिर वह स्वयं योग-माया वृत हो गया था ॥ ३० ॥ वह सब प्राणियों से अदृश्य रहते हुए बाल की अपेक्षा करने वाला हो गया था । उसमें अङ्ग का जो दायाद था वह दधिवाहन राजा हुआ था ॥ ३१ ॥ दधिवाहन का जो पुत्र हुआ वह दिविरथ नाम से कहा गया था । फिर दिविरथ से जो सृष्टि हुई थी वह परम विद्वान् घर्मरथ नृप हुआ था ॥ ३२ ॥ वह घर्मरथ परम श्रीमान् नृप था । उसने विष्णुपद गिरि में महात्मा शुक्र के साथ राजा ने सोम का पान किया था ॥ ३३ ॥ इसके अनन्तर उस घर्मरथ के यहाँ चित्ररथ नाम वाले आत्मज्ञ ने जन्म लिया था । इसका पुत्र सत्यरथ पैदा हुआ था और सत्यरथ से दक्षरथ ने जन्म ग्रहण किया था ॥ ३४ ॥ वह लोमपाद—इस जुम्ब नाम से विख्यात हुआ था । इसके शान्ता नाम-

धारिणी एक कन्या हुई थी। इसके अनन्तर दशरथ का पुत्र महान् यश  
वाला दाशरथि चतुरङ्ग हुआ था ॥३१॥

ऋष्यशृङ्गप्रसादेन जज्ञे स्वकुलेवैधमे ।  
चतुरङ्गस्य पुत्रस्तु पृथुनाक्ष इमि स्मृतः ॥३६॥  
पृथुनाक्षमुतश्चापि चम्पनामा बभूव ह ।  
चम्पस्य तु पुरी चम्पा पूर्व या मालिनोऽभवत् ॥३७॥  
पूर्णभद्रप्रसादेन हर्षङ्गोऽस्य सुतोऽभवत् ।  
जज्ञे विभाण्डकाच्चास्यवारण शुत्रुवारणः ॥३८॥  
धवतारयामास मही मन्त्रैर्वाहनमुत्तमम् ।  
हर्षङ्गस्य तु दायादो जातो भद्ररथः किल ॥३९॥  
अथ भद्ररथस्यासीत् बृहत्कर्मा जनेश्वरः ।  
बृहद्भानु सुनस्तस्य तस्माज्जज्ञे महारमबान् ॥४०॥  
बृहद्भानुस्तु राजेन्द्रो जनयामास वै सुतम् ।  
नाम्नाजयद्रथं नाम तस्मात्बृहद्रथो नृपः ॥४१॥  
आसीद्बृहद्रथाच्चवविश्वजिज्जनमेजयः ।  
दायादस्तस्य चाङ्गो वै तस्मात्कर्णोऽभवन्नृपः ॥४२॥

यह ऋष्यशृङ्ग के प्रसाद से ही कुल-के वर्धन करने वाला समु-  
त्पन्न हुआ था। चतुरङ्ग के पुत्र का नाम पृथुनाक्ष रखा गया है ॥३६॥  
पृथुनाक्ष के पुत्र चम्प नाम वाला समुत्पन्न हुआ था। चम्प की पुत्री  
चम्पा थी जो पहिले माली की थी ॥ ३७ ॥ पूर्णभद्र के प्रसाद से इसके  
यहाँ हर्षङ्ग नाम वाले पुत्र ने प्रमथ प्राप्त किया था। विभाण्डक से इसके  
शत्रुओं का कारण करने वाला वारण ने जन्म लिया था। इसने माथी के  
द्वारा इस मही मण्डल में उत्तम वाहन धवतारित किया था। हर्षङ्ग का  
दायाद अर्थात् आत्मज भद्ररथ ने जन्म ग्रहण किया था ॥ ३९ ॥ इसके  
उपराज उस भद्ररथ बृहत्कर्मा जनेश्वर समुत्पन्न हुआ था। उसने पुत्र  
का नाम बृहद्भानु था और फिर उसने महारम बान् ने जन्म प्राप्त किया

धा ॥ ४० ॥ राजाओं में इन्द्र के समान महान् प्रतापी बृहद्गानु ने एक पुत्र को प्रसूत किया, जिसका नाम ज्यद्रथ या फिर इससे बृहद्रथ नृप समुत्पन्न हुआ था ॥ ४१ ॥ इस बृहद्रथ से विश्वजित् जनमेजय ने जन्म प्राप्त किया था । इसका आत्मज अङ्ग हुआ और उस अङ्ग से वर्ण नाम वाले नृप ने जन्म ग्रहण किया था ॥ ४२ ॥

कर्णस्य वृषसेनस्तु पृथुसेनस्तथात्मजः ।

एतेऽङ्गस्यात्मजाः सर्वेराजनःकीर्तिता मया ॥

विस्तरेणानुपूर्व्याच्च पुरोस्तु शृणु द्विजा ॥४३॥

कथं सूतात्मजः कर्णं कथमङ्गस्य चात्मजः ।

एतंदिच्छामहे श्रोतुमत्यन्तकुशलोह्यसि ॥४४॥

बृहद्गानुसुतो जज्ञे राजा नाम्ना बृहन्मना ।

तस्य पत्नीद्वय ह्यासीच्छ्रद्धयस्य तनये ह्यभे ॥

यशादेवी च सत्या च तपोवंशञ्च मे शृणु ॥४५॥

यद्यप्यन्तु राजनं यशोदेवा ह्यभीजन्त ।

सा बृहन्मनस सत्या विजयनाम दियुतम् ॥४६॥

विजस्य बृहत्पुत्रस्तस्य पुत्रो बृहद्रथः ।

बृहद्रथस्य पृथुस्तु सत्यकर्ममिहार्मेन ॥४७॥

सत्यकर्पणीऽधिरथः सूतश्चाऽधिरथः स्मृतः ।

य वर्णं प्रतिजयाह तेन कर्णस्तु सूतजः ॥

तच्चेद सर्वमारयात वर्णं प्रति ययोदितम् ॥४८॥

कर्ण मय का पुत्र वृषसेन हुआ और फिर इससे पृथुसेन ने जन्म लिया था । इतने ये सब अङ्ग के आत्मज हुए थे जो सभी राजा थे । मैंने इन सबके नामों को बतला दिया है । अब हे द्विजवन ! विष्णुपूर्वक तथा आनुपूर्वी के क्रम से जैसे भी एक के पीछे दूसरा हुआ था उसी पूर्व-पर के क्रम से पुरु के विषय में आर सोमं श्रवणं कुरु ॥४३॥ श्रवितो ने कहा — हे भगवन् ! सूत का आत्मज वर्ण था वह राजा अङ्ग का आत्मज

कैसे हुआ था । हम अब यही सुनना-चाहते हैं । आप तो 'सभी कुछ के शाता एवं परम कुशल हैं ॥४४॥ श्री सूतजी ने कहा—बृहद्भानु का पुत्र बृहन्मना नाम वाला राजा उत्पन्न हुआ था । इस राजा की दो पत्नियाँ थीं जो कि शंख्य की परम शुभ पुत्रियाँ थी । एक यशोदेवी थी और दूसरी सत्या थी । अब उन दोनों के वंश को मुझसे आप ध्वज-कोजिये ॥४५॥ यशोदेवी ने जयद्रथ नाम वाले राजा को प्रसूत किया था, वह जो दूसरी सत्या नाम वाली पत्नी थी उसने बृहन्मना से विजय नाम वाले परम विश्रुत पुत्र को जन्म दिया था ॥ ४६ ॥ विजय का बृहत्पुत्र और फिर इसका पुत्र बृहद्रथ था । इस बृहद्रथ के पुत्र का नाम महामना सत्यकर्मा हुआ था ॥ ४७ ॥ सत्यकर्मा का पुत्र अधिरथ था और वह अधिरथ ही सूत कहा गया था जिसने कर्ण को प्रतिग्रहीत किया था । इसी कारण से कर्ण सूत कहा गया था । यह मैंने सभी कुछ कह दिया है जो कि कर्ण के प्रति कहा गया है ॥४८॥

## २७--पूरुवंश वर्णन

पूरोः पुत्रो महातेजा राजा ॥ जनमेजयः ।  
 प्राचीततः सुतस्तस्ययः प्राचोमकरोद्दिगम् ॥१॥  
 प्राचीततस्य तनयोमनस्युश्च तथाभवत् ।  
 राजा पीतामुघो नाम मनस्योरभवत् सुतः ॥२॥  
 दायादस्तस्यचाप्यासीदधुन्धुर्नाममहोपतिः ।  
 धुन्धोवदुविधः पुत्रः सम्पानिस्तस्यचारमजः ॥३॥  
 सम्पातेरतु रह मर्षा भद्रः दशस्तचारमजः ।  
 भद्रादस्यपुतायातुदशाप्तरसि मूनवः ॥४॥  
 श्रीवेयुदण ह्येयुश्च बरोयुश्च तनेयुकः ।  
 पूनेयुश्च विनेयुश्च रथलेयुश्च सत्तमः ॥५॥

घर्मैयु सन्नतेयुश्च पुण्येयुश्चेति ते दश ।

ओचयोज्वलना नाम भार्या वैतत्तकात्मजा ॥६॥

तस्या स जनयामास अन्तिनार महीपतिम् ।

अन्तिनारो मनस्विन्या पुत्रान् जज्ञे परान् सुभान् ॥७॥

पूरु का पुत्र महान् तेज बाला वह राजा जनमेजय हुआ था ।  
उनसे फिर प्राची नाम धारी पुत्र हुआ था जिसने प्राची दिशा को किया  
था ॥१॥ उसके पुत्र का नाम प्राचीत था और फिर इसका सनय मनस्यु  
हुआ था । मनस्यु का सुत पोतायुध राजा हुआ था ॥२॥ उसका भी  
बायाध धुम्धु नाम बाला महीपति हुआ था । धुम्धु के यहा बहुविध नामक  
पुत्र ने जन्म लिया था फिर इसका आत्मज सम्पात प्रसून हुआ था ॥३॥  
सम्पाति का धाराद रहवर्चा था और इसका पुत्र भद्राश्व न प्रसव प्राप्त  
किया । भद्राश्व क घुदा नाम वाली अप्सरा स दश पुत्र समुत्पन्न हुए थे ।  
॥४॥ उन दशों क नाम ओचेयु—होयेयु—क्षयु—सनयु—धुतेयु—  
विनेयु—स्यनयु—घर्मैयु—सन्नतयु और पुत्रयु य थे । ओचेयु की ज्वलना  
नाम वाली भार्या थी जो कि तक्षक की आत्मजा थी ॥५, ६॥ उस भार्या  
॥ ओचेयु ने अन्तिनार नामक महीपति को जन्म ग्रहण कराया था । उस  
अन्तिनार न मनस्विनी नाम वाली भार्या में परम शुभ पुत्रों को जन्म  
प्रदान किया था ॥७॥

अमृतरयसवोर त्रिवतञ्चवेधाभिवम् ।

गौरी कन्या तृतीया च मान्धातुजननी शुभा ॥८॥

हलिनास्तुयमस्यासीत्कन्यायाजनयन् सुताम् ।

ब्रह्मशादपराक्रन्ताश्कुम्भमात्रिलिनाहभन ॥९॥

उपदानवी सुतान् लेभे चतुरस्त्रिलिनात्मजात् ।

ऋष्यन्तमथ दुष्यन्त प्रवीरमतव तथा ॥१०॥

चक्रवर्ती तता जज्ञे दुष्यन्तात् समितिञ्जय ।

सकुन्तलाया भरनी यस्य नाम्नाचभारता ॥११॥

दोष्यन्ति प्रति राजान् ब्राह्मणे चाशरीरिणी ।  
 मातामस्यापितुः पुत्रोयेन जात सा एव स ॥१२॥  
 भर स्वपुत्रं दुष्यन्त ! मावमस्था शकुन्तलाम् ।  
 रेतोधा नयते पुत्रं परेत यमसादनात् ॥  
 स्व चास्य घाता गर्भस्य सत्यमाहुः शकुन्तला ॥१३॥  
 भरतस्य विनष्टेषु तनयेषु पुरा किल ।  
 पुत्राणामातृकात् कोपात् मुमहान् सञ्जयः कृत ॥१४॥  
 ततो मरुद्भिरानीय पुत्रं स तु बृहस्पतेः ।  
 सन्नामितो भरद्वाजो मरुद्भिर्भरतस्य तु ॥१५॥

उन पुत्रों के नाम अमूर्तरय सवीर और परम धार्मिक विद्वान् थे। तीसरी गौरी नाम वाली कन्या थी जो मान्धाता की शुभ जननी हुई थी। ॥१२॥ इलिना यम की कन्या थी जिसने सुता को समुत्पन्न किया था। वे ब्रह्मवाद में पराक्रान्त हुए थे और इलिना शुम्भदा हुई थी। ॥१६॥ उपशानवी ने इलिना के आत्मज से चार पुत्रों का जन्म प्राप्त किया था उन चारों के नाम दुष्यन्त—दुष्यन्त—प्रवीर और अनस्य थे ॥१७॥ इसके पश्चात् राजा दुष्यन्त से चक्रवर्ती समिति-जय ने जन्म ग्रहण किया था तथा शकुन्तला नाम वाली पत्नी में भरत नाम वाला महान् प्रतापी राजा उत्पन्न हुआ था जिसके नाम से भारत हुए हैं ॥१९॥ राजा दोष्यन्ति के प्रति बिना शरीर वाली बाणी ने कहा था कि माता भस्मा पिता का पुत्र है जिससे वह ही समुत्पन्न हुआ है। हे दुष्यन्त ! अपने पुत्र का भरण करो और इस रेतोधा शकुन्तला का अवमान मत करो। पुत्र परेत को यम सदन से प्राप्त किया करना है। आप ही इसके गर्भ में घाता हैं—यह धार शकुन्तला जो इस समय में बह रही है वह बिस्कुप सत्य है ॥१२, १३॥ पुरातन समय में निदधय ही भरत के पुत्रों के विनष्ट हो जान पर मातृर को से पुत्रों का महान् सञ्जय किया गया था ॥१४॥ इसके अनन्तर वह बृहस्पति का पुत्र मरुदों के द्वारा भरद्वाज ने भरत का सन्नामित किया था ॥१५॥

ततो जाते हि वितथे भरतश्च दिव यपो ।  
 भरद्वाजो दिव यातो ह्यभिषिच्यसुत ऋषि ॥१६॥  
 दापदो वितथस्यासीद्भुवमन्युमहायशा ।  
 महाभूतोपमा पुनाश्चत्वारो भुवमन्यव ॥१७॥  
 बृहत्क्षेत्रो महावीर्य नरा गगश्च वीर्यवान् ।  
 नरस्य सङ्कति पुत्रस्तस्य पुत्रो महायशा ॥१८॥  
 गुरुधीरन्तिदेवश्च सत्कृत्यान्ताबुधो स्मृतो ।  
 गगस्य नैव दायाद शिदिर्विद्वानजायत ॥१९॥  
 स्मृता धैव्यान्वतो गर्गा सत्रोपेता द्विजातय ।  
 आहायतनयश्च च धोमानासोदुस्त्वय ॥२०॥  
 तस्य भाया विशाला तु सुपुत्रे पुत्रकत्रयम् ।  
 त्र्युपण पुष्करि चैव कवि चैव महायशा ॥२१॥

इतक अन्तर वितथ के समुत्पन्न होने पर भरत दिवलोक को  
 गया गया था । भरद्वाज ऋषि भी सुन का अभिषेक करके दिवलोक को  
 चले गये थे ॥१६॥ वितथ नामधारी महीपति का आत्मब्रह्मन् यश नामा  
 भुवमन्यु समुत्पन्न हुआ था । इस भुवमन्यु के महाभूतो के उत्पन्न चार पुत्रों  
 ने जन्म ग्रहण किया था । इन चारों के नाम बृहत्क्षेत्र—महा वीर्य—  
 नर और वीर्यवान् गग थे । इस नर का पुत्र सङ्कति हुआ था और  
 सङ्कति का पुत्र महायशा समुत्पन्न हुआ था ॥१७, १८॥ गुरुओं और  
 अन्तिदेव ये उनका नाम थे । ये दोनों सत्कृत्य अन्त कहे गये थे । गग का जो  
 दायाद उत्पन्न हुआ था उसका नाम शिविया और वह बहुत बड़ा विद्वान्  
 हुआ था । इसके उपरान्त गग धैव्य और सत्रोपेता द्विजाति कहे गये हैं ।  
 आहाय का पुत्र परम बुद्धिमान् दुस्त्वय उत्पन्न हुआ था ॥१९, २०॥  
 उसकी भार्या विशाला थी जिसने तीन पुत्रों को प्रसूत किया था । ये  
 महान् यश वाले थे और इन तीनों के नाम त्र्युपण—पुष्करि और कवि  
 थे ॥२१॥

उरुशवा. स्मृता ह्येते सर्वे ब्राह्मणताङ्गता ।  
 बाध्यानान्तु वग ह्येते त्रय प्रोक्तामहयम् ॥२२॥  
 गर्गा. सकृत्तय बाध्या धनोपेताद्रिजातयः ।  
 समृताङ्गिरसो दक्षा बृहत्क्षत्रस्यक्षसिति ॥२३॥  
 बृहत्क्षत्रस्य दायादा हस्तिनामा बभूव ह ।  
 तेनेह निर्मितं पूर्वं पुरन्तु गजसाहचरम् ॥२४॥  
 हस्तिनदो व दायादास्तय परमहीर्षयः ।  
 अजमीना द्विम इदं पुरमीडितर्षयः च ॥२५॥  
 अजमादस्य पत्न्यस्त तिर्य नुरलोडिताः ।  
 मोतिनीधूमिनीधोव बेणिना षोड विधृताः ।  
 म नामु जनयामास पुत्रान् व दक्षसि ।  
 तपनाभ्येमहातमा जाता बृहत्स्यधर्मिका ॥ ७ ॥  
 एतद्वाज्रश्लाघन विस्तर तपु मे शृणु ।  
 अजमीदस्य व जन्वा अथ समभवत्किम् ॥ ८ ॥



मे रिस्तार का ध्वज आप लोग, मुझसे भली भाँति करिये । बज उस  
अजमीड का पुत्र केशिनी मे जो उत्पन्न हुआ था उसका नाम काश्य  
था ॥ २८ ॥

पैपातिथिः सुतस्तस्य तस्मात्काण्वायना द्विजाः ।

वज्रमोढस्य भूमिन्याजज्ञे बृहदनुर्नृपः ॥ २९ ॥

बृहदनोर्बृहन्तोऽथ बृहस्तस्य बृहन्मनाः ।

बृहन्मनः सुतश्चापि बृहदनुरितिः श्रुतः ॥ ३० ॥

बृहदनोर्बृहदिपुः पुत्रस्तस्य जयद्रथः ।

प्रश्वजित्तनयस्तस्य सेनजित्तस्य चात्मजः ॥ ३१ ॥

अथ सेनजितः पुत्राश्चत्वारो लोकविभ्रुताः ।

चिराश्वश्चकाश्यश्च राजा हृदरथस्तथा ॥ ३२ ॥

वत्सश्चावर्तको राजा गृह्यन्ते परिवत्सकाः ।

चिराश्वस्य दायद वृष्टुमेतो महायथा ॥ ३३ ॥

वृष्टुसेनस्य पौरस्तु पौरात्रीपोऽथ जज्ञिवान् ।

नीपस्यैकशतान्वासीत् पुत्राणाममितीजसाम् ॥ ३४ ॥

नीपा इति समाख्याता राजानः सर्वे एव ते ।

तैपावशकरः श्रीमान् नीपानां वीरिवर्द्धनः ॥ ३५ ॥

उस वंश के पुत्र का, नाम पैपातिथि था इसलिये ॥ काण्वायन  
द्विज कहे गये थे । उसी अजमीड को भूमिनी, नाम वाली पत्नी से बृहदनु  
नृप ने जन्म प्राप्ति किया था ॥ २९ ॥ बृहदनु का, पुत्र बृहन्त और इसके  
जो पुत्र हुआ वह बृहन्मना नामधारी था । इसके सुत का नाम बृहदनु  
था जो कि विश्रुत था ॥ ३० ॥ बृहदनु का दायद बृहदिपु था और  
इसके आत्मज का नाम जयद्रथ हुआ । जयद्रथ का सुत प्रश्वजित और  
इसका पुत्र सेनजित समुत्पन्न हुआ था ॥ ३१ ॥ इस सेनजित के चार पुत्रों  
ने जन्म ग्रहण किया था जो लोक में अधिक विद्युत थे । इनके नाम ये  
थे—चिराश्व—काश्य—राजा हृदरथ—वत्स और आवर्तक राजा था जिसके

ये परिवर्तमान हैं । दधिराज का दायाद महान यशस्वी पृथुसेन हुआ ।  
 पृथुसेन का पुत्र वीरभीर इगहा आत्मन नीप न जगम निर्गं वा ।  
 इस नीप के एक ही अमिन ओत्र वाले पुत्रों की समुत्पत्ति हुई थी  
 ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ये सभी राजा लोग 'नीपा'—इस नाम से  
 समाख्यात हुए थे । उन नीपों का बंध करने वाला श्रीमान् वातिवर्धन  
 था ॥ ३५ ॥

काव्याञ्च समगो नाम सदेष्टसमरोऽभवत् ।  
 समरस्य पारसम्पारा सदश्व इति ते त्रयः ॥ ३६  
 पुत्राः सर्वगुणोपेता जाता वं विश्रुता भुवि ।  
 पारपुत्रः पृथुर्जात पृथोस्तु मुकुनोऽभवत् ॥ ३७  
 जज्ञे सर्वगुणोपेतो विभ्राजस्तस्यैवात्मजः ।  
 विभ्राजस्य तु दायादस्त्वणुहोनामबोध्यवान् ॥ ३८  
 बभूव शुक्जामाता कृत्वोभर्ता महायशाः ।  
 अणुहस्य तु दायादो ब्रह्मादतो महोपतिः ॥ ३९  
 युगदत्तः सुनस्नस्य विष्वक्सेनो महायशाः ।  
 विभ्राज पुनराजातो मुकुतेनेह कर्मणा ॥ ४०  
 विष्वक्सेनस्य पुत्रस्ते उदक्सेनो बभूव ह ।  
 भल्लाटस्तस्य पुत्रस्तु तस्यासीज्जनमेजयः ॥  
 उग्रायुधेन तस्यार्थे सर्वे नीपाः प्रणाशिताः ॥ ४१  
 उग्रायुधः कस्य सुतः कस्य वशे स कथ्यते ।  
 किमर्थतेन ते नीपाः सर्वे चैव प्रणाशिताः ॥ ४२ ॥

काव्य से समर नाम वाला सदेष्ट समर हुआ था । उस समर के  
 तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे—पार—सम्पार और सदश्व ये उनके नाम थे  
 ॥ ३६ ॥ ये सभी सुत सकल गुण गण से समन्वित थे और भूमण्डल में  
 परम प्रसिद्धि प्राप्त करने वाले हुए थे । पार का पुत्र पृथु हुआ और पृथु  
 से मुकुत पुत्र की उत्पत्ति हुई थी ॥ ३७ ॥ इसका दायाद सर्वगुणो से

मुक्त विभ्राज ने जन्म लिया था । विभ्राज का पुत्र महान् बलवीर्य वाला  
अशुह नाम वाला हुआ था ॥ ३८ ॥ शुक्र जामाता और महायश इत्वी  
भर्ता हुआ । इस अशुह का बालक महीपति ब्रह्मदत्त सम्पन्न हुआ  
॥ ३९ ॥ उसका दायाद सुन्दर हुआ था और पित्र इमका पुत्र महायश  
जला विष्वक्सेनो हुआ था । यहीं पर सुदृढ कर्म से विभ्राज पुनः  
जन्मत हुआ था ॥ ४० ॥ विष्वक्सेन के पुत्र का नाम उदक न था  
और इनका पुत्र मत्स्याट तथा मन्वाट का पुत्र जनमेजय था । उषायुध  
उसके लिये समस्त नीपों को प्रणजित कर दिया था ॥ ४१ ॥  
ऋषियों ने कहा — उषायुध किसका पुत्र था और उसके यश में कहा  
शास्त्र है उसने । कनकिये सब नीपों का विनाश कर दिया था ?  
॥ ४२ ॥

उषायुधः सूर्यवदयस्तपस्तेपे वराश्रमे ।  
त्याणुभूतोऽष्टसाहस्रन्न भेजे जनमेयः ॥ ४३ ॥  
तस्य राज्य प्रतिश्रुत्य नीपानाञ्जघ्निवान्प्रभुः ।  
उवाचसान्त्वयिष्ये जघ्नुस्तेवह्यभावा ॥ ४४ ॥  
हन्त्रमाना गतानूचे यस्माद्देतोर्न मे वच ।  
मृग्यागस्तग्न्यायै तस्मादेव शपामि व ॥ ४५ ॥  
यदि भेजस्ति तपस्वस्त सर्वाग्रयतु वो यमः ।  
ततस्तात् कृष्यमाणान्तु यमेन पूरत म तु ॥ ४६ ॥  
कृपया परयाविष्टो जनमेजयमूचिवान् ।  
गतानेनानिमान् वीरास्त्व मे रक्षिनुमहंसि ॥ ४७ ॥  
अरे पापा । दुःशाचारा । भवितारोऽस्य किङ्कराः ।  
सथेत्पुत्तस्ततो गजायमेन शूयुधेचिरम् ॥ ४८ ॥  
व्याधिनिर्धारिर्धोरियमेन सह तान् बलात् ।  
विजित्य मनयेषादात्तदभुतमिवाऽभवत् ॥ ४९ ॥  
[वि इवर गूनजी न कहा — उषायुध सूर्य वदय मे सम्पन्न हुआ

या इसने वराधम में अत्यन्त घोर तपस्या की थी। स्वयं भूत होकर वह  
सहस्र वर्ष तक तप किया था उसका जनमेजय ने मर्बित किया था ॥४१॥  
उसका राज्य को प्रतिश्रुत करके उस प्रभु ने नीपों का हनन किया था।  
विविध प्रकार के सान्त्वना के वचन बोला था। उन्होंने दोनों का हनन  
कर दिया था ॥४२॥ हन्यमान गये हुआ स बोला था कि जिस कारण से  
मेरा वचन नहीं है। इसी से शरणागत रक्षा के लिये मैं आपको शाप दे  
देता ॥४३॥ यदि मेरा तप सत्य है तो, यमराज आप सबको ही त  
जावे। इसके पश्चात् यम के द्वारा हन्यमाण उनका भागे हाकर उन  
अत्यन्त दया से समाविष्ट होकर जनमेजय से कहा था कि गये हुए इन  
मेरे वीरो की शान रक्षा करने के योग्य हैं ॥४४, ४५॥ जनमेजय ने  
कहा—अरे पापियो! हे दुष्ट आचार वाला! इसके किङ्कर होओगे।  
इसके पश्चात् तथा इस प्रकार से कहे गये उस राजा ने चिर काल तक  
यम के साथ मुद किया था। नारकीय घोर व्याधियों से यम के साथ  
बलपूर्वक उनको विजित करके मुनि को दे दिया था—यह सब परम अद्भुत  
सा ही हुआ था ॥४६॥

यमस्तुष्टस्ततस्तस्मै मुक्तिज्ञान ददौ परम् ।  
सर्वे यथाचितकृत्वा जन्मुस्तेकृष्णमव्ययम् ॥४७॥  
येपातु चरित गृह्य हन्यन्ते नापमृत्युभि ।  
इह लोके परे च व सुखमक्षय्यमश्रुते ॥४८॥  
अजमीढस्य धूमिन्या विद्वाञ्जज्ञेयवीनर ।  
धृतिमास्तस्य पुत्रस्तु तस्य सत्यघृतिस्मृत ॥  
अथ सत्यघृते पुत्रो दृढनेमि प्रतापवान् ॥४९॥  
दृढनेमिस्तश्चापि सुधर्मा नामपार्थिव ।  
आसात् सुतमंतनय सावभौम प्रतापवान् ॥५०॥  
सावभौमेति विख्यात पृथिव्यामेवराड्वमी ।  
तस्यान्ववाय महति महापीरवनन्दन ॥५१॥

महापोरवपुःस्तु राजा स्वमरत्यः स्मृतः ।

अथ ह्यनरयः स्यात्तोत् सुपाश्वर्वा नाम पार्थिवः ॥५५॥

सुपाश्वर्वा तनयश्चापि सुमतिर्नाम धार्मिकः ।

सुमतेरपि धर्मात्मा राजा सन्नातिमानपि ॥५६॥

इसके अनन्तर यमराज उससे परम सतुष्ट हो गया था और उसने परम मुक्ति का मान प्रदान किया था । सबने फिर यथोचित किया था और फिर वे यहाँ से दुष्ण के समीप चले गये थे ॥५०॥ जिनके चरित्र को ग्रहण करके अरमुचुओं ने कभी भी हृन्मान नहीं हुआ करते हैं । इस लोक में और परलोक में तमयत्र अग्रज्य मुख का उरयोग किया करता है ॥५१॥ अजमोड की एक पत्नी धूमिनी नाम वाली थी उन में परम विद्वान् यवानर न जन्म प्राप्त किया था । उसका पुत्र वृत्तिमान् और इसका पुत्र फिर मत्तघृति सनुचन हुआ था । इसके पश्चात् सत्यघृति का दण्डाद महान् प्रभाव बना दृष्टनेमि हुआ था ॥५२॥ इन दृष्टनेमि से सुवर्मा नामवागे राजा न जन्म ग्रहण किया था । इस सुवर्मा का पुत्र प्रताप वाला सार्वभौम हुआ था ॥५३॥ यह सार्वभौम-इनी नाम से शिष्यात् था यह इस पृथिवी में एक ही राजा शोभित हुआ था । उस के वश में जो एक महान् था महापोरव नाम-वाला पुत्र समुत्पन्न हुआ था ॥५४॥ इन महानोर का जो पुत्र हुआ था वह राजा स्वमरत्य नाम से कहा गया था । इस पश्चात् इसका जो दण्डित उत्पन्न हुआ था वह सुपाश्वर्वा नाम वाला महीरति था ॥५५॥ सुपाश्वर्वा का पुत्र परम धार्मिक सुमति प्रगूत हुआ था । इस सुमति का आत्मज भी अच्युत धर्मात्मा राजा सन्नातिमान् था ॥५६॥

तस्यासीत् सन्नातिमतः कृत्तो नाम सुतो महान् ।

हिरण्यनाभिः शिष्यः कौशल्यस्य श्रीचलस्य महात्मनः ॥५७॥

चनुर्विजतिद्या येन प्रोक्ता व सामस हताः ।

स्मृतास्ते प्रा-यसाग्मानः कार्ता नामेह सामनाः ॥५८॥

कार्तिरुग्रायुधः सो वै महापौरववर्धनः ।  
 वभूय येन विक्रम्य पृथुकस्य पिता हतः ॥५६॥  
 नासो नाम महाराजः पञ्चालाधिपतिवंशी ।  
 उग्रायुधस्य दाय्यादः क्षेमा नाम महायशः ॥६०॥  
 क्षेमात् सुनीथः सज्जं सुनीथस्य नृपञ्जयः ।  
 नृपञ्जयाच्च विरथ इत्येते पौरवाः स्मृताः ॥६१॥

इस सम्प्रतिमान् का पुत्र कृन् नाम वाला एक महान् पुरुष हुआ  
 था । यह महान् आत्मा वाले हिरण्य नाम कौशस्य का शिष्य था ॥५७॥  
 जिसने सामवेद की संहिता के चौबीस भेद कहे हैं । वे प्राच्य सामान  
 स्मृत किये गये हैं यही पर कीर्त्तों के सामग्य थे ॥५८॥ वह उग्रायुध कीर्त्ति  
 महा पौरव वर्धन हुआ था जिसने अपना विक्रम बरके पृथुक के पिता को  
 हत कर दिया था ॥ ५६ ॥ नील नाम वाला महाराज वंशी और पञ्चाल  
 का अधिपति था । उग्रायुध के दाय्याद का नाम महायशस्वी क्षेम था ।  
 क्षेम से सुनीथ हुआ और सुनीथ का पुत्र नृपञ्जय था । नृपञ्जय से  
 विरथ हुआ था—ये सब पौरव कहे गये थे ॥६०, ६१ ॥

## २८—कुरुवंश वर्णन

अजमीढस्य नीलिन्यां नीलः समभवन्नृपः ।  
 नीलस्य तपसोऽग्रेण सुशान्तिरुपपद्यत ॥ १ ॥  
 पृरुजानुः सुशान्तेस्तु पृथुस्तु पुरुजानुतः ।  
 भद्राश्वः पृथुदायादो भद्राश्वतनयान्शृणु ॥२॥  
 सुदगलश्च जयश्चैव राजा बृहदिपुस्तथा ।  
 यदोनरश्च विक्रान्तः कपिलश्चैव पञ्चमः ॥३॥

पञ्चानाञ्चैव पञ्चलानेताञ् जनपदान् विदुः ।  
 पञ्चाल रक्षिणो ह्येतेदेशानामिनिनः श्रुतम् ॥४॥  
 मुद्गलस्यापिमौद्गल्या क्षत्रापेत द्विजातिभ्यः ।  
 एते ह्यङ्गिरसः पक्ष सश्रिताः काण्वमुद्गलाः ॥५॥  
 मुद्गलभ्यमुताञ्जने ब्रह्मिष्ठ सुमहायशाः ।  
 इन्द्रमेनःसुतस्तस्य विन्ध्याश्चस्तस्यचात्मजः ॥६॥  
 विन्ध्याश्चान्मियुन जङ्गेमेनकायामितिभृतिः ।  
 दिवोदासश्च राजापिरहल्याचयशस्विनी ॥७॥

महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—अजमीढ की एक पत्नी का नाम नलिनी था उससे नील रूप ने जन्म ग्रहण किया था । नील का अति उपनय था उसके प्रभाव से उसके सुशान्ति नाम वाले पुत्र की समुत्पत्ति हुई थी ॥१॥ सुशान्ति का गुत्र पृथ्व्यानु और इसका मात्मज पृथु उत्पन्न हुआ था । पृथु का पुत्र मद्राश्व हुआ था । अश्व मद्राश्व के जो तनय समुत्पन्न हुए वे उनके निषय में अवलण करिए ॥२॥ मुद्गल—यद राजा बृहदिषु—यवीनर और पाँचवाँ महान् विश्वमाली कपिल था ॥३॥ इन पाँचों के ही ये पञ्चाल जनपद हुए थे । हमने ऐसा अवलण किया है कि पञ्चाल देशों के ये रक्षा करने वाले महीपति हुए हैं ॥४॥ मुद्गल के भी जो हुए थे वे मौद्गल्य क्षत्रापेत द्विजाति थे । ये काण्व मुद्गल अङ्गिरस पक्ष के सन्धय करने वाले हुए थे ॥५॥ मुद्गल के जो सुत समुत्पन्न हुआ था वह सुन्दर और महान् यश वाला ब्रह्मिष्ठ था । इसका पुत्र इन्द्रसेन नामधारी हुआ था तथा फिर इस इन्द्रमेन का पुत्र विन्ध्याश्व हुआ । इस विन्ध्याश्व से मेनका मे एक जोड़ा समुत्पन्न हुआ था—ऐसा पुता जाना है । दिवोदास एक राजर्षि हुआ था और परम यशस्विनी ब्रह्म्या ने जन्म ग्रहण किया था ॥२, ७॥

शम्भुतस्तु दायादमहल्या सम्प्रसूयत ।

सतानन्दमृषियेष्ठ तस्यापि सुमहातपाः ॥८॥

सुत सत्यधृतिर्नाम धनुर्वेदस्य पारग ।  
 आसीत् सत्यधृतेः शुक्रममोघ धार्मिकस्य तु ॥६॥  
 स्कन्न रेत सत्यधृतेर्द्वष्ट्वा चाप्सरसजले ।  
 मिथुन तत्र सम्भूत तमिन् सरसिसम्भृतम् ॥१०॥  
 तत सग्सि तस्मिन्नु क्रममाण महीपति ।  
 द्रष्ट्वा जग्राह कृपया शन्तनुमृगया गत ॥११॥  
 एते शरद्वत पुत्रा आख्याता गीतमवरा ।  
 अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि दिवोदासस्यवंप्रजा ॥१२॥  
 दिवादासस्य दायादो घमिष्ठो मित्रयुनूपः ।  
 मैत्रायणावर सोऽयमैत्रेयस्तुतत स्मृत ॥१३॥  
 एतेवश्यायते पक्षा क्षत्रपेतास्तु भार्गवा ।  
 राजा चैधवरो नाममैत्रेयस्य सुत स्तुत ॥१४॥

उस अहल्या ने शरद्वान् से एक दायाद का प्रसव किया था जो  
 शतानन्द परम धेष्ठ ऋषि थे । उसके भी सुमहान् तपस्वी सत्यधृत नाम  
 बाला सुत समुत्पन्न हुआ था जो धनुर्विद्या पारगामी प्रौढ़ विद्वान् था ।  
 परम धार्मिक उस सत्यधृति का शुक्रवीर्य अमोघ था ॥६॥ उस  
 सत्यधृति का वीर्यजल से स्कन्न हो गया था । उसको देख कर वही पर  
 शरोवर में अप्सराओं का एक मिथुन सम्भूत हो गया था ॥१०॥ इसके  
 पश्चात् उस सर में क्रममाण होते हुए उसके देखकर मृगया करने के लिये  
 गये हुए महीपति शन्तनु ने कृपा करके उसे ग्रहण कर लिया था ॥११॥  
 ये सब गीतम वर शरद्वान् के पुत्र विख्यात हुए थे । अब इसके आगे मैं  
 दिवोदास की जो सन्तति समुत्पन्न हुई थी उसे बतलाता हूँ ॥१२॥  
 दिवोदास का पुत्र अनीव घमिष्ठ नृप मित्रयु उत्पन्न हुआ था । वह मैत्रा  
 यण वर था और और इससे अनन्तर मैत्रेय कहा गया था ॥१३॥ ये  
 वश्यापति के पक्ष हैं जो क्षत्रपेता भार्गव थे । मैत्रेय के पुत्र का नाम चैध-  
 वर हुआ था ॥१४॥



कुरुक्षेत्र की कल्पना की थी ॥२०॥ बहुत वर्षों तक महाराज कृष्य हुए थे इस प्रकार से जब कृष्यमाण हुए तो इन्द्र ने मय से उसको वरदान दिये थे ॥२१॥

पुण्यञ्चरमर्णं यञ्चकुरुक्षेत्रन्तु तत्स्तृतम् ।  
 तस्यान्ववाय सुमहान् यस्यानाम्नातुकोरवा ॥२२॥  
 कुरास्तु दयिता. पुत्रा सुधन्वा जहन्तु रेवच ।  
 परीक्षिच्चमहातेजा प्रजनश्चारिमदन ॥२३॥  
 सुधन्वनस्तुदायाद पुत्रो मतिमतावर ।  
 च्यवनस्तस्य पुत्रस्तु राजा धर्माथंतस्ववित् ॥२४॥  
 च्यवनस्त्य कृमि पुत्र ऋक्षाज्जज्ञे महातपा ।  
 कृमे पुत्रो महावीर्य स्यात् इन्द्रसमो विभु ॥२५॥  
 चौद्योपरिचरो वीरो वसुर्नामान्तरिक्षग ।  
 चौद्यो परिचराज्जज्ञे गिरिका सप्त वं सुतान् ॥ ६॥  
 महारथो मगधराट् विश्रुतो यो बृहद्रथ ।  
 प्रत्यश्रवा कुशश्चैव चतुर्थो हरिवाहन ॥२७॥  
 पञ्चमश्च यजुश्नीव मत्स्य कालीच सप्तमी ।  
 बृहद्रथस्य दायाद कुशाग्रो नामविश्रुतः ॥२८॥

परम पुण्यमय और अत्यन्त रमणीय वह कुरुक्षेत्र विस्तृत हुआ था । उसका वश भी बहुत विशाल था जिसके नाम से ये सब कीर्त हुए हैं ॥ २२ ॥ महाराज कुरु के प्रिय पुत्र सुधन्वा और जहन्तु थे । तथा महान् तेजपुवत् परीक्षित और शत्रुओं का मर्दन करने वाला प्रजन था ॥ २३ ॥ उम सुधन्वा का पुत्र यतिमानो में परम श्रेष्ठ च्यवन हुआ जो धर्माय सत्य का वेत्ता राजा हुआ था ॥ २४ ॥ च्यवन के पुत्र का नाम क्रम था जो महान् तपस्वी ऋषि से समुत्पन्न हुआ था । इस कृमि का पुत्र इन्द्र का समान विभु और महावीर्य स्यात् हुआ था ॥ २५ ॥ चौद्यो परिवार और वसु नाम बाना अन्तरिक्ष गामी था । चौद्य ने परिवार से

जरासन्ध महान् बलवान् दुष्प्रा था ॥ ३० ॥ इस जरासन्ध का पुत्र प्रताप-  
शाली सहदेव उत्पन्न हुआ । सहदेव का आत्मज सोमवित् था  
और वह महा तपस्वी था ॥ ३१ ॥ फिर सोमादि से श्रुतप्रवा हुआ था ।  
ये सब मागध नाम से ही परिकीर्तित हुए हैं । जहनु ने सुरय नामक  
भूमिपति पुत्र को उत्पन्न किया था ॥ ३४ ॥ इस सुरय का दायाद परम  
वीर राजा विदूरथ हुआ और विदूरथ का पुत्र मार्कभीम नाम से प्रसिद्ध  
हुआ ॥ ३५ ॥

सार्वभौमात् जयत् सेनो रुचिरस्तस्य आत्मज ।  
रुचिरात्तु ततो भीमस्त्वरितायुस्ततोऽभवत् ॥ ३६  
अक्रोधनस्त्वायुस्तस्तस्माद्देवातिथि स्मृत ।  
देवातियेस्तु दायादो दक्ष एव बभूव ह ॥ ३७  
भीमसेनस्ततोदक्षाददिलीपस्तस्य चात्मज ।  
दिलीपस्यप्रतीरस्तुतस्यपुत्रास्त्रय स्मृताः ॥ ३८  
देवापि. शन्तनुश्चैवते बाह्लोकश्चैवते त्रय ।  
बाह्लोकस्य तु दायादा सप्त बाह्लीश्वरानृप ।  
देवापिस्तु ह्यपध्यात प्रजाभिरभवन् मनि ॥ ३९  
प्रजाभिस्तु किमर्थं वै अपध्यातो जनेश्वर ।  
को दोषो राजपुत्रस्य प्रजाभि समुदाहृत ॥ ४०  
किलासीद्राजपुत्रस्तुकुष्ठित नाभ्यपूजयन् ।  
भविष्यकीर्तयिष्यामि शन्तनोस्तुनिबोधत ॥ ४१  
अ तनुस्त्वभवद्राजा विद्वान् सो वै महाभिषक् ।  
इदं चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं प्रति महाभिषक् ॥ ४२

सार्वभौम से जयत्सेन ने जन्म ग्रहण किया तथा फिर इसका पुत्र  
रुचिर उत्पन्न हुआ । रुचिर का पुत्र भीम और भीम का पुत्र त्वरितायु  
हुआ ॥ ३६ ॥ त्वरितायु का अक्रोधन और फिर इससे देवतिथि ने  
समुत्पत्ति प्राप्त की थी । देवातिथि का दायाद दक्ष नाम वाला हुआ

॥ ३७ ॥ उस दश से भीमसेन ने जन्म प्राप्त किया था और इसका जन्म दिन पड़ गया था । दत्तात्रेय का पुत्र प्रतीति उत्पन्न हुआ और इसके पिर तीन पुत्र बताये गये हैं ॥ ३८ ॥ वे तीन देवगि—मान्तरु और वाह्नीक ये थे । वाह्नीक के दत्तात्रेय हे मूष । सात बाह्येवर हुए थे ॥ ३९ ॥ देवगि अप ध्यात होकर प्रजाओं से पिर मृति हो गया । मुनिगण ने कहा—वह जनेश्वर प्रजाओं में किस प्रकार अपध्यात हो गया था । प्रजाओं ने उस राक्षस का बीनसा दोष बतलाया था ? ॥ ४० ॥ सून्यों ने कहा—वह राक्षस कुष्ठित था मत्तएव प्रजाओं ने उसका पूजन नहीं किया । मैं भविष्य का बीतन कर्त्तवा अब मन्तरु के विषय में समझ लो ॥ ४१ ॥ मान्तरु जो राजा हुआ था परपोष्य कोटि ना बिद्वान् था और मजान् निपक् भो था । इस विषय में यह श्लोक उस महामिपक् ॥ सम्बन्ध में उदाहृत किया जाता है ॥ ४२ ॥

य एवं नराञ्च मृदाति जीर्णं रोयिणमेव च ।  
 पुनर्मुवा च भवति तस्मात्त शन्तनु विदुः ॥ ४३ ॥  
 तत्तस्य शन्तनुत्वं हि प्रजाभिरिह कीर्त्यते ।  
 ततो वृषुत भार्गवं शन्तनुर्जाह्नवी नप ॥ ४४ ॥  
 तस्या देवजन नाम कुमार जनयत् विभुः ।  
 काली विचित्रवीर्यन्तु शशेयोऽजनयत् मुनम् ॥ ४५ ॥  
 शन्तनोर्दमितपुत्रं शान्तात्मानमकल्मषम् ।  
 वृष्णद्वैपायनो नाम क्षेत्रे वैचित्रवीर्यके ॥ ४६ ॥  
 धृतराष्ट्रश्च पाण्डुश्च विदुर चाप्यजीजनत् ।  
 धृतराष्ट्रश्चानुगान्धार्मा पुत्रानजनयन् शतम् ॥ ४७ ॥  
 तेषां दुर्पोषनं श्रेष्ठः मन्वसमस्य वं प्रभुः ।  
 माद्री कुन्ती तथा चोत्र पाण्डोर्मर्षे वभूवन् ॥ ४८ ॥  
 देवदत्ताः मुनाः पञ्च पाण्डोर्गर्भेभिरजनिरे ।  
 धर्मार्जुनिष्ठिगे जज्ञे माग्न्याच्च वृषोदरे ॥ ४९ ॥

उस राजा शन्तनु मे ऐसी एक विशेषता थी कि वह जिस-जिसके शरीर का अपने करो से केवल स्पर्श ही करता था वह चाहे कैसा ही जीर्ण रोगी ब्यो न हो सब रोगो से मुक्त होकर पुनः युवा हो जाया करता था । इसी कारण से इसका नाम शन्तनु यह कहा गया ॥ ४३ ॥ उस राजा के शन्तनु होने को उसकी प्रजाओ के द्वारा कीर्तित किया जाता था । इसके उपरान्त उस राजा शन्तनु ने अपनी भार्या बनाने के लिये जाह्नवी का वरण किया था ॥ ४४ ॥ उस गङ्गा मे उस विभु ने देवव्रत नाम वाले कुमार को उत्पन्न किया था । काली ने विचित्र वीर्य को जन्म दिया था । जिसने दास मे सुत को जन्म दिया ॥ ४५ ॥ शन्तनु का पुत्र अत्यन्त प्रिय—शान्तात्मा और कल्मष रहित था । कृष्ण द्वैपायन ने विचित्रवीर्य के क्षेत्र मे घृतराष्ट्र—पाण्डु और विदुर को उत्पन्न किया था । धृतराष्ट्र ने गान्धारी नाम वाली भार्या मे सौ पुत्रो को जन्म दिया था ॥ ४६, ४७ ॥ उन एक सौ पुत्रो मे दुर्योधन श्रेष्ठ था जो समस्त दानियो का प्रभु हुआ था । माद्रो और कुन्ती ये दो भार्याएँ पाण्डु की हुई थी ॥ ४८ ॥ देवो के द्वारा दिये हुए पाँच पुत्र पाण्डु के धर्म मे समुत्पन्न हुए थे । धर्म से युग्-ष्ठिर ने जन्म ग्रहण किया और मातङ्ग से वृकोदर की समुत्पत्ति हुई थी ॥ ४९ ॥

इन्द्राद्वनञ्जयश्चीव इन्द्रतुल्यपराक्रमः ।

नकुल सहदेवश्च माद्रश्चशिवाश्वामजीजनत् ॥ ५० ॥

पञ्चीते पाण्डवेभ्यस्तु द्रौपद्या जज्ञिरेसुताः ।

द्रौपद्यजनयच्छेष्ठप्रातिविध्ययुधिष्ठिरात् ॥ १ ॥

श्रुतसेन भीमासेनाच्छ्रुतकीर्ति धनञ्जयात् ।

चतुर्थं श्रुतकर्माण सहदेवाद जायत ॥ ५२ ॥

नकुमाश्च शतानीक द्रौपदेयाः प्रसीतिताः ।

तेभ्योऽररे पाण्डवेयाः पट्टेवान्येमहारथाः ॥ ५३ ॥

हैहय्यो भीमसेनात् पुत्रो जज्ञे घटोत्कचः ।

काशीवलघरात्मीमाञ्जवंसर्वगसुतम् ॥५४॥

सुहोत्रं तनय माद्री सहदेवादसूयत ।

करेणुमत्था चंघाया निरमित्रस्तुनाकुलिः ॥५५॥

सुभद्राया रथी पार्थादिभिमन्युरजायत ।

योधैर्धं देवकीचौव पुत्रं यज्ञे युधिष्ठिरात् ॥५६॥

महाराज इन्द्रदेव से धनञ्जय का जन्म हुआ था जो पूर्णरूप से इन्द्र के समान ही पराक्रम वाला था । माद्री ने नकुल और सहदेव की अश्विदाओं से जन्म दिया था ॥ ५० ॥ ये पाँच पाण्डवों से द्रौपदी में सुत समुत्पन्न हुए थे । द्रौपदी ने युधिष्ठिर से श्रेष्ठ पुत्र प्रतिविन्ध्य को जन्म दिया था । भीमसेन से अर्जुनसेन की और अर्जुनकीर्ति को धनञ्जय से तथा चौथे धनकर्म की सहदेव से एक शतानीक नामक सुत को नकुल से उत्पन्न किया था । ये सभी पुत्र द्रौपदेव कीर्तित हुए थे । इनसे भी दूसरे पद अन्य महारथ भी पाण्डवेय हुए थे ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ भीमसेन से हिडम्ब का पुत्र हैडम्ब पटोत्तव उत्पन्न हुआ । काशीवलघर भीम से सर्वग सुत में जन्म ग्रहण किया था ॥ ५४ ॥ माद्री ने सहदेव से सुश्रोत्र नामक तनय को उत्पन्न किया था । करेणुमत्ता चंघा में नकुल से नाकुलि निरमित्र नामक पुत्र ने जन्म धारण किया ॥ ५५ ॥ पार्थ अर्जुन से सुभद्रा पत्नी में रथी अभिमन्यु ने समुत्पत्ति प्राप्त की थी । देवकी ने योदेय नामधारी पुत्र धर्मपुत्र युधिष्ठिर से जन्म दिया था ॥ ५६ ॥

अभिमन्योः परिक्षित् पुत्रः परपुरञ्जयः ।

जनमेजय परिक्षितः पुत्रः परमधामिहः ॥५७॥

ब्रह्माण कल्पयामास सव वाजसनेयकम् ।

॥ वंशम्वायनेनेत्र शप्तः किल महायिशा ॥५८॥

न स्थास्यतीहवुं द्वे ! तर्धनद्वचर्न भुवि ।

यावत् स्यास्यसि त्व लोकेतावदेऽप्रपत्स्यति ॥५६॥  
 क्षत्रस्य विजय ज्ञात्वा ततः प्रभृति सर्वशः ।  
 अभिगम्य स्थिताश्चैव नृपञ्च जनमेजयम् ॥६०॥  
 ततः प्रभृति शापेन क्षत्रियस्य तु याजिनः ।  
 उत्सन्ना याजिनो यज्ञे ततः प्रभृति सर्वशः ॥६१॥  
 क्षत्रस्ययाजिनःकेचित् शापात्तस्यमहात्मनः ।  
 पौर्णमासेनहविषा इष्ट्वातस्मिन्प्रजापतिम् ॥  
 स वैशम्पायनेनैव प्रविशन् वारितस्ततः ॥६२॥  
 परिक्षितः सुतः सो वै पौरवो जनमेजयः ।  
 द्विरश्वमेधमाहृत्य महावाजसनेयकः ॥६३॥

धर्जुन के पुत्र अभिमन्यु से परपुञ्जय अर्थात् शत्रुओं के पुरों पर  
 विजय प्राप्त करने वाले परीक्षित नामक पुत्र का जन्म हुआ था । परीक्षित  
 से परम धार्मिक जनमेजय पुत्रने ज म धारण किया था ॥५७॥ उसने समस्त  
 वेद को वाजसनेयक कल्पित किया था । उसको महर्षि वैशम्पायन ने शाप  
 दे दिया था ॥५८॥ महर्षि ने यही शाप दिया था कि हेदुष्ट बुद्धि वाले ! यह  
 तेरा वचन भूमण्डल में स्थित नहीं रहेगा । जब तक तू इस लोक में स्थित  
 रहेगा तभी तक यह रहेगा ॥५९॥ क्षत्रिय की विजय को जानकर सभी से  
 लेकर सभी ओर से नृप जनमेजय के समीप में अभिगमन करके स्थित हो  
 गये थे ॥६०॥ तब से ही लेकर यज्ञ करने वाले क्षत्रिय के शाप से सभी  
 ओर से यात्रीगण यज्ञ में उत्पन्न हो गये थे ॥६१॥ कुछ क्षत्रिय के यात्री  
 उम महात्मा के शाप से पौर्णमास रवि के द्वारा उसमें प्रजापति का यजन  
 करके फिर वह वैशम्पायन के द्वारा ही प्रवेश करते हुए वारित हुआ था  
 ॥६२॥ उस परीक्षित के पुत्र पौरव जनमेजय ने दो अश्वमेधों का आहरण  
 करके वह महावाजसनेयक होगया था ॥६३॥

प्रवर्तयित्वा त सर्वेभृषि वाजसनेयवम् ।

विवादे ब्राह्मणे. सार्धमभिघ्नप्तो वन मदी ॥६४॥

जनमेजयाच्छतानीकस्तस्माज्जज्ञे स वीर्यवान् ।  
 जनमेजयः शतानीकं पुत्रं राज्येऽभिपित्तवान् ॥६५॥  
 अथाश्वमेधेन ततः शतानीकस्थवीर्यवान् ।  
 जनेऽघिसोमकृष्णाख्यः साम्प्रत यो महायशाः ॥६६॥  
 तस्मिन् दासति राष्ट्रं तु युष्माभिरिदमाहुतम् ।  
 पुराणं दीर्घं सत्रं वै त्रीणि वर्षाणि पुष्करे ॥  
 वषट्पथं कुरुक्षेत्रे द्वपङ्क्त्या द्विजोत्तमाः ॥६७॥  
 भविष्य धातुमिच्छामः प्रजा लोमहपणे ।  
 पुरः किन् मदेतद्वं व्यतीत कीर्तितं त्वया ॥६८॥  
 येषु वै स्यास्यतेक्षत्रं उत्पत्स्यन्ते नृपाश्च ये ।  
 तेषामायुः प्रमाणञ्च नाम तद्-हीव तान्नुपान् । ६९॥  
 कृतयुगप्रमाणञ्च त्रेताद्वापरयोस्तथा ।  
 कलियुगप्रमाणञ्च युगदोष युगक्षयम् ॥७०॥

उस सब राजसनेयक को श्रुति ने प्रवृत्त करार ब्राह्मणों के साथ विवाद में अभिषाप्त होकर वह फिर वन में चला गया था ॥६५॥ उस जनमेजय से महान् बल वीर्य वाले शतानीक ने जन्म घारण किया था । जनमेजय ने उस अपने पुत्र शतानीक को राज्य के मिहामन पर अभिषिक्त कर दिया था ॥६५॥ फिर शतानीक के अश्वमेध में वीर्यवान् अघिसोम कृष्ण नामधारी ने जन्म ग्रहण किया था जो इस समय में प्रवृत्त

वनवाने की कृग कीजिए । कृतयुग का प्रमाण तथा त्रेता और द्वापर का प्रमाण और कालयुग का प्रमाण भी बतलाइये युगों के दोष तथा युगों का क्षय भी करने की अनुकम्पा कीजिएगा ॥६६, ७०॥

सुखदुःखप्रमाणञ्च प्रजादोष युगस्य तु ।  
 एतत्सर्वं प्रसूयाय पृच्छतां ब्रूहि नः प्रभो ॥७१  
 यथा मे कीर्तितं पूर्वं व्यासेनाविलष्टकर्मणा ।  
 भाव्य कलियुगञ्चैव तथा मन्वन्तराणि च ॥७२  
 अनागतानिसर्वाणि ब्रूवता मे निबोधत ।  
 अत ऊह्य प्रवक्ष्यामि भविष्या ये नृपास्तथा ॥७३  
 ऐडेक्षनाकान्वये च व पौरवे चान्वयेतथा ।  
 येषु मत्स्यास्यये तच्च ऐडेक्षनाकुबुलं शुभम् ॥  
 तान् सर्वान् कीर्तयिष्यामि भविष्ये कथितान् नृपान् ॥७४  
 तेभ्योऽपरेऽप्येत्यन्येह्यस्परस्परं नृपाः पुनः ।  
 क्षत्रा पारशवाः दूद्रास्तथान्येये महोद्वराः ॥७५  
 अन्धाः शका पुनिन्दाश्च चूलिकायदनास्तथा ।  
 पौवर्त्तामीरक्षवरायेचान्येस्तेऽष्टसम्भवाः ॥  
 पर्यायतः प्रवक्ष्यामि नामतश्चैव तान् नृपान् ॥७६  
 अधिष्ठोमहृत्पञ्चतेषां प्रथमं वत्सं ते नृपः ।  
 तस्यान्ववायेवक्ष्यामि भविष्येऽथितान् नृपान् ॥७७



त्रिनमे सस्यिन रहेगा वह एकाकुल शुभ है। उन सभी भविष्य में कथित नयी को मैं बन लाऊंगा ॥५४॥ उन से भी और दूसरे जो अन्य नृप पुनः उत्पन्न होंगे वे सत्य—शरणा—नूत तथा अन्य जो भी महीश्वर भविष्य में होंगे उन्हें भी बनला दिया जायगा ॥५१॥ शन्त—शक—पुनिन्द—चूलिक—यवन—कैवर्त्त—आमीर—शहर और जो अन्य स्पेष्ठ सम्भव है उन सबको मैं पर्याय से तथा नाम से नृपों को बनलाऊंगा ॥७६॥ इन सब में अधिमोम कृष्ण प्रथम नृप है। अब उसके अन्वाय (वग), में भविष्य में कथित नृपों को मैं आप लोगों को सब बतलाऊंगा आप लोग सब दृगन्तपूर्वक श्रवण बाँजिए ॥७७॥

अधिमोमकृष्णपुत्रस्तु विवक्षभविता नृपः ।  
गङ्गाया तु हते तस्मिन् नगरे नागसाहये ॥७८॥  
त्यक्तवा विवक्षुनंगरकौशाम्ब्यान्तुनिवत्स्यति ।  
भविष्याष्टौमृतास्तस्यमहावत्सपराक्रमाः ॥७९॥  
भूरिर्ज्येष्ठः सुतस्तस्यतस्यचित्ररथः स्मृतः ।  
शुचिद्रवश्चित्ररथात् वृष्णिमाश्चशुचिद्रवात् ॥८०॥  
वृष्णिमत सुपेणश्चभविष्यतिशुचिर्नृपः ।  
तस्मात् सुपेणात्भवितामुनीथोनामपायिवः ॥८१॥  
नृपात् मुनीथाद्भविता नृचक्षुः सुमहायशाः ।  
नृचक्षुपस्तु दायादो भविता वै सुखीवत्स ॥८२॥  
मत्सीवलसुतश्चापि भावी राजा परिष्णवः ।  
परिष्णवमुतश्चापि भविता सुतपा नृपः ॥८३॥  
मेघावी तस्य दायादोभविष्यति न सशयः ।  
मेघाश्विनः सुतश्चापि भविष्यति पुरज्जयः ॥८४॥

अधिमोम कृष्ण का पुत्र विवक्षु नाम वाला नृप होगा। उन नागसाहय नगर में गङ्गा के द्वारा हन हो जाने पर अर्थात् गङ्गा के नगर का त्याग कर देने पर वह राजा विवक्षु उस अपने नगर का त्याग

करके फिर कौशाम्बी में निवास करेगा । उसके आठ पुत्र समुत्पन्न होंगे जो महान् बल और पराक्रम से समन्वित होंगे ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ उनमें सबसे ज्येष्ठ जो पुत्र होगा वह भूरि होगा । फिर इसका जो पुत्र होगा उसका नाम चित्ररथ होगा । उस चित्ररथ से शुचिद्रव जन्म लेगा । फिर उस शुचिद्रव से वृष्णिमान् समुत्पन्न होगा ॥ ८० ॥ वृष्णिमान् रा । का पुत्र परम शुचि नृप सुपेण जन्म ग्रहण करेगा । फिर उस सुपेण से सुनीथ नाम वाला नृप समुत्पन्न होगा ॥ ८१ ॥ इसके अनन्तर उस सुनीथ नामक नृप का पुत्र महान् यश से समुत्पन्न नृचक्षु होगा । इस नृचक्षु राजा का दायद सुखीवल जन्म ग्रहण करेगा ॥ ८२ ॥ सुखीवल का पुत्र भविष्य में होने वाला राजा परिणव उत्पन्न होगा । इस परिणव का पुत्र सुतया नाम वाला नृप होगा ॥ ८३ ॥ इस सुतया का दायद मेघावी उत्पन्न होगा—इसमें कुछ भी सशय नहीं है । मेघावी का पुत्र पुरञ्जय होगा ॥ ८४ ॥

उर्वोभाव्य सुतस्तस्य तिग्मात्मा तस्य चात्मज ।  
 तिग्मात् वृहद्रथो भाव्यो वसुदामा वृहद्रथात् ॥ ८५ ॥  
 वसुदाम्न गतान का भविष्योदयनस्तत ।  
 भविष्यते च दयनात् वीरो राजा वहीनर ॥ ८६ ॥  
 वहीनरात्मजश्चैव दण्डपाणिर्भविष्यति ।  
 दण्डपाणे निरामित्रो निरामित्रात् क्षेमक ॥ ८७ ॥  
 अन्तावशश्लोरोऽय गीतो विप्रै पुरातनै ।  
 ब्रह्मक्षत्रस्ययो योनिर्वंशो देवपिसत्कृत ।  
 क्षेमक प्राप्य राजान सस्थास्यति कलौ युगे ॥ ८८ ॥  
 इष्येय पौरवो वशो यथावन्निह कीर्तित ।  
 धीमत पाण्डुपुत्रस्य अर्जुनस्य महात्मन ॥ ८९ ॥

इस पुरञ्जय का पानी पुत्र उर्व उत्पन्न होगा और उसका भात्मज तिग्मात्मा होगा । तिग्मात्मा का पुत्र वृहद्रथ जन्म लेगा और

बृहद्रथ ने व सुतामा का पुत्र शनानीक जन्म धारण करेगा और फिर शनानीक से दशम पैदा होगा। इस दशम के पुत्र का नाम वीर राजा वहीं नर होगा। वहीं नर राजा का आत्मज दंड पाणि समुत्पन्न होगा फिर दण्ड हाणि से निरामित्र पुत्र की उत्पत्ति होगी और निरामित्र से शोषक नाम वाला जन्म लेगा। यहाँ पर पुरातन विप्रों के द्वारा यह अनु बग का श्लोक गाया गया है। ब्रह्मण और क्षत्रिय की जोयोनि है वह बग देवपियों के द्वारा मर्त्य है। लोक राजा को प्राप्त करके इस कल्पयुग में संस्थित होगा ॥ ८६, ८७, ८८ ॥ इस प्रकार से यह पीरव का यहाँ पर यथावत् वर्णित कर दिया गया है जो धोमान् पाण्डु के पुत्र महान् श्रामा वाले अर्जुन का है ॥ -६॥

## २६- अग्नि वंश वर्णन

ये पूज्याः सृष्टिजातीनामन्यतः ! मवंदा ।  
 तानिदानीं समाचक्ष्व तद्वंशं चानुपूर्वशः ॥१॥  
 योऽमावग्निभोमानी स्मृतः स्वायम्भुवेन्तरे ।  
 ब्रह्मणो मानसः पुत्रस्तस्मात् स्वाहा व्यजीजनत् ॥२॥  
 पावकः पवमानश्चक्षिर्गन्धर्वः सः स्मृताः ।  
 निमध्यः पवमानोऽग्निर्वैद्युतः पावकात्मजः ॥३॥  
 दुश्चिरग्निः स्मृतः गौरः स्यात्परादचं वते स्मृताः ।  
 पवमानात्मजो हाग्निहव्यवाह सुदध्यते ॥४॥  
 पार्वतिः सहरक्षन्तु हव्यवाहमुखः शुचिः ।  
 देवानां हव्यवाहोऽग्निः प्रथमो ब्रह्मा मुनः ॥५॥  
 सहरक्ष नराणां तु त्रयाचान्ते त्रयोऽनयः ।  
 एतेषां पुत्रपीत्राण्येव तत्पारिशनदैव च ॥६॥

प्रवक्ष्ये नामतस्तान्वैप्रतिभागेन तान् पृथक् ।

पावनोऽलौकिको ह्याग्निःप्रथमोब्रह्मणश्चयः । ७

अपिगण ने कहा—हे सूतजी ! जो अग्निर्मा द्विजातियों की परम पूज्य है उनके विषय में इस समय में बतलाइये और उनका वंश की आनुपूर्वी के क्रम से कहने की कृपा कीजिये ॥ १ ॥ महर्षि श्री सूतजी ने कहा—ओ यह अग्नि अभी मानी है जो कि स्वायम्भुव अन्तर में कहा गया है वह तो ब्रह्मा का मानस अर्थात् मन से समुत्पन्न पुत्र है फिर उससे स्वाहा ने जन्म ग्रहण किया था ॥ २ ॥ पावक-पवमान-शुचि और अग्नि ये नाम इसके कहे गये हैं । निर्मध्य-पवमान अग्नि है तथा पावकार्त्तमज ओद्युत अग्नि है ॥ ३ ॥ शुचि अग्नि सौर होता है । वे सब स्यावर ही कहे गये हैं । पवमानात्मज जो अग्नि है वह हव्यवाह कहा जाता है ॥ ४ ॥ पार्वक सहरक्ष होता है और हव्यवाह मुख शुचि होता है । देवों का अग्नि हव्यग ह होता है । प्रथम अग्नि ब्रह्मा का सुत था ॥ ५ ॥ सूरों का सहरक्ष होगा है । वे तीनों क तीन अग्निर्मा हैं । इन अग्नियों के पुत्र और पौत्र चासीस हैं । अब उनके नाम लेकर प्रतिभाग के द्वारा उनका पृथक् बतलायेंगे ॥ लौकिक अग्नि पावन होना है जो प्रथम ब्रह्मा का सुत है ॥ ६, ७ ॥

ब्रह्मोदनाग्निस्तत् पुत्रोभरतो नाम विश्रुतः ।

वैश्वानरा हव्यवाहो वहन् हव्यममारसः ॥८॥

समृतोऽथर्वणः पुत्रो मधितः पुष्करोदधिः ।

योऽथर्वा लौकिको ह्यग्निदक्षिणाग्निः स उच्यते ॥९॥

भृगो प्रजायताथर्वाह्यङ्गिराथर्वणःस्मृतः ।

तम्यह्यलौकिकोह्यग्निदक्षिणाग्निः ॥१०॥

अथ पत्रमानस्तु निर्मध्योऽग्निः उच्यते ।

सच वै गाहपत्योऽग्निः प्रथमोब्रह्मणःस्मृतः ॥११॥

ततः सम्पावसथ्योऽन सशत्यास्तो भुतायुधो ।

नतः पादघनद्यस्तु चक्रमे हव्यवाहनः ॥  
 यः खल्वाहवनीलोऽग्निरभिमानो द्विजैः स्मृतः ॥१२॥  
 कावेरी कृष्णवेणीञ्च नमंदा यमुना तथा ।  
 गोदावरी वितस्ताञ्च चन्द्रभागामिरावतीम् ॥१३॥  
 विपाशा कौशिकीञ्चैव शतद्रू सरयू तथा ।  
 सीता मनस्विनीञ्चैव हनदिनी पावना तथा ॥ १४ ॥

जो ब्रह्मादोनाग्नि है उसका पुत्र भरत—इस नाम से विष्णु है ।  
 बश्मानर—हव्यवाह और हव्य को वहन करता हुआ मगारस और समृण  
 यह अश्वर्षण अग्नि होता है । मथिन पुष्करी—यि पुत्र है । जो अश्वर्षा है  
 वह लौकिक अग्नि है और वह दक्षिणाग्नि कहा जाया करता है । ॥८॥ ॥९॥  
 अश्वर्षा भृगु से प्रजान हुआ था और अश्वर्षण अङ्गिरा कहा गया है । उसका  
 प्रलीनिक अग्नि है वह दक्षिणाग्नि कहा गया है ॥१०॥ इसके अनन्तर  
 जो पञ्चमान है वह निमज्य अग्नि कहा जाता है । और वह गार्हपत्य अग्नि  
 है जो प्रथम ब्रह्मा का कहा गया है ॥११॥ इसके पश्चात् सम्य और अद-  
 सम्य ये दोनों सप्तनि के पुत्र थे । इसके अनन्तर हव्य वाहन ने पौडस  
 नदियों को पादत्रिदक्षिण किया था । जो आहव नील अग्नि है वह द्विजो  
 के द्वारा अभिमानी कहा गया है ॥१२॥ कावेरी—कृष्णवेणी—नमंदा—  
 यमुना—गोदावरी—वितस्ता—चन्द्रभागा—इरावती—विपाशा—कौशिकी—  
 शतद्रू—सरयू—सीता—मनस्विनी—हनदिनी—पावना ये सोलह नदिया  
 है उनमें सोलह स्त्री के आत्मा को पृथक् २ प्रविष्ट करके उस समय मे  
 नन नदिनों में विहार करते हुए वह धिष्ण्यच्छ हो गया था ॥१३॥  
 ॥१४, १५॥

तामुपोडसधात्मान प्रविमज्य पृथक्पृथक् ।  
 तदानु विहरस्तामु धिष्ण्ये-छ सवभूवह ॥१५॥  
 स्वानिधानस्थिता विष्ण्वान्तासुत्पन्नाश्च धिष्णवः ।  
 धिष्ण्येषु जजिरे यस्मात् ततस्त धिष्णवः स्मृता ॥१६॥

इत्येते वै नदीपुत्रा धिष्ण्येषु प्रतिवेदिरे ।  
 तेषां विहरणीया ये उपस्थेयाश्च ताञ्शृणु ॥  
 विभुः प्रवाहणोऽग्नीध्रस्तत्र ॥ धिष्णवोऽपरे ॥ १७ ॥  
 विहरन्ति यथास्थानं पुण्याहे समुपक्रमे ।  
 अनिर्देश्यानिवार्याणामग्नीनां शृणुत क्रमम् ॥ १८ ॥  
 वासवोऽग्निः कृशानुर्यो द्वितीयोत्तरवेदिकः ।  
 सम्राडग्निः सुतो ह्यष्टावुपतिष्ठन्ति तान् द्विजा ॥ १९ ॥  
 पञ्चमः पावमानस्तु द्वितीयः सोऽनुदृश्यते ।  
 पापकोष्णः समुहस्तु वोत्तरे सोऽग्निरुच्यते ॥ २० ॥  
 हव्यसूदो ह्यसमृज्यः शामित्रः सविभाव्यते ।  
 शतधामा सुधाज्योति रीदृश्वर्यं स उच्यते ॥ २१ ॥

अपने अग्निघान में स्थित धिष्ण्य उनमें समुत्पन्न हैं और धिष्णु हैं ।  
 क्योंकि उन्होंने धिष्ण्यो में जन्म ग्रहण किया था अतएव वे धिष्णु में  
 प्रातपन्न हुए थे । जो उनके विहरणीय तथा उपस्थेय हैं उनके विषय में  
 जो सुनलो । प्रवाहण अग्नीध्र विभु है और उसमें स्थित अपर धिष्णु हैं ।  
 ॥ १७ ॥ किसी पुण्याह के समुपक्रम होते पर यथास्थान में विहार किया  
 करते हैं । अनिर्देश्य और अनिवार्य अग्नियों का क्रम ध्वरण करो ॥ १८ ॥  
 यमव अग्नि—कृशानु और जो द्वितीय उत्तरवेदिक है । सम्राट् अग्नि है  
 द्विजपण्ये आठ उनका उपस्थान किया करते हैं ॥ १९ ॥ पञ्चम—पवमान  
 वह द्वितीय अनुदृश्यमान होता है । पावकोष्ण और समुह अग्नि उत्तर में  
 कहा जाता है ॥ २० ॥ हव्यसूद और असमृज्य शामित्र सविभावित  
 होता है । शतधामा—सुधा ज्योति वह रीदृश्वर्यं कहा जाया करता  
 है ॥ २१ ॥

ब्रह्मज्योतिवसुधामा ब्रह्मस्थानीय उच्यते ।  
 अजकपादुपस्थेयं न वै जालामुग्योततः ॥ २२ ॥

अनिर्देश्यो ह्यहिवृद्धो बहिरन्ते तु दक्षिणी ।  
 पुत्राह्येते तु सर्वस्य उपस्थेण द्विजे स्मृता ॥२३॥  
 ततो विहरणीयास्तु वक्ष्याम्यष्टीनुनान् सुतान् ।  
 होत्रियम्यसुनो ह्यग्निर्वहपो ह यदाहन ॥२४॥  
 प्रशस्योऽग्निं प्रचेतास्तु द्वितीयं ममहायकम् ।  
 सुताह्यग्ने विश्ववेदाग्राह्यणाच्छसिह यते ॥२५॥  
 अपायोनि स्मृतं स्वात्म सेनुर्नाम विभाव्यते ।  
 घिष्ण्य आह्यणाह्येनेमोमेनेज्यन्तवद्विज ॥२६॥  
 सता य पापका नाम्ना य सद्भिर्योग उ-यते ।  
 अग्निं सोऽजभूयेज्जो योवरुणेन सङ्गज्यते ॥२७॥  
 हृदयस्य सुतो ह्यग्ने जठरेऽगौ नृणां पचन् ।  
 मन्युमान् जाठरश्चाग्निर्विद्वान्नि सतन स्मृत ॥२८॥

ब्रह्म ज्योति और वसुगामा अग्नि ब्रह्मस्पर्शवीच कहा जाता है ।  
 अजैकपाद उपस्थेय है क्योंकि वह घातामुख होता है ॥२३॥ अनिर्देश्य—  
 अहिवृद्ध बाहिर अन्त में दक्षिण हैं य मर्ष व पुत्र है और द्विजो व द्वारा  
 उपस्थान करने योग्य रहे गये हैं ॥२३॥ इमं अनन्तर विहरणीय उन  
 भाठ मुनी के विषय में बतलाने हैं । होत्रिय का वहिप हय वाहन अग्नि  
 सुत है ॥२४॥ प्रशस्य अग्नि प्रचेता दूसरा ससहामक होता है । विश्ववेदा  
 भाग का गुन है और आह्यणाच्छसि कहा जाता है ॥२५॥ अपायोनि  
 स्वात्म कहा गया है तथा सनु नाम विभावित होता है , य सब घिष्ण्य  
 अ हरण है और द्विजो क द्वारा सोम स इज्यमान होत है ॥२६॥ इसके  
 पश्चात् जो पावक जो सतुस्यो क नाम स याप कहा जाता है वह अग्नि  
 प्रवभृत् म ही जानना चाहिए यह वरुण क साथ इज्यमान होता है ॥२७॥  
 जो मनुष्या क जठर म छाया दूर पदार्थों का पापन करता है वह हृदय  
 की आग का सुत है । जाठर अग्नि बडा मन्युमान् है निरन्तर वह विद्वान्नि  
 कह गया है ॥२८॥

परस्परात्थितो ह्यग्निभूतानीह विभुदंहन् ।  
 अग्नेमन्युतम पुत्रो धोर सम्बर्त्तक स्मृत ॥१६॥  
 पिबन्नाग्निं स वसति समुद्रे वडवामुखे ।  
 समुद्रवासन पुत्र सह रक्षो विभाष्यते ॥१७॥  
 सहरक्षस्तुर्वनामान्गृहसवसतेनृणाम् ।  
 क्रव्यादग्निं सुतस्तस्य पुरुषान्याऽस्तिर्वपृतान् ॥१८॥  
 इत्येतेपावकस्या नेद्विजं पुत्रा प्रकीर्त्तिता ।  
 तत सुतास्तु सौवीर्यादिगन्धर्वैरमुरहता ॥१९॥  
 मथितोयस्त्वरण्यान्तुमाऽनिरापसमिधनम् ।  
 आयुर्नाम्नातुभगवान् पशौयस्तुप्रणीयते ॥२०॥  
 आयुषो महिमान्पुत्रो दहनस्तु तत सुत ।  
 पाकजज्ञध्वमोमानीदृत हव्यं भुनक्ति य ॥२१॥  
 सवस्माद्वयत्रोकाच्च ह यं कव्यं भुनक्ति य ।  
 पुत्रोऽस्य सहितो ह्यग्निदभुत समहायशा ॥२२॥

परस्पर मे मनुष्येण अग्निं यथा पर विभुभूतो का बाह करता है  
 वह अग्निका मनुष्यम घोर पुत्र सम्बर्त्तक कहा गया है । पीता हुआ वह  
 अग्नि समुद्र मे वडवा के मुख मे वास किया करता है । समुद्र मे वास  
 करने वाले का वह पुत्र सहरक्ष विभाषित होता है ॥१७॥, १८॥ जो सह-  
 रक्ष नाम वाला अग्नि है वह सप्त कामो को पूर्ण किया करता है और  
 मनुष्यो के घर मे ही निवास करता है । क्रव्याद नामक अग्नि उसका  
 पुत्र है जो मृत हुए मनुष्यो को खा जाता है अर्थात् शव को भस्मीभूत  
 जलाकर कर दिया करता है ॥१९॥ ये इनने द्विजो क द्वारा पावक अग्नि  
 र पुत्रो का प्रकीर्त्तन किया गया हैं । इसके अनन्तर जो सुत हुए थे वे  
 सौवीर्य से गंधर्व और अमुरो के द्वारा हृत हो गये हैं ॥२०॥ जो अरणी  
 मे मथित करने समुपन हुआ अग्नि है वह आप समिधन होता है । वः  
 भगवान् । २१ नाम से मनुष्य होता है जो मनुष्य प्रणीयमान होता है



वान् ये ही आठ कीर्तित किये गये हैं । यह समस्त प्रजा शुच्यग्नि का है और इस तरह से चौहद अग्नि है । इनने ये अग्नि बतला दिये गये हैं जो अश्वर मे प्रणीत होते हैं । स्रगं के समतीत होने पर जो सुरोत्तम ग्रामो क सहित स्वायम्भुवअन्तर मे पूर्व मे अग्नि है वे सब अभोमाना हैं । वे बिहार करने के योग्य चेतन और अचेतनो मे यहाँ पर स्थानाभिमानो हव्य वाहन अग्नीध्र पहिले ये ॥१६, ४०, ४१॥ सकाम और नैमित्तिक आद्य वे हैं जो कर्मों मे समवस्थित रहा करते हैं ॥४२॥

पूर्वे मन्वन्तरेऽतीते शुक्रैर्यामिश्व तं सह ।

एते देवगणै साद्धं प्रथमस्यान्तरे मनो ॥४३॥

इत्येता योनयो ह्येता स्थानाख्याजातवेदसाम् ।

स्वारोचिवादिपुत्रा याः सवर्णाः तेषु सप्तपु ॥४४॥

तैरेवन्तु प्रसंख्यात साम्प्रतानागतेष्वह ।

मन्वन्तरेषु सर्वेषु लक्षण जातवेदसाम् ॥४५॥

मन्वन्तरेषु सर्वेषु नाना रूपप्रयोजनै ।

वत्त ते वर्तमानश्च यामर्दवे सहा नयः ॥४६॥

अनागतं सुरं साद्धं वत्स्यन्ता नागतास्त्वथ ।

इत्येष प्रचयोऽग्नीनामयाप्रोक्तोऽयथाक्रमम् ।

विस्तरेणानुपूर्व्या च किमन्यच्छातुमिच्छथ ॥४७॥

पूर्व मन्वन्तर के अतीत हो जाने पर उन शुक्र ग्रामो के सहित प्रथम मनु के अन्तर मे ये सत्र देव गणो के साथ मे हैं ॥ ४३ ॥ इतनी से सब स्थानाख्य जात वेदाग्रो की योनियाँ बनल यी गई हैं वे सब मन्वन्त रात स्वारोचिष आदि मे जाननी चाहिए ॥ ४४ ॥ इस प्रकार से उनके द्वारा ही प्रसंख्यान हैं । इस समय में यहाँ पर अनागत सब मन्वन्तरो मे न ना रूप जाने प्रयोजनों से युक्त और वर्तमान याम तथा देवो के साथ अग्नि है ॥ ४६ ॥ अनागत सुरों के साथ वे भी आगत नहीं हैं—इस प्रकार से यह अग्नियों का प्रचय मैंने क्रम के अनुसार बतला दिया है जो

## कर्मयोग वर्णन

विस्तार के साथ और आनुपूर्वी के सहित हो कही गया है । अब इसके प्रागे प्राप लोग मुझसे क्या श्रवण करना चाहते हैं ॥४७॥

## ३०—कर्मयोग वर्णन

इदानीं प्राह यद्विष्णु पृष्टः परममुत्तमम् ।  
 तमिदानीं समाचक्ष्व धर्माद्यर्थस्य विस्तरम् ॥१॥  
 एवमेकार्णवे तस्मिन् मत्स्यरूपी जनार्दनः ।  
 विस्तारमादिसर्गस्य प्रतिसर्गस्य चाखितम् ॥२॥  
 कथयामां विश्वात्मा मनवे मूर्त्यस्तुतये ।  
 कर्मयोगञ्च साहचर्यञ्च यथावद्विस्तरान्वितम् ॥३॥  
 श्रोतुमिच्छामहे सूत ! कर्मयोगस्य लक्षणम् ।  
 यस्मादविदितं लोके नकिञ्चित्तवमुब्रत ॥४॥  
 कर्मयोगञ्च वक्ष्यामि यथाविष्णुविभाषितम् ।  
 ज्ञानयोगमहन्नादि कर्मयोगः प्रशस्यते ॥५॥  
 कर्मयोगोऽद्वैतं ज्ञानं तस्मात्तत्परमपदम् ।  
 कर्म ज्ञानोऽद्वैतं ब्रह्म न च ज्ञानमकर्मणः ॥६॥  
 तस्मात्कर्मणि युक्तात्मा तत्त्वमाप्नोति नान्यथा ॥७॥  
 वेदोत्तमो धनमलमाचारश्चैव तदिदम् ॥८॥

कर्म योग तथा सांख्य योग का भी बतलाया था ॥ २, ३ ॥ ऋषिपण्डित ने कहा—हे सूतजी ! हम इस समय मे वरुण योग का लक्षण श्रवण करना चाहते हैं । हे सुव्रत ! कारण यह है कि आप तो सर्व ज्ञाता महान् पुरुष हैं फिर ऐसा अवसर हमको कब मिलेगा । ऐसी कोई भी बात नहीं है जिसको आप नहीं जानते हो ॥ ४ ॥ सूतजी ने कहा—जिस प्रकार से ठीक २ भगवान् विष्णु ने भाषित किया था । उसी कर्म योग को हम बतलाते हैं । कर्म योग की बड़ी प्रशंसा भी है । यह एक सहस्र ज्ञानयोग से भी बड़ी अधिक प्रशस्त माना जाता है ॥ ५ ॥ कर्म योग से स्मृतपन्न जो ज्ञान है उसी से वह परम पद प्राप्ति होता है । कर्म ज्ञान से वदभूत होने वाला ब्रह्म है ज्ञान कर्म से सदभव होने वाला नहीं है ॥ ६ ॥ इस लिये कर्म योग की उपासना ही सर्वश्रेष्ठ है । जो मनुष्य कर्म में मुक्त आत्मा वाला है वह शाश्वत तत्त्व को प्राप्त किया करता है । अखिल वेद मूल धन है और उसका हित करने वाला आधार भी है ॥ ७ ॥

अष्टावात्मगुणास्तस्मिन् प्रधानत्वेन सस्थिताः ।

इया सर्वेषु भूतेषु क्षान्तीरक्षातुरस्य च ॥८॥

अनसूया तथा लोके शौचमन्वाहद्विजा ।

अनायासेषु कार्येषु माङ्गल्याचारमेव नम् ॥९॥

न च द्रव्येषु वापण्यमार्तेषु जिज्ञेतेषु च ।

तथा स्पृहा परद्रव्ये परस्त्रीषु च सर्वदा ॥१०॥

अष्टावात्मगुणा प्रोक्ता पुराणस्य तु कोविदैः ।

अयमेव क्रियायोगो ज्ञानयोगस्य साधकः ॥११॥

कर्मयोग विना ज्ञानं कस्यचिन्नेह दृश्यते ।

अतिरुद्धितं धर्ममुपतिष्ठेत्प्रयत्नतः ॥१२॥

देवतानां पितॄणाञ्च मनुष्याणाञ्च सर्वदा ।

सूर्यादहर्हयं नैर्भूतपिणतपणम् ॥१३॥

स्वाध्यायैरचंयेच्चर्षीन् होमविद्वान् यथाविधि ।

पितॄन् श्राद्धं रक्षदानभूतानि वलिकर्मभिः ॥१४॥

आत्मा के आठ गुण हैं जो कि उन आत्मा में प्रधान रूप से सम्मिलित हैं । समस्त प्राणी मात्र पर दया और जो आतुर पुरुष हो उसका रक्षा करना भी आत्मा का एक प्रधान गुण है ॥८॥ सोर में अमूया ( जिसके भी गुण-दोषों का वर्णन करके बुझाई न करना ) हे द्विवर्ण ! बाह्य और अन्दर की शुचिता बिना ही अभ्यास ( श्रम ) के होने वाले कामों में माङ्गल्य आचार का सेवन करना भी गुण है । जो आर्त्त हैं उनके विषय में उपायित किए हुए धनों में हृषयता नहीं करनी चाहिए । यह उदार भाव भी एक विशेष गुण होता है । पराई की और परमा धन में कमा भूत कर भी स्पृहा नहीं करनी चाहिए । माता के समान पराई स्त्री और पराय मुवर्ग को भी मिट्टी के टेले के समान ही देखना आत्मा का एक विशेष गुण है ॥ ९, १० ॥ इस प्रकार से पुराणों के विद्वानों ने ये आठ आत्मा के गुण बतलाये हैं—यही ज्ञानयोग का साधक क्रिया योग है ॥ ११ ॥ इस कर्मयोग के बिना यहाँ पर ज्ञान जिसको भी नहीं हुआ करता है जो कि दिखाई देव । अतएव श्रुति तथा स्मृति के द्वारा कहा गया जो धर्म है उसी पर प्रयत्न पूर्वक लग्न रहना चाहिए ॥ १२ ॥ देवगणों का—विनूतों का और फिर मनुष्यों का सर्वदा प्रति दिन यज्ञों के द्वारा भूत और अधिपति का स्तवन करना चाहिए । १३ ॥ अधिपति का अर्चन वेदों के स्वाध्याय के द्वारा करना चाहिए और विद्वान् पुरुष को विद्यान के अनुसार होमों के द्वारा भी यज्ञ करना परमावश्यक है । विनूत अर्चन धातों के द्वारा करे अन्न के दानों में तथा बलि कर्मों के द्वारा समस्त दूतों का समर्पण करना चाहिए ॥१४॥

पञ्चने विहिता यज्ञा पञ्चभूतापनुताये ।

वण्डन पेयगी चूनी जलकुम्भो प्रमाजनी ॥१५॥

पञ्चभूता गृहस्थस्य तेन स्वर्ग ॥ यच्छति ।

इत्यापनातनायामो पञ्चयज्ञाः प्रकीर्तिता ॥१६॥

द्वाविंशति तथाष्टौ च ये संस्काराः प्रकीर्तिताः ।  
 तद्युक्तोऽपि न मोक्षाय यस्त्वात्मगुणवर्जितः ॥१७॥  
 तस्मादात्मगुणोपेनः श्रुतिकम्पमाचरेत्  
 गोब्राह्मणानां वित्तेन सर्वदा भद्रमाचरेत् ॥१८॥  
 गोभूहिरण्यवासोभिर्गन्धमाल्योदकन च ।  
 पूजयेद् ब्रह्माविष्ण्वकद्रवस्वात्मक शिवम् ॥१९॥  
 व्रतोपवासेर्विधिवत् श्रद्धया च विमत्सरः ।  
 योऽसावतीर्निद्रय शास्तः सूक्ष्मोऽयुक्तः सनातनः ॥  
 वासुदेवो जगन्मूर्तिस्तस्य सम्भूतयो ह्यमा ॥२०॥  
 ब्रह्मा विष्णुश्च भगवान् मार्त्तण्डो वृषवाहनः ।  
 अष्टौ च वसवस्तद्देकादशगणाधिपाः ॥  
 लोकपालाधिपालंश्च पितरो मातरस्तथा ॥२१॥  
 इमा विभूतयः प्रोक्ताश्चराचरसमन्विताः ।  
 ब्रह्माद्याश्चतुरो मलमभ्यक्ताधिपति स्मृतः ॥२२॥

गार्हस्थ्य आश्रम में रहने वालों को प्रतिदिन स्वाभाविक स्वरूप से ही स्वतः पाँच प्रकार के पाप कर्म अनजान में बन जाया करते हैं। उन पाँच पाप कर्मों की अपनुक्ति के लिये ये पाँच प्रकार के यज्ञों के करण का विधान करना परमावश्यक है। ये पाँच पाप ये हैं—बण्डनी कर्म जो आवश्यक रूप से घरों में होता ही है। छाननी से छानना हा बण्डनी कहा जात है। पेयणी चक्की आदि से पीसने का काम—चुस्ली चूल्ह जलाना—जलकुम्भी वह स्थल जहाँ पर जल आदि को रखा जाता है और पाँचवो प्रमाजनी—बुढ़ारी आदि परिवार करना। ये पाँच गूण (पाप या दृष्ट्या गृहस्थ का दुआ ही करते हैं। इसी से वह स्वयं की प्राप्ति नहीं किया करता है। उनसे होत बाल पापों के नाश के लिये ही ये पाँच दैनिक कर्मावश्यक यज्ञ कीर्तिन किये गये हैं ॥ १५ ॥ १८ ॥ बार्हन् और आठ जो आत्मा के सारदार बताये गये हैं जिनसे आत्मा की

शुद्धि हुआ रहती है इन सम्भारों से मुक्त भी हो तो भी आत्मा के उक्त मद्गुणों में रहित होना है उसकी मोक्ष नहीं होनी है । अतः यह सिद्ध है कि ब्रह्माण्ड के निम्ने अर्धोत्थ आत्मा के गुणों का होना परमात्मक है ॥ १७ ॥ अतएव आत्मा के गुणों मुक्त होकर श्रुतिविहित कर्मों का समाचरण करना चाहिए । जो धन धाम में न्यायोपाश्रित हो उसमें सर्वदा भी और ब्राह्मणों का ब्रह्माण्ड कर्म करना चाहिए । १८ ॥ यौ-हिरण्य-वस्त्र-गज-माना-जन्म आदि के द्वारा ब्रह्मा—विष्णु—सूर्य—इन्द्र और वसु स्वस्व नियम का निबध पूजन करना चाहिए ॥ १९ ॥ मत्पराता के भाव से रहित होकर परम प्रज्ञा से विधि पूर्वक वन एक उपवासों का समाचरण करे । जो इन्द्रियों की पशुव से भी परे है—परम ज्ञान—महम स्वप्न धामा—अध्यात्म—मनाशन—ब्रह्मभूति जग-धान् द्वापुदेव हैं उन्हीं को ये सब सम्भूतिर्था हैं । २ ॥ ब्रह्मा—विष्णु—महेश्वर पारमेश्वर—वृषभदेव—आठ वसुदेव—एकादश गणों के अधिप—लोकपाल और अधिपानों के संहित पितृगण तथा मातृ वर्ग—देवराज परावर से समन्वित विभूतिर्गण बन दी गयी हैं । ब्रह्मा आदि चार मूल हैं जो अदत्त के अधिपति ब्रह्मदेव गये हैं ॥ २१, २२ ॥

ब्रह्मणा चाय मूर्धेण विष्णुनाथ निवेन वा ।  
अभेदात्पूजितेन स्वात्पूजितेन मन्त्रावरम् ॥ २३ ॥  
ब्रह्मादाना परब्रह्मण्य त्रयण्यमपि सस्थिति ।  
वेदमूर्ताश्चतः पूषा पूजनीयः प्रयत्नतः ॥ २४ ॥  
तन्मादनिद्विजमुग्रान् कृत्वा सपूजयेदिमान् ।  
दानं च तोषवामं च जपहोमादिना नरः ।  
इति त्रिषासोपरायणस्य वेदान्तनाम्नश्चतुर्विधमर्थः ।  
विष्णुममीनम्य यदा न सिञ्चन् प्राप्नोत्यमन्ताह परे च साके ॥ २५ ॥

ब्रह्मा—सूर्य—विष्णु और शिव ये सब एक ही हैं इनकी भेद समझ कर ही इनकी पूजित करे ऐसा भेद धारण करने समर्थ बनने

पर सभी चगचर का समर्चन हो जाया करता है ॥२३॥ ब्रह्मा आदि तीनों की जहा सस्थिति है वही परम धाम है । वेद मूर्ति पूषा का सदा प्रयत्न पूर्वक पूजन करना चाहिए ॥२४॥ इसीलिये इन सबका पूजन कर अग्नि और द्विजों को मुख बनाकर ही करना चाहिए अर्थात् अग्नि तथा द्विजों के द्वारा ही इनका अभ्यर्चन हुआ करता है । दान—व्रत—उपवास—जप और होम आदि के द्वारा मनुष्य को उक्त अभीष्ट देवों का समर्पण करते रहना चाहिए ॥२५॥ इसी क्रियायोग में तत्पर तथा वेदान्त शास्त्र और स्मृति से प्यार करने वाला और विकर्मों अर्थात् बुरे कर्मों से भीतर रहने वाले को सदा इस लोक और पर लोक में कुछ भी प्राप्त करने में योग्य नहीं होता है ॥२६॥

### ३१— पुराणसंख्या वर्णन

पुराणसंख्यामाचक्ष्व सूत । विस्तरस्त क्रमात् ।  
 दानधम्ममदोषान्तु यथावदनुपवक्ष ॥१॥  
 इदमेव पुराणेषु पुराणपुरुषस्तेदा ।  
 यदुक्तवान् स विश्वात्मा मनवे तन्निबोधन ॥२॥  
 पुराण सर्वशास्त्राणां प्रथम ब्रह्मणा स्मृतम् ।  
 अनन्तरञ्चवक्त्रेभ्यो वेदास्तस्यधिनिगता ॥३॥  
 पुराणमेवमेवासीत् तदा कल्पांतरेऽनघ ।

मुनिगण ने कहा—हे सूनजी ! अब आप पुराणों की सख्या बतलाइये और विस्तार के साथ क्रम से कहने की कृपा कीजिए और यथावत् सम्पूर्ण दान धर्म आनुश्रवी के सहित बतलाइये ॥१॥ सूनजी ने कहा—उप समय में विश्व की आत्मा उन पुराण पुरुष ने यह ही जो पुराणों में मनु को कहा था उस को आप सोच समझ लीजिए ॥२॥ भगवान् ने कहा—ब्रह्माजी ने सप्त सप्त शास्त्रों में पुराण को ही सबसे प्रथम कहा था । इनके अनन्तर उनके मुखों से वेदों का निर्गमन हुआ था ॥३॥ हे मनस ! उस समय में परब्रह्मणर में एक ही पुराण था । यह त्रिवर्ग का गाधन—गुण्यमय और जगत्कोटि विस्तार वाला था ॥ ४ ॥ जब सब लोक निर्दग्ध हो गये थे तब मैंने वाजि रूप से चारों वेद—उनके अङ्ग शास्त्र—पुराण—न्याय का विस्तार—मीमांसा और धर्म शास्त्र परिगृहीत करके मैंने किये थे । फिर कल्प के आदि में उदरार्णव में मत्स्यरूप में यह अक्षेप उदक से अन्तर्गत रहते हुए कहे थे । इनका ध्वजण करके चतुर्मुख ब्रह्माजी ने मुनिगण और देवों के प्रति इनको कहा था ॥ ५, ६, ७ ॥

प्रवृत्तिं सवर्ग मन्त्राणां पुराणस्याभवत्ततः ।  
 कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य ततो नृप ! ॥८॥  
 व्यासरूपमहं दृष्ट्वा सहस्रानि युगे युगे ।  
 चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे तदा ॥९॥  
 तयाष्टादशरात्रां कृत्वा भूलाक्षेऽस्मिन् प्रकाशयते ।  
 अद्यापि देवनाक्षेऽस्मिन् सनकादिप्रविस्तरम् ॥१०॥  
 तदर्थोऽत्र चतुर्लक्ष संक्षेपेण विदोषितम् ।  
 पुत्राणानि दशाष्टौ च माम्प्रत तदिहोन्वने ॥११॥  
 नामतस्तानि वदामि शृणुष्व मुनिसत्तमाः ! ।  
 ब्रह्मणामिहिनं पूर्वं यागन्मात्रं मरीचये ॥१२॥  
 ब्रह्मणिश्चिदग्रमाह्वं पुराणं वन्कीर्त्यते ।  
 तस्मिन्मया तच्च योदजाज्जवधेनुसमन्वितम् ॥



वैशाखपूर्णिमायाञ्च ब्रह्मलोके महीयते ॥१३॥

एतदेव यथा पद्मममूर्द्धरन्मय जगत् ।

तद्वृत्तान्ताश्रय तद्वत् पाद्ममित्युच्यते बुधैः ॥

पाद्म तत् पञ्च पञ्चाशत् सहस्राणीह कथ्यते ॥१४॥

फिर समस्त शास्त्रों की प्रवृत्ति पु. ११ से ही हुई थी । फिर कुछ काल में पुराणों का ग्रहण न देखकर हे नृप ! मैं फिर व्यास रूप को धारण करके युग-युग में सहरण किया करता हूँ । सदा द्वार में चार लाख के प्रमाण से सहरण किया था ॥८॥१५॥ फिर उन पुराणों के अठारह भेद करके इस लोक में प्रकाशित किया जाता है । इस समय में भी इस देव लोक में सौकराज विस्तार है ॥१०॥ तदर्थ यहाँ पर चार लाख संक्षेप से विशेषित किया है ? ॥११॥ हे मुनि सत्तमो ! अब उनके नाम लेकर कहता हूँ । आप श्रवण कीजिए । पहिले ब्रह्माजी ने मरीचि के लिये यादस्मान्न कहा था ॥१२॥ ब्राह्म पुराण तरह सहस्र परिकीर्तित किया जाता है । जो कोई उसको हाथ से निखकर असधेतु से समुद्धत करके वैशाख मास की पूर्णिमा तिथि में दान करता है वह अन्त में ब्रह्म लोक में जाकर प्रतिष्ठित होता है ॥१३॥ यह ही जैसे जगत् हैरण्य पद्म हो गया था उसी के वृत्तान्त का आश्रय ग्रहण करके उसी की भाँति बुद्ध लोगों के द्वारा 'पाद्मम'—यह नाम कहा जाता है । वह पद्मपुराण यहाँ पर पचपत्त सहस्र कहा जाता है ॥१४॥

तत्पुण्यञ्च यो दद्यात् सुवर्णकलशान्वितम् ।

ज्येष्ठे मासि तिसैर्युक्तमश्वमेधफलभेत् ॥१५॥

नारायणवृत्तान्तमधिकृत्य पराशर ।

यत्प्राह घमानखिलान् तद्युक्तं वण्णव मिदु. ॥ ६

नदापाठे च यो दद्यात् घृतधेनुसमन्वितम् ।

पूर्णमास्याविपूतात्मा य पदयातिचारुणम् ॥

अथार्ति शतिसाहस्रं तत्प्रमाणं मिदुबुद्धाः ॥१६॥

स्वेतकल्पप्रसङ्गेन धर्मान् वामुरिहाविवीत् ।  
 यत्र तद्वायवीयस्यात् रुद्रमाहात्म्यसंयुतम् ॥  
 चतुर्विंशत्सहस्राणि पुराण तद्विहोच्यते ॥१८॥  
 श्रावण्या श्रावणे मासि गुडधेनुममन्वितम् ।  
 या दद्यात् नृपसयक्तं ब्राह्मणायकुटुम्बिने ॥  
 \* दावलाके ॥ पुनास्मा कल्पमेक वसेधर. ॥१९॥  
 यत्राधिकृत्य गायत्री बध्यते धर्मविम्बरः ।  
 वृत्रासुरबधोपेत तद्भागवतमु यते ॥२०॥  
 सारस्वतस्य कलस्य मध्ये ये स्फुर्नरोत्तमाः ।  
 तद्वृत्तान्तोद्भव लाके तद्भागवतमुच्यते ॥२१॥

इस पुराण को जो कोई पुरुष सुवर्ण की कलश से सुवन करके  
 तथा तिलों से समन्वित उश्र मास में दान में देता है वह अश्वमेध यज्ञ के  
 पूर्य - पय को प्राप्त विद्या करता है ॥१९॥ बाराह कल्प के वृक्ष गत का  
 मायय लेकर परातर में जो समस्त धर्मों का कदा या उससे युक्त वैष्णव  
 जानना चाहिए ॥ ६॥ उसको पापाद मास में वृक्ष धेनु से समन्वित कर  
 के पूर्वमासी तिथि में जो मनुष्य दान में देता है वह विशेष रूप से पून  
 भारमा वाला होकर वायव्य पद को प्राप्त किया करता है । कुछ लोग इस  
 का प्रमाण लेईय सहस्र पुराण बताया करते हैं ॥२०॥ महा पर वामुदेय  
 ५ श्वेत कलश के प्रसङ्ग में धर्मों को बताया था । जिसमें इन धर्मों का  
 रूपन किया था वही वायव्यवीय धर्मान् वामुपुराण हुआ था जो भगवान् रुद्र  
 के महात्म्य से समन्वित था । यह पुराण चौबीस सहस्र श्लोकों की संख्या  
 में प्रामाण्य वाला पुराण कहा जाता है ॥२१॥ श्रावण मास में श्रावरी  
 , शिमा तिथि में गुड और धेनु में समन्वित तथा वृष से समुक्त करने जो  
 दारि कुटुम्बी ब्राह्मण के लिए दान में देता है दान है वह मनुष्य पवित्र  
 ५ मा वाला होकर एक कल्प पर्यन्त जिवन्मूर्त में निवास किया करता  
 है ॥ २२॥ जिसमें श्रावरी का धर्मिण्य करने जो धर्म के विस्तार

का वर्णन किया जाता है वह वृत्रासुर के वध की कथा से युक्त भागवत पुराण कहा जाता है ॥ २० ॥ सारस्वत बल्प के मध्य में जो नरोत्तम हुए थे उनके वृत्तान्त के उद्भव वाले को लोक में उसी को भागवत कहा जाता है ॥ २१ ॥

लिखित्वा तच्च योद्धाद्धेमसिंहसमन्वितम् ।  
 पूणिमास्याप्रौष्ठपद्या स यातिपरमागतिम् ॥  
 अष्टादशसहस्राणि पुराण तत् प्रचक्षते ॥ २२ ॥  
 यत्राह नारदा धर्मान् बृहत्कल्पाश्रयाणि च ।  
 पञ्चविंशत्सहस्राणि नारदीयं तदुच्यते ॥ २३ ॥  
 तदिदं पञ्चदश्यान्तु दद्याद्धेनुसमन्वितम् ।  
 परमा सिद्धिमाप्नोति पुनरावृत्तिदुलभासु ॥ २४ ॥  
 यत्राधिकृत्य शकुनीन् धर्माधिर्माविचारणा ।  
 व्याख्याता वै मुनिप्रज्ञे मुनिभिर्धर्मचारिभिः ॥ २५ ॥  
 मार्कण्डेयेन वक्षितं तत्सर्वं विस्तरेण तु ।  
 पुराणं नवसाहस्रं मार्कण्डेयमिहोच्यते ॥ २६ ॥  
 प्रतिलिरयचयोद्धात् सौवर्णकारसंयुतम् ।  
 कार्तिवयापुण्डरीकस्य यज्ञस्य फलभाग भवेत् ॥ २७ ॥  
 यत्नदाशानक कल्प वृत्तान्तमधिकृत्य च ।  
 वशिष्ठायाग्निना प्रोक्तमाग्नेयं तत्प्रचक्षते ॥ २८ ॥

इसकी श्राव्य से लिखकर हेम के सिंह से समन्वित करके जो प्रौष्ठपदी पूणिमा तिथि में अर्थात् भाद्रपद मास की पूर्णमासी में दान किया करता है उस मनुष्य की परम गति हो जाया करती है । इस पुराण के अनुष्टुप श्लोकों का प्रमाण अठारह सत्रस बड़ा जाता है ॥ २२ ॥ जिसमें सूत्र कल्प का आश्रय लेकर देवर्षि नारदजी ने धर्मों का वर्णन किया है । यह नारदीय अर्थात् नारद पुराण कहा जाता है । इसके श्लोकों का प्रमाण पञ्चविंशत् सत्रम् है । इस पुराण को पृथ्वीमा तिथि में

तु से समन्वित करके दान में दिया जाता है तो वह दानदाता पुण्य  
 एवं सिद्धि को प्राप्त किया करता है जो सिद्धि पुनरावृत्ति दुर्लभ होती  
 ॥ २३, २४ ॥ जिसमें ऋतुविशेष को अग्निकृत्न करके धर्म और सधर्म  
 विषय में विचार किया गया है और यह व्याख्यात मुनि के प्रश्न पर  
 मंत्रारी मुनियों के द्वारा ही किया गया है ॥ २५ ॥ मार्कण्डेय मुनि ने  
 ह सभी कुछ बड़े विस्तार के साथ कहा है । यह पुराण नौ सहस्र अनु-  
 ष्टुप श्लोक के प्रमाण वाला है और यहाँ पर यह मार्कण्डेय पुराण के  
 नाम से कहा जाता है ॥ २६ ॥ इस पुराण को हाथ में लिखकर सुदर्श  
 निमित्र हाथी सहित जो इसका कोई दान दिया करता है और वह भी  
 किसी पूर्णमासी को दिया जाता है तो उस दान के दाता को पुण्डरीक  
 के पुण्य का फल प्राप्त हो जाता है ॥ २ ॥ जो वह ईशानक कल्प  
 का वृत्तान्त है उसको अग्निकृत्न करके अग्निदेव से महर्षि यज्ञिष्ठ जी से कहा  
 गया वही पुराण आग्नेय नाम से प्रसिद्ध है अर्थात् इसी को अग्निपुराण कहा  
 जाता है ॥ २८ ॥

लिखित्वा तच्च यो दद्याद्धर्मपदमगमन्वितम् ।  
 मार्गशीर्ष्या विद्यानेन तिलधेनुमर्मान्वितम् ॥  
 तच्च पादसप्ताहम् नवक्रतुफलप्रदम् ॥ २६  
 यत्राद्यित्युक्त्य माहात्म्यमादित्यम्बुतुषः ।  
 अघोरकल्पवृत्तस्तत्प्रसङ्गेन जगत्स्वितिम् ॥  
 मनवे कथयामास भूतग्रामस्य लक्षणम् ॥ २७ ॥  
 चतुदशमहस्याणि तथा पञ्चशतानि च ।  
 भविष्यचरितप्राय भविष्यन्तर्दिहोच्यते ॥ २८ ॥  
 तत्तरीपेमासयोदद्यान् पीर्णमान्या विमलम्बरः ।  
 गुरुगुम्भममायुवनेमान्निष्ठोऽपलभयेद् ॥ २९ ॥  
 रथतत्स्थानस्य वृत्तान्तमधिकृत्य च ।  
 सारणिर्नानारदाय वृत्त्यमादात्स्यमुत्तमम् ॥ ३० ॥

यत्र ब्रह्मवराहस्य चोदन्तं वर्णितं भुहुः ।  
 तदष्टादशसाहस्रं ब्रह्मवैवर्तमुच्यते ॥३४॥  
 पुराणं ब्रह्मवैवर्तं यो दद्यान्माघमासि च ।  
 पौर्णमास्या शुभदिने ब्रह्मलोके महीयते ॥३५॥

इसको हाथ से लिख कर जो हेमनिमित्तपत्र से समन्वित दान देता है । और मार्गशीर्ष मास की पूर्णिमा में धान पूर्वक तिल तथा दैनु से समुत करके यह दान दिया जाता है तो समस्त कर्तुओं के पुण्य फल को प्रदान करने वाला होता है । इस पुराण के श्लोको का प्रमाण सोलह सहस्र है ॥३६॥ जिस पुराण में चतुर्मुख भगवान् ने आदित्य देव के माहात्म्य का आश्रय प्राप्त करके अघोर कल्प के वृत्तान्त के प्रसङ्ग से इस जगत् की स्थिति को भूतग्राम का लक्षण महाराज मनु से कहा था । ॥३७॥ जिसका प्रमाण चौहद सहस्र पाँच सौ है और जिसमें बहुधा भविष्य में होने वाला चरित है उसको ही भविष्य पुराण कहा जाता है । ॥३८॥ उसको पौष मास की पूर्णिमा तिथि के दिन विगत मत्सरता वाला होकर दान दिया करता है और इसके साथ मुड कुम्भ भी हाना चाहिए तो इस दाता को अग्निधोम याग का फल मिला करता है ॥३९॥ यद्यपि एक कल्प है उस कल्प में जो कुछ घटित हुआ उसी वृत्तान्त को अधिकृत करके सावित्री ने देवपि नागद क लिये अत्युत्तम वासुदेव वृष्ण का माहात्म्य बतलाया है जिनमें पुनः ब्रह्मवराह का प्रेरणा किये हुए को वर्णित किया है वह अठारह सहस्र अनुष्टुप् श्लोकों के प्रमाण वाला पुराण ब्रह्मवैवर्त नाम से कहा जाता है ॥४०॥ माघ मास की पूर्णिमा तिथि के शुभ दिन में जो कोई इसका लिखकर दान दिया करता है वह ब्रह्मलोक में महान् प्रतिष्ठित पद पर अगतिष्ठित हुआ करता है ॥४१॥

यत्राग्निलिङ्गमध्यस्थं ग्राहयेद्यो गृहेऽवरः ।  
 धमावशाममाक्षान्माग्नयमधिकृत्य च ॥४२॥  
 वरदानं नन्दमित्युक्तं पुराणब्रह्मणा स्वयम् ।

तदेकाशसाहस्र फल्गुन्याय प्रयच्छति ॥  
 तिलधेनुसमायुक्तं स याति शिवसाम्यताम् ॥३७॥  
 महाबराहस्य पुनर्माहात्म्यमधिकृत्य च ।  
 विष्णुनाभिहितं क्षोण्यं तद्वाराहमिहोच्यते ॥३८॥  
 मानवस्य प्रसङ्गेन कल्पस्य मुनिसत्तमा ।  
 चतुर्विंशत्सहस्राणि तन् पुराणमिहोच्यते ॥३९॥  
 काञ्चन गरुडं कृत्वा तिलधेनुसमन्वितम् ।  
 पीणमास्या मधोदद्यात् ब्राह्मणाय कुर्यात्पुनः ।  
 बराहस्य प्रसादेन पदमप्नोति वैष्णवम् ॥४०॥  
 यत्र माहेश्वरान्धर्मानधिकृत्य च प० मुखः ।  
 कल्पे तत् पूरय वृत्तञ्चरितरूपं हितम् ॥४१॥  
 स्कन्दं नाम पुराणञ्च ह्यंकाशीति निगद्यते ।  
 सहस्राणि शतं चैकमिति मत्स्येण गद्यते ॥४२॥

माना परम शिव पुराण है जिसका प्रमाण दस सहस्र श्लोकों का होना है । जो कोई पुरुष शरद् विपुल में इसका दान दिया करना है वह वैष्णव पद की प्राप्ति किया करता है ॥४४, ४५॥ जिसमें भगवान् कूर्म रूप-धारी जनार्दन ने छमें—अर्ध—वर्षों का और रसातल में मोक्ष का माहात्म्य कहा है तथा इन्द्रजम्न के प्रसङ्ग से इन्द्र की सन्निधि में श्रुतिमण को बताया गया है वह तन्मोक्ष का अनुपङ्क्ति है तथा इसका प्रमाण अठारह सङ्ख्य माना गया है । इसको जो भी कोई सुवर्ण व द्वारा निर्माण कराये हुए कूर्म से मुक्त कूर्म पुराण का दान किया करता है वह मनुष्य एक हजार गौओं के दान करने का पुण्य-फल प्राप्त किया करता है । ॥४६, ४७, ४८॥ जिस कला के आदि में भगवान् जनार्दन ने धुनियों की प्रवृत्ति के लिये मत्स्य के स्वरूप से मनु का निम्न नरसिंह भगवान् का वर्णन किया है । हे मुनीश्वरो ! सात वर्षों का हाल का जाग्रत लेकर बोना है उसी को मात्स्य जान लो । इसका प्रमाण बीस सहस्र होना है ॥४९, ५०॥

विपुले हेममत्स्येन धेन्वा चैव समन्वितम् ।  
 योदद्यात्पृथिवी तेन दत्ताभवति चादिला ॥५१॥  
 यदाचगाभेकन्पेविद्वाष्टात् गरुडोद्भवम् ।  
 अधिकृत्याऽब्रवीत्कुण्डो गरुडस्तद्विहोच्यते ॥५२॥  
 तदप्यादशकञ्चव सहस्राणोह पठन्ते ।  
 सौवर्णं हसमयुक्तं या ददाति पुमानिह ॥  
 स सिद्धिं लभते मुख्या शिवलोके च सस्वितिम् ॥५३॥  
 ब्रह्मा ब्रह्माण्डमाहात्म्यमधिकृत्याब्रवीत् पुनः ।  
 तच्चद्वादशसाहस्रं ब्रह्माण्डविशनाघिसम् ॥५४॥  
 भविष्याणाञ्च कल्याणा धृत्यते यत्र विद्वर ।  
 तद्ब्रह्माण्डपुराणञ्च ब्रह्मणा समुदाहृतम् ॥५५॥  
 दद्यात्तद्व्रतोपाते पीतोर्णविषमयुतम् ॥

नन्दाया यत्र माहात्म्य कार्तिकेयेन धन्यते ।  
नन्दीपुराण तत्सोकराख्यातमिति कीर्त्तने ॥६०॥

यत्र शाम्ब पुरस्कृत्य भविष्येऽपि कथानकम् ।  
प्रोच्यते तत्पुनर्लोके शाम्बमेतन्मुनिव्रता ॥६१॥

पुरातनस्य कल्पस्य पुगणानि विदुर्बुधाः ।  
धन्यं यशस्यमायुष्यं पुराणानामनुक्रमम् ॥

एतमादित्यमज्ञा च नम्रं च परिगच्छते ॥६२॥

अष्टादशभ्यस्तु पृथक् पुराणयत्प्रदिश्यते ।  
विज्ञानीष्वद्विजयैष्ठा । स्तदेतेभ्यो विनिर्गतम् ॥६३॥

अद्भुत कर्मों वाले भगवान् कृष्ण द्वैपायन व्यास जी ने इसको चार लाख प्रमाण वाला बनसाय है मेरे पितामह ने पिताजी को पिताजी ने भुक्तकी मैंने आप से निवेदित कर दिया है ॥५७॥ परमहंसि न लोक न हित का सम्पदन करने के लिये इसको संक्षिप्त किया है । यह आज भी देवों में सी करोड़ विस्तार से सम्पन्न है ॥५८॥ अब इसके उपभेदों को बतलाऊंगा जो कि लोक सम्प्रतिष्ठित हैं । वहाँ पादम पुराण में नरसिंह भगवान् का उपवर्णन किया गया है । उसका प्रमाण अठारह सहस्र है और यहाँ पर वह नरसिंह पुराण के नाम से कहा जाता है ॥५९॥ जिसमें नन्दा के माहात्म्य को स्वामी कार्तिकेय भगवान् के द्वारा वर्णन किया जाता है उसी को लोगों के द्वारा नन्दी पुराण नाम से कहा जाता है—ऐसा ही कीर्त्तन किया जाता है ॥६०॥ जिसमें भगवान् शाम्ब को पुरस्कृत करके भविष्य में कथानक है ऐसा कहा जाता है कि वह पुन लोक में हे मुनिव्रता । शाम्ब—इस नाम वाला हो गया है । परम पुरातन कल्प के पुराणों को बुद्धि पुष्ट जानते हैं । यह पुराणों का अनुक्रम परम धन्य—आयु की वृद्धि करने वाला है । इस प्रकार से वहीं पर आदित्य सज्ञा भी कही जाती है ॥६१, ६२॥ अठारह पुगणों से पृथक् पुराण



जो भी कुछ प्रदिष्ट किया जाता है हे द्विज श्रेष्ठो ! उसे इन्हीं पुराणों में विनिर्गन्त हुआ समझ लेना चाहिए ॥६३॥

पञ्चाङ्गानि पुराणेषु आख्यानकमिति स्मृतम् ।  
 सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ॥  
 वशानुचरितञ्च व पुराण पञ्चलक्षणम् ॥६४॥  
 ग्रहाविष्णुकंदराणां माहात्म्यं भुवनस्य च ।  
 ससंहारप्रदानाञ्च पुराणे पञ्चवर्णके ॥६५॥  
 धर्मश्चार्थश्च कामश्च मोक्षश्च वा प्रकीर्तयते ।  
 सर्वेष्वपि पुराणेषु तद्विरुद्धञ्च यत्फलम् ॥६६॥  
 सात्विकेषु पुराणेषु माहात्म्यमधिकं हरे ।  
 राजसेषु च माहात्म्यमधिकं ब्राह्मणो विदुः ॥६७॥  
 तद्वदग्नेश्च माहात्म्यं तामसेषु शिवस्य च ।  
 सकीर्णेषु सरस्वत्या पितृणाञ्च निगद्यते ॥६८॥  
 अष्टादश पुराणानि कृत्वा सत्यवती सुत ।  
 भार्गवाख्यानमखिलञ्चक्रे तदुपवृत्तम् ॥  
 लक्षणैकेन यत् प्रोक्तं वेदार्थपरिवृत्तं हितम् ॥६९॥  
 वाल्मीकिना तु यत् प्रोक्तं रामोपाख्यानमुत्तमम् ।  
 ग्रहाणां अभिहितं यच्च शतकादिप्रविस्तरम् ॥७०॥

इन समस्त पुराणों के पाँच अङ्ग हुआ करते हैं जो आख्यानक कहा गया है । सर्ग—प्रतिसर्ग—वंश और मन्वन्तर तथा वंशों का अनुचरित जिनमें होता है—वही पुराण कहा जाता है और यही पुराणों का पंच लक्षण होता है ॥६४॥ ग्रहा—विष्णु—सूर्य और रुद्र इनका माहात्म्य और भुवनका ससंहार प्रदानों का वर्णन होता है जो भी उपर्युक्त पाँच वर्णों वाला पुराण होता है अर्थात् जिसके पाँचों लक्षण हो ऐसा पुराण होता है ॥६५॥ इसमें धर्म—अर्थ—काम और मोक्ष का कीर्तन किया जाया करता है । सभी पुराणों में उसके विरुद्ध जो फल है सारिवच पुराणों

मे हगिका माहात्म्य ही अधिक होता है । जो राजस पुराण होत है उसमे  
ब्रह्माजी का माहात्म्य अधिक होता है । उसी भाँति तामस पुराणो मे  
वर्त्मिका और शिव का माहात्म्य अधिकान्त रूप से हुआ बरता है । जो  
सकीर्ण पुराण हैं उनमे सरस्वती देवी का तथा पितृगण का माहात्म्य  
अधिक कहा गया करता है ॥६६, ६७, ६८॥ सत्यवती ने पुत्र भगवान् श्री  
कृष्ण द्वैपायन मुनि ने अठारह पुराण की रचना करके उनसे समुपबृंहित  
सम्पूर्ण भारत के आख्यान का वर्णन किया है जो एक लक्षण से बड़े क  
अर्थ से परिवृंहित ही बनाया है अर्थात् कहा है ॥६९॥ वाल्मीकि महर्षि  
ने जो परमोत्तम श्रीराम का आख्यान कहा है और जो ब्रह्माजी ने कहा है  
यह सौ करोड़ बिस्तार वाला है ॥७०॥

माहृत्य नारदायैव तेन यान्मोक्षये पुन ।

वाल्मीकिनाच लोकेषु धर्मकामार्गसाधनम् ॥

एव सपादा पञ्चैते लक्षा मर्त्ये प्रकीर्तिता ॥७१॥

पुरातनस्य कल्पस्य पुराणानि विदुर्बुधा ।

घन्य यशस्वमायुष्य पुराणानामनुब्रमम् ॥

य पठेच्छृणुमाद्वापि स याति परमाद्भुतम् ॥७२॥

इदं पवित्रं यशसो निधानं इदं पितृणां धर्तव्यं त्वम् ॥

इदं देवेष्वमृतायितञ्च नित्यं त्विदं पापहरञ्च पुमान् ॥७३॥

उसका जो हरण करके नारद के लिये और फिर उसने वाल्मीकि  
के लिये कहा था और फिर इसके पश्चात् आदि काब महर्षि वाल्मीकि ने  
लोगों में इसकी भर्मा कामार्थ का साधन स्वरूप कहा था । इस प्रकार  
से ये सभी सवा पाँच लाख की राकश बात हैं जो हम मनुष्य तब से  
प्रकीर्तित किये जाते हैं ॥ ७१॥ परम प्राचीन कल्प में जो भी पुराण  
हूए हैं उनको तो विद्वान् पुरुष ही जानते हैं । यह अवश्य ही है कि ऐसा  
यह पुराणों का जो अनुक्रम है वह परम घन्य है—आयु में बचन करने  
वाला तथा यज्ञ की वृद्धि प्रदान करने वाला है ॥ २ ॥ इन पुराणों का

जो भी कोई भाग्यशाली पुरुष पठन किया करता है या इनका बेवत श्रवण ही करता है वह निश्चित रूप से परम गति को प्राप्त करता है ॥७२॥ यह परम पवित्र है—यज्ञ की खान है और यह पितृगण का अत्यन्त प्यारा होता है । यह देवों में अमृतायित होता है और पुष्टो का यह नित्य ही पापों के हरण करने वाला होता है ॥७३॥

### ३२— नक्षत्रपुरुष नाम व्रत कथन

अतः पर प्रवक्ष्यामि दानधर्मानशेषत ।  
 व्रतोपवाससयुक्तान् यथा मत्स्यादिदानिह ॥१॥  
 महादेवस्य सवादे नारदस्य च धीमतः ।  
 यथा वृत्त प्रवक्ष्यामि धर्मकामार्थसाधकम् ॥२॥  
 कैलासशिखरासीनमपृच्छन्नारदः पुरा ।  
 त्रिनयनमनङ्गारिमनङ्गाङ्गदर हरम् ॥३॥  
 भगवन् ! देव ! देवेश ! ब्रह्मविष्ण्वन्द्रनायक ! ।  
 श्रीमदारोग्यरूपायुर्भा यमोभग्यसम्भवा ॥  
 सयुक्तस्तव विष्णोर्वा पुमान् भक्तः कथं भवेत् ॥४॥  
 नारीवाविधवासर्वगुणसौम्यसयुता ।  
 क्रमान्मुक्तिप्रदः देव ! किञ्चिद्व्रतमिहोच्यताम् ॥५॥  
 सम्पदं पृष्टत्वयान्नहान् ! सर्वं लोकहितावहम् ।  
 श्रुतमप्यत्र यच्छान्त्य तद्व्रतशृणुनारद ! ॥६॥  
 नक्षत्रेषु प नाम व्रत नारायणात्मकम् ।  
 पादादि कुर्याद्विधिवत् विष्णुनामानुकीर्तनम् ॥७॥

महामहिम महर्षि श्री सूतजी ने कहें—इससे आगे अब हम दान के धर्मों का पूरा रूप से कहता हूँ जो कि व्रत और उपवासों से ही

समन्वित है । जिस प्रकार से भगवान् मत्स्य ने यहाँ पर कहे हैं ' १ ॥  
 श्रीमान् देवर्षि नारद के और महादेव के सम्बाध में जो जिस तरह से  
 धर्मार्थ काम का साधक हुआ था उसे ही मैं कहता हूँ ॥ २ ॥ परम  
 प्राचीन समय की बात है जब कि देवर्षि नारद जी ने वैलास गिरि के  
 तिरछर पर समासीन—तीन नेत्रों वाले—अनङ्ग की भग्म करने वाले  
 तथा अनङ्ग के भङ्गों का हरण करने वाले—भगवान् हर से पूछा था  
 ॥ ३ ॥ देवर्षि नारद जी ने कहा—हे भगवन् ! हे देव ! हे देवों के  
 स्वामिन ! आप तो ब्रह्मा—विष्णु और इन्द्र इन सबके नायक हैं तथा  
 श्रीमान्—आयु—आरोग्य—रूप—भाग्य और सीभाग्य की सम्पदा से  
 संपुन हैं । कृपया यह बतलाइये कि आपका तथा भगवान् विष्णु का नाथ  
 पुरुष कैसे होता है ? ॥ ४ ॥ हे देव ! नारी चाहें वह विधवा हो भयवा  
 सर्वगुण और सीभाग्य से संपुता हो, आप ऐसा कोई वन बतलाइय जो  
 कम से मुक्ति के प्रदान करने वाला हो ॥ ५ ॥ ईश्वर ने कहा—हे ब्रह्मन् !  
 आपने इस समय में यह बहुत ही श्रेष्ठ प्रश्न पूछा है । यह सभी लोकों  
 के हित का आवाहन करने वाला है । यहाँ पर शान्ति के निधे ऐसा  
 श्रुत भी किया है । हे नारद ! उठी बत का अवगण करो ॥ ६ ॥  
 एक नक्षत्र श्रुत नाम वाला श्रुत है जो साक्षान् नारायण के स्वरूप से  
 परिपूर्ण है । इसका पादादि विधिवत्क विष्णु नामों का अनुकीर्तन  
 करे ॥ ७ ॥

प्रतिना वासुदेवस्यमूनर्क्षादिषु चाचयेत् ।

चैत्रमामं समामाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ॥ ८ ॥

भूले नमो विद्वधराय पादौ गुल्फावनन्ताय च रोहिणीषु ।

ज्येष्ठाभिपूज्य वरदाय चैव द्वे जानुनौ वासिष्ठाकुमार ऋक्षे ॥ ९ ॥

पूर्वोत्तरापाटयुगे तयोर्नमः शिवायेत्यभिपूजनीयो ।

पूर्वोत्तराफल्गुनि युग्मके च भेट नमः पञ्चशराय पूज्यम् ॥ १० ॥

कर्ति नमः शार्ङ्गधराय विष्णोः सङ्ख्येश्वरारद ! कृत्तिकायु ।

यथाऽर्चयेत् भाद्रपदाद्वये च पार्श्वे नम केशिनिपूदनाय ॥११॥  
 कुक्षिद्वय नारद । रेवतीषु दामोदरायेत्यभिपूजनीयम् ।  
 ऋक्षेऽनुराधासु च माघवाय नमस्तथोरस्थलमेव पूज्यम् ॥१२॥  
 पुष्ट धनिष्ठासु च पूजनीयमघौघविध्वंसकराय तच्च ।  
 श्रीशङ्खचक्रासिगदाधराय नमो विशाखासु भुजाश्च पूज्याः ॥१३॥  
 हस्ते तु हस्ता मधुसूदनाय नमोऽभिपूज्या इति कैटभाः ।  
 पुनर्वसावङ्ग लिपूवंभागा साम्नामघीशाय नमोऽभिपूज्या ॥१४॥

मूल नक्षत्र आदि में भगवान् वासुदेव की प्रतिमा का अर्चन करना चाहिए । जब चैत्र मास आ जावे तो उसको प्राप्त करके ही ब्राह्मणों का वाचन करना चाहिए । इसमें प्रत्येक नक्षत्र में भगवान् के प्रत्येक अङ्गों का अभ्यर्चन करे । मूल नक्षत्र में विश्वधर के लिए उनके चरणों को नमस्कार करे । अमृत भगवान् के लिए उनके गुल्फों को रोहिणी नक्षत्र में समर्पित करना चाहिए । अश्विनी नक्षत्र में वरद प्रभु के लिए उनकी दोनों जघाओं का तथा जानुओं का अभिपूजन करे ॥ ८, ९ ॥ पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा इन दोनों नक्षत्रों में भगवान् शिव के लिये उनके दोनों ऊरुओं का पूजन करना चाहिए । पूर्वा फाल्गुनी और उत्तरा फाल्गुनी—इन दोनों नक्षत्रों में पञ्चशर प्रभु के भेद का पूजन करे ॥ १० ॥ हे नारद ! कृत्तिवा आदि नक्षत्रों में शङ्ख पर भगवान् विष्णु की कटि का अर्चन करना चाहिए । पूर्वा भाद्रपद और उत्तरा भाद्रपद इन दोनों नक्षत्रों में भगवान् केशिनपूदन को नमस्कार करे और उनके दोनों पार्श्वों का पूजन करना चाहिए ॥ ११ ॥ हे नारद ! रेवती नामक नक्षत्र में भगवान् दामोदर की दोनों कुक्षियों का अर्चन करे । मधुगन्धा नक्षत्र में माघव प्रभु का नमस्कार कर उनके उरालय का अभिपूजन करना चाहिए ॥ १२ ॥ अश्वि व आषा का विध्वंस करने वाले प्रभु के पृष्ठ भाग का यजन घनिष्ठ ओ में करे । तथा शंख—चक्र—प्रसि और गदा व धारण करने वाले प्रभु को नमस्कार करके विशाखा नक्षत्र में

नक्षत्रमुख नाम ब्रह्म कथन

उनकी भुजाया का पूजन करना चाहिए ॥ १३ ॥ हस्त नक्षत्र में कंठभ  
क अरि प्रभु मनुजान व क्षिप्र नमस्कार कर हाथा का पूजन करे । सामा  
क अधीश प्रभु को नमस्कार पुनर्वसु नक्षत्र में उनके अंगुलियों के पूर्व  
माया का अभिराजन करना चाहिए ॥ १४ ॥

भुजङ्गनक्षत्रदिने नखानि सपूजयेन्मत्स्यशरीरभाज ।  
कूपस्य पादौ शरणं ब्रजामि ज्येष्ठासु कण्ठे हरिरर्चनीय ॥ १५ ॥  
शत्रुं वराहाय नमः अभिपूज्या जनार्दनस्य श्रवणेन सम्यक ।  
गुप्ते मुखं दानवमूदनाय नमो नृसिहाय च पूजनीयम् ॥ १६ ॥  
नमानम कारणवामनाय स्वातोषु दन्ताग्रमथा-नीयम् ।  
आम्य हरेर्भागवतनाय सम्पूजनीयं द्विजवारणे तु ॥ १७ ॥  
नमोऽस्तु रामाय मध्यामु नासा मपूजनाया रघुनन्दनस्य ।  
मृगास्तमाङ्गे नयनेऽभिपूज्य नमोऽस्तुते रामविष्णुर्णिताक्ष ॥ १८ ॥  
बुधाय शान्ताय नमो ललाट चिन्तासु सपूज्यतम मुरारे ।  
शिरोऽभिपूज्य भग्नोषु द्विष्णानमास्तु बभ्रुवेरवर । कलिकटपिणे ॥ १९ ॥  
आर्द्रासु कशा पृष्णोत्तमस्य रश्मिर्जनाया हरये नमस्ते ।  
उपोषित नक्षत्रदिनसु भक्त्या द्वि-पूज्या स्युः ॥ २० ॥

भुजङ्ग नक्षत्र के दिन में मत्स्य स्वरूप का धारण करने वाले  
भगवान् क नखा का पूजन करना चाहिए । भगवान् कूर्म का च पैरों की  
शरणागति में जाता हूँ—यह निवेदन करने हुए ज्येष्ठा नक्षत्र में नाथान्  
हरि का कण्ठ का समर्पण करना चाहिए ॥ ११ ॥ श्रवण नक्षत्र में वराह  
का क्षिप्र नमन करके जनार्दन प्रभु का हाथा का भनी भाति पूजन करे ।  
पुष्य नक्षत्र में दानवा का मूदन करने वाले प्रभु का प्रणाम करके क्षीर  
नृसिंह प्रभु का नमस्कार करके उनके ध्योमुख का पूजन करना चाहिए  
॥ १२ ॥ स्वाती नक्षत्र में कारण का अथ वायव्य म्बुस्थ घागम करने  
वाले प्रभु का वारम्बार नमस्कार करके दन्ता व दक्षिणा का पूजन  
करे । भाद्रपद नक्षत्र में क्षिप्र नमन करके द्विज नाथ में भगवान् हरि का

आत्म्य का भली भाँति वर्चन करना चाहिए ॥ १७ ॥ राघवेन्द्र धीरम  
 के लिये नमस्कार हो—इस मन्त्र का उच्चारण करके मघा नक्षत्र में धी  
 रपुनन्दन भगवान् की नासिका का पूजन करना चाहिए। हे विघ्नहर्त नेत्रो  
 घाने श्रीगम ! आपकी सेवा में नमस्कार समर्पित हो—यह प्रार्थना करते  
 हुए मृगोत्तमाङ्ग में भगवान् के दानो नयनों का पूजन करे ॥ १८ ॥ परम  
 शान्त स्वरूप भगवान् वृद्ध के लिए नमस्कार है—यह बहुर विना  
 नक्षत्र में मुरारि प्रभु के सलाह का भली भाँति पूजन करना चाहिए।  
 हे विश्वेश्वर ! बलिक रूप वाले आपके लिये नमस्कार है—यह मन्त्र  
 उच्चारण करके भरणी नक्षत्र में भगवान् विष्णु के शिर का अग्निपूजन  
 करना चाहिए ॥ १९ ॥ भगवान् हरि के लिये नमस्कार है—यह बहुर  
 आर्षा नक्षत्र में पुण्डरीक प्रभु के देशो का समर्चन करे। उपोषित होने  
 पर श्लेष्म दिनों में भक्ति की भावना से द्विज श्रेष्ठो का अच्छी रीति से  
 पूजन करना चाहिए ॥ २० ॥

### ३३ —आदित्य शयन अत कथन

उपवासोप्यशक्तस्य तदेव पचमिच्छतः ।

अनश्यामेन रोगाद्वा किमिच्छेन्नस्तमुत्तमम् ॥१॥

उपवासेऽप्यशक्तानां नक्त भोजनमिष्यते ।

यस्मिन् अने तदप्यत्र शूयतामशयं महत् ॥२॥

आदित्यशयन नाम यथावच्छेदगर्गनम् ।

समापतेरवेवापि न भेदोद्विश्यते क्वचित् ।

यन्मातस्मान्मुनिप्रेष्ठ ! गृहे शम्भुं समर्चयेत् ॥६॥

हन्ते च मृत्याय नमोऽस्तु पादावकांश्च चित्रानु नु गुल्फदेशम् ।

स्त्रीर्तीष्ठ जङ्घे पुरुषात्तमाय घात्रे विशाखास्तु च आनुदेशम् ॥७॥

देखिए श्री नारद जी ने कहा—यदि कोई उरवास करने में मग्न हो और उस वही चाहता हो तो उसके निम्न कौनसा अंग इस एक उत्तम होता है । उरवास करने में मग्नता अम्वास के न होने से अथवा किसी भी रोग के कारण हो सकती है ॥१॥ ईश्वर ने कहा—जो दिन भर का पूरा उरवास न कर सके उनको रात्रि में एक बार मौजन करना भी अभीष्ट हो जाता है । जो अशेष के पूरे अंग का पूरा होता है वही इसमें भी होता है । इसका मन्त्र महत् ध्यान करा ॥-॥ आदिपद्यन नाम माना अत्र यथारोति मयवान् शङ्कर की उन्नयन है । पुराणों के सात विद्वान् जिन तन्त्रों के योगों में यह होता है उसे कहते हैं ॥३॥ अत्र समय में हस्त नक्षत्र के सात सप्तमी तिथि में आदिपद्य का दिन होने और मूर्त की संहान्ति होने को वह तिथि मन्त्र कामनाओं को पूर्ण करने वाली है । ४३ उना और महेश्वरी की भक्तों को मूर्त के नामों से अर्पित करना चाहिए । और मूर्त की अर्च को दिन के विज्ञ में करता हुआ पूजना चाहिए ॥५॥ उमा के पति भगवान् शिव का और रविका कहीं पर भी कोई मन्द नहीं दिखनाई देता है । इस कारण से हे मुनिप्रेष्ठ ! गृह में ही शम्भु का पूजन करना चाहिए ॥६॥ हस्त नक्षत्र में मयवान् मूर्त के लिये नमस्कार हो यह उच्चारण कर चरणों का पूजन करे । विशा नक्षत्र में अर्क के लिये नमस्कार हो—यह कहकर गुल्फ देश का का अर्चन करना चाहिए । स्वाती म पृथोत्तम के लिये नमस्कार है—इसके द्वाग दोनों जङ्घाओं का पूजन करे और विशाखा में घात्रा के लिये नमस्कार हो—इससे आनु देश का पूजन करे ॥७॥

तथानुराधाम् नमोऽनिपूज्यम् द्वयन्धैव सहवभानोः ।



ज्येष्ठास्वनङ्गाय नमोऽस्तु गुह्यमिन्द्राय सोमाय कटी च मूले ॥८॥  
 पर्वोत्तरपाणद्वयुगे च नाभिन्त्वष्ट्रे नमः सप्ततुरङ्गमाय ।  
 तीक्ष्णाशवे च श्रवणे च कुक्षौ पृष्ठं घनिष्ठासु विवर्तनाय ॥९॥  
 चक्षुस्थल ध्वान्तविनाशनाय जलाधिपक्षे परिपूजनीयम् ।  
 पूवात्तराभाद्रपदाद्वये च बाहू नमश्चण्डकराय पूज्यौ ॥१०॥  
 साम्नामधीशाय करद्वयञ्च सपूजनीय द्विज ! रेवतीषु ।  
 नखानि पूज्यानि तथाश्विनीषु नमोऽस्तु सप्ताश्वधुरन्धराय ॥११॥  
 कठोरघाम्ने भरणीषु कण्ठ दिवाकरायेत्यभिपूजनीयाः ।  
 ग्रीवाग्नि श्लक्ष्णे धरमम्बुजेशे सपूजयेन्नारद ! रोहिणीषु ॥१२॥  
 मृगोत्तमाङ्गे दशना मुरारे सपूजनीया हरये नमस्ते ।  
 नमः सवित्रे रसना शङ्करे च नासाभिपूज्या च पुनर्वसौ च ॥१३॥  
 ललाटमम्भोऽहवत्सभाय पुष्पेलकात्रेदक्षरीरधारिणे ।  
 शर्पेऽय मूर्ति विबुधप्रियास मघासु कर्णावितिगो गणेशे ॥१४॥

तथा अनुराधा नक्षत्र में नमस्कार करके सहस्रमानु के दोनो ऊदग्रो का अभिपूजन करना चाहिए । ऊदग्रा नक्षत्र में अनङ्ग के लिये नमस्कार होवे—इसके द्वारा गुह्यका यजन करे । इन्द्र सोम के लिये नमस्कार होवे—इससे कोटि और मूल में पूजन कर ॥८॥ पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा इन दोनो में स्वष्टा के लिये तथा सप्ततुरङ्गमो दास के लिये नमस्कार होवे—यह उच्चारण करके नाभि का पूजन करे । श्रवण में तीक्ष्ण विरप वाल के लिये नमस्कार अर्पित हावे—इससे कुक्षि में पूजन करे तथा घनिष्ठा में विवर्तन के लिये नमस्कार हो—इसके द्वारा पृष्ठ भाग का अर्चन करना चाहिए ॥ ९ ॥ ध्वान्तर ( अण्डकार ) के विनाश करने वाले के लिए प्रणाम समर्पित होवे—यह कहकर चक्षुस्थल का पूजन करे और इस गङ्गा का जलाधिप नक्षत्र में करना चाहिए । पूर्वा नाश्रवा में और उत्तरा भाद्रपदा नक्षत्र में चण्ड करके लिये नमस्कार हो—इसके द्वारा दासो यादुओं का पूजन करना चाहिए ॥ १० ॥ हे द्विज !

नक्षत्रपुष्प नाम दन कथन

रेवती में साधो के अघोष के लिये नमस्कार हो—इस मन्त्र को कहकर दोनों करो का पूजन करना चाहिए । तथा अश्विनी में सात अश्वो रे घुर-घर को प्रणाम अर्पित हो—इसके द्वारा नखो का अभ्यर्चन करे ॥ ११ ॥ भरणी में कठोर घाम दिवाकर को सेवा में नमस्कार होवे—इसे कहकर कण्ठ का अभिपूजन करे और अग्नि नक्षत्र में ग्रीवा का यजन करना चाहिए । हे नारद ! रोहिणी में मधुनेश को प्रणाम हो—इससे घर का पूजन करे ॥ १२ ॥ मृगशिरा में हरि को नमन हो—इससे मुरारि के दशनों का यजन करना चाहिए । पुनर्वसु में सविता के लिये नमस्कार हो—इसके द्वारा रसना का तथा शङ्कर को नमस्कार हो—इससे नासिका का अभिपूजन करना चाहिए ॥ १३ ॥ मन्मथ के बल्लभ के लिये नमस्कार हो—इसके द्वारा पुष्प नक्षत्र में तलाट का पूजन करे । देश के शरीर को धारण करने वाले को प्रणाम होवे—इससे घण्ट में पूजन करे । विनुष्ण के प्रिय के लिए नमस्कार हो—इससे भौतिका यजन करे और मघा में गणेश को प्रणाम हो—इससे दोनों बानों का पूजन करना चाहिए ॥ १४ ॥

पूर्वासु गोब्राह्मणवन्दनाय नेत्राणि सम्पूज्यतमानि शम्भो ।  
अपोत्तराफल्गुनि मे भ्रुवौ च विश्वेश्वरायेति च पूजनीये ॥ १५ ॥  
नमोऽस्तु पाशङ्कुशशूलपद्मकपालसर्पेन्दुघनुधराय ।  
गजासुरानङ्गपुरान्धकारिबिनाशमूलाय नमः शिवाय ॥ १६ ॥  
इत्यादि चारुवाणि च नित्य विश्वेश्वरायेति शिराभिपूज्य ।  
भाक्तव्यमर्च्य वमतलशाकममासमक्षारमभुक्नुशेषम् ॥ १७ ॥

पूर्वा फाल्गुनी में शी और ब्राह्मणों के बन्दन के लिये नमस्कार है—इसे कहकर शम्भु के नत्रा का स्ती भाति में पूजन करे । इसके अनन्तर उत्तराफल्गुनी में विश्वेश्वर के लिये नमस्कार हो—इस मन्त्र के द्वारा दोनों भ्रुओं का पूजन करना चाहिए ॥ १५ ॥ पाश-अनुध-शूल-पद्म-कपाल-सर्प-इन्दु और घनुष धारण करने वाले तथा गज-

अगुर-अनङ्ग-गुर-अन्धक आदि के विनाश करने के मूल भगवान् शिव के लिये नमस्कार समर्पित होवे—इस मन्त्र के द्वारा इत्यादि अहजों का पूजन करके विश्वेश्वर के लिये प्रणाम है—इससे शिरा का अग्निपूजन करे और फिर यहाँ पर ही तैल शान मास और धार से रहित अमृत क्षेप का भोजन करना चाहिये ॥१६, १७॥

### ३४--रोहिणीचन्द्र शयन व्रत कथन

दीर्घायुरारोग्यकुलाभिवृद्धियुक्त पुमान् भूपकुलायत स्यात् ।  
मुहुर्महुर्जन्मनि येन सम्यक् व्रत समाचक्ष्व तदिन्दुमौले । ॥१॥  
त्वया पृष्टमिदं सम्यक् उक्तञ्चाक्षय्यकारकम् ।  
रहस्यं तव वक्ष्यामि यत्पुराणविदो विदुः ॥२॥  
रोहिणीचन्द्रशयनं नाम व्रतमिहोत्तमम् ।  
तस्मिन्नारायणस्यैवार्चयेदिन्दुनामभिः ॥३॥  
यदा सोमदिने शुक्ला भवेत् पञ्चदशी क्वचित् ।  
अथवा ब्रह्मनक्षत्रे पौर्णमास्या जायते ॥४॥  
तदा स्नानं नरः कुर्यात् पञ्चगव्येन सषण्णैः ।  
आप्यायस्वेति तु जपेत् बिम्बानष्टशतं पुनः ॥५॥  
शूद्रोऽपि परया भक्त्या पाषाण्डलापवजितः ।  
सौम्याय वरदायाय विष्णवे च नमोनमः ॥६॥  
व्रतजप्यं स्वभवनादागत्य मधुसूदनम् ।  
पूजयेत् फलपुष्पैश्च सोमनामानि कातयन् ॥७॥

देवर्षि नारद जी ने कहा—बार बार जन्म में जिससे भली भाँति से पुण्य दीप आयु वाला—स्वस्थता में सम्पन्न तथा कुल की अभिवृद्धि में युक्त और भूप के कुल से सयुर होता है। हे इन्दु के मौलि में धारण करने वाला ! उमा देवी को आप कहने की दया कीजिए ॥१॥ श्री भगवान्

ने कहा—आपने यह बहुत ही अच्छा पूछ लिया है इसको अक्षय कारक बतलाया है । अब उमका जो रहस्य है उसे बतलाना ॥ जिस पुराणों के ज्ञाता विद्वान् जानते हैं ॥२॥ रोहिणी चन्द्र शयन नाम वाला व्रत यहा पर एक अति उत्तम व्रत है । उम व्रत मे भगवान् नारायण की अर्धा होती है जो इन्द्रु के नामो के द्वारा अर्चन करना चाहिए ॥३॥ अब भी किसी समय में सोमवार के दिन में मास क शुक्ल पक्ष की चव्वदशी पूर्णिमा तिथि हो अथवा ब्रह्म नक्षत्र पूर्णमासा होता हो उस समय में मनुष्य को सयंप ( सरसो ) और पञ्चगव्य से स्नान करना चाहिए । फिर विद्वान् पुरुष को “आभ्यासस्व”—इत्यादि मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करना चाहिए ॥ ४, ५ ॥ यदि कोई शूद्र वर्ण वाला भी हा तो उमको भी पराकाटि की भक्ति से पापण्ड और आसाप से रति होकर “बरदान देने वाले सोम और विष्णु के लिये बारम्बार प्रणाम ह”—इसका जप करके अग्ने भवन आकर सोम के नामों का कीर्तन करत हुए फल पुष्पा के द्वारा भगवान् मधुसूदन का पूजन करना चाहिए ॥ ६, ७ ॥

सोमाय शान्ताय नमोऽस्तु पादावनन्तधाम्नेति च जानुजये ।  
ऊरुद्वयञ्चापि जलोदराय सपूजगेमेटमनन्तग्राहये ॥८॥  
नमो नमः कामसुखप्रदाय कटिः शशाङ्कम्य सदाचंनीया ।  
तयोदरञ्चाप्यमृतादराम नामि शशाङ्काय नमोऽभिपूज्या ॥९॥  
नमोऽस्तु चन्द्राय मुखञ्च पूज्य दन्ता द्विजानमधिपाय पूज्या ।  
हास्य नमश्चन्द्रमसेऽभिपूज्यमाष्टौ कुमुदन्तवनप्रियाय ॥१०॥  
नासा च नाथाय वनोपघाना आनन्दभूताय पुनश्चुवो च ।  
नत्रद्वय पश्चिानमनयेन्दाग्निदीव्यश्यामवराय शौर ॥११॥  
नम ममस्तावदग्निनाय वणद्वय देवनिपूतनाय ।  
ललाटमिन्दान्दप्रियाय वशा मुपुन्नाधिपत पूज्या ॥१२॥  
शिर शशाङ्काय नमो मृगारविश्ववरायेति नम विगीटिन ।  
पद्मप्रिय राहिणि नाम लक्ष्मी माभायश्रीत्यामृतचान्नाये ॥१३॥

देवी च संपूज्य सुगन्धपुष्पैर्नैवेद्यपुष्पादिभिरिन्दुपत्नीम् ।

सुप्त्वाऽथ भूमौ पुनरुत्थितेन स्नात्वा च विप्राय हविष्ययुक्तः ॥१४॥

पूजन करने का क्रम और प्रत्येक अङ्ग तथा उनके अर्चन करने के विमल २ मन्त्रों को बतलाते हुए कहते हैं—छान्त सोम के लिये प्रणाम है—इसे कहकर मधुसूदन के सर्व प्रथम चरणों का अभ्यर्चन करे। अनन्तधाम वाले को नमस्कार है—इससे जानु और जङ्घाओं का यजन करे। जलोदर को नमन है—इसके द्वारा दोनों अङ्गों को पूजे। अनन्त बाहुओं वाले की सेवा में प्रणाम है—इससे भेदू वा अर्चन करे ॥८॥ काम के मुख को प्रदान करने वाले के लिये बारम्बार नमस्कार है—इस मन्त्र से सर्वदा शशाङ्क की कटि का अर्चन करना चाहिए। अमृतोदर की सेवा में प्रणाम अर्पित है—इससे उदर का अभ्यर्चन करे और शशाङ्क के लिये नमस्कार है—इसे कहकर नाभि का पूजन करे ॥९॥ चन्द्र को प्रणाम है—इससे मुख और द्विजों के आधिप के लिये नमस्कार है—इसके द्वारा दाँतों का पूजन करना चाहिए। चन्द्रमस को प्रणाम है—इससे हास्य कुमुदो के वन के परम प्रिय की वन्दना है—इसका उच्चारण करके दोनों शीतों का पूजन करना चाहिये ॥१०॥ वनोपधियों के नाथ की वन्दना है—इसके द्वारा तथा फिर आनन्द स्वरूप को नमस्कार है—इससे पुन दोनों भीहों का यजन करे। इन्दीवर के समान इयाम करो वाले की प्रणाम है—इस शौरिके तथा पद्मिनी के भर्ता—इन्दु के दोनों नेत्रों का अर्चन करे ॥११॥ समस्त अध्वरों में वन्दित और दैत्यों के निपुटन करने वाले को प्रणाम है—इससे दोनों कर्णों की अर्चना करे। उदग्रि के परम प्रिय की सेवा में प्रणाम है—इस मन्त्र से इन्दु के ललाट का तथा सुपुम्ना के अधिपति क वशों का पूजन करना चाहिए ॥१२॥ शशाङ्क के लिये प्रणाम है—इसमें शिखा पूजन करे तथा विश्वेश्वर किरीट धारी को नमस्कार है। द्रव्य मुरारि वा शिर का यजन करे। हे पद्मों की प्यारी ! हे राहिणों ! ॥१३॥ नाम लक्ष्मी है। हे सोमाय और सोम्य

रूगी अमृत से चाख काया बाली ! ये कहते हुए मुगन्धित पुष्पो के तथा मैत्रेय आदि अन्य उन्नित पूजनोपचारों से इन्द्र की पत्नी देवी का भली भाँति पूजन करना चाहिए और फिर मृमि मे ही शयन करे और पुनः उठकर स्नान करे तथा हविष्य मुक्त होकर विश्व के लिये प्रभातवेला में पापों के विनाश करने वाले को नमस्कार है—इससे सुवर्ण का निमित्त जल वा धुम्म दान करना चाहिए ॥१३, १४॥

यथा स्वमेव सर्वेषां परमानन्दमुक्तिदः ।

भुक्तिः मुक्तिस्तथा भक्तिस्त्वपि चन्द्रास्तु मे सदा ॥१५॥

ति ससारभीतस्य मुक्तिकामस्य चानघ ! ।

रूपारोग्यायुषामेतद्विधायकमनुत्तमम् ॥१६॥

इदमेव पितृणां च सर्वदा बल्लभ मुने ! ।

त्रैलोक्यगधिपतिभूत्वा सप्तकल्पसत्तत्रयम् ॥

चन्द्रलोकमवाप्नोति विद्युद् भूत्वा तु गच्छते ॥१७॥

नारी वा रोहिणीचन्द्रशयन या समाचरेत् ।

साऽपितत्फलमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥१८॥

इति पठति शृणोति वा य इत्थं ।

मधुमयनाचंनमिन्दुकान्तेन नित्यम् ॥१९॥

मतिमपि च ददाति सोऽपि शीघ्रे भवनगतः ।

परपूज्यतेऽमरीचिः ॥२०॥

इसके अनन्तर प्रार्थना करे—हे देव ! जिस प्रकार से आप ही सबको परम आनन्द और मुक्ति के प्रदान करने वाले हैं उसी तरह से हे चन्द्र ! मेरी सदा आप में भक्ति होवे और भुक्ति एवं मुक्ति भी मुझे प्राप्त होवे । हे अनघ ! यह व्रत ससार की बाधाओं से भीत और मुक्ति प्राप्त करने की कामना वाले को अनीम उत्तम है जो रूप-आरोग्य और आयु का करने वाला होता है ॥१५॥ हे मुने ! यही व्रत पितृगण को भी सर्वदा प्रिय होता है । इसको करने वाला पुरुष सम्पूर्ण जितोकी व

स्वामी होकर तीन सौ सात कल्प तक चन्द्र लोक की प्राप्ति किया करता है तथा विद्युत् होकर ही मुक्त हुआ करता है ॥१६॥ चाहे कोई पुरुष हो या नारी हो जो भी इस रोहिणी चन्द्र जपन नामक व्रत का समाचरण करता है वह नारी भी पुनः आवृत्ति अर्थात् ससार में जन्म ग्रहण करने को दुबारा आगमन से दुर्लभ यह व्रत है और उसी फल को प्राप्त किया करती है ॥१७॥ इस तरह से भगवान् मधु दैत्य का मयन करने वाले का अभ्यञ्जन जो इन्दु के शुभ नामों के कीर्तन के द्वारा सम्पन्न किया जाता है उसका पठन या श्रवण मात्र किया करता है और अपनी बुद्धि को भी इसमें लगा देता है वह पुरुष भी भगवान् शीरि के ही भवन में पहुँच कर अमरों के समुदाय के द्वारा परिपूजित हुआ करता है ऐसा इस व्रत का श्रवण—पठन और मनन मात्र का ही माहात्म्य होता है ॥ १८, १९, २० ॥

### ३५—तडागारामकूपादि प्रतिष्ठा विधि वर्णन

जलाशयगत विष्णुवाच रविनन्दन ।  
 तडागारामकूपाना वापीषु नलिनीषु च ॥१॥  
 विधि पृच्छामि देवेश । देवतायतनेषु च ।  
 के तत्र चत्विजोनाथ । वेदी वा कीदृशीभवेत् ॥२॥  
 दक्षिणावलय काल स्थानमाचार्य्येव च ।  
 द्रव्याणिकानि शस्तानिसर्वमाचक्ष्वत्स्वत ॥३॥  
 शृणुगजन्महाबाहो । तडागादिपुयो विधि ।  
 पुराणेष्विहासोऽयं पठ्यतेवेदवर्गदिभि ॥४॥  
 प्राप्य पक्षं शुभं शुक्लमतीते चोत्तरायणे ।  
 पण्येऽहिं विप्रर्वायते कृत्वा ग्राह्यवाचनम् ॥५॥  
 प्रागुदवप्रवणे देशे तडागस्य समीपतः ।

चतुर्हस्ता शुभा वेदि चतुरस्रा चतुर्मुखाम् ॥६॥

तथा षोडशहस्तः स्यान्मण्डपश्च चतुर्मुखः ।

वेद्याश्च परितोगता रत्निमानास्ति मेखता ॥७॥

महामहिम महर्षि श्री भूतजी ने कहा—रवि के पुत्र न एक बार जनाशय अर्थात् छार सागर में गत अर्थात् तेष शम्भा पर गत्विन मा-  
धान विष्णु में कहा था—नानाब—आराम ( उद्यान ) और कूनी का  
तथा बावही और ननिनिधों के निर्माण करान की विधि मैं आपसे पूछना  
हूँ । हे देवेश्वर ! हे नाथ ! और देवा क आयननों की रचना कराने में  
क्यों पर कीन श्रुतिवत् होन हैं और किम प्रकार की वेदी की रचना की  
जाया जाती है ? दक्षिणावयव—काल—म्यान और आचार्य केमा कीन  
होना चाहिये तथा इसके सम्पादन करने क लिये ब्रह्मन् शत्र कीन से  
होने हैं ? यह सभी तात्त्विक हन से कथन करने की कृपा कीजिए ।  
॥ १, २, ३ ॥ मन्त्र्य भगवान् ने कहा—हे महान् बाहुश्री बाने राजन् ।  
अब आप पश्यन करिये । तानाब आदि की रचना कराने में जो भी कुछ  
विग्रह है उसे बनवाया जाना है । पुगणों में वेदों के बाद काने वाने  
विद्वानों के द्वारा यह इतिहास पटा जाया करता है ॥ ४ ॥ उत्तरायण  
क अनीन होन पर मास क परम शुभ शुक्लपक्ष की प्राप्ति करन किमी  
भी विग्रह द्वारा बताया गये परम पुण्य दिवन में ब्रह्मन् वादन करे ।  
॥ ५ ॥ जो देश ऐसा हो त्रिममें जल की अप्रवृत्ता रहती है उस देश  
प्रथम देश में तटाग के ही समीप में एक शुभ वेदी को रचना करावे  
जो चार हाथ प्रमाण वाली हो—चौकोर और चार मुखों वाली हो ।  
चाहिए ॥ ६ ॥ तथा वहीं पर सोनह हाथ प्रमाण वाला एक चतुर्मुख  
मण्डप बनावे । और वेदी के चारों ओर यत्त होवे तथा रत्न प्रमाण  
वाली मयला होनी चाहिए ॥ ७ ॥

नव सप्ताथ वा पञ्च नातिरिक्ता नृपात्मज ।

वितर्त्तस्वमात्रा यानि. स्यान् पद्मप्लाङ्ग निविम्बृता । ८



गर्ताः पतमः तास्तः स्युम्नि पर्वो छतमेतला ।  
 सवन्तरतुसवर्णाः स्युः पनावावर्तवृत्ताः ॥६॥  
 अश्वत्थोदुम्बरपत्राः साव्यास्तानि तु ।  
 मण्डपस्य प्रतिदिनं द्वाराण्येतानि कारयेत् ॥१०॥  
 शुभास्तत्राष्ट हातारो द्वाारपालास्तयाष्ट वै ।  
 मष्टी तु जापका वाय्वा आह्वानावेदपारगाः ॥११॥  
 सर्वतन्त्रमसम्पूर्णो मन्त्रविद्विजितेन्द्रियः ।  
 कुलशीलसमायुक्तः पुरोधाः स्याद्द्विजोत्तमः ॥१२॥  
 प्रतिगर्तपु कलशा यज्ञोपकरणानि च ।  
 ध्वजजनध्वामरे शुभ्रे ताम्रपात्रे सुविस्तृते ॥१३॥  
 ततस्त्वनेकवर्णा स्यश्चरवः प्रतिदेवतम् ।  
 आचाम्यं प्रक्षिपेद्भूमावनुमन्त्य विचक्षणः ॥१४॥

हे नृपान्मज ! वह मेखला नी-सात ऋषया पाँव होनी चाहिए  
 इससे अतिरिक्त न होंगे । छै-सान अँगुलियों के समान विस्तृत एक  
 वितस्ति ( विलस्त ) प्रमाण उस देशी की योनि होनी चाहिए ॥ ८ ॥  
 चार ही गर्त प्रशस्त होते हैं और तीन पर्वों के तुल्य उच्छ्रित मेखल से  
 होनी चाहिये । सभी ओर से वर्णों से युक्त तथा पताका एवं ध्वजाओं से  
 युक्त होनी चाहिए । ॥ ९ ॥ अश्वत्थ ( पीपल ) उदुम्बर ( गूलर ) प्लक्ष  
 ( पाखर ) श्रीर वट ( बड़ ) की शाखाओं के द्वारा बनाये गये प्रत्येक  
 दिशा में मण्डप के द्वार बनवाने चाहिए ॥ १० ॥ वहाँ पर आठ ही होता  
 परम शुभ हैं तथा आठ ही द्वारपाल होने चाहिए । अठ ही जप करने  
 वाले जापक रखे जो कि वेदों के पारगामी विद्वान् ब्राह्मण होने चाहिये  
 ॥ ११ ॥ इसका जो पुरोहित हो वह सभी सन्तानों से परिपूर्ण हो—  
 मन्त्रों का ज्ञाता—विजित इन्द्रियों वाला तथा कुल और शील ॥ समन्वित  
 श्रेष्ठ द्विज होना चाहिए ॥ १२ ॥ प्रत्येक गर्त में कलस होवे और  
 यज्ञ के सभी उपकरण भी रहने चाहिए—ध्वजजन—शुभ्रचार तथा

सुविस्तृत तथा ताम्र पात्र होवें ॥ १२ ॥ इसके उपरान्त वहाँ पर अनेक वण वाले प्रत्येक देवता के चरु होने चाहिए । विचक्षण अर्थात् परम कुशल आचार्य को अनुमन्त्रित करके भूमि में प्रक्षेप करना चाहिए ॥ १४ ॥

द्व्यरत्निमात्रोयूप स्यात्क्षीरवृक्षविनिमित्त ।  
यजमानप्रमाणावासस्थाप्याभूतिमिच्छता ॥ १५ ॥  
शुक्लमात्याम्बरधर शुक्लगन्धानुलेपन ।  
सर्वोपधुदकस्तत्र स्नापितो वेदपारम ॥ १६ ॥  
यजमान सपत्नीक पुत्रपौत्रसमन्वित ।  
पश्चिम द्वारमासाद्य प्रविशेद्यागमण्डपम् ॥ १७ ॥  
ततो मङ्गलशब्देन भेरीणा निस्वनेन च ।  
अञ्जसा मण्डलं कुर्वात् पञ्चवर्णेन तत्त्ववित् ॥ १८ ॥  
पोडशारन्ततश्चक्रं पद्मगर्भं चतुर्मुखम् ।  
चतुर्मुखञ्च परितो वृत्त मध्ये सुशोभनम् ॥ १९ ॥  
वेद्याश्चोपरि तत् कृत्वा ग्रहान् लोकपतीस्ततः ।  
सम्यसेन्मन्त्रतः सर्वान् प्रतिदिक्षु विचक्षण ॥ २० ॥  
धूर्मादि स्थापयेन्मध्ये वारण्या मन्त्रमाश्रित ।  
ब्रह्माणञ्चशिवविष्णु तत्रैवस्थानयेद्वुध ॥ २१ ॥

तीस मर्दलि के प्रमाण वाला वहाँ पर यूप हीना चाहिये जो किसी ऐसे वृक्ष से बनाया गया है जिसमें दूध रहता हो । अपना मूर्ति की इच्छा रखने वाले का यूपका यजमान के तुल्य ही प्रमाण रखना चाहिए ॥ १५ ॥ यजमान को शुक्ल वर्ण के वस्त्र और माला धारण करने वाला रहना चाहिए । जो यक्ष का अनुलेपन किया जावे वह भी शुक्ल ही होना चाहिए । वहाँ पर जो वेदों का ज्ञान रखने वाले पारंगामी मनीषी है उनसे द्वारा सर्वोपधि समन्वित जलो के द्वारा ही उस यजमान का स्नापित कराना चाहिए ॥ १६ ॥ फिर वह यजमान अपनी

पत्नी के सहित तथा पुत्रपौत्रादि में सयुक्त होकर जो मण्डप का पश्चिम दिशा में द्वार है उसी से वज्र याग मण्डप में प्रवेश प्राप्त करे ॥ १७ ॥ इसके अनन्तर मङ्गलमग्न शब्दों की ध्वनि से तथा भेरियों के उद्घोष के साथ ही यजमान का प्रवेश होना है । तत्त्वों के वेत्ता आचार्य को चाहिए कि तुरन्त ही मण्डल को पञ्चवर्ण से युक्त कर देवे ॥ १८ ॥ इसके पश्चात् सोलह धारों वाला चक्र करे जिसके गन्ध घृ पद्म हो और चार मुखों से युक्त हो—बोकोर चारों ओर से वृत्त तथा मध्य में शोभन होना चाहिए ॥ १९ ॥ फिर विद्वान् पुरोधा को वेदी के ऊपर समस्त ग्रहों तथा लोहपत्तियों को स्थापित करे और प्रत्येक दिशाओं में सबल ग्यास मन्त्रों के द्वारा ही करना चाहिए ॥ २० ॥ मन्त्रों का समाश्रय ग्रहण करने वाले को बाह्यो दिशा में मध्य में कूर्म आदि की स्थापना करनी चाहिए और बुध पुरुष का कर्त्तव्य है कि वही पर ब्रह्मा—शिव और भगवान् विष्णु की स्थापना भी कर देवे ॥ २१ ॥

विनायकञ्च विन्दस्य कमलामम्बिका तथा ।

शान्त्यर्थं सवलाकानां भूतग्रामन्यसेत्ततः ॥ २२

पुष्पभक्ष्यफलैर्युक्तमेव कृत्वाऽधिवासनम् ।

कुम्भान्सजलगर्भास्तान्वासाभिः परिवेष्टयेत् ॥ २३

पुष्पगन्धैरलङ्कृत्य द्वारपालान् समन्ततः ।

पठेद्गमिति तान् ब्रूयादाचार्यस्त्वभिपूजयेत् ॥ २४

बह्वृची पूर्वतः स्थाप्यो दक्षिणेन यजुर्विदो ।

सामगौ पश्चिमे तद्वदुत्तरेण त्वथर्वणो ॥ २५

उदङ्मुखी दक्षिणतो यजमान उपाविजेत् ।

यजध्वमितितान् ब्रूयाद् होतृकान्पुनरेव तु ॥ २६

उत्कृष्टान् मन्त्रजापेन तिष्ठेद्गमिति जापकान् ।

एवमादिश्य तान् सर्वान् पयुंक्ष्याग्निं च मन्त्रवित् ॥ २७

जह्वयाद्वारुणं मन्त्रं राज्ञ्यं च समिधस्तथा ।

ऋत्विग्भिश्चाथ होतव्य चारुणरेव सर्वत ॥२८॥

वही पर विघ्न विनाशक विनायक—कमला—अम्बिका का विशेष रूप से ग्यास करे तथा सम्पूर्ण लार्हों की शान्ति-रक्षा के निये भूतग्राम का भी ग्यास वहाँ पर करे ॥ २२ ॥ पुष्प-भक्ष्य फलों से युक्त इस प्रकार से वहाँ अधिवास करे । जो कुम्भ वहाँ पर जलों से भरे—पूरे स्थापित है उनको वस्त्रों से परिवेष्टित कर देना चाहिए ॥ २३ ॥ यमी और में जो द्वारपान हो उनको पुष्प और गन्धों से समञ्जस करके फिर उनसे आचार्य को निदेश देना चाहिए कि आप लोग पाठ आरम्भ कर दें और उसे फिर अभिपूजन करना चाहिए ॥ २४ ॥ ऋत्विगों में बह्वृष हो उन्हों को पूर्व दिशा में स्थापित करे अर्थात् ऋग्वेद के ज्ञाताओं को पूर्व दिशा में रखे । यजुर्वेद के विद्वानों को दक्षिण म—मानवेद के ज्ञाताओं को पश्चिम में और जो अथर्व के विद्वान् हों उनकी उत्तर दिशा में सम्पादित करे ॥ २५ ॥ जो यजमान है उसको उत्तर की ओर मुख करके दक्षिण दिशा में उपविष्ट होना चाहिए । जब यह व्यवस्था पूर्ण होकर सभी यथास्थान स्थित हो जावें तो पहिले आचार्य को चाहिए कि उन सबको निदेश देवे कि यजन का आरम्भ कर दें फिर जो होत्रिक हो उनको भी आदेश देवे ॥ २६ ॥ जो वहाँ पर मन्त्रों के जाप करने वाला है उनको भी ऐसा निदेश करना चाहिये कि आप लोग उत्कृष्ट मन्त्रों के जाप का आरम्भ करने वाले सत्स्वित् होवें । इस तरह से उन सबकी यथोचित कर्मों के समारम्भ करने का आदेश देकर फिर उस मन्त्रों के वेत्ता आचार्य को अग्नि का पय्युक्षण करना चाहिए ॥ २७ ॥ फिर दारुण मन्त्रों के द्वारा पुनः और समिधाओं का हवन करे और जो ऋत्विक् होता वही पर है उन सबको भी सब ओर से दारुण मन्त्रों के द्वारा ही हवन करना चाहिए ॥ २८ ॥

अहेम्नो विधिवद्भुत्वानयेन्द्रायेश्वराय न ।

मरद्भ्योलोकपालेदयाविधिवद्विद्वक्मणे ॥२९॥

राक्षिसूक्तञ्च रोद्रञ्च पावमानं सुमङ्गलम् ।  
 जपेयुः पौरुष सूक्तं पूर्वतो बह्वृचाः पृथक् ॥३०  
 शाक्रं रोद्रञ्च सौम्यञ्च कूष्माण्ड जातवेदसम् ।  
 सौगन्धूकं जपेन्मन्त्रं दक्षिणेन यजुर्विदः ॥३१  
 वंराज्यं पौरुष सूक्तं सौवर्णं रुद्रसहिताम् ।  
 क्षीराव पञ्च निघनं गायत्रं ज्येष्ठसाम च ॥३२  
 चामदेव्यं बृहत्सामं रौरवं सरथन्तरम् ।  
 गवां यज्ञं च काण्वञ्च रक्षाघ्नं वयसस्तथा ॥  
 गायेयुः सामगा राजन् ! पश्चिमं द्वारमाश्रिता ॥३३  
 अथर्वणश्चोत्तरतः शान्तिकं पौष्टिकं तथा ।  
 जपेयुर्मनसा देवमाश्रित्य वरुणं प्रभुम् ॥३४  
 पूर्वद्वारमितो रात्रावेव कृत्वाधिवासनम् ।  
 गजाश्वरथ्यावल्मीकात् सङ्गमाद्वदगोकुलात् ॥  
 मृदमादाय कुं भेषु प्रक्षिपेच्चात्स्वरात्तथा ॥३५

वेना हो जाये तो उस समय मे एक सौ अथवा अठसठ गौओं का दान ब्राह्मणों के लिये देना चाहिए । इतनी न हो सकें तो पचास अथवा छतीस या पच्चीस ही गौओं का दान अवश्य करना चाहिए ॥३८॥ इसके अनन्तर साम्प्रसर प्रोक्त अर्थात् वर्ष मे कथित शुभ लग्न और शुभ दिन में वेदों के शब्दों की ध्वनियों से तथा अनेक प्रकार के गान्धर्व वाद्यों से सुवर्ण से समलंकृत करके गौ को जल में अवतारित कर । हे विशाम्पते ! फिर उस गौ को साम वेद के गायक ब्राह्मण के लिये दान में दे देनी चाहिए । ॥३९, ४०॥ सुवर्ण के द्वारा विनिर्मित तथा पाँच प्रकार के रत्नों से समुत्त लेकर फिर सब मकर-मत्स्य आदि का निषेक्ष कर के वेदों और वेदों के अङ्ग शास्त्रों के पारंगामी विद्वान् चार प्रकार के विप्रों के द्वारा वह धारण कीजिये ॥४१॥

महानदीजलोपेतां दध्यक्षतसमन्विताम् ।  
उत्तराभिमुखी घेनुं जलमध्ये तु ऋरयेत् ॥४२॥  
आथवंगेन सस्नाता पुनर्मित्यथेति च ।  
आपोहिष्ठेति मन्त्रेण क्षिप्त्वाऽऽगत्य च मण्डलम् ॥४३॥  
पूजयित्वा सरस्तत्र बलिं दद्यात् समन्ततः ।  
पुनर्दिनानि होतव्यं चत्वारि मनिसत्तमाः ॥४४॥  
चतुर्थी कर्म कर्तव्यं देया तत्रापि शक्तिः ।  
दक्षिणा राजशार्दूल ! वरुणक्षमापनं ततः ॥४५॥

जिसी महा नदी के जल से समुपेत तथा दधि अक्षतों से युक्त और उत्तर दिशा की ओर मुख करने वाली उस घेनु की जल के मध्य में बरा देवे ॥४२॥ अथर्व वेद के 'पुनर्ममि' इत्यादि मन्त्र में सस्नान करके फिर 'आपोहिष्ठा' इत्यादि मन्त्रों से क्षेपण करे और फिर मण्डल में आगमन करे ॥४३॥ वहाँ पर सर का पूजन करके सभी ओर बलि देनी चाहिए । हे मुनिश्रेष्ठो ! पुनः चार दिन पर्यन्त हवन करना चाहिए । इसके पश्चात् चतुर्थी कर्म करना चाहिए वहाँ पर शक्ति पूर्वक दक्षिणा

भी देनी चाहिए । हे राज-छादूल ! इसके अनन्तर ब्रह्म देव से क्षमापन करना चाहिए ॥४४, ४५॥

### ३६—सौभाग्य शयन व्रत कथन

तयंवाच्यत् प्रवदयामि सर्वकामफलप्रदम् ।  
 सौभाग्यशयन नाम यत्पुराणविदोविदुः ॥१॥  
 पुरा दम्प्रेषु लोकेषु भूभुवः स्वर्गमहादिषु ।  
 सौभाग्यं नवभूतानामेकस्यममवत्तदा ॥  
 वैकुण्ठ स्वर्गमासाद्य विष्णोर्वंशस्यलस्यितम् ॥२॥  
 ततः कालेन महता पुनः संविधौ नृप ।  
 महद्द्वारावृते लोके प्रधानपुरास्विते ॥३॥  
 स्पृष्ट्वा यान्त्रं प्रवृत्ताया कमलामुनकृष्ण्या ।  
 लिङ्गाकारममृदन्तु वह्नेर्ज्वालातिभीषणा ॥  
 तयामिनप्तस्य हरेवक्षन्मन्त्रिनिर्घृतम् ॥४॥  
 वक्षन्मन्त्रसमाश्रित्यविष्णोः सौभाग्यमास्थितम् ।  
 रसत्पन्तगोपावत्प्राप्नोति वसुधैवकुतम् ॥५॥  
 सत्क्षिप्तमन्त्रिणैः तद्ग्रहपुत्रेण धीमता ।  
 दक्षेण धीनमानन्तद्रूपलायण्यकारवम् ॥६॥  
 बल तेजो महज्जातं दक्षस्य परमेष्ठिनः ।  
 दीपं यदगतद्भूमावष्टग्ना समजायत ॥७॥

महर्षि भगवान् ने कहा — उत्ती प्रकार मैं एक अन्व समस्त मनोरथों के पूर्णों का प्रदान करने वाला व्रत का वर्णन करता हूँ जिस व्रत का नाम सौभाग्य शयन है जिस पुराणों के ब्रह्मा विद्वान् पुरुष भनी भाँति जानते हैं ॥१॥ परासन समय मैं हूँ—स्व—स्व और महर्षि आदि ताकों के

दग्ध हो जाने पर उस महान् भीषण बाल में समस्त भूतों का सौभाग्य एक में ही स्थित हो गया था । २॥ यह सौभाग्य बंकुष्ठ और स्वर्ग में पहुँच कर भगवान् विष्णु के वक्ष स्थल में स्थित हो गया था । हे नृप ! इसके पश्चात् बहुत अधिक बाल के हो जाने पर पुनः सर्ग की विधि प्राप्त हुई तो उस समय मे यह लोच अहङ्कार से आवृत और प्रधान पुरुष से सम्बित था ॥ ३॥ भगवान् श्री कृष्ण और कमलासन ब्रह्माजी इन दोनों में स्पर्धा की भावना की प्रवृत्ति उत्पन्न हो गई थी । ऐसी दशा में एक लिङ्ग के आकार वाली अग्निकी भीषण ज्वाला समुद्भूत हुई थी और भस्मन्त अभितप्त भगवान् हरि के वक्षस्थल से वह निःसृत हुई थी ॥ ४॥ इस वसुधा के तल में जो भी कुछ रस और रूप जितना भी प्राप्त होता है वह सभी भगवान् विष्णु के वक्ष स्थल का समाश्रय ग्रहण करके समस्त सौभाग्य वही पर समास्थित हो गया था ॥ ५॥ परम धीमान् ब्रह्माजी के पुत्र दक्ष ने पीतमात्र उस रूप सावण्य के करने वाले को अन्तरिक्ष में उत्क्षिप्त कर दिया था ॥ ६॥ परमेष्ठी दक्ष का बल और तेज महान् हो गया था । शेष जो भी कुछ भूमण्डल में गिरा था वह आठ प्रकार का हो गया था ॥ ७॥

सत्तोजनानासञ्जाता.सप्तसौभाग्यदायकाः ।

इक्ष्वोरसराजाश्चनिष्पावाजाजिधान्यकम् ॥८॥

विकारवच्च गोक्ष र कुसुम्भ कु कुम तथा ।

लवण चाष्टमन्तद्वत् सौभाग्याष्टकमुच्यते ॥९॥

पीत यत ब्रह्मपुत्रेण योगज्ञानविदा पुन ।

दुहिता साऽभवत्तस्य या सतीत्यभिधीयते ॥१०॥

लाव।नतीत्य लालित्यात् ललिता तेन चोच्यते ।

त्रैलावयसु-दरीमेनामुपयेमे पिनाकधृक् ॥११॥

यादेवीसौभाग्यमयी भुक्तिभुक्तिभलप्रदा ।

तामाराध्य पुमान् भक्तयानारीवाविघ्नविन्दति ॥१२॥



स्नापयित्वाऽर्चयेत् गोरीमिन्दुशेखरसंयुताम् ॥१७  
 नमाऽऽनुपाटलायंतुपादौदेव्या.शिवस्यतु ।  
 शिवायेतिचसंकीर्त्यजयायैगुल्फयोद्वयोः ॥१८  
 त्रिगुणायेति रुद्राय भवान्यै जंघयोयुगम् ।  
 शिवः रुद्रेश्वराय च विजयायेति जानुनी ॥  
 सङ्कीर्त्यं हरिकेशाय तथोरु वरदे नमः ॥१९  
 ईशायैच कटि देव्याः शङ्करायेति शङ्करम् ।  
 कुक्षिद्वयञ्च कोटव्यं शूलिने शूलपाणये ॥२०  
 मङ्गलायै नमस्तुभ्यमुन्दर चाम्भ पूजयेत् ।  
 सर्वात्मने नमो रुद्रमीशान्यैच कुचद्वयम् ॥२१

भक्त्य भगवान् ने कहा—हे जन प्रिय ! वसन्त मास को प्रभ  
 करके शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि में पूर्वाह्न के समय में तिलों से स्नान  
 करना चाहिए ॥१७॥ उस दिन में वर वणिनी वह देवी सती विशाखा  
 के साथ पाणिग्रहण के मन्त्रों में निवास करने वाली हुई थी ॥१८॥ उसी  
 देवी के साथ ही तृतीया में दंडेश का भी अर्चन करना चाहिये । पल में  
 अनेक प्रकार के हैं उनमें—धूप—दीप और नैवेद्य से समुत्त करके प्रतिमा  
 का पञ्चगव्य में घीर गन्धोदक से स्नयन कराकर फिर हस्तोत्तर से  
 समन्वित गोरी का अर्घ्यार्चन करना चाहिए ॥१९ २०॥ पात्रों के विषे

है—इससे भगवान् शंकर की कटिका पूजन करे। कोठवी तथा शूलशानि शाली की सेवा में प्रणाम अर्पित हो—इन से दोनों कुक्षियों का अर्चन करना चाहिये ॥२॥ भङ्गला आपके लिये नमस्कार है—इसका उच्चारण करके उदर का पूजन करे। सर्वात्मा के लिये नमस्कार है—इससे शरीर का अर्चन करे तथा ईशानो की सेवा में प्रणाम है—इससे देवी दोनों स्तनों का अभ्यञ्जन करना चाहिए ॥२१॥

शिवं देदारमने तद्वद्रुद्राभ्यं कण्ठमर्चयेत् ।  
त्रिपुरघ्नाय विश्वेशमनन्तायै करद्वयम् ॥२२॥  
त्रिलोचनाय च हर बाहुकालानलप्रियं ।  
सौभाग्यभवनायेति भूषणानि सदार्चयेत् ॥  
स्वाहा स्वधायै च मुखमीश्वरायेति शूलिनम् ॥२३॥  
अशोकमधुवासिन्यै पूज्यावोष्ठौ च भूतिदौ ।  
स्थापयेत्तु हरं तद्वद्धास्य चन्द्रमुखप्रिये ॥२४॥  
नमः।ऽद्धं नारीशहरमसिताङ्गीति नासिकाम् ।  
नम उग्राय लोकेश ललितेति पुनर्भ्रुवौ ॥२५॥  
शर्वाय पुरहन्तार वासःयैतु तथानकान् ।  
नमः श्लोककण्ठमाषायै शिवकेशास्ततोऽर्चयेत् ॥  
भामोप्रसमर्हपिण्यै शिरः सङ्घर्तमने नमः ॥२६॥  
शिवमभ्यर्च्यविधिवत्सौभाग्याष्टकमप्रतः ।  
स्थापयेद् घृतनिष्पावकुसुम्भक्षीरजोरकान् ॥२७॥  
रसरजोऽञ्च नवरा कस्तुम्बहमथाष्टकम् ।  
दत्त सौभाग्यमित्यस्मात् सौभाग्याष्टकमित्यतः ॥२८॥

देदारमा की प्रणाम है—इससे शिवका और रुद्राणी की प्रणाम है—इससे देवी के कण्ठ का पूजन करे। त्रिपुर के हनन करने वाले की प्रणाम है—इससे देवी के दोनों करों का पूजन करे ॥२२॥ त्रिलोचनाय नम अर्थात् तीन लोचनों वाले की प्रणाम है—इस मुख को पढ़कर

भगवान् हर का तथा हे बाहु कालानन प्रिये ! सौभाग्य भवता के लिये प्रणाम है—इस से सर्वदा भूषणों का अभ्यर्चन करना चाहिए । स्वहा स्वधा को नमस्कार है—इससे देवी के मुख का और ईश्वर के लिए नमस्कार है—इससे शूलि की अर्चना करे ॥२३॥ अशोक मधुवासिनी को प्रणाम अर्पित हो—इस मन्त्र से देवी के मूर्ति प्रदान करने वाले ओष्ठों का पूजन करना चाहिए । उसी भाँति स्थणु के लिए नमस्कार है—इससे हर का अर्चन करे । हे चन्द्रमुख प्रिये ! आपको नमस्कार है—इससे घास्य अर्चन करे अर्धनारीश हर को तथा आसिताङ्गी को नमस्कार है—इन मन्त्रों के द्वारा नासिका का अभ्यर्चन करे । उग्र के लिये प्रणाम है—इससे लोकेश का तथा सलिता को प्रणाम है—इससे देवी के दोनों भृकुटियों का अर्चन करना चाहिए ॥२४, २५॥ ‘सर्वाय नमः’ अर्थात् शर्व की सेवा में नमस्कार अर्पित है—इस मन्त्र से पुर के हनन करने वाले प्रभु का और ‘वासुभ्य नमः’ अर्थात् वासुकी के लिये प्रणाम है—इससे देवी के अलकों का अर्चन करे । ‘श्री कण्ठनाभाय नमः’ अर्थात् श्री कण्ठ की स्वामिनी को नमस्कार है इससे देवी के केशों का और फिर शिव के केशों का पूजन करे । ‘भीमोय सम हृषिभ्य नमः’—इस मन्त्र से देवी के तथा ‘सर्वात्मने नमः’—इस मन्त्र से देवेश के शिर का पूजन करना चाहिए ॥२६॥ इस प्रकार से विधि के साथ भगवान् शिव का समर्चन करके उनके आगे फिर सौभाग्याष्टक की स्थापना करना चाहिए । उस सौभाग्य के आठ पदार्थों के नाम, धृत, निष्पात, कुमुम्भ, क्षीर, औरव, रमराज, सवण और तुम्बक ये हैं । इन्हीं का सबका समुदाय अष्टक होता है इस अष्टक से सौभाग्य का प्रदान किया था अतएव इसका नाम सौभाग्याष्टक हो गया है ॥२७, २८॥

एव निवेद्य तत्सर्वमग्रतः शिवयोः पुनः ।

रात्री षट्श्लोकां प्राश्य तद्वद् भूमावगच्छत् ॥२९॥

पुनः प्रभानं तु तथा वृत्तमनन्यतः शुचि ।

सप्तम्यं द्विजदाम्पत्यं वस्त्रमादयन्निभूषणं ॥३०॥

सौभाग्याष्टकसमुक्तं सुवर्णचरणद्वयम् ।  
 श्रीयतामन ललिता ब्राह्मणाय निवेदयत् ॥३१॥  
 एवमन्तरं संख्यावत्तृतीयायासदामनो ! ।  
 कर्त्तव्यविधिवद्भक्त्या सवसौभाग्यमीप्सुभिः ॥३२॥  
 प्रासने दानमग्न्य च विशेषोऽप्यत्रिवोधमे ।  
 शृङ्गोदकञ्चैत्रमासे वंशाखे गोमये पून ॥३३॥  
 ज्येष्ठेमन्दारकुसुम विल्वपत्रं शुचीस्मृतम् ।  
 धावणेदधि सम्प्राश्य नभस्वेचकुसोदकम् ॥३४॥  
 क्षीरमास्वयुजेमासि कार्तिके पृषदाज्यकम् ।  
 मार्गमासेतु गामूलपोषे सप्ताशयेदधृतम् ॥३५॥

इस प्रचार से उस सबको शिव और शिवा के आगे निवेदन करके  
 त्रि में शृङ्गोदक का प्राशन करके उसी भौति भूमि में गरुडन को  
 दराये ॥ ३६ ॥ पुनः प्रातःकाल की बेला में स्नान और जाप करके परम  
 भुवि होकर यज्ञ—माता और भूपणी के द्वारा ब्राह्मण द पति का भली  
 भाँति पूजन करना चाहिए ॥ ३७ ॥ सौभाग्याष्टक से समर्पित सुवर्ण  
 निमित्त दो चरणों को इसमें ललिता देवी प्रसन्न हो—यह उच्चारण करते  
 हुए ब्राह्मण को दान देना चाहिए इसी प्रकार से एक वर्ष पर्यन्त हे मनो ।  
 सुनीया त्रिभि मे सदा त्रिभि के सहित त्रिभि की भावना से तब सौभाग्य  
 के हस्तगत पुत्रों को इस व्रत की करना चाहिए ॥ ३८, ३९ ॥ प्राशन  
 में और दान के यज्ञ में यह यहाँ पर विशेषता है उसे आप मुझसे समझ  
 लेंगी । शीत मास में शृङ्गोदक—दीक्षाध में गोमय का प्राशन करना  
 चाहिये ॥ ३३ ॥ ज्येष्ठ मास में मन्दार का कुसुम और जापाट में विल्व  
 पत्र कहा गया है । धावण में दधि का सम्प्राशन करे और भाद्रपद में  
 शुभोदक का प्राशन करना चाहिए ॥ ३४ ॥ आश्विन मास में क्षीर और  
 कार्तिक में पृषदाज्य तथा मार्गशीर्ष में गोमूत्र का प्राशन करे । पोष मास  
 में पून का प्राशन करना चाहिए ॥ ३५ ॥

माघे कृष्णतिलतद्वत् पञ्चगव्यञ्ज फाल्गुने ।  
 ललिाविजयता भद्राभवानी कुमुदाशिवा ॥३६॥  
 वामुदेवी तथा गीरी मङ्गला कमलासती ।  
 उमाच दानकालेतु प्रीयतामिति कीर्तयेत् ॥३७॥  
 मल्लिकाशोककमल कदम्बोत्पलमालती ।  
 कुञ्जक करवीरञ्च वाणमल्मामकुङ्कुमम् ॥३८॥  
 सिन्दुवारञ्च सर्वेषु मासेषु क्रमशः स्मृतम् ।  
 नापकुसुम्भकुसुम मालती शतपत्रिका ॥३९॥  
 यथालाभ प्रशस्तानि करवीरञ्च सर्वदा ।  
 एव सम्बत्सरं यावदुपोष्य विधिवन्धर ॥४०॥  
 स्त्रीभक्ता वा कुमारी वा शिवमभ्यन्यं भक्तितः ।  
 प्रतान्ते शयन दद्यात् सर्वोपस्करसयुतम् ॥४१॥  
 उमा महेश्वर हैम वृषभञ्च गवा सह ।  
 स्थापयित्वाऽथ शयने ग्राह्याण्य निवेदयेत् ॥४२॥

माघ मास में काले तिलो का तथा फाल्गुन में पञ्चगव्य का  
 प्राशन करना चाहिए । बारहों मासों के दान काल के भी पृथक् २ नाम  
 हैं क्रम से समझ लता चाहिए—ललिता—वज्रया—भद्रा—भवानी—  
 कुमुदा—शिवा—वामुदेवी—गीरी—मङ्गला—कमला—सती और उमा  
 ये बारह नाम पूर्वोक्त क्रम से दान के समय में प्रत्येक नाम का उच्चारण  
 करके प्रशन्न हों ऐसा कीर्तन करा यथा 'उमा प्रीयताम्' यहो क्रम है ।  
 ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ इसी प्रकार से पुण्यों का भी एक क्रम है उसी के अनु-  
 सार प्रणय करके भक्तार्चन करे—मल्लिका—शक—कमल—कदम्ब—उत्पल  
 मालती—कुञ्जक—करवीर—वाण—भस्माभकुङ्कुम—सिन्दुवार इन पुण्यों से  
 सभी मासों में क्रमपूर्वक पूजन करना कहा गया है । यथा—कुसुम्भकुसुम  
 मालती शतपत्रिका ये पण्य यथा लाभ ही प्रशस्त होत हैं । और करवीर  
 तो सभी समय में प्रशस्त है । इस तरह से एक वर्ष जब तक पूर्ण हो

मनुष्य का विधि के साथ उपवास करना चाहिए ॥ ३८, ३९, ४० ॥  
 मक कोई स्त्री हो या कोई कुमारी हो भगवान् शिव का भावत भाव से  
 पर्वन करने जब व्रत का समाप्ति हो तो उषा व्रत करने वाले को सभी  
 उपस्करों से युक्त इत्या का दान करना चाहिए । उमा और महेश्वर और  
 वृषभ सुवर्ण के निर्मित कराकर शी के साथ शयन में स्थापित कराकर  
 ब्राह्मण को दान में देनी चाहिए ॥ ४१, ४२ ॥

अन्यान्वपि यथाशक्त्या मिथुनान्यम्बरादिभिः  
 धान्यालङ्कारगोदानैरभ्यर्च्येद्वनसञ्चयः ॥

वित्तशाल्येन रहितं पूजयेत् गतविस्मः ॥ ४३ ॥

एव करोति यः सम्यक् सौभाग्यशयनव्रतम् ।

मर्वान् कामानवाप्नोति पदमत्पन्तमश्नुते ॥

पनस्यकस्य स्यामेन व्रतमेतत्समाचरेत् ॥ ४४ ॥

य इच्छन् कीर्तिमाप्नोति प्रतिमासं राशिप ।

सौभाग्यागोऽयत्पायुवस्थालङ्कारभूषणं ॥

न विमुक्तो भवेद्वाजन् ! न वावु दशतथयम् ॥ ४५ ॥

यस्तु द्वादश वर्षाणि सौभाग्यशयनव्रतम् ।

परोति सप्त चाष्टौ वा श्रीकृष्णवनेऽपरं ।

पूज्यमानो वसेत् सम्यक् यावत्सत्पायुनयम् ॥ ४६ ॥

नारोवा कुम्भे वापि कुमारीवा नरेश्वर ।

सापि तत्पुनमाप्नोति देव्यनुग्रहाल्लिता ॥ ४७ ॥

शृणुयादपि यश्चैव प्रदद्यादथवा मतिम् ।

सार्धपि विद्याधरो भूत्वा स्वलोकके विरचयेत् ॥ ४८ ॥

इदमिह मनेन पूर्वमिष्टं शतघनुषा वृत्तवीथमूनुना च ।

वृत्तमथ वरजेन नन्दिना वा विमु जननाय ततो यदुद्भूतव्यात् ॥ ४९ ॥

अथ-पुनः श्री विष्णु की या या कति कम् आदि क द्वारा  
 तथा धान्य-अलङ्कार और शी-दाना एवं धन के सबको क द्वारा अर्पण

करे । पूजन वित्त की शठता से रहित होकर ही विस्मय से हीन रह कर ही करना चाहिए ॥ ४३ ॥ इस विधान से जो भी कोई इस शोभाय शयन व्रत को भली भाँति किया करता है वह सभी कामनाओं का फल प्राप्त कर लिया करता है और फिर अत्यन्त उन्नत पद का लाभ करता है एक फल के त्याग से इस व्रत का समाचरण करना चाहिए ॥ ४४ ॥ जो नराधिप चाहता है वह प्रतिमास कीर्ति की प्राप्ति किया करता है । हे राजन् ! इस व्रत को करने वाला पुरुष शोभाय—आयु—आरोग्य—रूप—सावर्ण्य—वस्त्र—अपङ्कुर और भूषणों ॥ तीन सौ सब अर्बुद पर्यन्त कभी वियुक्त नहीं हुआ करता है ॥ ४५ ॥ जो पुरुष बारह वर्ष तक इस शोभाय शयन व्रत को करता रहता है अथवा सान या आठ वर्ष तक किया करता है वह अमर गणों के साथ भगवान् श्री कृष्ण के भजन में पूज्यमान होकर तीन अयुत वर्ष तक अच्छी तरह निवास किया करता है ॥ ४६ ॥ हे नरेश्वर ! सारी हो या कुमारी हो जो भी कोई इस व्रत को करती है वह भी देवी के अनुग्रह से लालित होकर इसवे पन को पूर्णतया प्राप्त कर लिया करती है ॥ ४७ ॥ जो कोई इस व्रत की कथा का श्रवण भी कर लेता है या इष्य अथवा मति शो सगा देता है वह पुरुष भी विद्याधर होकर स्वर्गलोक में विरकाल पर्यन्त निवास किया करता है ॥ ४८ ॥ इस व्रत को पूर्व में यहाँ पर भजन में किया था फिर भक्त धनुषों वाले वृत्तवीर्य के पुत्र में इसको किया था । इनक अनन्तर बहण ने, मन्दी ने किया था । हे भक्तों के साथ ! इससे जा कुछ भी उत्पन्न होना है उसक विषय में क्या कहीं तक शङ्का जाये । तात्पर्य है कि कोई भी प्राप्तव्य दोष नहीं रहता है—यह इस महोपनयन का सादारण्य है ॥ ४८, ४८॥

## ३७—अथ तृतीया और सरस्वती व्रत

अथान्यामपि वक्ष्यामि तृतीया सर्वकामदाम् ।  
 यस्या दत्तं हुतं जप्तं सर्वं भवति चाक्षयम् ॥१॥  
 वेंताखशूकनपक्षे तु तृतीया ये रूपोपिता ।  
 अक्षयं फलमाप्नोति सर्वस्य सुकृतस्य च ॥२॥  
 सा तथा कृत्तिकोपेता विद्येपेण सुपूजिता ।  
 तत्र दत्तं हुतं जप्तं सर्वमक्षयमुच्यते ॥३॥  
 अक्षयान्तर्हतिस्तस्यास्तस्यागुहृतमक्षयम् ।  
 अक्षतंस्तुनरा स्नाताविष्णोदत्त्वातयाक्षतान् ॥४॥  
 विप्रं पुंश्च दत्त्वा तानेव तथा सक्नुन् मुसकृन्वान् ।  
 यथाश्रमुन् महाभागः कृतमक्षयमश्नुते ॥५॥  
 एतामप्युपवत् कृत्वा तृतीया विधिवद्भरः ।  
 एतासामपि सर्वाणां तृतीयानां फलमेवेत् ॥६॥  
 तृतीयायां समभ्यक्ष्य सोऽवाप्तो जनार्दनम् ।  
 राजसूयफलं प्राप्य गतिमयश्चाञ्छन् विन्दति ॥७॥

ईश्वर ने कहा—इसके अनन्तर मैं अथ तृतीया के व्रत का भी वर्णन करता हूँ जो सब कामनाओं की प्राप्ति करने वाला है। जिसने दिया हुआ भी भी हो हव-वद आदि सभी अथ हो जाया करते हैं ॥१॥ गीताग माय के श्रुत पक्ष की जो तृतीया होती है उसका दिन पुराणे ने उपाय किया है या किया करते हैं वे सभी गुरु का अथ फल पाने का काम किया करते हैं ॥२॥ यह विधि कृत्तिका के दोष होने के कारण से मूर्ख होतो है। उपाय सभी दान दिया हुआ—हवन किया हुआ और जाप किया हुआ अथ कहा जाता है ॥३॥ उसकी सन्निधि भी अथ अर्घ्य सभी भी दीया न होने वाली होती है और उसने दिया हुआ गुरु भी अथ होता है। अथों में स्नान दिया



हुए मनुष्य भगवान् विष्णु की सेवा में अक्षतों को समर्पित करते उन्हें को सुसंस्कृत सत्तुआ कराकर विप्रों को दान में दिया करते हैं वे यथा भग्नमुक् महाभाग उसका अक्षय फल प्राप्त किया करते हैं ॥ ४, ५ ॥  
उक्त विधान के अनुसार मनुष्य एक भी तृतीया का दत्त किया करते हैं वे इन सभी तृतीयाओं का फल प्राप्त कर लिया करते हैं । तृतीया के दिन उपवास के सहित रह कर जो भगवान् जनार्दन का अभ्यर्चन करता है वह मनुष्य राजसूय यज्ञ का पुण्य-फल प्राप्त करके अस्तुत्तम गति की प्राप्ति किया करते हैं ॥ ६, ७ ॥

मधुरा भारती केन व्रतेन मधुसूदन ! ।  
तथैव जनसौभाग्य मति विद्यासुकीशलम् ॥८॥  
अभेदश्चापि दम्पत्योस्तथा बन्धुजनेन च ।  
आयुश्च विपुल पुंसां तन्मे कथय मागव ! ॥९॥  
सम्यक् पृष्ट त्वया राजन् ! श्रुणुसारस्वतव्रतम् ।  
यस्य सः।तनादेव तुष्यतोह सस्वती ॥१०॥  
यो यद्भक्तः पुमान् कुर्यात्तत्तद्व्रतमनुत्तमम् ।  
तद्वासरादौ सभूज्यविप्रानेतान्समाचरेत् ॥११॥  
अथवादित्यवारेण ग्रहतारावलेन च ।  
पायस भोजयेद्विप्रान् कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ॥१२॥  
शुक्लवस्त्राणि दत्त्वा च सहिरण्यानि शक्तितः ।  
गायत्री पूजयेद्भक्त्या शुक्लमाल्यानुलेपनैः ॥१३॥  
यथा न देवि ! भगवान् ब्रह्मलोके पितामहः ।  
त्वा परित्यज्य सन्तिष्ठेत्तथा भव वरप्रदा ॥१४॥

मनु ने कहा—हे मधुसूदन ! यह मधुरा भारती किस व्रत से प्राप्त हुआ करता है ? तथा जनो का सौभाग्य—मति और विद्याओं में परमाधिक शीशल—दम्पति में किसी भी प्रकार के भेद—भाव का न होना तथा बन्धु जन के साथ भी भेद की भावना का अभाव—आयु की विपुलता ये सब

पुरुषों को भीन में व्रत—विद्यान से दृष्टा करना है ? हे माधव ! वहा आप कृपा करके हमका बनाइये ॥८, ६॥ भगवान् मत्स्य ने कहा—हे राजन् ! आपने यह तो बहुत ही अच्छा इस नमय म प्रश्न पूछा है । अच्छा तो अब सरस्वती व्रत का श्रवण कीजिए जिसके करने की तो बात ही क्या है केवल कीर्तन मात्र के करने ही से देवी सरस्वती शोक में परम सन्तुष्ट एवं प्रसन्न हो जाया करती हैं ॥१०॥ जो इसका भक्त पुरुष इस परमोत्तम व्रत को करता है उस उसका सर क आदि में इन विप्रा का भनी भाँति पूजन करके ही इस व्रत का समाचरण करना चाहिए ॥११॥ अथवा रविवार का ग्रहो क घोर ताराग्रों के बल से इसका आरम्भ करे । ब्राह्मण वाचन करके विप्रों को पादम का साजन कराना चाहिए ॥१२॥ परमोत्तम शुक्ल वस्त्र और इनके साथ में अपनी शक्ति क अनुमार सुवस्त्र भी देखकर शुक्ल मातृ और शुक्ल ही अनुलपन आदि उपचारा के द्वारा भक्त की भावना में गोपनी देवी का अभ्यर्चन करना चाहिए ॥१३॥ पूजन की सेवा में देवी में यही प्रार्थना करे—हे देवी ! जिस प्रकार स ब्रह्म सोम में भगवान् पितामह आपका परिपालन करके लय मात्र की भी संरक्षण नहीं रहा करत है उसी प्रकार से आप वरदान देने वाली हो जाइये ॥१४॥

वेदा शास्त्राणिमर्वाणिगीतनृत्यादिकञ्चयत ।

न निहोनत्वयादवि । तथामम-नुसिद्धयः ॥१५॥

सदमर्षा घरापुष्टिगोरोतुष्टाप्रभामनि ।

एतामि पाहि अष्टाभि स्तनूभिर्मा सरस्वती ॥१६॥

एव सम्पूज्यगायत्री वार्णाक्ष्यनिवारिणाम् ।

सुक्नपुष्टासर्तमयासकमण्डलुपुस्तनाम् ॥

मोनयतन भुञ्जीत साय प्रातस्नु धम्मवित् ॥१७॥

वेद और सम्पूर्ण ज्ञान तथा योग और नृत्य आदि मया हे देवि ! आप से होन न होवें उसी प्रकार की मेरी सिद्धियाँ हो जानी चाहिए

॥१५॥ हे सरस्वती देवि ! आप लक्ष्मी, मेधा, धरा, पुष्टि, गौरी, तुष्टा, प्रभा, इन आठ तनुओं से संयुता होकर मेरी रक्षा करिए ॥१६॥ इस प्रकार से क्षय का निवारण करने वाली वाणी गायत्री देवी का भली भाँति प्रार्थन करके जो शुक्ल पुष्प और अक्षतों से सयुत है और भक्ति के द्वारा कमण्डलु एवं पुस्तक को धारण करने वालों है फिर मोन वन पूर्वक धर्म के ज्ञाता पुरुष को सायंकाल में और प्रातः काल में अशन करना चाहिए ॥१७॥

### ३८--चन्द्रादित्योपराग में स्नान विधि कथन

चन्द्रादित्योपरागेतु यत्स्नानमभिधीयते ।  
 तदहश्चातुमिच्छामि द्रव्यमन्त्रविधानवित् ॥१॥  
 यस्य राशिसमासाद्य भवेद्दयहणसप्तवः ।  
 तस्य स्नानं प्रवक्ष्यामि मन्त्रोपधविधानतः ॥२॥  
 चन्द्रोपरागरुप्राप्य कृत्याब्राह्मणवाचनम् ।  
 सगूज्यचतुरो विप्रान् शुक्लमात्यं नुलेपने ॥३॥  
 पूर्वमेवोपरागरस्य समासाद्योपधादिवम् ।  
 स्थापयेच्चतुरः कुम्भानवणान् सागरानिति ॥४॥  
 गजादवरध्यायत्मीव सङ्गमादध्रदगोवुलात् ।  
 राजद्वारप्रदेशाच्च मृदमानोय चाक्षिपेत् ॥५॥  
 पश्चागव्यञ्च कुम्भेषु क्षुद्रमुषनापलानि च ।  
 रोचना पद्मजद्दोष पञ्चरत्नरुमवितम् ॥६॥

मन्त्र भगवान् ने कहा—जिम राशि को प्राप्त करके ग्रहण का सुप्तद होता है उसका स्नान मन्त्र और औषधि के विधान से मैं आपको दत्त-  
लाता हूँ ॥ १, २ ॥ जब चन्द्रमा का उपराग ( ग्रहण ) सम्प्राप्त हो तो  
उस समय में ब्राह्मण वाचन करे और चार विधों का मुक्त माल्या तथा  
मुक्त अनुनेपनों के द्वारा मनो भाँति पूजन करे। जब उपराग का  
आरम्भ हो उससे पूर्व हो औषधि आदि का समासादन करे। चार  
कुम्भों की स्थापना करे जो वृक्षों से रहित हों। ये कुम्भ सागर स्था-  
नीय होने हैं ॥ ३, ४ ॥ यत्रगाथा—अश्वशान—वत्सीक (गर्ज की बामी)  
मङ्गम-दूद-भोक्ता ( गाथों के बैठने तथा बैठने का शिरक ) राजद्वार  
का प्रवेश—इन स्थलों में मृत्तिका का प्राणयन करके उसका प्रयोग करना  
चाहिए ॥ ५ ॥ कुम्भो ऽ पञ्चगव्य ( गौ का दूध-दही-घृत मूत्र और  
गोमय—इन सबका सम्मिश्रण ) गुद मुक्ताफल राचना, पद्म, शल तथा  
पाँचों प्रकार के रत्न, स्फटिक, चन्दन श्वेत, तीर्थों का जल, सरसों, राज-  
दन्त, कुमुद उगीर ( मूत्र ) और गुल्ल इन समस्त वस्तुओं को एवमित्र  
कर लेना चाहिए ॥ ६ ॥

स्फटिक चन्दन श्वेत तीर्थवारि उत्तपंम् ।  
राजदन्त सङ्कुमुद तर्पवाक्षी गुग्गुलम् ॥  
एतन्मन्त्रं विनिक्षिप्य कुम्भेष्ववाहयेत् मुरान् ॥७॥  
मन्त्रं समुद्राः गरितस्तोत्र्यानि जलदा नदाः ।  
आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः ॥८॥  
योग्नी वज्रधरो देव आदित्यानां प्रभुर्मेनः ।  
सहस्रनयनश्चेन्द्रो ग्रहपीडा व्यरोहनु ॥९॥  
भुम्भ य मन्त्रदेवाना मन्त्राचिरमित्युति ।  
चन्द्रापरागममूना अग्नि. पीडा व्यरोहनु ॥१०॥  
य वमसाक्षी भूताना धर्मो महिषवाहन. ।  
यमचन्द्रापरागममूना ममरोहा व्यरोहनु ॥११॥

नागपाशधरो देव. साक्षान्मकरवाहन ।  
 स जलाधिपतिश्चन्द्रग्रह पीडा व्यपोहतु ॥१२  
 प्राणरूपेण यो लोकान् पाति कृष्ण मृगप्रिय ।  
 वायुश्चन्द्रोपरागोत्था पीडामन व्यपोहतु ॥१३  
 योऽसौ निधिपतिर्देवः खड्गशूलगदाधरः ।  
 चन्द्रोपरागकलप धनदो, मे व्यपोहतु ॥१४

उपयुक्त पदार्थों का सबका उन कुम्भों में निक्षेप करके फिर उनमें सुरो का आवाहन करना चाहए ॥७॥ आवाहन के समय में प्रार्थना करे— सब समुद्र, समस्त सरिताएँ, तीर्थ, जलद, नद यहाँ पर आने की कृपा करें जो कि यज्ञमान के दुरितों के लय करने में समर्थ हैं । ८। जो यह यज्ञ के धारण करने वाले देव आदित्यों के प्रभु माने गये हैं वही सहस्र नेत्रों वाले इन्द्रदेव ग्रहों की पीडा का व्यपोहन करे । ९। अपरिमित श्रुतिवाले सप्तविंशत्सं देवों का मुख है । अग्नि, चन्द्र के उपराग से होने वाली पीडा का व्यपोहन कर जो भूतो के विद्रुत कर्मों का ( बुरे-भले जैसे भी हो ) साक्षी है वह घर्म महिष के वाहन वाला यमराज चन्द्र के उपराग से समुत्पन्न मेरी पीडा को दूर करे ॥१०, ११॥ नागों के पाश को धारण करने वाले साक्षात् मकर के वाहन वाले देव जल के अधिपति चन्द्रग्रह की पीडा का व्यपोहन करे । १२। कृष्ण मृग पर प्यार करने वाले वायुदेव जो प्राणों के रूप से समस्त लोको का प्रतिपालन किया करते हैं यही पर इस चन्द्रमा के उपराग से समुत्पन्न पीडा का निवारण कर देवे । जो यह निधिपति का स्वामी खड्ग, शूल और गदा के धारण करने वाले देव धनद हैं वे मेरे चन्द्रोपराग के कलुष को दूर करे ॥१३, १४॥

योऽसौ विन्दुधरो देवः पिनाकी वृषवाहनः ।  
 चन्द्रोपरागजा पीडा विनाशयतु शङ्कर ॥१५  
 त्रैलोक्ययात्रिभूतानि स्थावरानि चराणि च ।  
 ब्रह्माविष्ण्वर्क्यभूतानि तानि पापदह तुवं ॥१६

एवमामन्त्र्यते कुम्भैरभिषिक्तोगुणान्वितः ।  
 ऋग्यजु. साममन्त्रंश्च शुक्लमाल्यानुलेपनः ॥  
 पूजयेद्वस्त्रगोदानैर्ब्राह्मणानिष्टदेवताः ॥१७॥  
 एतानेव ततोमन्त्रान् विलिखेत्तरकान्वितान् ।  
 वस्त्रपट्टेऽ. वा पद्मे पञ्चरत्नसमन्वितान् ॥१८॥  
 यजमानस्य शिरसि निदध्युस्तेद्विजोत्तमाः ।  
 ततोऽतिवाहयेद्वेलाभुपरागानुगामिनीम् ॥१९॥  
 प्राङ्मुखः पूजयित्वा तु नमस्यन्निष्टदेवताम् ।  
 चन्द्रग्रहे विनिवृत्ते कृत्वा गोदानमङ्गलः ॥  
 वृत्तस्नानायत पट्टं ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥२०॥  
 अनेन विधिना यस्तु ग्रहस्नान समाचरेत् ।  
 न तस्य ग्रहपीडा स्यान्न च बहुजनक्षयः ॥२१॥  
 परमा सिद्धिमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभाम् ।  
 सूर्यग्रहे सूर्यनाम सदा मन्त्रेषु कीर्तयेत् ॥२२॥

जो यह विष्णु के प्रारण करने वाले वृष के बाहन वाले तिन की  
 देव शङ्कर हैं वे मेरी चन्द्र के ग्रहण से उत्पन्न होने वाली पीडा का  
 विनाश कर देवे ॥ १५ ॥ इस तिलो में जो भी स्पावर और चर  
 भूत हैं ओ ब्रह्मा, विष्णु और सूर्य से सयुक्त हैं वे सब पापों का दाह  
 करे ॥ १६ ॥ इस तरह मे भामिनि करके फिर गुणों से समन्वित उन  
 कुम्भों में अभिषिक्त होकर ऋक्-यजु और सामवेद के मन्त्रों के द्वारा  
 एव मुख्य मातृ और अनुषेवनों में इष्ट देवों का अर्चन करे तथा वस्त्र  
 और गोदानों के द्वारा ब्राह्मणों का धन करना चाहिए ॥ १७ ॥ फिर  
 इन्ही मन्त्रों का करवा न्यन करके विष्णु जो पाँच राजों से भी समन्वित  
 हैं । इन मन्त्रों की तिली वस्त्र पट्ट पर प्रथम पद्म पर लिखना चाहिए  
 ॥१८॥ उत्तम द्विजों की यजमान व फिर पर उन्हें रखना चाहिए ।  
 फिर उग वरान का अनुगामिनी यम का अभिवादन करे ॥ १९ ॥ पूर्व

दिशा की ओर मुख वाला होकर पूजन करे तथा अपने इष्ट देवों को नमस्कार करे । जब यह चन्द्रमा का ग्रहण निवृत्त हो जावे तो गोदान और मङ्गल कर्म करने वाले को स्नान किये हुए ग्राहण के लिये उस पट्ट को निवेदिन कर देना चाहिये ॥ २० ॥ इस विधान के साथ जो ग्रह स्नान का समाचरण किया करता है उसको कभी भी ग्रहों की पाशा नहीं छुआ करती है और न कभी वधुजना का ही क्षय होता है । यह मनुष्य पुनरावृत्ति दुर्लभ परम मिद्धि की प्राप्ति किया करता है । सूर्य ग्रह में सूर्य देव के नामों का सदा मन्त्रों में कीर्तित करना चाहिए । ॥ २१ ॥ २२ ॥

### ३६—सप्तमीस्नपन व्रत कथन

किमुद्वेगाद्भूते कृत्यमलक्ष्मी. केन हन्यते ।  
 मृतवत्साभिषेकादि कार्येषु च किमिष्यते ॥१  
 पुरा कृतानि पापानि फलन्त्यस्मिस्तपोधन ।  
 रोगदौर्गत्यरूपेण तथैवेष्टवधेन च ॥२  
 तद्विधाताय वक्ष्यामि सदा कल्याणकारकम् ।  
 सप्तमीस्नपननाम जनपीडाविनाशनम् ॥३  
 वालाना मरण यत्र क्षीरपाना प्रदृश्य तम् ।  
 तद्वत्तृद्धे तराणाञ्च यौवने चापि वतंताम् ॥४  
 शान्तये तस्य वक्ष्यामि मृतवत्साभिषेचनम् ।  
 एतदेवाद्भूतोद्वेगचित्तभ्रमविनाशनम् ॥५  
 भविष्यति च वाराहो यत्र कल्पस्तपोधन ।  
 वैवस्वतश्च तत्रापि यदा तु मनुरुत्तम ॥६  
 भविष्यति च तत्रैव पञ्चविंशतिम यदा ।

कृतं नामयुगं तत्त हैश्यान्वयन्दनः ॥

भावता नृतिर्वीरः कृत नीर्यः प्रतापवान् ॥७॥

देवपि श्री नारद जी ने कहा—उद्देग से अदम्य दश के पाप होने पर क्या कृत्य करना चाहिए ? किस कर्म के करने से यह अनर्थों का हनन किया जाता है तथा मृत्युत्सा आदि कार्यों से क्या इष्ट प्रद हुआ करता है ? श्री भगवन् ने कहा—हे तपोवन ! इस मनुष्य जीवन में पूर्व जन्मों में किये हुए पाप ही फल दिया करते हैं । इस जीवन में रोगों की उत्पत्ति—महा दुर्गति के स्वरूप से और इष्ट न बच हो । त अर्थात् जो भी कुछ अभीष्ट हो उसका विनाश के हाने से मनुष्य को उन पूर्व कृत पापों का फल मिला करता ॥१, २॥ इन सब के विघात करने के लिये सश कल्याण के करने वाले तथा अनो की पीडात्मा विनाश कर दे । वाले सप्तमी स्तवन नाम वाले व्रत को बतलाते हैं ॥३॥ जहां पर दुष्टमुंहे छोटे २ बन्धों का मरण दिखलाई दिया करना है और उसी भाँति जो अभी वृद्धावस्था में प्राप्त नहीं हुए हैं ऐसे जीवन में रहने वालों का मरण होना है वहां पर आग्नि के सम्पादन करने के लिये मृत्युत्सा-मिषेवन बतलाते हैं । यही अदम्य उद्देग और चित्त के भ्रम का विनाश करने वाला होना है ॥४, ५॥ हे तपोवन ! जिस समय में पापाह बल्प होगा और वहीं पर जब उत्तम वैवस्वत मनु होगा । वही पर जब पचवी-सवा कृत युग नाम वाला युग होगा और उस समय में हैहय के दश की वृद्धि करने वाले महान् प्रताप वाला और कृतवीर्य नामक एव नृपते होगा ॥६, ७॥

सप्तद्विपमखिलं गालयिष्यति भूतलम् ।

यावद्वपसहस्राणि सप्तसप्तति नारद ! ॥८॥

जातमात्रञ्च तस्यापि यावत् पूजयत तथा ।

अयमनस्यतु शापेन विनाशमुपयास्यति ॥९॥

सहस्रबाहुश्च यदा भविता तस्यैव मुतः ।



कुरङ्गनयनं श्रीमान् सस्मृतो नृपलक्षणः ॥१०॥  
 वृत्तवीर्यस्तदाराध्य सहस्रांशुं दिवाकरम् ।  
 उपवासं तं दिव्यो वेदसूक्तोऽप्यनारद ! ।  
 पुत्रस्य जीवनालमेतत्स्नानमदाप्स्यति ॥११॥  
 वृत्तवीर्येण गी पृष्ट इदं वक्ष्यति भास्करः ।  
 अक्षेपदुष्टशमनं सदा कल्मषनाशनम् ॥१२॥  
 अलं बलेशेन महता पुत्रस्तव नराधिप ! ।  
 भविष्यति चिरञ्जीवो किन्तु कल्मषनाशनम् ॥१३॥  
 सप्तमी स्नपनं वक्ष्ये सर्वलोकहिताय धी ।  
 जातस्य भृतवत्साया सप्तमे मासि नारद ! ॥  
 अथवा शुक्लसप्तम्यामेतत् सर्वं प्रशस्यते ॥१४॥

यह राजा सागो द्वीपों के रहित समस्त भूतल का परिपालन करेगा । हे नारद ! सत्तर सहस्र वर्ष इत्यन्त यह पामन करेगा ॥१०॥  
 उसके भी उत्पन्न मात्र हुए एक ही पुत्र सबके सब कथन कथा में विनाश को प्राप्त हो जायेंगे ॥११॥ जिस समय में उसका पुत्र सहस्रबाहु होगा जो मृग के समान सुन्दर नेत्रों वाला—यही से सम्पन्न और सम्पूर्ण मृग के लक्षणों से युक्त होगा ॥१०॥ उस समय में राजा कृत्तवीर्य सहस्रांशु भगवान् दिवाकर की आराधना करके जो कि उपवास—व्रत—और हे नारद ! दिव्य वेदों के सूक्तों के द्वारा की गयी थी—पुत्र के जीवन के लिए यह पर्याप्त स्नान प्राप्त करेगा ॥११॥ राजा कृतवीर्य के द्वारा पूछे गये भास्कर प्रभु इस श्रुति को उसे बतलायेंगे । यह व्रत सम्पूर्ण कल्मषों का नाश करने वाला और अक्षेप दुष्टों का भी शमन करने वाला है ॥१२॥ भगवान् भुवन भास्कर ने कहा था—हे नराधिप ! अब अब यह महत् बलेश मत करो आपका पुत्र चिरजीवी होगा किन्तु कल्मषों के नाश करने वाला सप्तमी स्नपन करना होगा जिसकी कि मैं सब लोगों के हित तथा संपादन के लिये अभी बतला दूँगा । हे नारद ! मृतवत्सा स्त्री के समुत्पन्न

होने वाले के सानवें मास में अथवा पुनः पुनः ही सप्तमी तिथि में यह सब प्रशस्त होया ॥१३, १४॥

ग्रहताराबलं लब्ध्वा कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ।

बालस्य जन्मनक्षत्रं वजयेत्ता तिथिं बुधः ।

तद्वद्वृद्धेतिराणञ्च कृत्यम्यादितरेषु च ॥१५॥

गोमयेनानुलिप्ताया भूमावेकाग्निवत्तदा ।

तण्डुले रक्तशालीये च मगोक्षीरमयुतम् ॥

निर्वपेत् सूर्य्यंद्राभ्या तन्मन्त्राग्ना विधानतः ॥१६॥

कीर्तयेत् सूर्य्यंद्वयं सप्तर्चि च घृताहुतो ।

जुहुयाद्रसूक्तं न तद्वद्रद्रा नारदः ॥१७॥

होतव्याः समिधश्चात्र तर्पवाकपलाशयाः ।

यवकृष्णातिलहोमः कर्त्तव्याष्टशत पुनः ॥१८॥

व्याहृतीभिस्तथाग्नेन तर्पवाष्टशत पुनः ।

कृत्वा स्नानञ्च कर्त्तव्यं महत्त एव धौमता ॥१९॥

विप्रं च वेदविदुषा विधिवद्ब्रह्मपाणिना ।

स्थापयित्वा तु चतुरः कुम्भान्कोषेषु शीमनान् ॥ २० ॥

यहाँ के सवा ताराओं के बल को प्राप्त करके प्रार्थना जब सब यह और तारा अपने अनुकूल शुभ हों ऐसे समय में शास्त्रानुसार करना है। बुध पुष्य को चाहिए कि बालक के जन्म का नक्षत्र भी उस तिथि को वर्जित कर देवे। इसी भाँति जो कृद्धों से इनर अर्थात् मुवा है उनका और इनरों का भी कृप्य होगा है ॥१५॥ सौम्य से अनुलिप्त भूमि में एकाग्नि के समान उस समय में अन्तः शालीय तण्डुलों से गो के क्षीर से समुत चरु का मूयं रसक उस मन्त्रों से विधान पूर्वक निर्वपण करना चाहिए ॥१६॥ सूर्य्यंद्वय का कीर्तन करे तब सप्तर्चि को पूत को आहुतियों के द्वारा हवन करना चाहिए। हे नारद ! उसी प्रकार से रस के तिल रससूक्त ३ हवन करे ॥१७॥ उसी प्रकार से अर्क (आकाश) और पलाश (दाह) की समिधाओं का हवन करना चाहिए। फिर यव और जाल तिल

से अष्टोत्तर शत होम करना चाहिए ॥१८॥ तथा आज्य (घृत) के द्वाग व्याहृतियो से एक सौ आठ बार पुनः हवन करके मङ्गल स्नान करना चाहिए । वेदों के विद्वान् धीमान् दम्ब हाथ में रखने वाले विद्वान् द्वारा चार गरम गोमन कुम्भों को कोणों में स्थापित कराकर विधि को सुप-  
स्पन्त करे ॥१९, २०॥

पञ्चमञ्च पुनर्मध्ये दध्यक्षतविभूषितम् ।  
स्थापयेदग्रण कुम्भ सप्तर्चैनाभिमन्त्रितम् ॥२१॥  
सौरेण तीर्थतोयेन पूर्णं रत्नसमन्वितम् ।  
सर्वान्सर्वोपधैर्युंक्तान् पञ्चगव्यसमन्विताम् ॥  
पञ्चरत्नफलैः पुष्पैर्द्रोणैः परिवेष्टयेत् ॥२२॥  
गजाश्वरथ्यावल्मीकात्सङ्गमाद्घदगोकुलात् ।  
सशुद्धां मृदमानीय सर्वेष्वेवविनिक्षिपेत् ॥२३॥  
चतुर्ध्वपि च कुम्भेषु रत्नगर्भेषु मध्यमम् ।  
गृहीत्वा ब्राह्मणस्तत्र सौरान्भन्त्रानुदीरयेत् ॥२४॥  
नारीभिः सप्तसख्याभिरव्यङ्गाङ्गीभिरत्र च ।  
पूजिताभिर्यथाशक्तया माल्यवस्त्रविभूषणैः ॥  
सविप्राभिश्च कर्त्तव्यं मृतवत्साभिषेचनम् ॥२५॥  
दीर्घायुरस्तु बालोऽयं जीवत्पुत्राच्च भामिनी ।  
आदित्यश्चन्द्रम साद्वै ग्रहनक्षत्रमण्डलैः ॥२६॥  
सशक्रा लोकपाला यै ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।  
एते चान्येच देवीधाः सदापान्तुकुमारकम् ॥२७॥  
मित्रोशनिर्वा हुतभुक् ये च बालग्रहाः क्वचित् ।  
पोढा कुवन्तु बालस्यमामातुर्जनकस्यर्च ॥२८॥

फिर मध्य में पाँचवें कुम्भ को दधि-अक्षत से विभूषित करके बिना अग्रण वाले कुम्भ को साथ अष्टाओं से अभिमन्त्रित करके स्थापित करना चाहिए ॥२१॥ सौर अष्टाओं से अभिमन्त्रित करके तीर्थों के जल से परिपूर्ण करे तथा रत्नों से समन्वित करे । सभी कुम्भों को सर्वपिधि

चरुञ्च पुत्रसहिता प्रणम्य रविशङ्करो ॥३३॥  
 हृतशेष तदाश्नीयादादित्याय नमोऽस्तिवनि ।  
 इदमेवाद्भुनाद्वेगदु स्वप्नेषु प्रशस्यते ॥३४॥  
 कर्तुं जन्मदिनक्षञ्च त्यक्तवा संपूजयेत् सदा ।  
 शान्त्यर्थं शुक्लसप्तम्यामेतत्कुर्वन् सीदति ॥३५॥

इसके अनन्तर शुक्ल वस्त्र धारण करनी वाली कुमार और पति  
 से समन्वित भक्ति से स्त्रियों के सप्तम्य का पूजन करे पुनः इसके बाद  
 गुरु का यजन करे ॥२६॥ इसके उपरान्त ताम्रपात्र के ऊपर स्थित धर्म-  
 राज की सुवर्ण की प्रतिमा को करे और फिर उस गुरुजी के लिये  
 निवेदित कर देना चाहिये । ३०॥ वित्त की शठता से रहित होकर  
 अर्थात् धन होने हुए कृपणता न करके उसी भाँति ब्राह्मणों का वस्त्र-  
 सुवर्ण-रत्नों का समूह-भक्ष्य-धूत और गायस से पूजन करना चाहिए ।  
 ॥३॥ भोजन करके गुरु को यह मन्त्रों की सन्तति का उच्चारण करना  
 चाहिए—यह बालक दीर्घायु हो और सौ वर्ष तक सुखी रहे ॥३२॥ जो  
 कुछ भी इसका दुरित (५५) हो उसको बंढवानस में क्षिप्त कर दिया  
 जावे ब्रह्मा-रुद्र-वसु-स्कन्द-विष्णु-शक्र-हृताशन ये सब दुष्टों से रक्षा  
 करें और सर्वदा वरदान देने वाले होवें—इस प्रकार के वाक्यों को बोलने  
 वाले गुरु का अभ्यर्चन करे ॥३३॥ अपनी शक्ति के अनुसार एक कपिला  
 गौ का दान करे फिर प्रणाम करके गुरु का विसर्जन कर देना चाहिए ।  
 पुत्र के सहित रवि और भगवान् शंकर को प्रणाम करके उस घर को जो  
 हुन से शेष बचकर रह गया है उसको—“आदित्याय नमोऽस्तु”—इस  
 मन्त्र के साथ उन्ही समय में प्राशन कर लेवे । यह ही अद्भुतोद्भेगदु-  
 स्वप्नो म प्रशस्त माना जाता है ॥ ३४ ॥ कर्त्तव्य का जन्म दिन और  
 नक्षत्र का स्वाय धरके सदा ही पूजन करे । मास के शुक्ल पक्ष की  
 सप्तमी में शान्ति के नियम करता हुआ मानव कभी दुःखित नहीं होता

सदग्नेन विधानेन दीर्घायुरमवन्नर ।

सम्बत्सराणां प्रयुतं शशास पृथिवीमिमाम् ॥३६॥

पुण्यं पवित्रमायुष्यं सप्तमीस्नपनं रविः ।

कथयित्वा द्विजश्रेष्ठ ! तत्रैवान्तरधीयत ॥३७॥

एतत् सर्वं समाख्यात सप्तमीस्नानमुत्तमम् ।

संबुद्धोपशमनं वात्सानां परमं हितम् ॥३८॥

आरोग्यं भास्करादिच्छेदुताशनात् ।

ईश्वराज्ज्ञानमिच्छेच्च मोक्षमिच्छेज्जनार्दनात् ॥३९॥

एतन्महापातकनाशनं स्य त्वरं हितं वासविवर्द्धनञ्च ।

शृणोति यश्चनमनं यचेत्,स्तस्यापि सिद्धिं मुनयो वदन्ति ॥४०॥

इसी विधान से मनुष्य दीर्घायु हुआ है एक प्रयुग सम्बत्सरो तक इस पृथ्वी का शासन किया था ॥ ३६ ॥ भगवान् रविदेव इस परम पुण्यपत्र—महान् पवित्र और आयु की वृद्धि करने वाले सप्तमी स्नपन नामक व्रत को कहकर हे द्विज श्रेष्ठ ! वहीं पर अन्तर्हित होगये थे ॥ ३७ ॥ यह सब उत्तम सप्तमी स्नपन वर्णित कर दिया गया है जो सब दुष्टों के उपशमन करने वाला तथा वात्सों का परम हितप्रद है ॥ ३८ ॥ आरोग्य भास्कर देव से चाह और यदि धन की इच्छा करे तो हुआगत देव से करे । ईश्वर से ज्ञान की इच्छा करनी चाहिए तथा जनार्दन प्रभु से मोक्ष की इच्छा करे ॥ ३९ ॥ यह सप्तमी स्नपन महान् पातकों का नाश करने वाला है और परम हितकर तथा वात्सों का विशेष वर्धन करने वाला है । जो कोई अनन्य चित्त वाला होकर इसका श्रवण करता है उसकी भी सिद्धि होती है—ऐसा मुनिवक्ता कहा करते हैं ॥ ४० ॥

## ४०—भीमढाङ्गी व्रत कथन

पुरा रथ-तरे कल्पे परिपृष्टा महात्मनः ।  
 मन्दरस्थो महादेवः पितामी ब्रह्मणा स्वयम् ॥१॥  
 कथमारोग्यमंश्चयमनन्तममरेश्वर ! ।  
 स्वल्पेन तपसा देव ! भवेन्मोक्षोऽप्यवा नृणाम् ॥२॥  
 किमज्ञात महादेव ! त्वत्प्रसादादघोक्षज ! ।  
 स्वल्पकेनाय तपसा महत्फलमिहोपयताम् ॥३॥  
 एव पृष्टः ॥ विश्वात्मा ब्रह्मणो लोकभावनः ।  
 उमा-तिरुवाचेद मनसः प्रीतिकारकम् ॥४॥  
 अस्माद्वधन्तरास्वल्पात् त्रयोविंशत्पुनयदा ।  
 वार हो भविता कल्पस्तस्यमन्वन्तरे शुभे ॥५॥  
 धनस्वसाहस्ये सञ्जाते सप्तमे सप्तलोककृत् ।  
 द्वापरारय युगतद्वदष्टाविंशतिमञ्जगु ॥६॥  
 तस्यान्ते स महादेवो वासुदेवो जनादनः ।  
 भारान्तरणाथैव त्रिधा विष्णुर्भविष्यति ॥७॥

मरस्य भगवान् ने कहा—प्राचीन काल में रथस्तर नाम वाले  
 कल्प में महान् आरण्या वाले ब्रह्माजी के द्वारा मन्दराचल में समस्तपितृ  
 पिताकधारी महादेवजी से स्वयं पूछा गया था । १॥ ब्रह्माजी ने कहा था—हे  
 अमरेश्वर हे देव ! अनन्त ऐश्वर्य और आरोग्य किस हुआ करता है जो  
 कि अत्यन्त स्वल्प तप से ही हो सकता हो अथवा मनुष्यों का आवागमन  
 से छुटकर या मात्र किस प्रकार से होता है ? हे महादेव ! हे अघोक्षज !  
 आपका जब प्रसाद हो जावे तो फिर क्या कुछ अज्ञात रह सकता है ?  
 अर्थात् आपके प्रसाद से तो सभी का ज्ञान हुआ जाया करता है । अत्यन्त  
 स्वल्पतपश्चर्या से महान् फल का वर्णन अब आप कीजिए ॥२॥ ३॥ मरस्य  
 प्रभु ने कहा—५५ प्रकार से ब्रह्माजी के द्वारा वह विश्वात्मा पूछे गये थे

तो लोक भगवन उमावति ने मनकी प्रीति को करने वाला यह वचन कहा था ॥४॥ ईश्वर ने कहा था—त्रिस समय ॥ इसके अनन्तर दस तेईसवें रघुनन्तर कल्प से बाराह कल्प होया । उसक परम शुभ मन्वन्तर में सप्तम वैवस्वत नाम वाल के समुत्पन्न हान पर सप्तलोक कृत् द्वार नामक युग होया जिसको अट्ठाईतीस कहते हैं ॥५॥६॥ उसक अन्त में वह महादेव बामुदेव जनार्दन भार को अवतारण करने क लिय विष्णु के तीन प्रकार के स्वरूप होगे ॥७॥

हंपायन ऋषिस्तद्वद्रोहिणेयोऽन वैशव ।  
 कयादिदपमयनं केशव क्लेशगमाशान् ॥८॥  
 पुरी द्वारवती नाम माम्प्रत याकुसस्थली ।  
 दिव्यानुभावसयुक्तामधिवासाय शार्ङ्गिण ॥  
 त्वष्टा ममाज्ञया तद्वन् करिष्यति जगत्पते ॥९॥  
 सङ्ग्या वदाचिदासीनं सुभायाममिनद्यति ।  
 भार्याभिर्धृष्णिभिर्दत्तैश्च भूभृद्भिर्भूग्दिक्षिणै ॥१०॥  
 बुधैर्भिर्योगैश्चैवैरभित कष्टभादनं ।  
 प्रवृत्तं मु पुराणामु धम्मसम्प्रदायिनापु च ॥११॥  
 कया ते भाममनेन परिपृष्ट प्रतापवान् ।  
 तया पृष्टस्य धम्मस्य रहस्यस्यास्य भेदकृत् ॥१२॥  
 भविता स तदात्रहान् ! कर्ताचिववृत्तादर ।  
 प्रवृत्तोऽस्य धम्मस्य पाण्डुनुत्तामहाबलः ॥१३॥  
 यस्य तादृशो वृक्षनामजठर हृष्यवाहनः ।  
 मया दत्त स धर्म्मोऽस्मात्तेनचासीवृक्षादरः ॥१४॥

इसी भाँति स हंपायन ऋषि—रोहिण्येक कश्यप और कस आदि दुष्टों के दुर्ग का मन्त्र कर देन वाले बलज क नाश करने वाले वैशव होंगे ॥८॥ इन समय में द्वागवती नाम वाली पुरी जो कुशस्थली है उसको जो दिग्ग अनुभावा स अनुक है मेरा ही दास से स्वष्टा विश्वकर्मा

भगवान् शार्ङ्ग के अधिवास करने के लिये वो इस सम्पूर्ण जगत् का पति है उसी प्रकार से निर्मित करेगा ॥६॥ उस द्वारावती पुरी में किसी समय में सभा में विराजमान अमित द्युति वाले भार्याओं से—वृष्ण गणों से—भूरिदा क्षीण वाले भूमृतो से—कुरु गणों से—देवों से और गन्धर्वों से चारों ओर से कैटभादेन प्रभु घिरे हुए थे । उसी समय में धर्म की बढ़ाने वाली पुराणों की कथाएँ प्रवृत्त हो रही थी ॥१०॥१॥ जब कथा का अंत हो गया तो भीमसेन ने प्रतापधान् प्रभु से पूछा था । आपके द्वारा पूछे गये इस धर्म के रहस्य का भेदकृत् है ब्रह्मन् ! उस समय में वृकोदर ही कर्त्ता होगा । इस धर्म का प्रवर्त्तक महान् बलवान् पाण्ड पुत्र ही है । जिसके जठर में वरम तीक्ष्ण वृक नाम वाला हृष्यवाहन है । मेरे ही द्वारा वह धर्मात्मा दिया गया है इसी से यह वृकोदर नाम से कहा जाया करता है ॥१२॥१३॥१४॥

मातमानन्दानशीलश्च नागायुतबलोमहान् ।  
भविष्यत्यरजाः श्रीमान् कन्दर्प इव रूपवान् ॥१४॥  
धार्मिकस्याप्यशक्तस्य तीव्राग्निस्त्वादुरोषणे ।  
इव व्रतमशेषाणा व्रतानामधिक यतः ॥१६॥  
कथमिष्यति विश्वात्मा वासुदेवो ऽगदगुरुः ।  
अशेषयज्ञफलदमशेषाघविनाशनम् ॥१७॥  
अशेषदुष्टक्षमनशेषसुरूपजितम् ।  
पवित्राणा पवित्रञ्च मङ्गलानाञ्च मङ्गलम् ।  
भविष्यन्न भविष्याणा पुराणाना पुरातनम् ॥१८॥  
गृह्यष्टमी चतुर्दश्योर्द्वादशीष्वथ भारत । ।  
अन्येष्वपि दिनेष्वपि न शक्तस्त्वमुपोषितुम् ॥१९॥  
तत पुष्यान्तिथिमिमा सवपापप्रणाशनीम् ।  
उपोष्यविधिनानेन गच्छावृष्णा परमादम् ॥२०॥  
माघमासस्य दशमी यदा शुद्धा भवेत्तदा ।



घृतेनाभ्यञ्जनं कृत्वा तिलैः स्नानं समाचरेत् ॥२१॥

यतिमान्—दान देन के शील स्वभाव वाला और एक अयुत नागों के बल से मुग्धगन्ध महान्—धीमान् और कर्दप के तुल्य रूप सावध्य से परिपूर्ण अरजा होगा ॥ ११ ॥ परम छाम्मिक या तो भी तीव्रानि के होन के कारण से उपोषण करने में अशक्त था । उसके लिये ही यह व्रत कहा गया है जो कि अशेष अन्य व्रतों से यह अधिक है ॥१६॥ इस जगत् के गुरु विद्वत् की आत्मा भगवान् व मुदेव कहेंगे । यह अशेष यज्ञों के पत्नों का प्रदान करने वाला और समस्त प्रकार के अर्थों का विनाश कर देने वाला ॥१७॥ सब दुष्टों के शमन करने वाला और समस्त सुगुण के द्वारा समर्पित है । सभी पवित्रों में यह महा पवित्र है और सब मङ्गलों में महान् मङ्गल स्वरूप है भविष्यो का भविष्य और पुराणों में परम पुरातन है ॥१८॥ भवन् शानुदेव न कहा या—हे भारत ! यदि अष्टमी, दशमी और द्वादशी तीनों तिथियों में तथा अन्य दिनों और नक्षत्रों में भी किसी में भी प्राय उपवास करने में समर्थ नहीं हैं ॥१९॥ तो परम पुण्यमयी और सब पापों का विनाश करने वाली इस तिथि का इस विधान से उपवास करो जिसमें विष्णु के पद्म पद का चले जाओ । ॥२०॥ माघ मास की दशमी तिथि जिस समय में शुक्ल पक्ष में हो उस समय में घृत से अभ्यञ्जन करके तिलों से स्नान का समाचरण करना चाहिए ॥२१॥

तथैव विष्णुमभ्यञ्ज्य नमोनारायणे च ।

कृष्णाय पादौ सम्पूज्य शिरः सर्वात्मनेनम ॥२२॥

बकुण्ठायेति बकुण्ठपुर. शीतलधारिणे ।

प्रस्थिते चित्रिणे तद्वद् यदिन वरदाय व ॥

सर्वे नारायणम्यं व सज्ज्या. बाह्व. क्रमात् ॥२३॥

रामादरायेत्युदर मेढ पञ्च शराय व ।

ऊरु ताप. नारायण जानुना भूतघ ग्नि ॥२४॥

नमो नीलाय वैजये पादौ विद्वसुजे नमः ।  
 नतो देव्यो नमः शान्त्यो नमोलक्ष्म्यो नमः श्रियो ॥ ५  
 नमः पुष्ट्यै नमस्तुष्ट्यै घृष्ट्यै हृष्ट्यै नमोनमः ।  
 नमो विहङ्गनाथाय वायवे गाय पक्षिणे ॥  
 विपप्रमायिने नित्यं गरुडञ्चाभिपूजयेत् ॥ २६  
 एष सपूज्य गोविन्द उमापतिविनायको ।  
 गन्धर्मास्त्योस्तथा धूपैर्भक्ष्यैर्नानाविधैरपि ॥ २७  
 गन्धेन पयसा सिद्धङ्कुसरामय वाग्यतः ।  
 सर्पिषा सह भुक्त्वा च गत्वा शतपदं बुधः ॥ २८

उसी भाति "नमो नारायण"—इस मन्त्र के द्वारा भगवान् विष्णु का अभ्यर्चन करना चाहिए । श्रीकृष्ण के लिए नमस्कार है—इससे कृष्ण के चरणों का अच्छी तरह पूजन करके "सर्वात्मने नमः"—इससे शिर का यजन करे । "वैकुण्ठाय नमः"—इससे वैकुण्ठ का तथा 'श्रि वास धारिणे नमः'—इससे उरः स्वयंका पूजन करे । 'सखिने नमः—अग्निने नमः—गदिने नमः—वरदाय नमः"—इन चार मन्त्रों के द्वारा नारायण की सब बाहुओं का भली भाँति क्रमसे पूजा करना चाहिए । ॥ २२ ॥ २३ ॥ 'दामोदराय नमः'—इससे उदार और 'वज्रशराय नमः'—इससे मेढू का पूजन करे । "सोभागवनाधाय नमः"—इससे दोनों ऊँहों का और 'भूतधारिणे नमः'—इस मन्त्र का उच्चारण कर दोनों जानुओं का अभ्यर्चन विधि सहित करना चाहिए ॥ २४ ॥ "नीलाय नमः"

दृष्टि :-इन व्यक्तियों का पूजन उक्त मन्त्रों का उच्चारण करके ही करना चाहिए । “विहङ्गनाथाय नमः—वायुवेगाय नमः—वायु वेगाय पक्षिणे नमः—विष प्रमाथिने नमः” —इन मन्त्रों के द्वारा नित्य ही गुरुद्वारा पूजन करना चाहिए ॥२१॥२६॥ इस तरह में श्री गोविन्द प्रभ का पूजन करके उमाशनि घोर विनायक का पूजन करे । गन्ध-माल्य-धूप-अक्षय जो अनेक प्रकार के हों—गन्ध पत्र से धजन करना चाहिए । फिर मिठ कुरम को भोजन रहकर घृत के साथ खाकर बुध पुरुष को सी कदम भक्षण करना चाहिए ॥२७॥२८॥

नैयप्रोघं दन्तकाष्ठमथवा खादिरं बुधः ।

गृहीत्वा धावयेदन्तानाचान्तः प्रागुदङ्मुखः ॥२६॥

ब्रूयात् सायन्तनी कृत्वा सन्ध्यामस्तमिते रवी ।

नमोनारायणायेति त्वामहं शरणञ्जितः ॥२७॥

एकादश्यानिहारःसमभ्य यंचकेशवम् ।

रात्रिञ्चशकलांस्थित्वास्नानञ्चपयसातथा ॥२८॥

सपिपा चापि दहनं कृत्वा ब्राह्मणपुङ्गवैः ।

सहैव पुण्डरीकाक्ष ! द्वादश्यः क्षीरभाजनम् ॥

करिष्यामि यतात्माऽहं निविघ्नेनास्तु तच्च मे ॥२९॥

एवमुक्तवा स्वपेद्भूमावितिहासकया पुनः ।

श्रुत्वा प्रभाते सञ्जाते नदीगत्वा विशाम्पते ! ॥

स्नानं कृत्वा मृदा तद्वत् पाश्र्वण्डानभिवर्जयेत् ॥३०॥

उपास्य सन्ध्याविधिवत् कृत्वा चपितृतपणम् ।

प्रणम्य च हृषीकेशसप्तलोककमीश्वरम् ॥३१॥

गृहस्थ पुरतो भक्त्या मण्डप कारयेद् बुधः ।

दशहस्तमथाष्टौ वा करान् कुर्याद्विशाम्पते ! ॥३२॥

नैयप्रोघ (बुध) का का दन्त काष्ठ (दांतुन) अथवा खादिर का दांतुन बुध को ग्रहण करके फिर उससे धावन करे अर्थात् दांतुन करे ।

फिर आवान्त होकर अर्धत् आचमन करके पूर्व में उत्तर की ओर मुख वाला हो जावे । रवि के अस्ताचलगामी हो जाने पर सायन्तनी सध्योपमना करे और हे नारायण ! आपके निये मेरा नमस्त्वम् है—मैं तो अब आपकी गरुणागति में सम्प्राप्त होगया हूँ । एकादशी में निराहार रहकर भगवान् वेशव का ममम्यचन करके तथा सम्पूर्ण रात्रि में स्थित होकर और पय से स्नान और घृत से दहन में हवन करके हे पुण्डरीकाक्ष ! श्रेष्ठ ब्राह्मणों के ही साथ द्वादशी में दीर का भोजन करूँगा । मैं यथात्मा होकर ही इसको करूँगा और वह मेरे लिए निर्विघ्नता क साथ हो जावे—यह इस प्रकार से बहकर रात्रि में भूमि पर सो जावे । हविशाम्यते ! इतिहास की कथा का धवन कर फिर प्रमत्त के हो जाने पर नदी पर जाकर स्नान करके मृत्तिका से तटव पाखण्डों का अभिवर्जन कर देवे ॥ २६ ॥ ३० ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ विधिपूर्वक सन्तुष्टा की उपसना करक पितृगण का तपण करे और फिर सानो लोकों के एक स्वामी भगवान् हृषीकेश को प्रणाम करे । गृह के आगे ही कुछ पुरुष को भक्ति की भावना से मण्डप की रचना करानी चाहिए । हे विश्राम्यते ! दक्ष हाथ अथवा आठ हाथ का करना चाहिए । ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

चतुहस्ता शुभा कुर्याद्विदोमरिनिपूदन ।  
चतुर्हस्तप्रमाणञ्च विन्यसेत्तत्र तोरणम् ॥ ३६  
प्रणम्य कनकश तन माघ प)मात्रेण सयुतम् ।  
छिद्रेण जलसम्पूर्णमथ कृष्णाजिनस्थितः ॥  
तस्य धारा च शिरसा धारयेत् सकलाग्निशम् ॥ ३७  
तथैव विष्णा शिरसि क्षीरधारा प्रपातयेत् ।  
अरस्तिमात्र कुण्डञ्चकुर्यात्तत्र त्रिमेखलम् ॥ ३८  
योनिववत्रञ्च तत् कृत्वा ब्राह्मण-पयसिपिपी ।  
तिलांश्चविष्णुदं वत्येमन्त्रं रेकान्निवत्तदा ॥ ३९

दृत्वा च वैष्णवंमम्यक्चरुं गोक्षीरसंयुतम् ।  
 निष्णावाद्धं प्रमाणावेधारांमाज्यस्यपातयेत् ॥४०॥  
 जलकुम्भान् महावीर्यं ! स्थापयित्वा त्रयोदश ।  
 भक्ष्येर्नानाविधेषु क्तान् सितवस्त्रं रत्नङ्कृतान् ॥४१॥  
 युक्तानोदुम्बरैः पात्रे पञ्चरत्नसमन्वितान् ।  
 चतुर्भिवह्वचर्होमस्तत्र कार्यं उदङ्मुखं ॥४२॥  
 रुद्रजापश्चतुर्भिश्च यजुर्वेदपरायणैः ।  
 षोष्णवानि तु सामानि चतुरः सामवेदिनः ॥४३॥  
 अरिष्टवगंसहितान्यभित परिपाठयेत् ॥४४॥

हे भरिनिपूदन ! चार हाथ प्रमाण वाली परम शुभ वाली, परम  
 शुभ वैदी बनावे और चार हाथ प्रमाण वाला तोरण का विन्यास करना  
 चाहिए । वही पर बल्लभ को प्रमाण करके जो माप मात्र से समुत्त है  
 और जल से सम्पूर्ण है । कृष्णा त्रिज पर स्थित होकर छिद्र के द्वारा  
 पूरी रात्रि में उसकी धारा को शिर से धारण करे ॥ ३६, ३७ ॥ उसी  
 तरह से भगवान् विष्णु के शिर पर क्षीर की धारा का प्रपातन करे ।  
 वही पर एक अरति मात्र प्रमाण वाला तथा तीन मेखलाओं से समन्वित  
 एक कुण्ड की रचना करनी चाहिए । योनिवक्त्र वाला उसे करके फिर  
 ब्राह्मणी के द्वारा पय-युत और तिलो का उस समय से एकान्ति की तरह  
 विष्णु देवराय मन्त्रों से हवन करे और सम्यक् वैष्णव चरु बनावे जो  
 गौ के क्षीर से समुत्त होवे । निष्णावाद्धं प्रमाण वाली युत की धारा का  
 प्रपातन करावे ॥ ३८, ३९, ४० ॥ हे महावीर्य ! वही पर तेरह जल  
 के कुम्भों को स्थापित कराकर नाना मांति के भक्ष्यों से उन्हें समुत्त करे  
 और सफेद वस्त्रों से अलङ्कृत करे । उदुम्बर से निर्मित पात्रों से युक्त  
 तथा पाँचो रत्नों से समन्वित करे, वही पर चार बह्वृचो के द्वारा त्रिजका  
 मुख उत्तर की ओर हो होम करना चाहिए । चारों के द्वारा रुद्र का  
 जाप करावे जो कि यजुर्वेद के परायण हो । षोष्णव सामो का चार

सामवेदी करे । अष्टिष्ट धर्म गति नान धीर परिपठ वगना धरिए  
४१, ४२, ४३, ४४ ॥

४१ -- कल्याण सप्तमी व्रत कथन

भगवन् ! भव ! समागमागरोन्नारवारक ! ।  
किञ्चिद्व्रतममाचक्ष्वर्गाग्निम्यमुखप्रदम् ॥१॥  
सौरं धर्मं प्रवक्ष्यामि नाम्ना कल्याणसप्तमीम् ।  
विशोकसप्तमीं तद्वत् फणाद्यां पापनाशिनीम् ॥२॥  
शर्करामप्समीं पुण्या तथा कमलसप्तमीम् ।  
मन्दारमप्समीं तद्वच्छुभदा शुभमप्समीम् ॥३॥  
सर्जान्तपला. प्रोक्ताः सर्वा देवविपूजिताः ।  
विधानमासा वक्ष्यामि यथावदनुपूर्वतः ॥४॥  
यदा तु शुक्लसप्तम्यामादित्यस्य दिनं भवेत् ।  
सातु कल्याणिना नामविजयाचनिगद्यते ॥५॥  
प्रातर्गन्धेन पयसा स्नानमम्या समाचरेत् ।  
ततः शुक्लाग्वरः पद्ममक्षताभिः प्रकल्पयेत् ॥६॥  
प्राङ्मुखोऽष्टदल मध्ये तद्वद् वृत्ताञ्च कर्णिकाम् ।  
पुष्पाक्षताभिर्द्वेषा विन्यसेत् सर्वतः क्रमात् ॥७॥

ब्रह्माजी ने कहा—हे भगवन् ! हे भव ! आपतो इस संसार कृपी  
महार्णव से उतारण कराने वाले हैं । ऐसा कोई व्रत हमको बतलाइये जो  
स्वर्ग और आरोग्य तथा सब प्रकार का सुख प्रदान करने वाला हो ॥१॥  
ईश्वर ने कहा—अब मैं सौर ( सूर्य ) से सम्बन्धित धर्म को बतलाता  
हूँ जो नाम से कल्याण सप्तमी व्रत कहा जाया करता है उसी प्रकार से  
विशोक सप्तमी भी होती है जो फनो से घाह्य है और समस्त पापों का  
नाश कर देने वाली होती है ॥२॥ उगी माँति परम पुण्यमयी शर्करा

सप्तमी होती है और कमल सप्तमी भी हुआ करती है तथा इसी भाँति मन्दार सप्तमी और चुम्बों का प्रदत्त करने वाली शुभ सप्तमी भी होती है ॥३॥ ये सभी सप्तमियाँ अनन्त फलों वाली होती हैं—ऐसा ही कहा गया है । सभी देवियों के द्वारा पूजित हैं । अब हम इन ममस्त सप्तमियों का विधान बतलाते हैं जो ठीक २ यथावत् और आनुपूर्वी के सहित होगा ॥४॥ जिस समय में माघ के शुक्ल पक्ष की सप्तमी में आदित्य का दिन होवे वही सप्तमी कल्याण करने वाली विजया नाम भी जिसका कहा जाता है इस सप्तमी के दिन में प्रातःकाल ही में गन्ध पत्र से स्नान करना चाहिए । इसके अनन्तर शुक्ल वस्त्रधारी होकर ब्रह्मर्षों से पत्र की कल्याण करनी चाहिये ॥ १, ६ ॥ प्राङ्ग मुख होकर मण्डप में बैठी कमल के मध्य में उसी भाँति वृत्ताकार कणिका की रचना करे घोर सब ओर ऊन से पुष्प याग्यों से देवता का विन्यास करना चाहिए ॥५॥

पूर्वेण तज्जनायेति मार्तण्डायेति चानले ।  
याम्ये दिवाकरायेति विद्यान इति नैर्ऋते ॥८॥  
पश्चिमे वरुणायेति मास्करायेति चानले ।  
सौर्यं वेकर्तनायेति रवये चाष्टमे दत्ते ॥९॥  
आदावन्तेच मध्येच नमोऽस्तु परमात्मन ।  
मन्त्रं रेभि समभ्यर्च्यं नमस्कारान्तदीपितं ॥१०॥  
शुक्लवस्त्रैः फलेनैर्द्व्यधूपमाम्यानुलेपनैः ।  
स्थण्डिले पूजयेद्भक्त्या गुडेन लवणेन च ॥११॥  
ततो न्याहृतिमन्त्रेण त्रिसर्जद्विजपुङ्गवान् ।  
शक्तिनः गुजयेद्भक्त्या गुडसौरभृतादिभिः ।  
तिलपात्रं हिरण्यं च ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥१२॥  
एव नियमकृतसुप्त्वा प्रातरुत्थाय मानवः ।  
वृत्तस्नानजपो विप्रं सहैव घृतपायसम् ॥१३॥

भुक्तवा च वेदघिदुपि विडालव्रतवर्जिते ।

घृतपात्रं सकनकं सोदकुम्भं निवेदयेत् ॥१४

प्रीयतामत्र भगवान् परमात्मा दिवाकरः ।

अनेन विधिना सर्वं मासिमासि व्रतचरेत् ॥१५

पूर्व दिशा में तपनाय नमः—इस मन्त्र से अग्निहोत्र में 'मास-  
ण्डाय नमः'—इससे—शाम्य दिशा में 'दिवाकराय नमः'—इससे—नैऋत्य  
में 'विधात्रे नमः'—इससे पश्चिम में 'वह्मनाय नमः'—इस मन्त्र से—  
अनिल दिशा में 'भास्कराय नमः'—इससे सोम्य दिशा में 'वैकर्त नमः'  
इससे 'शश्वे नमः'—इससे अष्टम दल में पूजन करे ॥७, ८॥ आदि में  
और अन्त में "परमात्मने नमोऽस्तु" इय मन्त्र से सर्वार्चन करे । इन  
उपयुक्त मन्त्रों से समर्पण करके जो अन्त में नमस्कार से दीपित  
होते हैं फिर शुक्ल वस्त्रों के द्वारा फल-भक्ष्य-धूप-मास्य और अनुलेपनो  
से गुड और लवण से भक्तिभाव के साथ स्वर्णिल में पूजन करना चाहिए  
॥१०, ११॥ इसके अनन्तर व्याहृति मन्त्र से द्विजश्रेष्ठों का विसर्जन करे ।  
शक्वि से भरसक पूर्णतया भक्ति पूर्वक गुड-क्षीर और घृत आदि पदार्थों  
के द्वारा अर्चन करे । तिनो से परिपूर्ण पात्र और सुतर्ण ब्राह्मण की सेवा  
में निवेदित करना चाहिए ॥ २॥ इस प्रकार से नियमों को करने वाला  
पुष्प शयन करके प्रातः काल की बेला में उठकर खड़ा हो जावे । स्नान  
और आप करके बिशो के हो माथ ही घृत और वायस का भोजन करे ।  
वेदो का विद्वान् हो और विडाल व्रत से रहित हो ऐसे किसी योग्य  
ब्राह्मण को सुवर्ण के सहित घृत का पात्र अर्थात् घृत से भरा हुआ पात्र  
और जल से युक्त कुम्भ निवेदित करे । उस समय में यह कहे कि यहाँ  
पर भगवान् परमात्मा प्रसन्न होंगे । इसी विधान से सब मास-मास में  
इस व्रत का सत्कारण करना चाहिये ॥१३, १४, १५॥

विशामसप्तमी तद्बद्धक्ष्यामि मुनिपुङ्गव ! ।

यामुप्योष्य नरः शोकं न कदाचिदिहाश्रूते ॥१६



ही द्वारा शोक से रहित रहता है—यह प्रार्थना करे । फिर यह भी निवेदन करे कि उसी प्रकार से मेरी भी विशोकता होवे तत्पश्चात् मैं भी शोक से बिल्कुल रहित हो जाऊँ और प्रत्येक जन्म में आपके चरणों में मेरी सुदृढ़ भक्ति भी होवे ॥१६॥ इस प्रकार से पण्ठी त्रिवि में पूजन करके फिर भक्ति पूर्वक द्विजगणों का अर्घ्यार्जन करे । गोमूत्र का प्राशन करके शयन करे और उठकर नैस्त्यक्त कुर्या का सम्पादन करे ॥२०॥ विप्रों का अन्न से भरी भोगि पूजन करके फिर गुड पात्र से समुक्त हो वस्त्र और वह पद्म बाह्यण की सेवा में निवेदित कर देना चाहिए । ॥२१॥ सप्तमी में तेल और लवण से रहित भोजन करके मोन व्रत से समुक्त रहे फिर भूति की इच्छा रखने वाले को पुराणों का ध्वषण करना चाहिए ॥२२॥ इसी विधि से दोनों पक्षों में सब करे जब तक माघ शुक्ल पक्ष की सप्तमी पुन आवे करता रहे ॥-३॥

## ४२—विशोक द्वादशी व्रत कथन

किमभीष्टवियोगशोकसपादलमुद्धतुमुपोषण व्रत वा ।  
विमवोद्भवकारि भूलनेऽस्मिन् भवभीतेरपि सूदनञ्च पु स ॥१॥  
परिपृष्टमिदं जगत् प्रियन्ते विबुधानामपि दुर्लभ महत्त्वात् ।  
तत्र भक्तिमनस्तयापि वक्ष्ये घनमिन्द्रासुरमानवेषु गुह्यम् ॥२॥  
पुण्यमाश्वपुजे मासि विशोऽद्वादशीव्रतम् ।  
दशम्या लघुभुविद्वाना भेन्नियमेनतु ॥३॥  
उदङ्मुख प्राङ्मुखो वा दन्तधाव नपूर्वकम् ।  
एकदश्यानिराहार समभ्यर्चनपूर्वकम् ॥  
यिद्य वाऽभ्यर्च्य विधिवद्भोक्ष्यामि त्वपरैऽहनि । ४॥  
एव नियमः तमुप्ता प्रातरु वाय मानव ।

स्नान त्वदीयै कृत्यान्तश्चनञ्जनेन तु ॥  
 शुक्लमात्माम्बरधरः पूजयेच्छीशमुत्तलः ॥५॥  
 विशोकान्नमः पादौ जघे च वरदाय वै ।  
 श्रोत्राय जानुनी तद्वदू ॥ जलशायिने ॥६॥  
 चन्दर्पाय नमो गुह्य माघवाय मनः कटिम् ।  
 दामोदरायेत्युदरम्पाश्व च विपुलाय शी ॥७॥

मनु महापुरुष ने कहा—हं जनवन् ! क्या कोई नूनपटल में ऐसा  
 वस्त्र और चरवाश है जो जमीन की मिट्टि करने वाला हो और विशेष  
 तथा शोक के सघात से उठकर कर्ण के निचे समय ही तथा वैभव के  
 उद्भव को करने वाला हो तथा पुरुष के हृदय में जो एक इस सघार का  
 भय हुआ हुआ है उसको नष्ट कर देने वाला भी हो ? ॥१॥ मन्त्र  
 मयवान् ने कहा आप का यह पृथ्वी पूर्ण उदर के निचे ब्रिय है और  
 महान् की दृष्टि से यह दोनों के निचे भी परम दुर्जन है । यह वस्त्र तो  
 ऐसा ही मजबूत कर देने वाला है और इन्द्र-अमुष् और मानवों में अति  
 मोहनीय है तो भी क्योंकि आप अविजयमान हैं इसी निचे बसा रहा हू ।  
 ॥२॥ भगवन् मनु में परम पुण्यमय यह विशोक शास्त्री का वस्त्र होता  
 है । दगमी विधि में विद्वान् पुरुष अत्यन्त मधु भोजन करे और फिर  
 नियम पूर्वक इसका समारम्भ कर देना चाहिए ॥३॥ उत्तर की ओर  
 मुख बना या पूर्व दिशा की तरफ मुख बना होकर दन्तप्राशन आदि  
 दैनिक कृत्य को पहिले करते हुए एकादशी में निराहार रहकर पूर्व में  
 सनम्यर्चन करना चाहिए ॥४॥ पहिले विधि पूर्वक श्री का पूजन करके  
 दूसरे दिन में भोजन करूँगा—ऐसे नियम का अनुसरण करके भजन करे  
 और प्रभात में उठकर साधक मानव को सर्वोपश्रित से मिश्रित बन से  
 और पञ्च पाप के जल से स्नान करना चाहिए । फिर प्रति पुरुष दस  
 घण्टे होकर उन्मत्तों से श्रीज प्रभु का भजन करना चाहिए ॥५॥ 'विर्मा-  
 नाय नमः'—इससे चरमों का 'वरदाय नमः' इससे दोनों ओरों का पूजन

करे, । 'थीशाय नमः' इससे जानुओं का, 'जलशायिने नमः' इससे  
वरुणों का पूजन करे ॥६॥ 'वन्दयिष्ये नमः' इस मन्त्र से गुह्य का तथा  
'माधवाय नमः'—इसका उच्चारण कर कटिका पूजन करना चाहिए ।  
'दामोदराय' इससे उदर का और 'विपुलाय नमः' इससे दोनों पाशों का  
अर्चन करे ॥७॥

नाभिञ्च पद्मनाभाय हृदय मनन्याय व ।  
श्रीधराय विभोवक्ष, वरी मधुजिते नमः ॥८॥  
चक्रिणे वामबाहुञ्च दक्षिणङ्गदिने नमः ।  
वैकुण्ठाय नमः कण्ठमास्य यज्ञमुखाय वै ॥९॥  
नासामशोकनिघये वासुदेवाय चाक्षिणी ।  
लालट वामनायेति हरयेति पुनर्भ्रूवौ ॥१०॥  
अलकान् माधवायेति किरीट विश्वरूपिणे ।  
ततस्तु मण्डभ कृत्वा स्थण्डिलकारये नृदा ॥११॥  
चतुरस्र समन्ताञ्च रत्निमात्रमुदक्प्लवम् ।  
अथैतानि नमः अर्चयेत्ततो विषयसमावृतम् ॥१२॥

विशोक द्वादशो वत्त कथन

द्वारा इस भाँति योगिन्द का भरी प्राँति नूतन करके फिर इसके उपरान्त मण्डन का निर्माण कराकर मूर्ति का से स्थण्डिल की रचना करनी चाहिये ॥ १२ ॥ सभी ओर से चौकीर और रत्निमात्र उदम्बलव वाला-स्तम्भ-द्वय ( मनोहर ) दोनों ओर विप्रत्रय से समावृत बनाना चाहिए ॥ १३ ॥

अङ्गुलैर्नोच्छ्रिता विप्रास्तद्विस्तारस्तु द्व्यङ्गुलः ।  
स्थण्डिलस्योपरिष्ठाञ्च भित्तिरिष्ठाङ्गुला भवेत् ॥ १४ ॥  
नदीवालुकयाक्षूर्पेलक्ष्म्या प्रतिकृतिन्यसेत् ।  
स्थाण्डिलेशूर्पमारोप्यलक्ष्मीमित्यर्चयेद्बुधः ॥ १५ ॥  
नमो देव्यै नमः शान्त्यै नमोलक्ष्म्यै नमः श्रियै ।  
नमः पुष्ट्यै नमस्तुष्ट्यै वृष्ट्यै हृष्ट्यै नमोनमः ॥ १६ ॥  
विशोकादुःखनाशाय विशोकावरदास्तु मे ।  
विशोकाचास्तु सम्पत्त्यै विशोकासर्वसिद्धये ॥ १७ ॥

एक अंगुल विप्र उच्छिन्न हो और उसका विस्तार दो अंगुल का होना चाहिए । स्थण्डिल के ऊपर जो भित्ति हो वह आठ अंगुल प्रमाण वाली रहनी चाहिये ॥ १४ ॥ नदी की बालुका से निमित्त हुई लक्ष्मी की प्रतिकृति का न्यास शूर्प में करे । फिर उस स्थण्डिल में शूर्प का आरोप करके बुध पुष्प को इस तरह लक्ष्मी का अभ्यर्चन करना चाहिए ॥ १५ ॥ अर्चना के समय में उच्चारण किये जाने वाले मन्त्र ये हैं—“देव्यै नमः, शान्त्यै नमः, लक्ष्म्यै नमः, श्रियै नमः, पुष्ट्यै नमः, तुष्ट्यै नमः, हृष्ट्यै नमः, । हे देवि ! आप दुःखों का नाश करने के लिये निम्न शोक वाली हैं । प्रार्थना है कि मुझ पर भी आप अब विशोका हो जावें । सम्पत्ति के लिये विशोका होवें और सब प्रकार की सिद्धि के लिये भी विशोका हो जावें ॥ १६, १७ ॥

## ४३ — ग्रह शान्ति वर्णनम्

वैशम्पायनमासीनमपृच्छच्छीनकः पुरा ।  
 सर्वकामाप्तयेनित्यकथंशान्तिकपीष्टिकम् ॥१॥  
 श्रीकामः शान्तिकामो वा ग्रहयज्ञ समारभेत् ।  
 वृध्यायुः पुष्टिकामो वा तर्धैवाभिचरन् पुनः ॥  
 येन ब्रह्मन् ! विधानेन तन्मे निगदतः शृणु ॥२॥  
 सर्वशास्त्राण्यनुक्रम्यसक्षिप्यग्रन्थविस्तरम् ।  
 ग्रहशान्तिप्रवक्ष्यामिपुराणश्रुतिनोदिताम् ॥३॥  
 पुण्येऽह्नि विप्रकथिते कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ।  
 ग्रहान्ग्रहादिदेवाश्चस्याप्यहोमं समारभेत् ॥४॥  
 ग्रहयज्ञस्त्रिधा प्राक्तः पुराणश्रुतिकोर्वदः ।  
 प्रथमोऽयुतहोम स्यात्तल्लहोमस्ततः परम् ॥५॥  
 तृतीयः कोटिहोमस्तु सर्वकामफलप्रदः ।  
 अयुतेनाहुतीनाञ्च नवग्रहमखः स्मृतः ॥६॥  
 तस्य तावद्विधिं वक्ष्येपुराणश्रुतिभाषितम् ।  
 गतंस्थोत्तरपूर्वेण वितास्तद्वयविस्तृताम् ॥७॥

महामहिम श्री सुनन्दी ने कहा—पुरातन समय में एक स्थल पर  
 समासीन वैशम्पायन मुनि से शीनक जी ने पूछा था कि समस्त कामनाओं  
 की प्राप्ति के लिये नित्य ही शान्तिक और पीष्टिक कैसे होगा अर्थात्  
 इसका साधन किस प्रकार से किया जा सकता है—यह बतलाइये ॥१॥  
 भगवान् वैशम्पायन जी ने कहा—श्री की कामना करने वाला कोई  
 पुण्य हो या शान्ति की इच्छा रखने वाला कोई होवे उन दोनों ही प्रकार  
 के पुरुषों को यह यज्ञ करने का समारम्भ कर देना चाहिए । वृद्धि—आयु  
 तथा द्रष्टि की कामना वाला हो तथा कोई अभिचार के करने की इच्छा  
 वाला हो उसको भी वैसा ही करना चाहिये । हे ब्रह्मन् ! जिस विधान

स करना है उनको कबन करने मुझमें श्रवण करलो ॥२॥ समस्त शास्त्रों का अनुक्रमण करके और ग्रन्थ के विस्तार का सलेन करके पुराण और श्रुति के द्वारा कथित ग्रहों की शान्ति को बनलाते हैं ॥३॥ विप्रों के द्वारा बताये हुए किसी भी पुण्य दिन में ब्राह्मणों का वाचन करके फिर ग्रहों—ग्रहों के आदि देवों को स्थापित करके होम का समारम्भ कर देना चाहिए ॥४॥ पुराणों में तथा श्रुति महा मनीषियों ने ग्रहयज्ञ तीन प्रकार का कहा है । प्रथम तो वह है जिस ग्रह यज्ञ में दश सहस्र आहुतियों का होम किया जाता है, द्वितीय वह होता है जिस ग्रह यज्ञ में एक लाख आहुतियों का होम किया जाता है ॥५॥ तीसरा जो इस ग्रह यज्ञ का भेद है उसमें एक करोड़ आहुतियों का होम होता है । यह तो समस्त कामनाओं के कलों का प्रदान करने वाला हुआ करता है । जिसमें दश सहस्र आहुतियाँ ही जाया करती हैं वह नवग्रह यज्ञ के नाम से कहा गया है ॥६॥ उसको जो विधि पुराणों के तथा श्रुति के द्वारा भाषित की गयी है उसे ही बतलाऊँगा । जो गर्त हो उसके उत्तर और पूव दिशा में हो विश्वि ( वासिष्ठ ) के विस्तार वाली वे दो बनाये ॥७॥

‘षप्रद्वीयावृतावेदि वितस्त्र्युच्छ्रयसन्मिताम् ।  
सस्थापनायदवानाञ्चतुरस्त्रामुदङ्मुखां ॥८॥  
अग्निप्रणयनं कृत्वा तस्यामावाहयेत्पुराणम् ।  
देवतानातलं स्थाप्याविशतिर्द्वादशाधिका । ९  
सूय्य सोमस्तथा भीमाबुधजीवसितावजा ।  
गृहं केतुरिति प्रोक्ता ग्रहा लोकहितावहा ॥१०॥  
मध्येतु भास्करं विन्ध्यात्सोहितं दक्षिणेन तु ।  
उत्तरेण गुरुं विन्ध्यात्तद्विषयं पूर्वोत्तरेण तु ॥११॥  
पूर्वेण भागव विन्ध्यात् सामं दक्षिणपूर्वके ।  
पश्चिमेन शनिं विन्ध्याद्बहुं पश्चिमदक्षिणे ॥  
पश्चिमोत्तरतः केतुं स्थापय च्छ्वेततण्डुल ॥१२॥

भास्करस्येश्वरं विन्ध्यादुमाञ्चशशिनस्तथा ।  
 स्कन्दमङ्गारकस्यापि बुधस्य च तथा हरिम् ॥१३॥  
 ब्रह्माणञ्च गुरोर्विन्ध्याञ्छुक्रस्यापि शचीपतिम् ।  
 शनैश्चरस्य तु यमं राहोः कालं तथैव च ॥१४॥  
 केतोर्वै चित्रगुप्तञ्च सर्वेषामधिदेवताः ।  
 अग्निरापः क्षितिर्विष्णुरिन्द्र ऐन्द्री च देवताः ॥१५॥

उस वेदी को दो वप्रो से आवृत करावे और एक वितस्ति ( विलादि ) उच्छ्रय ( ऊँ चाई ) से समित करे । यह देवगणों की स्थापना करने के लिये ही चौकोर और उत्तर की ओर मुख वाली निर्मित करानी चाहिए ॥८॥ अग्नि देव का प्रणयन करके उसी वेदी में सुरगणों का आवाहन करना चाहिए । वहा पर द्वादश अधिक विंशति अर्थात् बत्तीस देवताओं की स्थापना करनी चाहिए ॥९॥ सूर्य—सोम—मङ्गल—बुध—गुरु—शुक्र—तनू—राहु—केतु ये सौको के हित के करने वाले ग्रह कहे गये हैं ॥१०॥ उसमें मध्य भाग में भगवान् भास्कर की स्थापना करे जो लोहित वर्ण का होवे और दक्षिण दिशा की ओर ही रहना चाहिए । उत्तर उत्तर की ओर गुरु को स्थापित करे और पूर्वोत्तर में बुध ग्रह को स्थापित करना चाहिये ॥११॥ पूर्व दिशा में शुक्र को तथा दक्षिण पूर्व में सोम की स्थापना करे । पश्चिम में शनि को तथा पश्चिम दक्षिण में राहु को स्थापित करे । एवं पश्चिम उत्तर भाग में केतु ग्रह की स्थापना धुवल तण्डुलो से करनी चाहिये ॥१२॥ भास्कर ग्रह का अधिदेवता ईश्वर है और चन्द्रमा का उमा है । भोम का स्कन्द अधिदेव होता है एवं प्रधवा हरि है ॥१३॥ गुरु का अधिदेवता ब्रह्मा है तथा शुक्र का स्वामी शचीपति इन्दु है । शनैश्चर का अधिदेव यम और राहु का बाल बताया गया है तथा केतु का अधिदेवता चित्रगुप्त है—इस प्रकार से सब ग्रहों के अधिदेवता होते हैं । अग्नि—आप (जल)—क्षिति—विष्णु—इन्द्र और ऐन्द्री देवता हैं ॥१४, १५॥

भी तदनुकूल ही होता है । सोम व लिय धृत और पायस समर्पित करे ।  
मोन को सयाव अर्पित करे और युध के लिय क्षीर पट्टित ॥१६॥  
गुरु को दधि और ओदन दवे तथा शुक्र को गुह्योदन अर्पित कर । अनि  
को हृत्तर राहु और वेतु को विमोदन देव । इस प्रकार स सब को  
भक्ष्य पदाय है उन्ही से सबका अर्चन करना चाहिये ॥२०॥

प्रागुत्तरेण तस्माच्च दध्यक्षान्विभूषितम् ।  
चूतपल्लवस-छन्न पल्लवयुगान्वितम् ॥२१॥  
पञ्चरत्नसम-युक्त पञ्चभङ्गसमन्वितम् ।  
स्थापयेदग्रण कुम्भवरुण तत्र विन्यसेत् ॥२२॥  
गङ्गाद्या सरित सर्वा समुद्राश्च सरासि च ।  
गजाश्वरथ्यावस्त्रीषसङ्गमाद्भृदगोकुलात् ॥२३॥  
मृदमानायविप्रेन्द्र ! सर्वोपधिजलान्वितम् ।  
स्नानार्थं विन्यसत्तत्र यजमानस्य धर्ममावत् ॥२४॥  
सर्वे समुद्रा सरित सरासि च नदास्तथा ।  
आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारका ॥२५॥  
एवमावाहयेदेतान्मरान् मुनिसत्तम । ।  
होम समारभेत् सर्पियवव्रीहितिलादिना ॥२६॥  
४ कं पालाशश्चदिरावपामार्गोऽथ पिप्पल ।  
औदुम्बर शमीदूर्वाकुशाश्च समिध क्रमात् ॥२७॥  
एकैकस्याष्टकशतमष्टाविंशतिमेव वा ।  
होत०-यामधुसर्पिभ्या दध्ना चैव समन्विता ॥२८॥

इसके पूर्व और उत्तर में दाघ-अक्षते से विभूषित-आमू के  
पल्लवों से सछ न-फल और दो वस्त्रों से समन्वित-पाँच प्रकार के रत्नों  
से युक्त और पञ्चभङ्ग से सयुक्त विनाग्रण वाला वरुण देवता व कुम्भ  
की स्थापना कर वि यास करना चाहिए ॥२१, २२॥ गङ्गा आदि सभी  
सरिताएँ—समुद्र और सरो का भी वि यास करे । गज—अश्व की



शाला—रथ्या (गली)—वल्मीक ( साँपकी बगो )—सङ्क्रम—हृद और  
गोत्रों के रहने की भूमि इनसे मृत्तिका का आहरण करे । हे विप्रेन्द्र !  
वहाँ पर घमं के ज्ञाता पुरुष को यजमान के स्नान के लिये सर्वोपधि और  
जल से परिपूर्ण कृष्ण का विन्यास भी करना चाहिए ॥२३॥ २४॥ उस  
समय में निम्न प्रकार से सम्पूर्ण जलाशयों का आवाहन करे—सभी  
समुद्र—सरिताएँ—परोवर और नद यहाँ पर आबें जो यजमान के हारितों  
( पाप कर्मों ) के क्षय करने वाले हैं ॥ २५ ॥ हे मुनियो मे परम श्रेष्ठ !  
इसी प्रकार स इन समस्त देवों का भी वहाँ पर आवाहन करना चाहिए  
और इसके अनन्तर फिर धृन्—यद्—बोहि और निल आदि के शाकल्प से  
होम का आरम्भ करे ॥२६॥ कम से समिधाएँ भी होवें जो अकं (आक)  
पनाग ( हाक ) खदिर—अपामार्ग—वीपल—गूलर—शमी ( छीकर )—  
दूर्वा और गुहा ये होती हैं ॥ २७ ॥ एक-एक के लिये बष्टोत्तर शत  
( एक सौ आठ ) अथवा केवल अट्ठाईस ही आहुतिर्पा मधु और  
मृत से और दधि से समन्वित करके देनी चाहिए अर्थात् हवन  
करे ॥ २८ ॥

प्रादेशमासाजशिफा असाखाअपलाशिनीः ।  
समिधः यत्पयेत्प्राज्ञः सर्वकर्मसुखदा ॥२६॥  
देवानामपि सर्वपामुपायु परमार्थवित् ।  
स्वेन स्वेनैव मन्त्रेण हातव्याः समिधः पृथक् ॥३०॥  
होतव्यं च घृताभ्यक्तं च ह मस्यादिकं पुनः ।  
मन्त्रं दंशाहुतीहुत्वा होमं व्याहृतिमिस्ततः ॥३१॥  
उदङ्मुखाः प्राङ्मुखावाकुपुं ब्रह्मणपुङ्गवाः ।  
मन्त्रवन्तश्च कर्त्ताव्याश्चरवः प्रतिदंष्टतम् ॥३२॥  
हुत्वा च तान्चरन् सप्त्यक् ततो होम समाचरेत् ।  
आकृष्णेति च सूर्याय होमः वार्यो द्विजन्मना ॥३३॥  
आप्यायस्वेतिसोमायमन्त्रेण जुहुयात् पुनः ।

अग्निर्मूर्धादिवो मन्त्र इति भौमाय कीर्तयेत् ॥३४॥

अग्ने ! विवस्वदुपस इति सोममुताय वै ।

बृहस्पते ! परिदीया रथेनेति गुरोर्मतः ॥३५॥

सर्वदा सभी कर्मों में प्राज्ञ पुरुष को प्रादेश मात्र—अशिका—  
विनाशाला वाली और पत्रों से रहित ही समिधाओं की वस्त्रता करनी  
चाहिए ॥ २६ ॥ परमार्थ के ज्ञाता पुरुष को सभी देवों के लिये उपाश  
होते हुए ही अपने २ उनके मन्त्रों के द्वारा पृथक् २ समिधाओं की आहु-  
तियाँ देनी चाहिए ॥ ३० ॥ चरु और मध्यादि को घृत से मग्न करके  
ही हवन करना चाहिए । मन्त्रों के द्वारा द्वादश आहुतियों का हवन करके  
फिर व्याहुतियों के द्वारा होम करना चाहिए ॥ ३१ ॥ ओष्ठ व ह्यण या  
तो उत्तर की ओर मुखों वाले रहें या पूर्व की ओर मुख करने वाले होने  
चाहिए । जो मन्त्रों वाले हैं उनको प्रत्येक देव के चरु करने चाहिए ।  
उन चरुओं का हवन करके मत्ती भाँति होम का समाचरण करे । द्विजन्मा  
के द्वारा 'आहुष्ण'—इत्यादि मन्त्र के द्वारा ही सूर्य के लिये होम करना  
चाहिए ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ "आप्यापस्य"—इत्यादि मन्त्र से चन्द्रमा के लिए  
हवन करे । 'अग्निर्मूर्धादिवो' इत्यादि मन्त्र भौम के हवन के लिये  
उपचरित करे ॥ ३४ ॥ "अग्ने ! विवस्वदुपस" इत्यादि मन्त्र का प्रयोग  
सोम मुत बुध के लिए करे तथा 'बृहस्पते ! परिदीया रथेन' इत्यादि मन्त्र  
का प्रयोग गुरु के लिए माना गया है ॥ ३५ ॥

शुक्रगते अन्यदिनिच शुक्रस्यापि निगद्यते ।

दानैश्चरायेति पुनः शत्रो देवीति होमयेत् ॥

पयानश्च स आभुव इति राहोर्मुदाहृतः ॥३६॥

वेतुं शृण्वन्नपि प्रयात् वेतूनामपि दान्तये ।

आधो गजेति दद्रस्य दत्तिहोम समाचरेत् ॥

आपोऽपिष्टेऽयमायास्तु रयोनेयाति स्वामिनस्तथा ॥३७॥

विष्णोरिदं विष्णुरित्तमाप्नोति स्वयम्भुवः ।

इन्द्रमिद्वेवतायेति इन्द्राय जुहुयात्ततः ॥३८  
 तथा यमस्यचायं गौरिति होमः प्रकीर्तितः ।  
 कालस्यब्रह्मयज्ञानमिति मन्त्रविदो विदुः ॥३९  
 चित्रगुप्तस्य चाज्ञातमिति मन्त्रविदो विदुः ।  
 अग्नि दूतं वृषीमह इति वह्नेरुदाहृतः ॥४०  
 उदुत्तम वरुणमित्यपा मन्त्रः प्रकीर्तितः ।  
 भूमे पृथिव्यन्तरिक्षमिति वेदेषु पठ्यते ॥४१  
 सहस्रशीर्षा पुरुष इति विष्णोरुदाहृतः ॥४२  
 इन्द्रायेन्दो मरुतपत इति शक्रस्य शस्यते ॥४३

‘शुक्रते अग्न्यद्’—इत्यादि मन्त्र के लिये हवन करने में बोला गया करता है । ‘सन्नोदेवी’ इत्यादि मन्त्र का उच्चारण शनिदेव के होम के लिये करना चाहिए और ‘कयानशिवन्न आभुव’—इत्यादि मन्त्र राहु के लिए होम बताया गया है ॥ ३६ ॥ ‘केतुं कृण्वन्माप’ इत्यादि मन्त्र का उच्चारण केतुओं की शान्ति के लिये करना चाहिए । ‘आयोदिष्ठा’—इत्यादि मन्त्र के द्वारा रुद्र का बलि होम समाचरित । ‘आयोदिष्ठा’—इत्यादि मन्त्र से उमादेवी का तथा ‘स्योन’ इत्यादि से स्वामि कार्तिकेय का बलि होम करे ॥ ३७ ॥ ‘इदविष्णु’ इत्यादि मन्त्र से भगवान् विष्णु का तथा ‘तमीदिति’ इत्यादि के द्वारा स्वयम्भू का और ‘इन्द्राग्निदेवताय’ इत्यादि से इन्द्रदेव के लिये हवन करना चाहिए ॥ ३८ ॥ यम के लिए ‘अयं गौरिति’ इत्यादि मन्त्र के द्वारा होम करे—ऐसा कीर्तित किया है । ‘कालस्य ब्रह्मयज्ञानम्’ इत्यादि को काल के लिये मन्त्रों के वेत्ता लोग जानते हैं ॥ ३९ ॥ चित्रगुप्त के लिये ‘अज्ञातम्’ इत्यादि को मन्त्रों के ज्ञाता जानते हैं । ‘अग्निदूत वृषीमहे’—इत्यादि को मन्त्र वह्निदेव के लिये बताया गया है ॥ ४० ॥ ‘उदुत्तम वरुणम्’ इत्यादि अपों का मन्त्र कहा गया है और ‘पृथिव्यन्त रिक्षम्’ इत्यादि मन्त्र को भूमि के लिये वेदों में पढ़ा जाया करता है ॥ ४१ ॥ ‘सहस्रशीर्षा पुरुष’—इत्यादि मन्त्र भगवान्

विष्णु के लिए कहा गया है और 'इन्द्रामेन्दो मस्तवत' इत्यादि मन्त्र शक्त के लिए अशस्त माना जाता है-॥४२, ४३॥ ।

उत्तापर्णे सुभगे इति देव्याः समाचरेत् ।  
 प्रजापतेः पुनर्होमः प्रजापतिरिति स्मृतः ॥४४॥  
 नमास्तु सर्वेभ्य इति सर्पाणां मन्त्र उच्यते ।  
 एष ब्रह्माय ऋत्विज्य इति ब्रह्माण्डाहृतः ॥४५॥  
 विनायकस्य चानूनमिति मन्त्रो बुधेः स्मृतः ।  
 जातवेदसे मुनवामिति दुर्गामन्त्र उच्यते ॥४६॥  
 आदिप्रत्नस्य रेतस आकाशस्य उदाहृतः ।  
 प्राणाशिशुमंहोनाञ्ज वायोपन्त्रः प्रकीर्तितः ॥४७॥  
 एषो उवा अपूर्वादिस्थिष्वनोर्मन्त्र उच्यते ।  
 पूर्णाद्वृत्तिस्तु मूर्धानं दिवइत्यभिपातयेत् ॥४८॥

“उत्तापर्णे सुभगे”—इत्यादि मन्त्र का प्रयोग देवी के लिये करना चाहिए । प्रजापति का पुनः होम “प्रजा पति” इत्यादि के द्वारा बताया गया है ॥४४॥ “नमोऽस्तु सर्वेभ्यः” इत्यादि मन्त्र सर्पों का उदाहृत किया गया है । “एष ब्रह्माय ऋत्विज्य” इत्यादि मन्त्र को ब्रह्मा के विषय में प्रयुक्त करना चाहिए । विनायक का ‘चानूनम्’—इत्यादि मन्त्र है । जिसकी बुध लोगों ने कहा है । जात वेदा के लिये ‘मुनवाम्’ इत्यादि दुर्गामन्त्र कहा जाता है । ‘आदि प्रत्नस्य रेतस’ इत्यादि मन्त्र आकाश का उदाहृत किया गया है । “प्राणा शिशु मही नाञ्ज” इत्यादि मन्त्र अग्नि की कुमारों के लिये कहा जाता है । इनके पश्चात् जो पूर्णा हुति हो ही जावे वह ‘मूर्धानं दिव’ इत्यादि मन्त्र के द्वारा ही अभिपातित करनी चाहिए ॥४५, ४६, ४७, ४८॥

## ४४-शिव चतुर्दशी व्रत कथन

भगवन् ! भूतभव्येश ! तथान्यदपि यच्छ्रुतम् ।  
 भुक्तिमुक्तिफलायास्तत्पुनर्वक्तुमर्हसि ॥१॥  
 एतमुक्तोऽग्रवोच्छम्भुरय वाङ्मयपारगः ।  
 मत्समस्तवसा ब्रह्मन् ! पुराणश्रुतिविस्तरैः ॥२॥  
 घर्मोऽय वृषरूपेण नन्दीनाम गणाधिपः ।  
 घर्मान् माहेश्वरान् वक्ष्यत्यतः प्रभृतिनारद ? ॥३॥  
 शृणुष्वभावहितो ब्रह्मन् ! वक्ष्येमाहेश्वरव्रतम् ।  
 त्रिपुलोकेषु विद्यात् नाम्नाधिवचतुर्दशी ॥४॥  
 मार्गशीर्षं त्रयोदश्या सितायामेकभोजनः ।  
 प्रार्थयेद्देवदेवेश ! त्वामहं शरणं गतः ॥५॥  
 चतुर्दश्या निराहारः सम्पगम्य च्यं शङ्करम् ।  
 सुवणवृषभं वत्सा भोक्ष्यामि च परेऽहनि ॥६॥  
 एव नियमकृत् स्तुत्वा प्रातस्तथाय मानवः ।  
 कृतस्नानञ्च पश्चादुमया सह शङ्करम् ॥७॥  
 पूजयेत्कमलं शुभ्रं गन्धमाल्यानुलेपनः ॥८॥

देवर्षि श्रो नारदजी ने कहा—हे भगवन् ! हे भूत भव्य के ईश !

आपके मुखारविन्द से अन्य जो भी कुछ श्रवण किया है वह भुक्ति और  
 मुक्ति दोनों के फल प्राप्त करने के लिये पर्याप्त है उसे पुनः आप कहने  
 के योग्य होते हैं ॥१॥ इस प्रकार से जब भगवान् शम्भु से कहा गया तो  
 उन्होंने कहा था कि यह है ब्रह्मन् ! पुराण और श्रुति के विस्तारों से  
 तथा सपरचर्या से वाङ्मय का पारगामी मेरे ही समान है ॥२॥ हे  
 नारद ! नन्दियों का गणाधिप वृष रूप से यह धर्म है जो महा से आगे  
 माहेश्वर घर्मों को बनायेगा ॥३॥ मत्स्य आवाकन् ने कहा—हे ब्रह्मन् !  
 अब आर पूर्णतया साक्षात् होकर श्रवण कीजिए ! हम माहेश्वर व्रतों  
 के विषय में कहेंगे । यह शिव चतुर्दशी का व्रत दोनों तीर्थों में परम

विख्यात है ॥४॥ मार्गशीर्ष मास में शुक्ल पक्ष में त्रयोदशी के दिन केवल एक ही बार भोजन करे और प्रार्थना करनी चाहिये—हे देव देवेश ! मैं आपकी शरणगति में सम्प्राप्त हो गया हूँ ॥५॥ चतुर्दशी के दिन पूर्णतया आहार से रहित होकर शकर का भली भाँति अभ्यर्चन कर के ही मैं सुवर्ण का निमित्त वृषभ का दान करके दूसरे दिन भोजन करूँगा—ऐसा मन में सकल्प करे ॥ ६ ॥ इस प्रकार से निदम करने वाले पुरुष को स्तवन करके शयन करना चाहिए और प्रभात बेला में उठकर स्नान जप आदि सम्पूर्ण नैतिक कर्मों का सुसम्पादन करके फिर जगज्जननी उमा के सहित भगवान् शकर का शुभ्र वस्त्रों और गन्ध तथा माल्य एवं अनुलेपन आदि उचिन् उपचागे से पूजन करना चाहिये ॥७॥

पादो नम शिवायेति शिरः सर्वात्मने नमः ।  
 त्रिनेत्रायेति नेत्राणि त्रिसाट् हरये नमः ॥८॥  
 मुखभिन्दुमुखायेति क्लीबध्यायेतिकन्धराम् !  
 सद्योजाताय कर्णौतु वामदेवायर्धभुजौ ॥९॥  
 अघोरहृदयायैति हृदयञ्चाभिपूजयेत् ।  
 स्तनी तत्पुरुषायैति तथेक्षानाय चोदरम् ॥१०॥  
 पादर्वे चानन्तघर्माय ज्ञानभूतायवै षट्पिम् ।  
 ऊरू चानन्तवैराग्यसिंहायैत्यभिपूजयेत् ॥११॥  
 अङ्गुलैश्चैवार्थनाथाय जानुनीचाङ्गैश्च वृद्धः ।  
 प्रक्षालयन्मोजघे गुल्फीष्योमात्मनेनमः ॥१२॥  
 ध्योमवेशात्मरूपायवेशान् पृष्ठञ्चपूजयेत् ।  
 नमःपृष्ठैर्नमस्तुपृष्ठे पावनीञ्चापिपूजयेत् ॥१३॥  
 ततस्तु वृषभ हैममुदबुधभगमन्वितम् ।  
 शुब्रगमात्पाम्बरधर पञ्चरत्नसमन्वितम् ॥  
 भक्ष्योर्नानाविधंयुक्तं श्राद्धाय निवेदयेत् ॥१४॥

‘नमः शिवाय’—इससे चरणों का यजन करे । ‘सर्वात्मने नमः’ इस मन्त्र के द्वारा शिर का पूजन करे । ‘त्रिनेत्राय नमः’—इससे नेत्रों का ‘हरये नमः’—इससे ललाट का पूजन करना चाहिये । ‘इन्दुमुखाय नमः’—इसके द्वारा मुख का—‘त्रीदृष्टाय नमः’ इससे कन्धरा का—‘सर्पो जाताय नमः’—इससे कानों का ‘धाम देवाय नमः’—इस मन्त्र से भुजाओं का अर्चन करे । ‘अघोर हृदयाय नमः’—इससे हृदय का अभिपूजन करना चाहिए । ‘सम्पुण्याय नमः’—इससे स्तनों का यजन करे । ‘ईशानाय नमः’—इससे उदर का—‘अनन्त घर्माय नमः’ इससे पार्श्वों का ‘शानभूताय नमः’ इसके द्वारा कटिका—‘अनन्त वैराग्य मिहाय नमः’—इससे अरण्यो का अभिपूजन करना चाहिए । ‘अनन्तेश्वर्ये नायाम नमः’ इससे पुत्र पुरुष को दोनों जानुओं का समर्चन करना चाहिए । ‘श्रवणाय नमः’—इसके द्वारा जाँघों का, ‘श्रीमात्मने नमः’ इसका उच्चारण कर गुल्फों का, ‘श्रीमकेशात्मस्त्राय नमः’ इससे केशों का और पृष्ठभाग का पूजन करे । ‘पुष्ट्यै नमः—तुष्ट्यै नमः’—इन मन्त्रों से पार्वती का भी पूजन करना चाहिए । इसके अनन्तर वृक्ष का यजन करे तथा मुक्तां निर्मित कृष्ण को जन से पूर्ण करके शुक्ल माल्य और अम्बर को धारण करने वाला करके पञ्च ग्लो से युक्त करके तथा अनेक प्रकार के मद्य पदार्थों से समन्वित करके ब्राह्मण के विषे दान देना चाहिए ॥८, ९॥

॥१०, ११, १२, १३, १४॥

ततो विप्रान् समाहूय तपयं दूक्षितः शुभान् ।  
 पृषदाज्यञ्च सप्राश्य स्वपेद्भूमावुदहं मुखः ॥१५॥  
 पञ्चदश्याततः पूज्य विप्रान् भुञ्जीतयाभ्यतः ।  
 तद्वत् कृष्णचतुर्दश्यामेतन् सर्वममाचरेत् ॥१६॥  
 चतुर्दशीषु सर्वाणि कुर्यान् पूर्ववदर्चनम् ।  
 ये तु मासे विशेषाः स्युस्तानि बोधकमादिह ॥१७॥  
 भागशोपादिमासेषु क्रमादेतदुदीरयेत् ।

शङ्कराय नमस्तेऽस्तु नमस्ते करवीरक ! ॥१८  
 द्यम्बकाय नमस्तेऽस्तु महेश्वरमतः परम् ।  
 नमस्तेऽस्तु महादेव ! स्थाणवेच ततः परम् ॥१९  
 नमः पशुपते नाथ ! नमस्ते शम्भवे पुनः ।  
 नमस्ते परमानन्द ! नमः सोमाद्धर्धारिणे ॥२०  
 नमो भीमाय हृत्येव त्वामहं शरणं गतः ।  
 गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधिसर्पिः कुशोदकम् ॥२१  
 पञ्चगव्यं ततोवित्त्वं कर्पूरञ्चागुरुयेवाः ।  
 तिलां कृष्णाश्च विधिं तत्प्राशनं क्रमशः स्मृतम् ॥  
 प्र तमासं चतुर्दश्योरेकं प्राशनं स्मृतम् ॥२२॥  
 मन्दाग्न्यालक्ष्मीभिश्च तथा धत्तूरकैरपि ।  
 सिन्दुवारैरशोकैश्च मल्लिकार्जुनैश्च पाटलैः ॥२३  
 अर्कपुष्पैः वदम्बैश्च शतपद्मैश्च तथोत्पलैः ।  
 एवंकेन चतुर्दश्योरचयेत्पावतीपतिम् ॥२४



प्राप्त अर्पित होवे । भीम के लिए नमस्कार है—इस प्रकार  
 भु कहुकर अन्त में प्रार्थना करे कि मैं आपकी भक्त्यागनि में प्राप्त हो  
 गया हूँ । गोमूत्र-गोमय-सीर-रजि-घृत-कुण्डक-पञ्चवर्ण-  
 शिख-कपूर-अमर-यव-हृण्ड तिन इनका दिधिवत् कम से प्राशन  
 कहा गया है । प्रति मास में दोनों चतुर्दशियों में एक-एक का प्राशन  
 बताया गया है ॥ ६, २०, २१ ॥ २॥ मन्डार-माचत्री-धतूर-सिन्धुवार  
 बसोह-मन्त्रिका-पाटल-अर्क पुष्प-कदम्ब-हृत्पत्री व पुष्प-उत्पल-इन  
 पुष्पों में से कम्यः एक एक के साथ दोनों चतुर्दशियों में पार्वती क स्वामी  
 का अर्चन करना चाहिए ॥ २३, २४ ॥

### ४५—फल त्याग माहात्म्य कथन

फलत्यागस्य माहात्म्यं यद्भवेच्छृणु नारद ।  
 यदक्षय पर लोके सर्वकामफलप्रदम् ॥  
 मार्गशीर्षे शुभे मासि तृतीयाया अने ! व्रतम् ।  
 द्वादश्यामयवाष्ट्या चतुर्दश्यामपि वा ।  
 आरभेच्छुक्लपक्षस्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ॥ २ ॥  
 अथैवमपि हि म तेषु पुण्येषु मुनिसत्तम ! ।  
 सदक्षिण्णमायत्तेन भोजयेच्छक्तितोद्विजान् । ३  
 अष्टादशाना घान्यानमवद्य फलमूलकः ।  
 वजयेदद्भमेकन्तु ऋते औषधकारणम् ॥  
 सवृष काञ्चन रुद्र घर्मराजञ्च कारवेत् ॥ ४ ॥  
 कूष्माण्ड मानुसिङ्गश्च वार्ताविम्वनमुत्तमा ।  
 आम्नाम्नातकपित्तानि कलिङ्गमयवातुरम् ॥ ५ ॥  
 श्रीफलाश्वत्थजदरञ्जम्बीर बदलीफलम् ।  
 वाश्मरन्दादिम यक्तया कालघौडाननपोद्भवा ॥ ६ ॥

मूलकामलकं जम्बूतिन्तिडीकरमदंकम् ।

कङ्कालेलाकतुण्डोरकरीर कुटज शमी ॥७॥

नन्दिकेश्वर ने कहा—हे नारद ! फल के त्याग करने का जो माहात्म्य होता है उसका श्रवण करो । जो लोक में परम अक्षय होता है और सब कामों के फल का प्रदान करने वाला है ॥ १ ॥ हे मुने ! यह मार्गशीर्ष शुभ मास में तृतीया-द्वादशी-अष्टमी अथवा चतुर्दशी तिथि में होता है । ब्राह्मण वाचन करके शुक्ल पक्ष में इसका समारम्भ करना चाहिए ॥ २ ॥ हे मुनिसत्तम ! अन्य पुण्य मासों में भी दक्षिणा के सहित यथा शक्ति पयस से द्विजों को भोजन कराना चाहिए ॥ ३ ॥ औषध के कारण के बिना अठारह घान्यों के अवघता का वर्जन कर देना चाहिए और एक वर्ष तक फल मूलों से रहे । वृष के सहित सुवर्ण का रत्न और घर्मराज निमित्त करावे ॥ ४ ॥ कूष्माण्ड—मातुलिङ्ग—वर्तक—आम्रातक पित्त—बलिङ्ग—आतुक—श्रीफल—अश्वत्थ—बदर—जाम्बोर—कदली फल—काशमर दाडिम इन सोलह को शक्ति पूर्वक कलघोत (सुवर्ण) के करावे ॥ ५, ६ ॥ मूली—आवला जम्बू—तिन्तिडी—करमदंक—कङ्काल—एलाक—तुण्डोर—करीर—कुटज—शमी—और दुम्बक—नालिकेर—द्राक्षा—घोनो वृहती इन पौडश फलों को शक्ति के अनुसार रोप्य अथात् चाँदी से निमित्त करावे ॥ ७ ॥

औदुम्बरं नालिकेर द्राक्षाथ वृहतोद्वयम् ।

रोप्यानि कारयेच्छवत्या फलानामानिषाडश ॥८॥

ताम्र तालफल कुट्यादिगस्तिफलमेव च ।

पिण्डारमाश्मयफल तथा सूरणवन्दवम् ॥९॥

रक्तालुकाकदकञ्च कनकाह्वञ्च चामटम् ।

चित्रवल्लीफल तद्वत्कुटशात्मलिजम्फलम् ॥१०॥

आम्रनिष्पावमधुकवटैमुद्गपटोलकम् ।

ताम्राणि पौडशतानि कारयेच्छविततो नर ॥११॥

उदबुधमद्वयबुध्याद्धान्योपरि सवस्त्रकम् ।

ततश्च कारयच्छया यथोपरि मुवाससी ॥१२

भक्ष्यपानत्रयोपेत यमरुद्रवृषान्वितम् ।

धेन्वा सहैव शान्तः प्रविप्रायाथ कुटुम्बिने ॥

सपत्नीकाय सपूज्य पुण्यऽहिं विनिवेदयत् ॥१३

ताल फल और भगीस्त फन को ताम्र से निमित्त करावे ।

विष्णु काश्मर्य फल—मूरण फल—रक्तानुष फल—वनवाहन—चिमिट  
विषवल्ली फल—इसी भाँति कूटशात्मलिङ्ग फल—भग्न निष्पाव—मधुव—  
वट—मुद्गा—पटोलक इन सोलह को मनुष्य के द्वारा शक्ति पूर्वक ताम्र  
के निमित्त कराना चाहिये ॥ ८, ९, १, ११ ॥ घान्य के ऊपर दो जल  
से पूर्ण कुम्भों को वस्त्र के सहित रखना करे । इसके अन्तर सुन्दर  
पत्नी से समन्वित शयन ऊपर करावे ॥ १२ ॥ तीन भक्ष्य पानों से उसे  
सयुक्त करे और यम-रुद्र तथा वृष से समुक्त करे तथा धेनु के सहित किसी  
परम शान्त स्वभाव वाले कुटुम्बा परी के सहित विप्र का वसी भाँति  
अर्चन करके किसी भी पुण्य स्थल में उसको ये सब विनिवेदित कर देना  
चाहिए ॥ १ ॥

यथा फलेषु सर्वेषु वसन्त्यमरकोटय ।

तथा सर्वफलत्यागप्रताड्भक्ति शिवेऽस्तु मे ॥१४

यथा शिवश्च घम्भश्च सदानन्तफलप्रदौ ।

तद्युक्तफलदानेन तौ स्याता मे वरप्रदौ ॥१५

यथा फलानन्यनन्तानि शिवभक्त्येषु सदा ।

सदानन्तफलवाप्तिरस्तु जन्मनि जन्मनि ॥१६

यथा भेदनपश्यामि शिवविष्णवक्त्रपद्मजान् ।

तथा ममास्तु विश्वात्माशङ्कर शङ्कर सदा । १७

इति दत्त्वा च तत्सर्वमलकृत्य च भूषणं ।

शक्तिश्चेच्छयन दयात्सार्वभौमस्वरमयुतम् । १८

अशम्भु पञ्चान्येव यथोक्तानि विधानतः ।

तथेदुग्धसयुक्ती शिवधर्मा च काञ्चनौ ॥ १६

रिसाय दत्त्वा भुञ्जीत वाम्यतस्तैलवजितम् ।

अन्यान्यपि यथा शक्त्या भोजयेच्छक्तिवतो द्विजान् ॥

इस प्रकार से सब फलों में जमरो की कोटिया निवास किया करे है उसी भाँति सब फलों के त्याग करने से मेरी भगवान् शिव में भक्ति होवे ॥ १४ ॥ जिस तरह से भगवान् शिव और धर्म सदा अनन्त रूपों के प्रदान करने वाले हैं सो युक्त फलदान के द्वारा वे दोनों मुझे बरदान करने वाले होंगे ॥ १५ ॥ जिस भाँति शिव के भक्तों में सर्वदा भास्वत्ता पाए होवे है उसी तरह से मुझे जन्म - जन्म में अनन्त फलों की प्राप्ति होवे ॥ १६ ॥ जिस रीति से शिव विष्णु सूर्य और ब्रह्मा के भेद को नहीं देखता हूँ अर्थात् इनमें कुछ भी भेद भाव नहीं समझता हूँ उसी प्रकार से मेरे लिए विश्व-आत्मा शङ्कर सदा शङ्कर हावे अर्थात् कल्याणकारी होवे ॥ १७ ॥ यह कहकर वह सब भूषणों से समलङ्कित करके दान करे और शक्ति हो तो विधान से यथोत्तम फलों का ही दान करे तथा जप से रागुनाशिव और मैं काञ्चन के निमित्त करावे । विप्र को दान करने मोक्ष प्राप्ति पूर्वक स्नान से रहित भोजन करे । अपनी शक्ति के अनुसार और दूसरे भी हजो

१५

१६

॥ १६ ॥ २० ॥

तदाराध्य पुमान् विश्वं प्राप्नोति कुशलं सदा ।  
 उष्मादादित्यवारेण सदा नवनाशगोमवेत् ॥ ३  
 प्रदा हस्तेन मणुक्त्वा दित्यस्य च वासरम् ।  
 तदा शनिदिने कुर्यादिकभुक्त्वा विमत्सरः ॥ ४  
 नवनमादित्यवारेण भोजयित्वा द्विजोत्तमान् ।  
 पञ्चदशसमुक्त्वा रवतचन्दनपद्मजम् ॥ ५  
 बिलिख्य विन्यसेत्सूर्यं नमस्कारेण पूर्वतः ।  
 दिवाकरं तयाग्नेयं विवस्वन्नमतः परम् ॥ ६  
 भगन्तु नैऋते देव वरुण पश्चिमे दले ।  
 महेन्द्रमनिले तद्वदादित्यञ्च तथोत्तरे ॥ ७

देवर्षि नारद जी ने कहा—हे गन्दीश ! जो भी पुरुषों को आशुष्य के करने वाला हो और जो अन्नान्न पत्रों का प्रदत्त करने वाला हो तथा जो मनुष्यों को शान्ति के लिये हो उसी व्रत की कृपा करके चाहिए । ॥१॥ नन्दिकेश्वर ने कहा—श्री विश्वामित्र का ब्रह्म सनातन परम धाम है वह सूर्य—अग्नि और चन्द्र के रूप से इस जगत् में तीन प्रकार का स्थित है । हे विश्व ! उसकी आराधना करके पुरुष मदा कुशल की प्राप्ति करता है । इसलिये सदा आदित्य के वार के दिन अर्थात् रविवार को रात्रि में ही अन्नान्न कराना होना चाहिए ॥२॥ ३॥ जिस समय में हस्त से युक्त सूर्य का वार होवे उस समय में अनिशार क दिन भाग्यता से रहित रहकर एक बार ही भोजन करना चाहिए ॥४॥ रविवार के दिन में रात्रि के समय में द्विजों को भोजन कराकर पत्रों से रक्त चन्दन के पद्म के बारह से समुक्त लिखकर सूर्य का विन्यास करे नमस्कार से पूर्व में दिवाकर को विन्यस्त करना चाहिए 'दिवाकराय नमः'—यह उच्चारण करते हुए ही विन्यास करे । इसमें तयाग्नेय आग्नेय दिशा में विश्वाम् को—नैऋत्य में अश्व को—पश्चिम दल में वरुण देव को—धनिन वीण में महेन्द्र को तथा उत्तर दिशा में उत्तर दिशा में आदित्य को विन्यस्त करना चाहिए ॥५॥ ६॥ ७॥

शान्तम शानभागे तु नमस्कारेणविन्यसेत् ।  
 कर्णिका पूर्वपत्रेतु सूर्यस्यतुरगात्न्यसेत् ॥८॥  
 दक्षिणेऽयमनामान भातंण्ड पश्चिमे दले ।  
 उत्तरे तु रवि देव कर्णिकायाञ्च भास्करम् ॥९॥  
 रक्तपुष्पोदकेनाध्य सतिलारुणचन्दनम् ।  
 तस्मिन् पद्मे ततो दद्यादिम मन्त्रमुदीरयेत् ॥१०॥  
 कालात्मा सबभूतात्मावेदात्मा विश्वतोमुख ।  
 यस्मादग्नीन्द्ररूपस्त्वमत पहिदिवाकर । ॥११॥  
 अग्निमीले नमस्तुभ्यमिषेत्वाजं च भास्कर ।  
 अग्न आयाहि वरद । नमस्तेज्योतिषाम्पते । ॥१२॥  
 अध्य दत्त्वा विसृज्याथनिशितंलविर्वजितम् ॥१३॥

ईशान १८श के भाग की ओर शान्त को नमस्कार के सहित  
 विन्यस्त करना चाहिए । कर्णिका के पूर्व पत्र में सूर्य देव के घराने का  
 विन्यास करना चाहिए ॥८॥ दक्षिण में अर्पमान नाम वाले का तथा  
 पश्चिम दल में मार्ण्ड का, उत्तर में रवि देवका और कर्णिका में भास्कर  
 का न्यास करके रक्त पुष्पो के सहित जल से जिसमें तिल, अरुण चन्दन  
 भी हो उस पद्म में निम्न मन्त्र का उच्चारण करत हुए अर्घ्य देना  
 चाहिए ॥९, १०, ११॥ यह मत यह है—‘हे दिवाकर’ आप काल की  
 आत्मा हैं या बल स्वरूप ही हैं तथा समस्त भूतो क आत्मा हैं— वेदों  
 की आत्मा और आन विश्वतामुख हैं क्योंकि आप अग्नि इन्द्र रूप वाले  
 हैं अतएव आन भेरी रक्षा करो ॥११॥ अग्निमीले आपके लिये नमस्कार  
 है । हे भास्कर । इषेत्वाजें आपके लिये प्रणाम है । हे वरद ! आप यही  
 पर पधारिये । हे ज्योतिषों क स्वामिन् ! आपके लिये प्रणाम समर्पित  
 है । इस प्रकार से सूर्य देव को अध्य देवे और फिर विसर्जन करके रात्रि  
 में तैलीय पदार्थों ॥ सहित भाजन करना चाहिये ॥१२, १३॥

## ४७—विभूति द्वादशी व्रत कथन

श्रुणु नारद ! वक्ष्यामि विष्णोर्व्रतमनुत्तमम् ।  
 विभूतिद्वादशी नाम सर्वदेवनमस्कृतम्  
 कार्तिके चैत्रवंशाखे मागशोर्षे च फाल्गुने ॥१॥  
 आपाडे च दशम्यान्तु शूलकायालघुभुङ्गरः ।  
 कुरुवासायन्तनीसन्ध्या गृह्णीयान्नियमवधुः ॥२॥  
 एकादश्या निराहारःसमभ्यर्चं जनार्दनम् ।  
 द्वादश्याद्विजसयुक्तः करिष्येमोजन विभो ! ॥३॥  
 तदविघ्नेन मे यातु सफल स्वप्न केशवा ।  
 नमोनागयणायेति वा यञ्च स्वपता निशि ॥४॥  
 ततः प्रभात उत्थायसाविध्यष्टशतञ्जपेत् ।  
 पूजयेत् पुण्डरीकाक्ष शुभामालयानुलेपनं ॥५॥  
 विभूतयेनमपादायशोकाय च जानुनी ।  
 नमः शिवायेत्यरुच विश्वमूर्ते ! नमः कटिम् ॥६॥  
 वन्दर्पायनोमङ्ग फल मारायणाय च ।  
 दामोदरायत्युदर वासुदेवाय च स्तनौ ॥७॥

नन्दिशब्दर प्रभु न ब्रह्म—हे नारद ! आप श्रवण कीजिए । अब हम भगवान् विष्णु का सर्वोत्तम व्रत के विषय में वर्णन कर रहे हैं । इस व्रत का शुभ नाम विभूति द्वादशी है और यह व्रत ऐसा उत्तम है कि सभी देवगणों के द्वारा वन्द्यमान होता है ॥१॥ इस व्रत की कोई मासों में कार्तिक महीना या सप्तमी है । कार्तिक—चैत्र—वैशाख या फाल्गुन मास में करें अपवाद आपाड मास में करें । जब भी इसका समाचरण करें उस समय शुभ पक्ष की छामी दशमी में आयन्त ही स्वल्प हलका भोजन करना चाहिए । मनुष्य जो भी करना चाहे उसे सावधानतापूर्वक मन्त्रों की जापना करे वृत्त ॥ इसका 'नयन' को सहज करना चाहिए ॥॥

एकादशी के दिन बिल्कुल भी आहार न करके भगवान् जनार्दन का अभ्यर्चन करूँगा और द्वादशी के दिन द्विजों से समुक्त होकर ही हे विभो ! मैं फिर भोजन करूँगा—इस प्रकार सकल्प करके नियम ग्रहण करे और फिर प्रार्थना करे हे केशव ! सो यह व्रत मेरा निश्चिन्त सफल हो जावे । इसके पश्चात् “नमो नारायणाय”—अर्थात् नारायण प्रभु के लिये नमस्कार है—इसका मुख से उच्चारण करके रात्रि में शयन करे ॥३॥ इसके उपरान्त प्रभात बेला में उठकर भगवती, सावित्री का अष्टोत्तर शत जाप करना चाहिये और भगवान् पुण्डरीकाक्ष का शुक्ल माल्य एवं अनुलेपन आदि समुचित उपचारों से पूजन करना चाहिये ॥४॥ ‘विभूतमे नम’—इस मन्त्र का उच्चारण कर चरणों का यजन करे “अशोकाय नम”—इससे जानुओं का—“नम. शिवाय”—इसके द्वारा अङ्गों का दैविध्वस्तों ! दुम्य नम’ इससे कटिका अर्पण करना चाहिए ॥५॥ “वन्द्याय नम.”—इससे मेढू का तथा ‘नारायणाय नम.” इसके द्वारा फल का पूजन करे । ‘नमो दामोदराय’—इस मन्त्र से उदर का—‘व सुदेवाय नम.”—इससे दोनों स्तनों का अर्पण करना चाहिए ॥७॥

माघवायेत्पुरोविष्णो वृण्ठमृत्कण्ठिनेनमः ।

श्रीधरायमुखकेशान् नेशव,येतिनारद ॥८॥

पृष्ठं शार्ङ्गधरायेतु श्रवणा वरदाय वै ।

स्वनाम्ना शङ्खचक्रासिगदाजलजपाणये ॥९॥

शिरः सर्वात्मने शङ्खान् । नमस्त्यभिपूजयेत् ॥१०॥

अल्पवित्तो यथाशक्त्या स्तोक् स्तोक् समाचरेत् ॥११॥

य. चाप्यतीवनि.स्य स्यादभक्तिमान्माघवप्रति ।

पुष्पाधनविधानेन स कुर्यात्तत्सरद्वयम् ॥१२॥

धनेन विधिना यस्तुविमूढादशत्रतम् ।

कुर्यान् पापविनिर्मुक्तं पितृणां तारयंष्टतम् ॥१३॥

जन्मनां शतसाहस्रं न शोचपन्नमाभावेन ।



न च व्याधिर्भवेत्तस्य न दारिद्र्यं न वन्दनम् ॥१३॥

वेष्णवोवाय श्रवोवा भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥१४॥

यावदप्युगसहस्राणां शतमष्टोत्तरं भवेत् ।

तावतस्वर्गे वसेद्ब्रह्मान् ! भूपतिश्च पुनर्भवेत् ॥१५॥

“माघदाय नमः—इम् मन्त्र के द्वारा विष्णु के उरः स्थित का  
 “वन्द्यो नमः” इससे कण्ठ का—“श्रीधराय नमः” इसका उच्चारण  
 करने मुद्र का और हे नारद ! “केतदाय नमः”—इसके द्वारा केतों का  
 भर्जन करे ॥८॥ “शार्ङ्गधराय नमः” इस मन्त्र को बोलकर पृष्ठ भाग  
 का, ‘वरदाय नमः’ इससे श्रवणों का पूजन करना चाहिये । अपने नाम से  
 ‘मध्व भक्त अति गदा जलज पाणये ‘सर्वान्मने नमः’ इससे हे ब्रह्मान् ! शत्रु  
 के गिर का भर्जन करना चाहिये ॥९॥ जिसके पास बहुत ही थोड़ा सा  
 धन है उसको थोड़ा-थोड़ा ही दान आदि से इस धनके अङ्गों का सम्पादन  
 करना चाहिए और अपनी भक्ति के अनुसार ही करे ॥१०॥ जो अत्यन्त  
 ही धनहीन हो और जिसके पास कुछ भी साधन न हों वह भी निर्धन  
 हमको कर महता है । उने तो केवल भगवान् माघव के प्रति भक्ति  
 होनी चाहिये और वह केवल पुण्यों के द्वारा ही भर्जन का विधान करके  
 दो वर्षें पूर्ण करे ॥११॥ इस विधि से जो भी कोई इस विभूति दादगी  
 का व्रत किया करता है वह समस्त पापों से निर्मुक्त होकर अपने धन-  
 भय तृणणों का उद्धार कर दिया करता है ॥१२॥ सो सहस्र जन्मों  
 तक भी उसको कभी भी शोक का फल नहीं होना है और उने कोई भी  
 व्याधि नहीं होती है । न नभी दारिद्र्य होनी है और न वन्दन ही हुआ  
 करता है । १३॥ वह जन्म-जन्म में या तो वेष्णव होता है या शिवका  
 भक्त भव ही हुआ करता है ॥१४॥ हे ब्रह्मन् ! इस व्रत का बहुत बड़ा  
 माहात्म्य है जब तक एक महत्त्व युक्त की अष्टोत्तर शत सहस्र सम्पूर्ण  
 नहीं होती है तब तक वह स्वर्ग में निवास किया करता है और यहाँ पर  
 राधा के यहाँ जन्म ग्रहण कर भूपति होता है ॥१५॥

## ४८—स्नान महत्त्व वर्णनम्

नमस्य भावशुद्धिश्च विना स्नानं न विद्यते ।  
 तस्मान्मनोविशुद्धयर्थं स्नानमादौ विधीयते ॥१॥  
 अनुद्ध तैरुद्ध तैर्वा जले स्नानं समाचरेत् ।  
 सीथञ्च कल्पयेद्विद्वान्मन्त्रेण मन्त्रवित् ॥  
 नमो नारायणायेति मूलमन्त्र उदाहृत ॥२॥  
 दधेपाणिस्तु विधिना आचान्त प्रयत्न शुचि ।  
 चतुर्हस्तसमायुक्तं चतुरस्रं समन्ततः ॥  
 प्रकल्प्यावाहयेद्गङ्गामेभिर्मन्त्रैर्विचक्षणः ॥३॥  
 विष्णो पादप्रसूतासर्वेष्णवाविष्णुदेवता ।  
 ब्राह्मिन्स्त्वेन सस्तस्मादाजन्ममरणान्तिकात् ॥४॥  
 तिस्रः षोडशाऽष्टकाटीचतीर्थावापुरग्रवीत् ।  
 दिविभूम्यन्तरिक्षे च तानिते सन्तु जाह्नवि ॥५॥  
 नन्दिनीत्येव ते नाम देवपुनलिनीति च ।  
 दक्षा पृथ्वी च विहगा विश्वरायाऽमृताशिवा ॥६॥  
 विद्याधरी सुप्रशान्ता तथा विश्वप्रसादिनी ।  
 धेमा च जाह्नवी च च शान्ताशान्तिप्रदायिनी ॥७॥  
 एतानि पुण्यनामानि स्नानकाले प्रकीर्तयेत् ।  
 भवेत्सन्निहिता तत्र गङ्गा त्रिपथगामिनी ॥८॥

अथान् नदिदेशवर ने कथा—स्नान ने किये बिना निमलता  
 और भावों की शुद्धि नहीं हुआ करती है । इसलिये मन को विशुद्धि के  
 लिये सबसे आदि में स्नान को स्नान करना चाहिये ॥१॥ जल या तो  
 पानी आदि से उद्भूत किये गये हों या किसी जलाशय से उद्भूत  
 हो उन्ही से स्नान का समाचरण करे । विद्वान् पुरुष को जो कि मनो  
 का पुण्य जानता है उस गुरु मन्त्र के द्वारा उन्ही जनों में सीधे की कहता

कर लेनी चाहिये ॥२॥ “नमो नारायणाय” यही मूल मन्त्र बताया गया है । विचक्षण पुष्प को हाथ में धर्म का ग्रहण करके विधि पूर्वक आचान्त होकर परम प्रयत्न और शुचि हो जाना चाहिये । चार हाथ के प्रमाण से समायुक्त और सभी ओर से चौकोर स्थल की प्रवक्ष्यता करके नीचे दिये हुए मन्त्रा में भागीरथी गङ्गा का आवाहन करना चाहिए ॥३॥ आवाहन मन्त्र ये हैं—हे हन्त्र ! आप भगवान् विष्णु के चरणों से प्रसूत हुई हैं । आप परम वैष्णवी और विष्णु के ही देवता बाली हैं । इससे मेरे जन्म मरणान्तिक पाप से मेरी रक्षा कीजिए ॥४॥ भगवान् वसुदेव ने कहा है कि आप साढ़े तीन करोड़ तीर्थों का निवास स्थल हैं । त्रिस्तोक—भूमि और धन्तरिक्ष में वे सब प्राण में रहते हैं ॥५॥ हे देवि ! आपका देवों में मन्दिनी और नलिनी यह नाम है । आपका अन्य भी बहुत से परम पुण्य मय शुभ नाम हैं—जैसे—दक्षा—पृथ्वी—विश्वनाथ—वसुधा—शिवा—विद्याधर—मुद्रशान्ता—विश्व प्रसादिनी—क्षेमा—शान्ता—शान्ति प्रदायिनी और जाह्नवी हैं । इन परम पुण्यमय नामों का स्नान के समय में कीर्तन करना चाहिए । इस कीर्तन के करने से वहीं पर भागीरथी गङ्गा जो त्रिपथों में गमन करने वाली है अर्वाङ् स्वर्ग—भूमि और पताल तल में जाने वाली है स्वयं सन्निहित हो जाया करती है ॥६, ७, ८॥

सप्तवारामिजप्तेन वरसप्तुटयोजित ।

मूर्द्धनि कुर्याज्जल भूपस्त्रिचतुः पञ्चसप्तकम् ॥

स्नान कुर्यान्मृदा तद्वदाम ह्य तु विधानतः ॥६॥

अश्वत्थान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुधरे ।

मृत्तिके ! हर मे पाप यन्मयादृष्टनृनृनम् ॥१०॥

उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन दानवाहना ।

नमस्ये सर्वत्रोदना प्रमवारणि सुवते ॥११॥

एव स्नात्वा ततः पश्चादाचम्य च विधानतः ।

सत्याय वाससी शुक्ले शुद्धे तु परिधायकं ॥

ततस्तु तर्पणं कुर्यात्त्रिंशो लोकाप्यायनाय वै ॥१२

देवायक्षास्तथानागागन्धर्वाप्सरसः सुराः ।

क्रूरा सर्पा सुपर्णाश्चितरवोजम्बुका खगाः ॥१३

वायवाधारा जलाधारास्तथैवाकाशगामिन ।

निराधाराश्च ये जीवा येतु धर्मरतास्तथा ॥१४

तेषामाप्यायनायैतद्दीयते सलिलं मया ।

कृतोपवीतीं देवेभ्यो निवीतो च भवेत्ततः ॥१५

हाथों के सम्पुट में जल को योजित करके सत बार अभिजाप करे और फिर मूर्द्धा में जल को डाले । फिर तीन-चार-पाँच और सात बार स्नान करना चाहिए । इसी भाँति विधान के साथ आमन्त्रित करके मूर्त्तिका से स्नान करे । अभिमन्त्रित करने का मन्त्र यह है—हे मूर्त्तिके ! आप भगवों के खुरों से क्रान्त होने वाली है—रथों के चक्रों के द्वारा भी क्रान्त होती हैं । आप विष्णु भगवान् के द्वारा क्रान्त हैं । हे वसुधारे ! जो भी मैंने दुष्कृत किये हो उस सम्पूर्ण पाप का आप सहर्षण कर दो । ॥६, १०॥ हे सुव्रते ! शत बाहुओं वाले बराह श्रीकृष्ण ने आपका उद्धरण किया है अर्थात् आपको उठा लिया है । समस्त लोको के प्रभव ( जन्म ) के लिये अरणी के समान विनाश करने वाली आप हैं । तात्पर्य यह है कि जन्म-मरण के आवागमन को छुड़ाकर मोक्ष प्रदान किया करती है ऐसी आपकी सेवा में मेरा नमस्कार अर्पित है । इस प्रकार से स्नान करके पीछे विधिपूर्वक आचमन करे और स्नान से उठकर फिर परम शुद्ध एवं शुक्ल वस्त्रों को धारण करना चाहिए । इसके अनंतर त्रिलोक्य की सत्पत्ति के लिये तर्पण करना चाहिए ॥११, १२॥ देव—यक्ष—नाग—गन्धर्व—अप्सरारें—सुर—क्रूर—सर्प—सुपर्ण—तक्षक—जम्बुक—खग—वायु के आधार वाले प्राणी—जल का आश्रय ग्रहण करने वाले जीव—आकाश में गमन करने वाले प्राणी और ऐसे जीव जिनका कोई भी आधार ही नहीं होता है तथा धर्म में रति रखने वाले जीव

उन सबकी तृप्ति के लिये मेरे द्वारा यह जल दिया जाता है । देवों के लिये कृतोपवीती होकर तर्पण करे और फिर निवीती हो जाना चाहिए ॥१३, १४, १५॥

मनुष्यास्तर्पयेदभक्तया ब्रह्मपुत्रानृषीस्तथा ।  
 सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः ॥१६॥  
 कपिलश्चामुरिश्चैव वोढुः पञ्चशिखस्तथा ।  
 सर्वे ते तृप्तिमायान्तु महत्तेनाम्बुनासदा ॥१७॥  
 मरीचिमथ्यङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं वृक्षम् ।  
 प्रचेतसं वसिष्ठञ्च भृगुञ्चादमेव च ॥  
 देवब्रह्मरूपीन् सर्वास्तर्पयेदक्षतोदकः ॥१८॥  
 अपसव्यं ततः कृत्वा सभ्य जान्वाञ्च भूतले ।  
 अग्निष्वात्तास्तथा सौम्या हविष्मन्तस्तथोष्मपाः ॥१९॥  
 सुकानिनो बर्हिषदस्तथान्ये वाज्यपाः पुनः ।  
 सन्तर्प्य पितरो भवतयासतिलोदकचन्दनैः ॥२०॥  
 यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च ।  
 वैदस्वताय कालाय सर्वभूतक्षमाय च ॥२१॥  
 औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने ।  
 वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय च नमः ॥  
 दभपाणिस्तु विधिना पितॄन् सन्तर्पयेद बुधः ॥२२॥

भक्ति की भावना से मनुष्यों का तर्पण करे—ब्रह्मा के पुत्रों का या ऋषियों का तर्पण करे । सनक-सनन्द और तीसरे सनातन, कपिल, मुरि, वोढु, पञ्चशिख्ये सभी मेरे द्वारा प्रदत्त किये हुए जल से सदा तृप्ति प्राप्त करें ॥१६, १७॥ मरीचि अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, वृक्ष, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु और नारद इन देवों और ब्रह्मर्षि सबकी शर्तों से मिथित जलो से तर्पण करना चाहिए ॥१८॥ इसके पश्चात् तस्य करके सभ्य जानु भूत मे टेंककर अग्निष्वात्ता-बर्हिषद-अथ

आज्यप पितरो का भक्ति भाव से तिलोदक चन्दन के द्वारा भली भाँति तर्पण करना चाहिए । फिर घर्मरात्र, मृत्यु, अन्नक, वैवस्वत, काल संबंधित क्षय—ओदुम्बर—पद्म—नील—परमेष्ठी—वृकोदर—चित्र और चित्रगुप्त के लिए नमस्कार है । हाथ हाथ में ग्रहण करने वाले बुद्धि पुरुष को विधि के साथ पितृगणों का तर्पण करना चाहिए ॥ १६, २०, २१, २२ ॥

पित्रादीन्नामगोक्षेण तथा मातामहानपि ।  
सन्तप्यं विधिना भवतया इम मन्त्रमुदीरयेत् ॥२३॥  
ये वाग्धवा वाग्धवेया येऽन्यजन्मनि वाग्धवा ।  
ते तृप्तिमस्त्रिला यान्तु यश्चास्मत्तोऽभिवाञ्छति ॥२४॥  
ततश्चाचम्य विधिवदालिखेत्पद्मप्रत ।  
अक्षताभि सपुष्पाभि सजलारणचादनम् ॥  
अर्घ्यं दद्यात्प्रयत्नेन सूर्य्यनामानि कीर्तयेत् ॥२५॥

पिता आदि का नाम और गोत्र का उच्चारण करके तथा माता-मह आदि का भी नाम गोत्र कहकर विधि पूर्वक भली भाँति तर्पण करके भक्ति के साथ इस मन्त्र को उच्चारित करे ॥ २३॥ जो मेरे वाग्धव और वाग्धवेय हो तथा जो मेरे अन्य जन्म में वाग्धव रहे हो वे सब तृप्ति को प्राप्त हो और वह भी सन्तुष्ट हो ज वे जो मुझसे अर्थात् मेरे द्वारा दिये हुए जल प्राप्त करने की इच्छा रखना हो ॥ २४॥ इसके पश्चात् आचमन करके विधिपूर्वक आगे पद्म का बिलेख न करे । पुष्पों के सहित अक्षतों में अर्घ्य चन्दन से समन्वित जल का अर्घ्य देना चाहिये तथा प्रयत्न सूर्य के नामों का कीर्तन करे ॥ २५॥

नमस्ते विष्णुरूपाय नमो विष्णुमुखाय वै ।  
सहस्ररश्मये नित्य नमस्ते सर्वतेजसे ॥२६॥  
नमस्ते शिव ! सर्वेश ! नमस्ते सर्ववत्सल ।  
जगत्स्वामि नमस्तेऽस्तु दिव्यचन्दनभूषित ॥२७॥

पद्मासन ! नमस्तेऽस्तु कुण्डलाङ्गदभूषित ।  
 नमस्ते सवलोकेश ! जगत्सर्वं ।ववाघसे ॥२८॥  
 सुवृत्त दुष्टवृत्त चैव सर्वं पश्यामि सर्वंग ।  
 सत्यदेव ! नमस्तेऽस्तु प्रमीद मम भास्कर ॥२९॥  
 दिवाकर ! नमस्तेऽस्तु प्रभाकर ! नमोऽस्तुते ।  
 एवसूर्य्यनमस्कृत्यग्निं कृत्वाथप्रदक्षिणम् ॥  
 द्विजङ्गम काञ्चन स्पृष्ट्वा ततो विष्णुह द्रजेन् ॥३०॥

विष्णु के रूप वाले भापके निये नमस्कार है । विष्णुमुख आपके निये प्रणाम है । सहस्र कि०णों वाले के लिए नमस्कार है । सबक तज स्वप्न आपके निये नमस्कार है ॥२६॥ हे शिव ! आपके निये नमस्कार है । हे सर्वेश्वर ! हे सब पर वात्सल्य रखने वाले ! आपके लिये नमस्कार है । हे जगत् के स्वामिन् ! दिव्य चन्दन से भूषित ! आपकी सेवा में नमस्कार है । हे पद्मासन ! आपको प्रणाम है । हे कुण्डलों और अङ्गुलीयों के भूषित ! आपको नमस्कार है । हे सब सोने के ईश ! आरक्षी सेवा में प्रणाम है । आप ही हम सम्पूर्ण जगत् का विशेष बोधन दिया करते हैं । आप ही मुक्त और दुष्ट सबको हे सर्वंग गमन करने वाले ! देखा करते हैं । हे सत्यदेव ! हे भास्कर ! आपकी सेवा में नमस्कार है । आज मेरे ऊपर प्रसन्न होइए । हे दिवाकरदेव ! आपकी नमस्कार है । हे प्रभाकर ! आपकी सेवा में प्रणाम है । इस प्रकार सूर्य्य की नमस्कार करके तीन बार प्रक्षिणा करनी चाहिए । फिर किसी द्विज को तथा गौ का एवं काञ्चन का स्पर्श करके फिर विष्णु मूर्त्ति को स्नाना चाहिए । अर्थात् विष्णु भगवान् के मन्दिर में गमन करे ॥ २७ ॥  
 २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥

## ४६—प्रयाग माहात्म्य वर्णनम्

भगवन् ! श्रोतुमिच्छामि पु. त्कल्पेययास्थितम् ।  
 ब्रह्मणा देवमुख्येन यथावत् कथितमुने । १  
 कथं प्रयागे गमनं नृपाणां तत्र कीदृशम् ।  
 मृतानां का गतिस्तत्र स्नातानां तत्र किंफलम् ॥  
 ये वसन्ति प्रयागे तु ब्रूहि तेषां च किंफलम् ॥२॥  
 कथमिष्यामितेवरस ! यच्छृण्वन्त्ययत्फलम् ।  
 पुरा हि सर्वं विप्राणां कथ्यमानं मया श्रुतम् ॥  
 आप्रयागप्रतिष्ठानादापुराद्वासुके ह्यदात् ।  
 कम्बलाश्वतरो नागौ नागश्च बहुमूलकः ॥३॥  
 एतत्प्रजापतेः क्षेत्रं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥४॥  
 तत्र स्नात्वा दिव यान्ति ये मृतास्ते पुनर्भवाः ।  
 ततो ब्रह्मादयो देवा रक्षा कुर्वन्ति सङ्गता ॥५॥  
 अन्ये च बहवस्तीर्थाः सवपापहराः शुभाः ।  
 न शक्या कथितुं राजन् ! बहुवर्षशतैरपि ॥  
 संक्षेपेण प्रवक्ष्यामि प्रयागस्य तु कीर्तनम् ॥६॥  
 पण्डितधनुःसहस्राणि यानि रक्षन्ति जाह्नवीम् ।  
 यमुना रक्षति सदा सविता सप्तवाहनः ॥७॥

धर्मराज मुचिष्ठिर ने कहा—हे भगवन् ! पुरातन में जो क्या स्थित हो उसका मैं थवण करना चाहता हूँ । हे मुने ! देवों में मुख्य ब्रह्माजी ने यथावत् कथन किया है ॥ १ ॥ प्रयाग में गमन किस प्रकार से है और वह नरों का किस प्रकार का है ? वहाँ पर जो निवास करके मृत हो जाते हैं उनकी क्या गति होती है और जो वहाँ पर पहुँच कर स्नान किया करते हैं उनको क्या फल मिला करता है जो सर्वदा प्रयाग में निवास किया करते हैं उनका क्या फल हुआ करता है ? जो दूपा



करता है ? ॥ २ ॥ महर्षि प्रवर मार्कण्डेयजी ने कहा—हे दम्भ ! वहाँ पर जो भी ओष्ठतम धन दृष्टा करता है उसको मैं आपको ब्रह्माज्ञेता । हिने प्राचीन समय में समस्त विश्वों का कथ्यमान ( कहा हुआ ) प्रेन पन किया है ॥ ३ ॥ प्रयाग के प्रतिष्ठान से लेकर और दामुकि के इद से पुर के पर्यन्त तक कम्बज और अम्बतर दो प्राग हैं और बहुनूतक प्राग है । यह ही प्रवारति का क्षेत्र है जो तीनों तीर्थों में विद्युत है ॥ ३ ॥ वहाँ पर मनुष्य स्नान करके त्रिविक्र क चने जाया करते हैं और विनकी वहाँ पर मृगपु हो जाती है उनका पुनर्भव नहीं होता है । इसके बाद में ब्रह्मा आदि देव सब सज्जत होकर रक्षा किया करते हैं ॥ २ ॥ हे राजन् ! अग्य भी बहुत से तीर्थ हैं जो समस्त पापों के हरण करने वाले और परम शुभ हैं । उन सबको कहा नहीं जा सकता है चाहे ईश्वरों ही क्यों तक क्यों न वर्णन कोई करता रहे । अब मैं प्रति सप्तम में प्रयाग का कुछ माहात्म्य कीर्तित करूँगा ॥ ६ ॥ जो साठ धनु सहस्र हैं वे ज-ह्नवी की रक्षा किया करते हैं और सप्त बाहन सवितादेव मनुना की रक्षा किया करते हैं ॥ ७ ॥

प्रयाग तु विदेषेण सदा रक्षति वासवः ।  
मण्डल रक्षति हरिर्देवतैः सह सुगतः ॥८॥  
त वट रक्षतिउदा शूलपाणिमहेश्वरः ।  
स्थान रक्षन्ति वै देवा सर्वपापहर शुभम् । ९  
अधर्मेणावृत्तो साक्नेनैव गच्छति तत्सदम् ।  
स्वल्पमल्पतर पाप यदा ते स्थान्नराग्रिप ॥  
प्रयाग म्मरमाणस्य सर्वमायाति संक्षयम् ॥१०॥  
दशनात्तस्य तीर्थस्य नाम सङ्कीर्तनदपि ।  
मृत्तिका सम्मनाद्वापि नरः पापात्प्रमुच्यते ॥११॥  
पञ्चकुण्डानि रात्रेन्द्र । तेषा मध्ये तु ज-ह्नवी ।  
प्रयागस्य श्वेतेनृपः पनश्यति नक्षत्रात् ॥१२॥

योजनाना सहस्रेषु गगायाः स्मरणान्नरः ।

अपि दुष्कृतवर्गा तु सभ्रत परमागतिम् ॥१३

कीर्तनान्मुच्यते पापाद् दृष्ट्वाभद्राणिपश्यति ।

अवगाह्यचपीत्वातुपुनात्यासप्तमद्भुतम् ॥१४

विशेषता के साथ वासव देव सदा प्रयाग भी रक्षा करते हैं । उस सम्पूर्ण मण्डल की रक्षा देवों के साथ सङ्गत होकर भगवान् हरि किया करते हैं ॥ ८ ॥ उस बट की सदा घूलपाणि महेश्वर रक्षा करते हैं । समस्त पापों के हरण करने वाले परम शुभ स्थान की रक्षा देवगण किया करते हैं ॥ ९ ॥ अघर्म से लोक से आवृत्त हो उस पद को चला जाया करता है । हे नराधिप ! जिस समय में स्वल्प और स्वल्पतर आपका पाप होता है तो वह जब भी प्रयाग का स्मरण आप करेंगे उसी समय तुरन्त सब सक्षय को प्राप्त हो जायगा । प्रयाग के केवल स्मरण मात्र का ही इतना महान् फल होना है ॥ १० ॥ उस महान् तीर्थ के दर्शन से तथा उस तीर्थ के नाम का सङ्कीर्तन करने से भी एव वहाँ पर कवल मूर्तिका के लम्बन मात्र से भी मनुष्य पाप से मुक्त हो जाया करता है ॥ ११ ॥ हे राजेन्द्र ! वहाँ पर पञ्चकुण्ड हैं उनके मध्य में जाह्नवी है । प्रयाग के अंदर प्रवेश करने पर उसी क्षण में तुरन्त पापों का नाश हो जाया करता है । सहस्रो योजनों पर रहते हुए ही गङ्गा के स्मरण करने में दुष्कृती के करन बाला भी मनुष्य परम मद्गति की प्राप्ति किया करता है ॥ १२, १३ ॥ गङ्गा के शुभ नाम का कीर्तन करने से पापों से मुक्त हो जाता है और दशन करक भद्रों का देखा करता है अर्थात् दशन से भल इयाँ दिखाई देती हैं । अवगाहन करके तथा पान करके सात कुल तक का पवित्र कर दिया करता है ॥ १४ ॥

सत्यवादी जितक्रोधा अहिंसायाव्यर्थाभ्यत ।

धर्मानुसारातत्त्वज्ञोगोब्राह्मणहितैरत ॥१५

गगायमुनयोमध्येस्नानोमु येतत्किल्बिषात् ।

मनसाचिन्तयन्कानामाप्नोतिसुपुष्कलान् ॥१६॥  
 उत्तो गत्वा प्रयाग तु सर्वदेवाभिरक्षितम् ।  
 ब्रह्मचारी वसेन्मास पितृन् देवाश्चतस्रयेत् ॥  
 ईप्सितान् लभते कामान् यत्र यत्राभिजायते ॥१७॥  
 तपनस्य सुता देवा त्रिषु लोकेषु विश्रुता ।  
 समागता महाभागा यमुना तत्रनिम्नगा ॥  
 तत्र सन्निहितो नित्य साक्षाद्देवो महेश्वरः ॥१८॥  
 दुष्प्राप्य मानुषं पुण्यं प्रयागन्तु युधिष्ठिर ।  
 देवदानवगन्धर्वा ऋषयः सिद्धचारणाः ॥  
 तदुपस्पृश्य राजेन्द्र ! स्वर्गलोकमुपासते ॥१९॥

इस्य बोलने वाला—क्रोध की जीतने वाला—अहिंसा में व्यवस्थित—  
 धर्म का अनुसरण करने वाला—तर्कों का ज्ञाता—श्री और ब्राह्मणों  
 में रति रखने वाला गङ्गा और यमुना के मध्य में स्नान किया हुआ पुरुष  
 क्रिन्धिप से मुक्त हो जाया करता है । मन क द्वारा चिन्तन किया हुए  
 कामनाओं की जो बहुत ही अधिक है प्राप्त किया करता है ॥ १५, १६॥  
 इनके अन्तर प्रयाग में पहुँच कर जो मह देवों के द्वारा अभिरक्षित है,  
 ब्रह्मचारी को एक मास पर्यन्त वहीं पर निवास करना चाहिये । जहाँ-  
 जहाँ पर अभिज्ञान होता है ईप्सित कामों अर्थात् मनोरथों की प्राप्त किया  
 करता है ॥ १७ ॥ तपन अर्थात् मूर्ख की पुत्री दवी तीनो लोकों में परम  
 विश्रुत है । वह मह भागा यमुना नदी यहाँ पर समागता हुई है । वहाँ  
 पर साक्षात् देव महेश्वर नित्य ही सन्निहित रहा करते हैं ॥ १८ ॥ हे  
 युधिष्ठिर ! मनुष्यों के द्वारा दुष्प्राप्य पुण्य वाला प्रयाग है देव-दानव-  
 गन्धर्व-ऋषियज-सिद्ध और चारण हे राजेन्द्र ! उमक उर स्थान करके  
 स्वर्गलोक की उपासना किया करते हैं ॥ १९ ॥

## ५० — भारतवर्ष वर्णन

यदिदं भारतवर्षं यस्मिन् स्वायम्भुवादयः ।  
 चतुर्दशैव मनवः प्रजासर्गं ससजिरे ॥१॥  
 एतद्वेदितुमिच्छामः सकशात्तव सुव्रत !  
 उत्तरश्रवणं भूयः प्रब्रूहि वदता वर ! ॥२॥  
 एतच्छ्रुत्वा ऋषीणां तु प्राग्रवींस्त्रीमहर्षिणः ।  
 पौराणिकस्तदासत ! ऋषीणां भावितात्मनाम् ॥३॥  
 बुद्ध्या विचार्य्य बहुधा विमृश्य च पुन पुनः ।  
 तेभ्यस्तु कथयामास उत्तरश्रवणं तदा ॥४॥  
 अथाहं वर्णयिष्यामि वर्षेऽस्मिन् भारते प्रजाः ।  
 भरणात्प्रजनां चैव मनुभरत उच्यते ॥५॥  
 निरुक्तवचनैश्चैव वर्षं तद्भारतं स्मृतम् ।  
 यत् स्वयंश्च मोक्षश्च मध्यमश्चापि हि स्मृतः ॥६॥  
 न खल्वन्यत्र मर्त्यानां भूमौ कर्पविधिः स्मृतः ।  
 भारतस्यास्य वपस्य नवभेदाग्निबोधत ॥७॥

ऋषिगण ने कहा—जो यह भारतवर्ष है जिसमें स्वायम्भुव  
 आदि मुनिगण अर्थात् मनु जीदह ही हुए हैं जिन्होंने प्रजाओं के सर्ग की  
 रचना की थी ॥ १ ॥ हे सुव्रत ! मैं आपके सकाश से यह जानना चाहता  
 हूँ । हे बोलने वालों में परमश्रेष्ठ ! आप उत्तर श्रवण को पुनः दो सपे  
 ॥ २ ॥ ऋषियों के इस वचन को सुनकर उस समय में श्रीमहर्षि  
 पौराणिक सूत्रजी भाविनाम्मा ऋषियों से कहा ॥ ३ ॥ बुद्धि से बहुत बार  
 विचार करने और पुनः पुन विमर्श करने उस समय में उनसे उत्तर  
 श्रवण को कहा था ॥ ४ ॥ सूत्रजी ने कहा—इसके अनन्तर इस भारत-  
 वर्ष में प्रजाओं का मैं वर्णन करूँगा । भरण करने और प्रजनन करने  
 से मनु भरत इस नाम से कहा जाता है ॥ ५ ॥ निरुक्त वचनों के द्वारा

ही यह वर्ष भारत कहा गया है क्योंकि यहाँ स्वर्ग—मोक्ष और मध्यम कहा गया है ॥ ६ ॥ अन्य किसी भी स्थान में भूमि में मनुष्यों की कर्म विधि नहीं बही गयी है । इस भारतवर्ष के नौ भेदों को समझ लो ॥ ७ ॥

इन्द्रद्वीपः केसरश्च ताम्रपर्णी गमस्तिमा ।  
नागद्वीपस्तथा सोम्योगन्धर्वस्त्वयवाराण ॥  
अथ तु नवमस्तोपा द्वीपः सागरसंवृतः ।  
योजनानां सहस्रान्तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरः ॥८॥  
आयतस्तु कुमारीतो गङ्गाया प्रवहावधिः ।  
तिमगूढध्वस्तुविस्तीर्णं सहस्राणि दशैव तु ॥९॥  
द्वीपोऽप्युपनिमिष्ठोऽयं मेरुर्द्ध्वरन्तेषु सर्वणः ।  
यवनाश्च किं जायते तस्यान्ते पूवश्चिमे ॥१०॥  
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्च भागशः ।  
इज्यायुतवणिज्जादि वतयन्तो ह्यवस्थिता ॥११॥  
तेषां मध्यवहारोऽयं वर्तनन्तु परस्परम् ।  
धर्मार्थकाममयुक्तो वर्णानान्तु स्वकमम् ॥१२॥  
सङ्क्रान्त्यन्वमानान्तु आश्रमाणा यथाविधि ।  
इह स्वर्गापिर्गाथं प्रवृत्तिरिह मानुषे ॥१३॥

इन्द्रद्वीप—केसर—ताम्रपर्णी—गमस्तिमान्—नागद्वीप—सोम्य—  
गन्धर्व—वायव्य—यह उनमें सागर में संवृत नवम द्वीप है । यह द्वीप दक्षि-  
णोत्तर एक सहस्र योजनों वाला है । इसका आयतन कक्षा कुमारी से  
गङ्गा के प्रवाह की अवधि है । तिर्यन् ओर ऊर्ध्व में दश सहस्र विस्तार में  
युक्त है ॥८॥ ९, १०॥ द्वीप यह उपनिषत् है और सब ओर अन्त भागों  
में मनुष्यों से मिल दृष्टा है । यवन ओर किरात उसके अन्त में पूर्व

पश्चिम में हैं । मध्य में भाग से ब्रह्माण--सन्निय वैश्य और शूद्र हैं । इज्या युत वाणिज्य आदि का वर्त्तन करते हुए व्यवस्थित हैं ॥११, १२॥  
उनका यह सध्यवहार है और परस्पर में वर्त्तन है । वणों का अपने कर्मों में धर्म-अर्थ और काम से संयुक्त है । सकल्प पञ्चमो आश्रमो की यहाँ पर यथाविधि स्वर्ग और अवर्ग के लिये मानुष जीवन में प्रवृत्ति होती है ॥१३, ४॥

यस्त्वय मानवो द्वीपस्तिर्यग्यामः प्रकीर्तितः ।

य एन जयते वृत्स्न स सन्नाडिति कीर्तितः । १५

अय सोवस्तु वै सन्नाड-तरिक्षिता ।

स्वराठसो स्मृतो लोक पुनर्वस्याभि विस्तरात् ॥१६

सप्त चास्मिन् महावर्षे विश्रुता कुलपर्वता ।

महेन्द्रो मलय सह्य दक्षिणान् शृक्षवानपि ॥१७

विन्ध्यश्च पारियात्रश्च इत्येते कुलपर्वता ।

तेषां सहस्रशद्वान्ये पर्वतास्तु समीपतः ॥१८

अभिजातरततश्चान्ये विपुलाश्चित्र सानवः ।

अन्येतेभ्य परिज्ञाता ह्रस्वा ह्रस्योपजीयिनः ॥१९

तंयिमिश्रा जानपदा आर्या स्ते छाश्च मधंतः ।

पिबन्ति बहुला नद्यो गङ्गासिन्धुः सरस्वती ॥२०

शतद्रुदय-द्रमागा च यमुना सरयु तथा ।

तुंगवती वितस्ता च विशाखा देविका नृह ॥२१

गोमती घोर तपा च बाह्वदा च द्रवद्रुती ।

कीर्तिकी तु मृगोयाचनिद्वेतागण्डकी तथा ॥

दन्वोदितमित्येता हिमवन्पार्वन्नि मृगा ॥२२॥

जीत लेता है वह लोक में स्वराट् कहा जाना है । अब पुनः विस्तार पूर्वक कहूंगा ॥१६॥ उम महावर्ष में सात कुल पर्वत प्रतिष्ठ हैं । उन सारों के नाम ये हैं—महेन्द्र, मलय, सह्य, शक्तिमान्, शृङ्गवान्, विन्ध्य, पारिमात्र, ये ही सात कुल पर्वत कहे जाते हैं । उन कुल के सहस्रो समीप में अन्य पर्वत भी होने हैं । इनके पश्चात् वे अन्य बहुत से विविध शिखरों व ले अभिजात हैं । उनसे भी अन्य ह्रस्व और ह्रस्वों के उपजीवी परिजात हैं ॥१७, १८, १९॥ उनसे मिले हुए जनपद हैं ओ सब ओर आर्य और भ्रजेष्ठ हैं । यङ्गा, सिन्धु और सरस्वती इन बहुत-सी नदियों का दान क्रिया करते हैं ॥ ०॥ शनद्रु चन्द्रभागा, यमुना, सरयू ऐरावती वितस्ता, विनाला, दोवका, बृह, गोमती, घनपापा, बाहुश, द्वपदती, कोशिकी, सतीया, निश्चला, गण्डकी श्रुमोनीहित, ये इतनी नदियाँ हिमवान् के पार्श्व भाग से निवृत्त हुई हैं ॥२१, २२॥

वेदस्मृतिर्वैश्वती वृत्तघ्नी सन्धुरेय च ।  
पर्णाशा नमदा चव कावेरी महती तथा ॥२३॥  
पारा च घन्वतीरूपा त्रिदुपावेणुमत्यपि ।  
शिप्राह्यवन्तो कुन्ती च पारियात्राश्रिताः स्मृताः ॥२४॥  
मन्दाकिनीदशार्णा च विप्रक्टा तथैव च ।  
तमसापिप्पलीश्येनी तथा चित्रोदलापि च ॥२५॥  
विमला चञ्चलाचैव तथा च धूतवाहिनी ।  
शुक्तिमन्ती शुनी लज्जामुकुटाह्लदिकापि च ॥  
शृण्वन्ताप्रसूतास्तानथामलजलाः शुभा ॥२६॥  
तापपीयोष्णा निविन्ध्याक्षिप्रा च श्रपभा नदी ।  
वेणावन्तरणी चैव विश्वमालाकुमुद्वती ॥२७॥  
तोया चैव महागोरीदुग्गमातुशिला तथा  
विन्ध्यपादप्रमृतास्ताः सर्वाः शोतजलाः शुभाः ॥२८॥  
गोदावरी भामरयो वृष्णवेणी च वञ्जुला ।

तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा बाह्याकावेरी चैव तु ॥

दक्षिणापथनद्यस्ता सह्यपादाद्विन सृता ॥२६॥

वेदस्मृति, वेत्रवती, वृत्रघ्नी, सिन्धु पर्णाशा, नर्मदा, कावेरी, महती, पारा, घवन्तीरूपा, विदुशा, वेणुमती, शिप्रा, अवन्ती, कुन्ती, ये समस्त नदिया पारियात्र नाम वाले कुल पर्वत के आश्रित रहने वाली हैं ऐसा हो कहा गया है ॥२३, २४॥ मन्दाकिनी, दशार्णा, चित्रकूटा, तमसा, पिप्पली, श्येनी, चित्रोत्पला, विमला, चञ्चला, धूत, बाहिनी, शुक्ति-मन्ती, धुनी, लज्जा, मुकुटा, हृदिका, ये सब नदियों का उद्गम स्थल ऋष्यवान् कुल पर्वत होता है । इनके जल बहुत ही अमल और शुभ हैं ॥२५, २६॥ तापी, पयोष्णी, निर्विघ्ना, शिप्रा, ऋषिभा, वेणा, वैतरिणी, विश्वमला, कुमुदती, तोया, महदगौरी, दुर्गमा, शिला, ये समस्त नदियाँ विन्ध्य कुल पर्वत से उत्पन्न हुई हैं । ये सब परम शीतल और शुभ जल वाली होती हैं ॥२७, २८॥ गोदावरी, भीमरची, कृष्ण वेणी, वग्जुला, तुङ्गभद्रा, सुप्रयोगा, बाह्या कावेरी, ये समस्त नदियाँ दक्षिणापथ वाली हैं और सह्याद्रि कुल पर्वत के पाद से विनिस्तु हुई हैं ॥२९॥

वृत्तमाला ताम्रपर्णी पुष्पजा ह्युत्पलावती ।

मलयप्रसूता नद्य सर्वा शीतजलाः शुभा ॥३०॥

त्रिभागा ऋषिकुल्या च इक्षुदा त्रिविवाचला ।

ताम्रपर्णी तथा मूली शरवाविमला तथा ॥

महेन्द्रतनया सर्वा प्रख्याता शुभगामिनी ॥३१॥

पाशिनामुकुमारो च मन्दगामन्दवाहिनी ।

अप्य च पाशिनीचैव शुक्तिमन्तात्मजास्तुताः ॥३२॥

सर्वा पुण्यजला पुण्या सवगाश्च समुद्रगा ।

विद्वत्स्य मातर सर्वा सर्वपापहरा शुभाः ॥३३॥

तामा नद्यपनद्यश्च शतशोऽप्य सहस्रश ।

तारिक्मे शुरुपाञ्चाला दात्वाश्चैव सजाङ्गला ॥३४॥



शूरसेना भद्रकारा वाहाः सहपटच्चराः ।  
 मत्स्याः किराताः कुल्याश्च कुन्तलः काशिकोशलाः ॥  
 व्यावन्ताश्च कलिङ्गाश्च मूकाश्चोवाञ्चर्कः सह ।  
 मध्यदेशजनपदा प्रायशः परिकीर्तिताः ॥३६॥

कृत्वाला—नामयर्षी—गुप्तरजा—सत्यलावती—ये सब नदियाँ मलय  
 प्रादि प्रसून होने वाली हैं और ये सभी अति शीतल एवं परम शुभ जल  
 वाली हैं ॥३०॥ त्रिभागा, अरुण, कुल्या, इक्षुका, विदिचता, ताम्रपर्णी, मूली,  
 शरवा, विमला ये सब नदियाँ महेन्द्र गिरि से समुत्पन्न होने वाली हैं  
 और शुभगमन करने वाली प्रख्यात हैं ॥३१॥ काशिका सुकुमारी, मन्दा  
 मन्दा वाहिनी, कृग-वासिनी ये सब नदियाँ युक्तिमन्त कुल पर्वत से प्रसव  
 प्राप्त करने वाली हैं । ये सभी पुण्य जलवाली, पुण्यमयी, सर्वत्रगमन  
 करने वाली और समुद्र गामिनी हैं । ये सभी इस विश्व की माताएँ हैं  
 और सब पापों के ह्राण करने वाली तथा परम शुभ हैं ॥३२, ३३॥  
 इन सरिताओं के जिनके नामों का यहाँ पर अभी उल्लेख किया गया है  
 इनको सैकड़ों और सहस्रों ही अन्य नदियाँ तथा उपनदियाँ हैं । इनमें ये  
 कुरु—गन्धाल—शान्व—सजाङ्गल—शूरसेन—भद्रकार—वाहा—सहपरचर—  
 मत्स्य—किरात—कुल्य—कुन्तल—काशिकोशल—व्यवन्त कलिङ्ग—मूक—  
 अन्ध्राक ये सब मध्यदेश के जनपद परिकीर्तित किये गये हैं ॥ ३४,  
 ३५, ३६ ॥

राह्यस्यानन्तरे नीते तत्र गोदावरी नदी ।  
 पृथिव्यामपि कृत्स्नाया स प्रदेशो मनोरमः ॥३७॥  
 यत्र गोवर्धनो नाम मन्दरो गन्धमादनः ।  
 रामप्रियार्थं स्वर्गीयावृक्षादिव्यास्तयीपयोः ॥३८॥  
 भरद्वाजेन मुनिना प्रियार्थं भवतारिताः  
 ततः पुष्पवरो देशस्तेन जज्ञे मनोरमः ॥३९॥  
 बाल्हीका वाटघानाश्च आभीराः कालतोयकाः ।

पुरन्ध्राश्चेव शूद्राश्च पल्लवाश्चात्तखण्डिकाः ॥४०॥  
 गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरमद्रकाः ।  
 शकाद्रुह्या पुलिन्दाश्च पारदाहारमूर्त्तिकाः ॥४१॥  
 रामठाः कण्टकाराश्च कंकेया दशनामकाः ।  
 क्षत्रियोपनिवेशाश्च वैश्याः शूद्रकुलानि च ॥४२॥  
 अत्रयोऽथ भरद्वाजाः प्रस्थलाः सदसेरकाः ।  
 लम्पकास्तलगानाश्च सैनिकाः सह जाङ्गलैः ॥  
 एते तेषा उदीच्यास्तु प्राच्यान्देशान्निबोधत ॥४३॥

ये सभी सह्य अद्रि के अनन्तर मे हैं वही पर गोदावरी नदी है ।  
 सम्पूर्ण पृथ्वी मे वह प्रदेश परम सुन्दर है ॥३७॥ अहाँ पर गोखर्बन  
 नाम वाला मन्दर और गन्ध मादन है तथा श्रीराम प्रियार्थ स्वर्गीय  
 वृक्ष तथा दिव्य औषधियाँ हैं ॥३८॥ भरद्वाज मुनि के द्वारा प्रियार्थ  
 अवतरित किये गये हैं । इसके पश्चात् उसने पुष्पवर एक मनोरम देश  
 उत्पन्न किया था ॥३९॥ बाह्लीक-वाटधान-आभीर-कालतोपक-परन्ध्र-  
 शूद्र-पल्लव-मात्तरखण्डिक-गान्धार-यवन-सिन्धु सौवीर मद्रक-शक-द्रुह्य-  
 पुलिन्द पारदा हारमूर्त्तिक-रामठ-कण्टकार-कंकेय दशनामक क्षत्रियो  
 के उपनिवेश के योग्य तथा वैश्य और शूद्र कुल हैं ॥ ४०, ४१, ४२ ॥  
 अत्रय-भारद्वाज-प्रस्थल-सहसेरक-लम्पक-तलगान और जाङ्गलो  
 के साथ सैनिक ये सब उदीच्य ( उत्तर दिशा मे होने वाले ) हैं । अब  
 जो प्राची ( पूर्व दिशा मे होने वाले ) देश है उनको भी समझ  
 लो ॥ ४३ ॥

अङ्गा वङ्गा मदगुरका अन्तगिरिबहिर्गिरी ।  
 सुह्यात्तरा प्रविजया मार्गत्रागेयमालवा ॥४४॥  
 प्राग्ज्यातिपाश्च पुण्ड्राश्च विदेहास्ताम्रलिप्तका ।  
 शात्वमागधगोनद प्राच्या जनपदा स्मृताः ॥४५॥  
 तेषा परे जनपदा दक्षिणाश्चवासिनः ।

पाण्ड्याश्च केरलाश्चौ चोलाः कुल्यास्तथैव च ॥४६॥  
 सेतुका सूत्रिकाश्च कृषयावाजिवामिकाः ।  
 नवरराष्ट्रा माहिषिकाः कलिङ्गाश्चैव सर्वशः ॥४७॥  
 कारुपाश्च सहेयीका आट्याः शबरस्तथा ।  
 पुतिन्दाविन्ध्यपुषिजा वंदर्भा दण्डकैः सह ॥४८॥  
 कुलीयाश्च तिरालाश्च रूपसास्तापसैः सह ।  
 तथैतैस्तिरिकाश्चैव सर्वे कारस्कारान्तया ॥४९॥

अङ्ग-वङ्ग-मद्गुरुर-अजगिरि-वाहिगिर-मुह्योत्तर-अविजय-  
 मार्गबाणेश मातव-प्राग्ग्योतिष-पुण्ड्र-विदेह-ताम्रलिप्तक-शास्व-  
 मागधा-भोनर्द-ये सब प्राच्य अर्थात् पूर्व दिशा में होने वाले जनपद  
 कहे गये हैं ॥ ४४, ४५ ॥ उनमें भी पर जनपद दक्षिण पक्षवासी हैं ।  
 पाण्ड्य-केरल चील-कुल्य-सेतुक-सूत्रिक और कृषयावाजि, नामिक  
 ये नव राष्ट्र माहिषिक हैं और कलिङ्ग सभी ओर हैं ॥ ४६, ४७ ॥  
 कारु-सहेयीक-आट्य-शबर-पुतिन्द-विन्ध्यपुषिक-वंदभं-  
 दण्डक कुलीय-तिराल-रूपस-तापस-तैत्तिरिक तथा सब कार-  
 स्कार हैं ॥ ४८, ४९ ॥

वासिकाश्चौ चैवान्तरनम्भदाः ।  
 भारमच्छा समाहेया सह सारस्वतस्तथा ॥५०॥  
 वाच्छीकाश्चैव सौराष्ट्रा आनर्ताश्रवुदैः सह ।  
 इत्येतेऽपरान्तास्तुभृणु ये विन्ध्यवासिनः ॥५१॥  
 मालवाश्च कटपाश्च मेकलाश्चोत्कर्त्तैः सह ।  
 ओण्ड्रासापादशार्णाश्च भोजा किण्डिकन्धकैः सह ॥५२॥  
 स्तोत्रला कोसलाश्चैव त्रैपुरा वदिशास्तथा ।  
 तुमुगस्तुम्बराश्चौ मद्गमा नैषधैः सह ॥५३॥  
 अम्पाः शौण्डिकेराश्च वीतिहोत्रा अवन्तयः ।  
 एते जनपदा स्याताविन्ध्यपृष्ठनिवासिनः ॥५४॥

अतो देशान् प्रवक्ष्यामि पवंताश्रयिणश्च ये ।  
 निराहाराः सर्वंगाश्चकुपथा अपथास्तथा ॥५५  
 कुथप्रावरणाश्चैव ऊर्णादिर्वा सशुद्धमकाः ।  
 त्रिगर्ता मण्डलाश्चैव किराताश्चामरैः सह ॥५६  
 चत्वारि भारतेवर्षे युगानि मुनयोऽब्रुवन् ।  
 शृत द्रोता द्वापरञ्च बलिश्चेति चतुर्गुणम् ॥  
 तेषां निसर्गं वक्ष्यामि उपरिष्टाञ्च कृत्स्नशः ॥५७॥

जम्बूखण्डस्य विस्तारं तथान्येपाविदाम्बर ! ।  
 द्वीपानां वासिनातेपावृक्षाणां प्रप्रवोहि नः ॥६०॥  
 गृष्टस्त्वेव तदा विप्रैर्ययाप्रश्न विशेषतः ।  
 उवाच ऋषिभिर्दृष्टं पुराणाभिमतं यथा ॥६१॥  
 शुश्रूषयस्तु यद्विप्राः शुश्रूषध्वमतन्द्रिताः ।  
 जम्बूवर्षः किंपुरुषः सुमहान्न्दोपमः ॥६२॥  
 दशवर्षसहस्राणि स्थितिः किंपुरुषे स्मृता ।  
 जायन्ते मानवास्तत्र सुतप्तकनकप्रभाः ॥६३॥

मत्स्य भगवान् ने कहा—उन ऋषियों ने यह श्रवण करके पुनः उत्तर श्रवण करने की इच्छा वाले उन ऋषियों ने लौमहृषि से अच्छी तरह से कहा ॥ ५८ ॥ ऋषियों ने कहा—हे भगवन् ! आपने भारत का वर्णन तो कर दिया है । अब जो किंपुरुष वर्ष तथा हरिवर्ष है उनका भी वर्णन यथातत्त्व करने की कृपा कीजिये ॥ ५९ ॥ हे विदाम्बर ! जम्बू खण्ड का विस्तार तथा अन्य द्वीपों का भी विस्तार उनके वासियों के एवं वृक्षों के विषय में हमको बतलाईये ॥ ५९, ६० ॥ उस समय में विप्रों के द्वारा इस प्रकार से पूछे गये महर्षि ने विशेष रूप से प्रश्नों के अनुगार ही जता कि ऋषियों ने देखा था और जो पुराणों में अभिमत था कहा था ॥ ६१ ॥ महर्षि प्रवर श्री सूतजी ने कहा—हे विप्र प्रवरों ! पाप लोग सब जो भी श्रवण करने की इच्छा वाले हो उसको अब श्रुतन्द्रित होकर श्रवण कीजिए । जम्बू वर्ष और किंपुरुष सुमहान् और नन्दन के समान हैं । दस सहस्र वर्ष तक किंपुरुष में स्थिति कही गई है । वहा पर भली भाँति तपाये हुए सुवर्ण की कान्ति के समान कान्ति वाले मानव उत्पन्न हुआ करते हैं ॥ ६२, ६३ ॥

वर्षे किंपुरुषे गृण्ये प्लक्षो मधुवहः स्मृतः ।  
 तस्य किंपुरुषाः सर्वे पिवन्तो रसमुत्तमम् ॥६४॥  
 अनामया ह्यशाकाश्च नित्य मुदितमानसाः ।

सुवर्णवर्णश्चनरा स्त्रिंशच्चाप्सरस स्मृता ॥६५॥  
 तत पर किम्पुरुषात् हरिवप प्रचक्षते ।  
 महारत्नसङ्काशा जायते यत्र मानवा ॥६६॥  
 देवलाक-युता सर्वे बहुरूपाश्च सवश ।  
 हरिवर्षे नरा सर्वे पिबन्तीक्षुरस शुभम् ॥६७॥  
 न जरा बाधते तत्र तेन जीवन्ति ते चिरम् ।  
 एकादशसहस्राणि तेषामायु प्रकीर्तितम् । ६८॥  
 मध्यम त मया प्रोक्त नाम्ना वपमिलावृतम् ।  
 न तत्र सूर्यस्तपति नच जीवति मानवा ॥६९॥  
 चन्द्रसूर्यौ सनक्षत्रावप्रकाशाविलावृते ।  
 पद्मप्रभा पद्मवर्णा पद्मपत्रनिभेक्षणा । ७०॥

परम पुण्यमय किम्पुरुष वप मे एक मधु के बहन करने वाला  
 पक्ष की बतलाया गया है । उस प्लम ६ अयुतम रस की सभी किम्पुरुष  
 पान करने वाले हैं ॥६४॥ वे सभी आमय ( रोग ) से रहित-शोक से  
 वञ्चित और नित्य ही परम मुदित मन वाले हैं । वहा के नर सुवर्ण के  
 सत्य वण वाले हैं और स्त्रियाँ भी इतनी अधिक सुन्दरी हैं कि वे सब  
 अप्सराएँ ही कही गयी है ॥६५॥ उससे आगे अर्थात् किम्पुरुष के पीछे  
 हरि वप कहा जाता है जहा पर महान् रजत के तुल्य मानव समुत्पन्न  
 हुआ करते हैं । ६६॥ सभी वहा के मनुष्य देव लोक च्युत हुए हैं और  
 सब सभी घोर बहून रूप वाले हैं । उस हरि वप मे सब मनुष्य परम शुभ  
 द्रव्य का रस पीया करते हैं । ६७ । उन मनुष्यों को बृद्धता कुछ भी बाधा  
 नहीं दिया करती है इसीनिये वे लोण चिरकाल तक जीवित रहा करते  
 हैं । उन पुरुषों की आयु ग्यारह सहस्र वष की बनजायी गयी है ॥६८॥  
 मध्यम जो हमन बतनाया है वह इलावृत वप नाम वाला है । वहा पर  
 कभी भी सूर्य का ताप नहीं रहता है और वहा मानव भी जीवित नहीं  
 रहा करते हैं ॥६९॥ इलावन वप मे नक्षत्रों के सहित सूर्य और चन्द्र

दोनों ही प्रकाश रहित रहते हैं और बहा के रहने तथा उत्पन्न होने वाले मानवों की पद्म के सदृश प्रभा होती है—पद्म के तुल्य ही उनका वर्ण होता है और पद्म पत्र के समान ही उनके नेत्र हुआ करते हैं ॥७०॥

पद्मगन्धाश्च जायन्ते तत्र सर्वे च मानवाः ।  
जम्बूफलरसाहारा मनिष्पन्दाः सुगन्धिनः ॥७१॥  
देवलोकच्युताः जायन्ते तत्र सर्वे च मानवाः ।  
त्रयोदशसहस्राणि वर्षाणान्ते नरोत्तमाः ॥७२॥  
आयुप्रमाणं जीवन्ति ये तु वर्षद्विसावृते ।  
मेगोस्तु दक्षिणे पार्श्वे निषधस्योत्तरेण वा ॥७३॥  
सुदर्शनो नाम महान् जम्बूवृक्षः सनातनः ।  
नित्यपुष्पफलोपेतः सिद्धचारणसेवितः ॥७४॥  
तस्य नाम्ना समाख्यातो जम्बूद्वीपो वनस्पतेः ।  
योजनानासहस्रञ्च शतघाचमहान्पुनः ॥७५॥  
उत्सेधो वृक्षराजस्य दिवमावृत्य तिष्ठति ।  
तस्य जम्बूफलरसो नदी भूत्वा प्रसर्पति ॥७६॥  
मेरुं प्रदक्षिण कृत्वा जम्बूमूलगता पुनः ।  
तं पिबन्ति सदा हृष्टा जम्बूरसमिवावृते ॥७७॥  
जम्बूफलरसं पीत्वा न जरा बाधतेऽपि तान् ।  
न सुधा न नलमो वापि न दुःखञ्च तथाविधम् ॥७८॥

इत्यादौ वे जो भी उत्पन्न हुआ करते हैं उन सभी मनुष्यों में पद्म के समान गन्ध हुआ करती है । वे सब जम्बू फलों के रस का आहार करने वाले—निष्पन्द हैं रहित और सुगन्ध वाले होते हैं ॥७१॥ वे सब देव लोक से ही च्युत होने वाले हैं और महान् रजत के वस्त्र धारी हैं । उन नरोत्तमों की आयु तेरह सहस्र वर्षों की हुआ करती है ॥७२॥ जो इलावृत में रहते हैं वे सब अपनी पूर्ण आयु तक जीवित रहा करते हैं

अर्थात् मध्य में किसी की भी मृत्यु का अवसर वहा पर आता ही नहीं है । मेरु पर्वत के दक्षिण पार्श्व में और निषध के उत्तर की ओर एक महान् सुदर्शन नाम वाला जामुन का वृक्ष है जो हमेशा में चले घाने वाला सनातन है । उस वृक्ष पर निरय ही पुण्य और फल ग रहा करते हैं । ॥७३, ७४॥ उसी वनस्पति के नाम से जम्बूद्वीप समाख्यात हो गया है । उस वृक्ष का महान् उत्सेध ( ऊंचाई ) है जो एक सहस्र एक सौ योजन है । यह वृक्षराज दिव सोच की समावृत्त करने ही वहा पर स्थित रहता है । उसके जम्बूकल भी पड़े ही विशाल होते हैं जो कि उनके रस में एक सरिता की रचना होकर वह प्रसर्पण किया करती है । वह नदी मेरु को प्रदक्षिणा करके उस जम्बू के मूल में पुनः गई थी । इमावृत्त में वहा के प्राणी सर्वदा प्रसन्न होते हुए उस जम्बू रस का पान किया करते हैं ॥७५॥ ॥७६, ७७॥ उस जम्बू वृक्ष के रस को पीकर उन्हें फिर बृद्धता कभी बाधा नहीं किया करती है । उन्हें न तो कभी शूरा ही सताती है और न कोई वमन ही हुमा करता है तथा उस प्रकार का कोई दुःख ही हुमा करता है ॥७८॥

तत्र जावूनद नाम कनकं देवभूषणम् ।

इन्द्रगोपकसङ्काश जायते भासुरञ्च यत् ॥७९॥

रुर्वेपा वपवृक्षाणां शुभं फलरसस्तु सः ।

स्कन्धन्तु काञ्चन शुभ्रं जायते देवभूषणम् ॥८०॥

तेषां मूत्रं पुरं प वा दिष्ट्वष्टासु च सवशः ।

ईश्वराग्रहाद्भूमिर्मुताश्च ग्रसतेतु तान् ॥८१॥

रक्षः पिशाचा यक्षाश्च सर्वे हेमवतास्तु ते ।

हेमकूटेतु विज्ञेया गन्धर्वा साप्सरोगणाः ॥८२॥

सर्वनागा निपेवन्ते शेषवासुकितक्षकाः ।

महामेघौ त्रयस्त्रिंशत् क्रीडन्ते यज्ञिया शुभा ॥८३॥

नीलवेदूययुक्तेऽस्मिन् सिद्धात्रह्यर्पणोऽवसन् ।



दैत्याना दानवानाञ्च दैवतः पर्वत उच्यते ॥८४॥  
 शृङ्गवान् पर्वतश्चेष्ट पितृणा प्रतिसञ्चर ।  
 इत्प्रतानि मयोक्तानि नव वर्षाणि भारते ॥८५॥  
 भूतैरपि निविष्टानि गतिमन्ति ध्रुवाणि च ।  
 तेषा बुद्धिबहुविद्या दृश्यते देवमानुषे ॥८६॥  
 अक्षय्या परिसर्यातुं शक्येया च विभूषता ॥८६॥

वहा शर जाम्बूनद नाम वाला सुवर्ण देवों का भूषण होता है जो  
 इन्द्रगोप के सहस्र और भामुर हुआ करता है ॥७६॥ वह फलों का रस  
 सब वर्ष के वृक्षों का परम सुगन्ध होता है । जब स्कन्ध होता है तो वह  
 धुल्ल देव काञ्चन हो जाता है ॥८०॥ उनका भूष और पुरीष भाठो  
 दिशाओं में सब ओर जाता है । ईश्वर के अनुग्रह से भूमि मृत उनको  
 प्रसा करता है ॥८१॥ राक्षस — पिशाच — यक्ष सब वे हेमवत हैं । हेम  
 वत में गन्धर्व और अप्सरा गण जानने चाहिए अर्थात् गन्धर्व और अप्स-  
 राएँ रहा करते हैं । दीप-वामुकि और दक्षक आदि सब नाम उसका  
 सेवन किया करते हैं । महा मेरु में तेरीस पात्रिय कीड़ा किया करते हैं ।  
 ॥८२, ८३॥ नीलमणि और बह्वर्णमणि से युक्त इसमें सिद्ध और ब्रह्मर्षि  
 गण निवास किया करते थे । दैत्यों का और दानवों का पर्वत दैवत कहा  
 जाता है ॥८४॥ शृङ्गवान् श्रेष्ठ पर्वत पितृगण का सञ्चर स्थल है । ये  
 मैंने भारत में नौ वर्ष बतला दिये हैं ॥८५॥ ॥ भूतों के द्वारा भी निविष्ट  
 हैं — गतिमान् हैं और ध्रुव हैं । उनकी बुद्धि देव मानुषों के द्वारा बहुत  
 प्रकार की दिखलाई दिया करती है । वह परिसर्या करने में अक्षय है—  
 शक्य करने के योग्य है और विभूषत है ॥८६॥

## ५१—हिमवद् वर्णनम्

आलोकयन्नदी पुण्यान्तत्समीपहतश्रमः ।  
 स गच्छन्नेव दृष्ट्वा हिमवन्तं महामिरिम् ॥१॥  
 खमत्स्त्रिद्विवहृभिवृत्तं शृङ्गंस्तु पाण्डुरैः ।  
 पक्षिणामपि सञ्चारैर्विना सिद्धगतिं शुभम् ॥२॥  
 नदीप्रवाहसञ्जातमहाशब्दैः समन्ततः ।  
 असंश्रुतान्शब्दन्त शीततोयं मनोरमम् ॥३॥  
 देवदारुवनैर्नीले कृताधोवसनं शभम् ।  
 मेघोत्तरीयकं शैलं दहणे स नराधिपः ॥४॥  
 श्वेतमेघकृतोष्णीषं चन्द्राकंमुकुटं क्वचित् ।  
 हिमानुलिप्तसर्वाङ्गं क्वचिद्वातुविमिश्रितम् ॥५॥  
 चन्दनेनानुलिप्तं दत्तपञ्चाङ्गं स यथा ।  
 शीतप्रदं निदाघेऽपि शिलाविकटसङ्कुटम् ॥  
 सालत्तर्करस्तरसा मुद्रितं पारणं क्वचित् ॥६॥  
 क्वचित्सपृष्टसूर्यां शु क्वचिच्च तमसावृतम् ।  
 वरीमुखैः क्वचिद्भीमैः पिवन्त सलिलं महत् ॥७॥

महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—परम पुण्यमयी नदी का भव  
 लोकन करता हुआ उसका समीप में हृतश्रम वाला होकर वह जाता हुआ  
 ही महान् गिरि हिमवान् को देखता था ॥१॥ यह हिमवान् पाण्डुर वर्ण  
 वाले—आकाश को छेने वाले बहून से शिखरो से वृत्त है और पक्षियों के  
 सञ्चारों के बिना परम शुभ और सिद्धगति वाला है ॥२॥ नदियों के  
 प्रवाह के कारण समुत्पन्न महान् घोर शब्दों से सभी ओर अन्य कोई भी  
 शब्द वहाँ सुनाई नहीं देता है और वह परम मनोरम तथा शीतल जल  
 वाला है ॥ ३ ॥ देवदारु के नीले वर्ण वाले वन जो उसके  
 नीचे वाले भाग में हैं वेही मानों उसका अधोवसन शु । अधोवसन

है और जो उससे ऊपर मेघों का घिराव रहता है वही उसका उत्तरीय  
 वस्त्र है ऐसा वह जैसा एक राजा ही की भाँति दिखलाई देता था ॥४॥  
 श्वेत वर्ण का जो मेघ है वही माना उसका मस्तक की पगड़ी है । कहीं  
 पर चन्द्रमा और सूर्य ही उसका मुकुट की शोभा दिया करते हैं । हिमालय  
 सर्वदा हिम से अनुलिप्त समस्त अङ्गों वाला है और वही पर घातु से  
 भी विमिश्रित है । अर्थात् हिमालय में जहाँ-तहाँ घातुएँ भी दिखलाई  
 दिया करती हैं ॥५॥ दस पञ्चांगुल की माँत चन्दन से अनुलिप्त अङ्गों  
 वाला है और शोष्म ऋतु में भी शीत प्रदान करने वाला है तथा बिकर  
 विमान शिलाओं से सङ्कीर्ण है । वही पर अत्यन्त बिनमें लगा हुआ है  
 ऐसे अम्पगजों के चरणों से भी विह्वित है ॥६॥ हिमालय ऐसा एक  
 परम शिष्टान्त पर्वत है कि कहीं पर तो उसमें सूर्य की किरणों का सङ्घर्ष  
 होता है और कहीं पर एक दम अव्यक्त से ही समावृत्त रहा रहता है ।  
 किसी स्थल पर ऐसी विशाल गुफाएँ हैं जो महान् भीषण दिखलाई दिया  
 करती हैं और उनके द्वारा सतिस का पाव अत्यधिकता के साथ किया  
 करता है ॥७॥

वचचिद्विद्याधरगणे श्रीहृदिमहोपशोभितम् ।  
 उपगीतं तथ मुह्यै किन्नराणाङ्गणे वचचिद् ॥८॥  
 आपानभूमी गलितैर्गन्धर्वाध्वरसा वचचिद् ।  
 पूर्णः सन्नानकादीना दिव्यैस्तमुपशोभितम् ॥९॥  
 सुप्तोत्थिताभि शय्याभि कसुमाना तथा वचचिद् ।  
 मृदिताभि समाकीर्ण गन्धर्वाणा मनोरमम् ॥१०॥  
 निरुद्धपवनैर्दर्शनीतिशाद्वलमण्डिते ।  
 वचचिच्च कुसुमैर्युक्तमत्यन्तमचिरशुभम् ॥११॥  
 तपस्विशरणं शैल कामिनामतिदुलभम् ।  
 मृगयथानुचरितन्दन्तिभिन्नमहाद्रुमम् ॥१२॥  
 यत्र सिंहनिनादेन व्रतानां भैरवखम् ।

दृश्यते न च सन्ध्यान्त गजानामाकुल कुलम् ॥ १३

तटाञ्च तापसंयत्र कुञ्जदेशंरलङ्कृता ।

रत्नयंस्यसमुत्पन्नैस्त्रैलोक्यसमलङ्कृतम् ॥ १४

इस हिमालय पवन राज पर कहीं पर कुछ ऐसे भी स्थल विद्यमान हैं जो प्रीडा करने वाले विद्यात्रर गणों के द्वारा उपशोभित रहा करते हैं और किसी स्थान पर मुख्य किनारों के गण गीतों का गायन किया करते हैं ॥५॥ कहीं पर आपान भूमि में गन्धर्व और अप्सराओं के गलित ( गिरे हुए ) सन्धानक आदि देव वृक्षों के पुष्पों से बहु उपशोभित रहता है । ६॥ कुछ स्थल ऐसे भी इस हिमालय में हैं जो गन्धर्वों की सोकर उठाई हुई पुष्पों की मृदित शय्याओं से समाकाश और मनोरम हैं ॥१०॥ कहीं पर ऐसे भी स्थल हैं जो नील वण की शादल ( घास ) से विभूषित और जिनमें पवन का एकदम निरोध रहता हो ऐसे देशों से तथा कुसुमों से युक्त और अत्यन्त ही कविर एवं शुभ हैं । ११॥ यह पवन हिमवान् तस्विनी की पूजनया रक्षा करने वाला है और जो काम वासना वाले लोग हैं उन को तो अत्यन्त ही दुर्लभ है । यह हार्मियों के द्वारा भिन्न महा द्रुमों वाला है तथा मृगों को भीत अनु चरित है । १२॥ यह हिमवान् ऐसा गिरि है जिससे सिंहों की गजना की मैख ( भयावह ) ध्वनि नहीं होती है जिससे कि भयभीत श्रय ज तु कोई भीति सूचक शब्द किया करे । वहा पर हार्मियों का समुदाय सन्ध्यान्त और समाकुल नहीं दिखलाई दिया करता है ॥१३॥ जिसमें कुञ्जदेश तापसों से सट मयलकृत रहा करते हैं । हिमालय में अनेक अद्भुत महा मूल्यवान् रत्न समुत्पन्न हुआ करते हैं जिनसे यह सम्पूर्ण त्रैलोक्य विभूषण होता है ॥१४॥

अहीनशरण नित्यमहीनजनसेवितम् ।

अहीन पशति गिरि महीन रत्नसम्पदा ॥ १५

अल्पेन तपसा यत्र सिद्धि प्राप्स्यात् त तापसा ।

यस्य दशनमात्रेण सवत्स्रमपनाशनम् ॥ १६

महाप्रपातसम्पातप्रपातादिगताम्बुभिः ।

वायुनीनं सदा तृप्तिकृतदेशं क्वचित् क्वचित् ॥१७॥

समालम्ब्य जलं शृङ्गैः क्वचिच्चापि समुच्छ्रितं ।

नित्यकं तापविषमं रगम्यं मनसा युतम् ॥१८॥

देवदारुमहावृक्षप्रजशाखानिरन्तरं ।

वशास्तम्बवनाकारैः प्रदेशैरपशोभितम् ॥१९॥

हिमशृङ्गमहाशृङ्गं प्रपातशतनिर्भरम् ।

शब्दलभ्याम्बुविषमं हिमसल्लवकन्दरम् ॥२०॥

दृष्ट्वैव तं चारुनितम्बभूमिं महानुभावः स तु भद्रनाथः ।

वभ्राम मन्त्रं व मुदा समेतस्थानं तदा त्रिजिह्वदयाससाद ॥ २१ ॥

यह हिमवान् नित्य ही अहीनो का शरण अर्थात् आश्रय तथा रक्षक होता है और अहीनो के द्वारा ही सभी शान्ति सेवित रहा करता है । जो अहीन होता है वही इस गिरि को देखना है तथा यह सबदा रत्नो की सम्पत्ति से अहीन ही रहता है ॥१५॥ इसमें बहुत ही स्वल्प तपश्चर्या से तापस लोग सिद्धि की प्राप्ति कर लिया करते हैं जिसके केवल दशन से ही तप प्रकार के कष्टमयों का तुरन्त ही विनाश हो आया करता है । ॥१६॥ महान् प्रपातो ( झरनो ) क सम्पात से अन्य प्रपात आदि में गन जलो के द्वारा जो कि वायु के द्वारा 'ध्वर-ध्वर' किये जाते हैं यह कहीं-कहीं पर पूर्णतया तृप्ति युक्त प्रदेश वाला रहता है । कहीं पर तो इसकी चोटियाँ ऐसी हैं जहाँ जल समालम्ब्य रह करता है और कहीं पर ये ही शिखरे अत्यन्त ऊँची हैं जो नित्य ही सूर्य के ताप से विषमता युक्त हैं एवं भगम्य हैं । इसी प्रकार से यह वनसे युक्त है ॥१७, १८॥ इस गिरि राज में ऐसे प्रदेश हैं जहाँ पर देवदारु के महान् विशाल वृक्षा का समुदाय रहता है और उनकी शाखायें ऐनी फैली रहा करती हैं कि कुछ भी अवकाश नहीं रहता है अर्थात् एक दूसरे वृक्ष से घमाघस है । वांशो के वडे २ स्तम्भों से विषम वनों वाले प्रदेश से यह शोभा युक्त है । १९॥

वर्ष के ही छत्र से युक्त इस की महान् शिखरें विराजमान रहा करती हैं और संकडो ही प्रपातो का निर्झरण इसमें होता रहता है । शब्द के द्वारा ही प्राप्त करने के योग्य जग से यह अत्यन्त विषम है और इसकी ओ कन्दरायें हैं वे भी सर्वदा हिम ( वर्ष ) से सज्ज रह करती हैं ॥ २ ॥ अत्यन्त सुन्दर निम्बो की भूमि वाले उस गिरिराज का देख कर ही वह महानुभाव भद्र नाथ वही पर बहुत ही आनन्द क साथ भ्रमण किया करते थे और उस समय में कोई समेत स्थान उन्होंने प्राप्त कर लिया था ॥ २१ ॥

### ५२-कैलास वर्णन

तस्याश्रमस्योत्तरस्त्रिपुगारिनियेवित ।  
 नानारत्नमयं शृङ्गः कल्पद्रुमसमन्वितः ॥१॥  
 मध्ये हिमवतः पृष्ठे कैलासो नाम पर्वतः ।  
 तस्मिन्निवसति श्रीमान् कुबेरः सह मुह्यर्कः ॥२॥  
 अप्सरोऽनूगतो राजा मोदते ह्यलकाधिपः ।

सूतजी ने कहा—उनके माध्यम से उत्तर दिशा की ओर भगवान् त्रिपुरारि शिव के द्वारा निषेवित तथा कल्पद्रुमों से समुन्न एव अनेक प्रकार के रत्नों से परिपूर्ण शिखरों से समन्वित हिमवान् के मध्य में पृष्ठ पर कैलास नाम वाला पर्वत है उसमें कुबेर अपने गुह्यको को साप म लेकर निवास किया करते हैं ॥११, २॥ वहाँ पर भलका पुरी का स्वामी कुबेर राजा सर्वदा भयराजों से अनुमन होकर प्रसन्नता का अनुभव किया करते हैं । बड़ी कैलास के पाद से समुत्पन्न परमरम्य एव शुभ शीतल जल है ॥३॥ जो जल मन्दार नाम वाले देववृक्ष के रज पराग से पूरित रहा करता है और देव के ही सटण है । उसी जल से एक मन्दाकिनी नाम वाली सरिता जो परम दिव्य है और अत्यन्त शुभ है बहान किया करती है ॥४॥ उस नदी के तीर पर ही वहाँ पर अनीष दिव्य एव महान् वन है जिसका शुभ नाम नन्दन है । कैलास गिरि से पूर्वोत्तर में एक अति दिव्य सौगन्धिक गिरि है ॥५॥ यह समस्त धातुओं से परिपूर्ण-दिव्य और पर्वत के प्रति सुन्दर वेल वाला है । एक चन्द्रप्रभ नास वाला भी वहाँ पर पर्वत है जो परम शुभ और रत्न के तुल्य है ॥ ६ ॥ उनके ही समीप में एक परम दिव्य अच्छोद नाम से प्रसिद्ध सरोवर है । उस सट से एक शुभ अच्छोदिका नाम वाली नदी उत्पन्न होती है ॥ ७ ॥

तस्मास्तीरे वनं दिव्य महच्चैत्ररथ शुभम् ।  
तस्मिन् गिरौ निवसति मणिभद्रः सहानुगः ॥८॥  
यक्षसेनापतिः क्रूरो गुह्यकः परिवारितः ।  
पुण्या मन्दाकिनी नाम नदी ह्यच्छोका गुमा ॥९॥  
महीमण्डलमध्ये तु प्रविष्टे तु महोदधिम् ।  
कैलासदर्शने प्राच्या शिवः सर्वोपधि गिरिम् ॥१०॥  
मनःशिलामय दिव्य सुवेलपर्वत प्रति ।  
सोहितो हेमभृङ्गस्तु गिरिः सूर्यप्रभो महान् ॥११॥

तस्मात् प्रभवते पुण्या सरयूलोकावनी ।  
 तस्यास्तीरे वन दिव्य वैभवाज नामविश्रुतम् ॥१७॥  
 बुवेरानुचरस्तास्मिन् प्रहेतिजनयो वशी ।  
 ब्रह्मावाता निवसन्ति राक्षसोऽनन्तविक्रमः ॥१८॥  
 कैलासात् पश्चिमामात्रा दिव्य सर्वोपश्रितिरि ।  
 अरुणपर्वतश्रेष्ठो हवमघानृचिभूपित ॥१९॥  
 भवस्य दमितश्रोमान्पावताहैमसन्निभः ।  
 शानकोष्ममयैर्दिव्यै जिलाजालै गमाक्षित ॥२०॥  
 शनसरंम्नापनोर्यः श्रुत्वा दिवमिवोत्थिष्यन् ।  
 शङ्खधानु नुमहादिव्यो दुग् शीतोमहाक्षित ॥२१॥  
 तस्मिन् शिरो निवसति गिरिगो धूम्रलोचन ।  
 तस्य पादान प्रभवति गेरोद नाम तत्पुत्र ॥२२॥

उप कन्दमान में कबुद्धो छत्र का बलति होती है । वह बिना  
 जन बाबा त्रिकुट के प्रति त्रिकुट मंत है ॥ १५ ॥ वहीं पर सम्पूर्ण  
 धानुओं से परिपूर्ण एक अपन्न महान् वैद्युत नाम बाना शिरि है । उस  
 पर्वत के पाद में एक अपन्न शिखर शानक न म बाणा सरोवर है जो मरा  
 सिद्धों के द्वारा श्रेष्ठ रक्षा करता है ॥ १६ ॥ इस सरोवर के परम  
 पुष्पमयी लोको को पवन कर देने वाली मरू नाम शर्मा वशी मनुज  
 दृष्टा करती है । उसके उद पर एक अरुण विद्यान वैभवाज नाम से  
 प्रसिद्ध दिव्य वन है ॥ १७ ॥ वहीं पर कुचर का अनुवर वशी प्राहित  
 का पुत्र ब्रह्मावाता विशाल क्रिया करता है वह राक्षस अनन्त विक्रम वाला  
 था ॥ १८ ॥ कैलास पर्वत से पश्चिम दिशा में एक अतिदिव्य सर्वोपश्रि  
 गिरि है । वह पर्वत सम्पूर्ण पर्वतों में श्रेष्ठ-प्रधान वर्ष बाना और हवम  
 (मुवर्ग) धानु से विभूषित होता है ॥ १९ ॥ वह शानकोष्म मर  
 दिव्य शिवाओं के शर्मा न चारों ओर समाहित है और हवम मरुत की  
 समान सद् पर्वत मरुत नृभव का अवतार प्पात्र है ॥ २० ॥ शंखों की



तस्यपादे महद्दिव्यं लोहितं सुमहत्सरः ।

तस्मान् गिरो निवसति यक्षोमणिधरोवशी ॥१२॥

दिव्यारण्य विशोकञ्चतस्य तीरे महद्वनम् ।

तस्मिन् गिरो निवसति यक्षोमणिधरोवशी ॥१३॥

सौम्यैः सुधार्मिकैश्चैव गुह्यकैः परिवारियः ।

कैलासात् पश्चिमोदोच्या ककुद्मानोपधी गिरिः ॥१४॥

उस अच्छोदिका सरिता के तट पर एक अत्यन्त शुभ—दिग्ग और महान् चन्द्राय नाम वाला वन है । उसमें गिरि पर घपने अनुबरो के साथ मणिभद्र निवास किया करते हैं ॥ ८ ॥ यह यक्षों का अत्यन्त क्रूर सेनापति है जो सर्वश गुह्यको से परिवारित रहा करता है और वहाँ पर परम पुण्यमयी मन्दकिनी नाम वाली अच्छोदिका शुभ नदी बहा करती है ॥ ९ ॥ मही मण्डल के मध्य में महोदधि में प्रविष्ट होने पर कैलास के दक्षिण पूर्व में शिव सर्वोपधि गिरि है ॥ १० ॥ मैनासल से परिपूर्ण पर्वत के प्रति सुबेल और दिव्य—हेम की शिखर वाला—लोहित नाम वाला एक महान् सूर्य प्रभ गिरि है जिसकी प्रभा सूर्य के समान है । उस पर्वत के निचले भाग में महान् दिग्ग लोहित नाम वाला ही एक सर है । उसी सर से लोहित्य नाम वाला एक विशाल नद बहने किया करता है ॥ ११, १२ ॥ उस नद के तीर पर एक अति महान्—दिव्य विशोका रूप है । उसमें पर्वत पर बसी यक्ष मणिधर निवास किया करता है । वह परम सौम्य और सुधार्मिक गुह्यको से चारों ओर में घिरा हुआ रहा करता है । कैलास पर्वत से पश्चिमोत्तर दिशा में ककुद्मान् नाम वाला ओपधियों का गिरि है ॥ १३, १४ ॥

ककुद्मति च रुद्रस्य उत्पत्तिश्च ककुद्मिनः ।

तदजनन्त्रः ककुदं शैलन्त्रिककुद प्रति ॥१५॥

सर्वघातुमयस्तत्रसुमहान् वंशुतो गिरिः ।

तस्य पादे महद्दिव्य मानस सिद्धसेवितम् ॥१६॥

तस्मात् प्रभवते पुण्या सरयूलोकपावनी ।  
 तस्यास्तीरे वनं दिव्यं वैभ्राज नामविश्रुतम् ॥१७॥  
 कुबेरानुचरस्तस्मिन् प्रहेतितनयो वशी ।  
 ब्रह्मघाता निवसति राक्षसोज्ज्वलविक्रमः ॥१८॥  
 कंलासात् पश्चिमामाशा दिव्यःसर्वोपधिगिरिः ।  
 अरुणःपर्वतश्रेष्ठो रुचमघातुविभूषितः ॥१९॥  
 भवस्य दयितःश्रीमान्पावतोहैमसन्निभः ।  
 शातकोष्ममयैर्दिव्यैःशिलाजालं समाचितः ॥२०॥  
 शतसंरथैस्तापनीयैः शृङ्गैर्दिवमिवोल्लिखन् ।  
 शृङ्गवान् मुमहादिव्यो दुग्धः शीलोमहाचितः ॥२१॥  
 तस्मिन् शिरो निवसति गिरिशो धूम्रलोचनः ।  
 तस्य पादात् प्रभवति गेलोद नाम तत्परः ॥२२॥

उस कबुद्मान् मे कबुद्मी रुद्र की उत्पत्ति होगी है । वह बिना  
 जन वाषा त्रिकबुद के प्रति शैकबुद शील है ॥ १५ ॥ वहीं पर सम्पूर्ण  
 प्रातुओं मे परिपूर्ण एक अत्यन्त महान् वैद्यूत नाम वाषा गिरि है । उस  
 पर्वत के पाद मे एक अत्यन्त दिव्य मानस नाम वाला सरोवर है जो मदा  
 मिदो के द्वारा मेजिन रहा करता है ॥ १६ ॥ उस सरोवर से परम  
 पुण्यमयी लोरी को पावन कर देने वाली मग्गू नाम जाभी नदी समुत्पन्न  
 हुआ करती है । उसके नट पर एक अत्यन्त विशाल वैभ्राज नाम से  
 प्रसिद्ध दिव्य वन है ॥ १७ ॥ वहीं पर कुबेर का अनुचर वशी प्रोहित  
 का पुत्र ब्रह्मघाता निवास किया करता है वह राक्षस अजन्त विप्रम बाला  
 का ॥ १८ ॥ कंलास पर्वत मे पश्चिम दिशा मे एक अनिर्दिष्ट सर्वोपधि  
 गिरि है । यह पर्वत सम्पूर्ण पर्वतो मे श्रेष्ठ-अरुण वर्ण वाला और रुचम  
 (मुवर्ण) प्रातु मे विभूषित होता है ॥ १९ ॥ यह शातकोष्म मय  
 दिव्य शिलाओं के जालों से चारो ओर सनाकिन है और हेम महत श्री  
 मय-न यह पर्वत भवत्, भव का अत्यन्त प्यारा है ॥ २० ॥ शृङ्गों की

तथा वाते तापनीय तिष्ठरो से दिव्योक्त का मन में चलेख म करता  
 हुआ—महान् दिव्य शृङ्गवान् महाविमल शंस दुर्ग के समान है ॥ २१ ॥  
 उस शृङ्ग पर धूमलोवन गिरिश निवास करते हैं । उस पर्वत का  
 भाग स शंसोद नाम वाला एक सरोवर का प्रभव ( उत्पत्ति ) होता  
 है ॥ २२ ॥

तस्मात् प्रभवते पुण्या नदीशैलोदकाद्गुमा ।  
 सा चक्षुसी तणोर्मध्ये प्रविष्टापरिचमोदधिम् ॥ २१ ॥  
 अमृत्युत्तरेण कलासांश्चिव सवोपधोगिरिः ।  
 गौरन्तु पर्वतश्चेष्ट हरितालमय प्रति ॥ २४ ॥  
 हिरण्यशृङ्ग मुमहान् दिव्योपधिमयो गिरिः ।  
 तस्यपादे महद्दिव्य सर काञ्चनवालुकम् ॥ २५ ॥  
 रम्य विन्दुसरो नाम यत्र राजा भगीरथ ।  
 गङ्गार्थं स तु राजपिरुवास बद्धला समाः ॥ २६ ॥  
 दिव यास्यन्तु मे पूर्वं गगातोयाप्नुतास्त्रिकाः ।  
 तस त्रिपयगा देवी प्रथम तु प्रतिष्ठिता ॥ २७ ॥  
 सोमपादात् प्रसूता सा सप्तधा प्रविभज्यते ।  
 ययामणिमयास्तत्र विमानाश्च हिरण्यमया ॥ २८ ॥  
 तत्रेष्ट्वा व्रतुभि सिद्ध शक्र सुरगणै सह ।  
 दिव्यकृतायापथस्तत्रनक्षत्राणां तुमण्डलम् ॥ २९ ॥

उस सर से परम पुण्यमयी और अत्यन्त शुभ शैलोदका नाम  
 वाली नदी समुत्पन्न होकर बहती है । वह उन दोनों के मध्य में चक्षुसी  
 पश्चिम सागर में प्रविष्ट होती है ॥ २२ ॥ कलास के उत्तर भाग में  
 सवेपिध शिव गिरि है । यह श्रेष्ठ पर्वत गौर है और हरिताल मय ही  
 होता है । हिरण्य शृङ्ग बहुत ही महान् और दिव्योपधियो से परिपूर्ण  
 गिरि है । उसके चरणों के भाग में एक महान् दिव्य सर है जिसकी  
 चालुका काञ्चन मयी है । वहाँ पर एक परम रम्य विन्दुसर नाम वाला

मरोवर है जहाँ पर गङ्गा के साने के लिये तपश्चर्या करता हुआ राजपि  
राजा भयोस्य बहुत से वर्षों तक रहा था ॥ २४, २५, २६ ॥ राजपि  
का कथन था कि गहिने गङ्गा के पवित्र जल में स्नान मेरी अस्थियाँ दिव-  
सोक को पत्ती जावे । वहाँ पर त्रिपथ गायिनी देवी सर्व प्रथम प्रतिष्ठित  
हुई थी ॥ २७ ॥ सोमपाद से समुत्पन्न हुई वह सान भागों में प्रविष्ट  
की जाती है । वहाँ पर मर्षियों परिपूर्ण भूप है और मुवर्ण से परिपूर्ण  
अर्थात् स्वर्ग निम्न विमान हैं ॥ २८ ॥ वहाँ पर सुग्गों क सट्टिन इन्द्र-  
देव ऋतुओं के द्वारा यजन करके सिद्ध हुआ था अर्थात् सिद्धि प्राप्ति  
की थी । वहाँ पर नक्षत्रों का मण्डल दिवसोक का विष छाया पप  
है ॥ २९ ॥

दृश्यते भासुरा रात्रौ देवी त्रिपथगा तु सा ।  
अन्तरिक्ष दिव खंभ भावयिस्वाभुवगता ॥३०॥  
भवोत्तमामे पतिता सरदा योगमायया ।  
तस्या ये लिन्दव.केचित्कू.दायाः निताभुवि । ३१  
कृतन्तु तैर्वहसरस्ततो बिन्दुसर. स्मृतम् ।  
ततस्तस्या निरुदाया भवेत् सहमा स्या ॥३२॥  
ज्ञात्वा तस्या ह्यभिप्राय क र देश्याशिक्षकोपितम् ।  
भित्वा विद्यामि पानाल श्रौनमा गृह्य शङ्करम् ॥३३॥  
अपावलेपत ज्ञात्वा तस्याः कू.दन्तु शङ्कर ।  
तिरोभावयितु बुद्धिरामोदङ्क.पुता नदाम् ॥३४॥  
एतस्मिन्नेव नाले तु दृष्ट्वा राजानमग्रत ।  
धमनोमन्नतदीण क्ष.धाव्याकुलितेन्द्रियम् ॥३५॥

रात्रि के समय में वह देवी त्रिपथगा सामुद्र दिखलाई दिया करनी  
है । वह अन्तरिक्ष घोर दिवसोक की भाँति बरके पीछे भू लोक में गई  
थी ॥३०॥ आरम्भ में जब यह इन लोकों में आई थी भव्य नृ तिथ के  
मन्त्र पर मन्त्र हुई थी और वहाँ पर योग माया क द्वारा यह मन्त्र

हो गई थी । उस समय मे सरोध होने के कारण इसको महान् क्रोध उत्पन्न हो गया था । उस क्रुद्धावस्था वाली उसकी जो कुछ बिन्दु इस भू मण्डल में पतित हुई थी । उनसे यहां पर बहुत से सरो की रचना हो गई थी । इसके पश्चात् यह बिन्दुसर कहा गया है । इसके अनन्तर श्रीमध्व ने निरुद्ध हुई उसका सहस्र क्रोध से युक्त देवी के क्रूर अभिप्राय समझ लिया था । उसका यही चिकीर्षित था कि शिव के मस्तक का भेदन करके अपने स्त्रोत के द्वारा शङ्कर का ग्रहण करके पाताल लोक में प्रवेश कर जाऊँगी ॥३१, ३२, ३३॥ इसके उपरान्त भगवान् शङ्कर उसके क्रोध युक्त इस प्रकार के अवलेपन ( नीच घमण्ड ) को जानकर उनकी ऐसी बुद्धि हो गई थी कि उस नदी को अपने ही अङ्गो में तिरो-भूत कर लिया जावे ॥३४॥ इसी बीच में उस राजर्षि भगीरथ को भगवान् शिव ने अपने समक्ष ही में खड़ा हुआ देख लिया था जो धर्मानयो से मन्तव्य क्षीण वह था और क्षुधा से व्याकुलित इन्द्रियो वाला हो रहा था ॥ ३५ ॥

अनेन तोषितश्चाह नद्यर्थे पृथमेव तु ।  
 बुध्वास्य वरदानन्तु तत कोप न य छत ॥३६  
 ग्रहाणो वचन श्रुत्वा यदुक्त धारयन् नदीम् ।  
 ततो विसर्जयामास सरुद्धा स्वेन तेजसा ॥ ७  
 नदी भगीरथस्यार्थे तपसोग्रेण नोपत ।  
 ततो विसर्जयामास सप्तस्रोतासि गङ्गाया ॥३८  
 त्रीणि प्राचीमभिमुख प्रतोचीन् त्रीण्यथैव तु ।  
 स्रोतासि त्रिपथायास्तु प्रत्यपद्यन्त सप्तधा ॥३९  
 नलिनी ह्लादिनी चैव पावनी चैव प्राच्यगा ।  
 सीता चक्षुश्च सिन्धुश्च तिरस्ता व प्रती-यगा ॥४०  
 सप्तमी त्वनुगा तासां दक्षिणेन भगीरथम् ।  
 तस्मात् भागीरथी सा वै प्रदिष्टा दक्षिणोदधिम् ॥४१

शिवने जैसे ही उसको देखा उनको उसी समय ध्यान हो आया था कि इस राजपि ने तो अत्यधिक समय तक तपस्या करके इसी नदी के पहा लाने के लिये ही मुझे पूर्णतया प्रसन्न एवं तुष्ट कर लिया था कि मैंने तब इसको वरदान भी दिया था—वह सब स्मरण पथ में लाकर फिर जो क्रोध उस समय में उन्हें आया था वह शान्त हो गया था ॥३६॥ ब्रह्माजी का कथित वचन का व्यवहार करके हम नदी की घाट पर रहे थे । इसके पश्चात् उस नरुद्ध हुई नदी को अपने ही तट से विचित्रित कर दिया था ॥३७॥ राजा भगीरथ के लिये उसकी अत्युत्तम तपस्या से नदी को छोड़ देन की आज्ञा शिव तोषित हो गये थे । और फिर गङ्गा के द्वारा सात स्रोतों का विभक्तन कर दिया गया था ॥३८॥ उनमें से तीन छो प्रचो की ओर हुए थे और तीन पश्चिम दिशा की ओर चले गये थे । इस तरह से इस त्रिपथगा गङ्गा के श्रोत सात भागों में उपलब्ध हो गये थे ॥३९॥ उन स्रोतों में नर्मिनी—नन्दिनी—पावनी ये ती प्राच्यया वर्षात् पूर्व की ओर गमन करने वाले थे । सीता—चक्षु और सिन्धु ये तीन उसके स्रोत पश्चिम की ओर गमन करने वाले थे ॥ ४० ॥ इस प्रकार ये ये छ स्रोत जो उक्त दिशाओं में गमनशील हुए थे और उन स्रोतों में जो सातवाँ स्रोत था वह दक्षिण की ओर राजा भगीरथ का अनुगमन करने वाला हुआ था । इसीलिय उसका नाम भगीरथी गङ्गा हुआ था और वह फिर दक्षिण सागर में प्रविष्ट हो गई थी ॥ ४१ ॥

सप्त चेताः प्लावयन्ति वपन्तु हिमसाहसम् ।  
प्रमूढाः सप्त नद्यस्तु शुभा विन्दुनराद्भवाः ॥ ४२  
तान्देशान् प्लावयन्ति स्म भस्तेष्टप्रायारच सवसा ।  
सर्जानान् कुकुरान् रौघ्रान् दवंरान् यवनान् खसान् ॥ ४३  
पुलिकाश्च कुन्त्याश्च अङ्गलोत्थान्वराच यान् ।  
कृत्वा द्विधा हिमवन्त प्रविष्टा दक्षिणोदधिम् ॥ ४४

अथ वीरभरुश्चैव कालिकाश्चैवशूलिमान् ।  
 तुषारान् वर्वरानङ्गान्यगृह्णात्पारदान्शकान् ॥४५॥  
 एतान् जनपदाश्चक्षुःप्लावयित्वोदधिङ्गता ।  
 दरदोर्जगुण्डाश्चैव गान्धाराननीरसानुकुहन् ॥४६॥  
 शिवपीरानिन्द्रमरुन् वसतीन् समतेजसम् ।  
 सन्धवानुवंशान् सर्वान् कुपश्रान् भीमरोमकान् ॥४७॥  
 शुनामुखाश्चोदमरुन् सिन्धुरेतान्निषेवते ।  
 मन्धर्वान् किन्नरान्यक्षान् रक्षोयिद्याधरारगान् ॥४८॥  
 कलापश्रामकाश्चैव तथा किपुरुषान्नरान् ।  
 किराताश्च पुलिन्दाश्च कुरुन् वं भारतानपि ॥४९॥  
 पाञ्चालान् कौशिकान् मत्स्यान् मागधाङ्गास्तथैव च ।  
 ब्रह्माक्षराश्च वज्राश्च ताम्रलिप्तास्तथैव च ॥५०॥  
 एतान् जनपदानार्पान् गङ्गा भावयते शुभा ।  
 ततः प्रतिहृता विन्ध्येऽप्राप्यष्टादक्षिणोदधिम् ॥५१॥

ये सातो स्रोत हिम साहस्य वर्ष को प्लावित कर दिया करते हैं ।  
 फिर विन्दु सरोवर से उद्भव प्राप्त करने वाली परम शुभ सात सरितायें  
 समुत्पन्न हुई थीं ॥४२॥ ये सब ओर से म्लेच्छप्राय उन देशों को  
 प्लावित कर रही थीं । सँलो के सहित ये देश कुहुर-रोधू-वर्वर-मयम-  
 छस-तुलिक और कुलत्य ये तथा जो वर भङ्गसाकय थे । उस सरिता  
 ने हिमवान् दो मागों से करके फिर यह अन्त में दक्षिण सागर में प्रवेश  
 कर गयी थी । ४३, ४४॥ इसके उपरान्त वीर भरु-कालिका-शूलिक-  
 तुषार-वर्वर-अनङ्ग-गारद और शरों को ग्रहण किया था । इन उक्त  
 जनपदों की पशु १ प्लावित करके यह पशु भी उदधि में धली गयी थी ।  
 दरदोर्जगुण्ड-गान्धार-अनीरस-—कूहू-—शिव पीर-इन्द्र मरु-—वसन्ती-  
 सप्तनेत्रम-र्म-०५-उदम-वर्ष-कुपश्र-भीम रोमक-पुत्रमुच्य और उर्व-  
 मरु-—२१ देशों को विन्धु सरोवर किया करता है । मन्धव-विनर-यक्ष-

राक्षस—विद्याघर—द्वारा बलाप ग्रामक—विष्णुहय—नर—किरात—पुलिन्द—  
मत्स्य—कुरु—भारत—पाण्डवाल—कौशिक—भाष्य—ब्रह्मोत्तर—बद्ध और ताम्र  
नित्त—इन देशों को जो आय्यं हैं उनको युष्मा यद्वा भाविन किया  
करती है । फिर वह विन्ध्य मे प्रविष्ट होती है और अन्त में दक्षिण  
उत्तरी में प्रवेश कर गयी है ॥ ४२ । ४६ । ४७ । ४८ । ४९ । ५० । ५१॥

ततस्तु हतादिनी पुण्या प्राचीनामिमुखा ययी ।  
प्लावयन्त्युपकाश्चैव निपादानापि सर्वश ॥५२  
धीवरान्पिकाश्चैव तथा नीलमुखानपि ।  
केकरानैकरणाश्च किरातानपि चैव हि ॥५३  
कालिन्दगतिकाश्चैव कुशिकान्स्वर्गभीमकान् ।  
सामञ्जले समुद्रस्यतीरेभूत्वात्तुसवश ॥५४  
ततस्तु नलिनीचापि प्राचीमेव दिश ययी ।  
कुपयान्प्लावयन्ता सा इन्द्रयन्मसराक्ष्यपि ॥५५  
तथा खरपयान् देशान् वेदशङ्कुपयानपि ।  
मध्येनोऽजानयमहन् कुयश्रावरणान् ययी ॥५६  
इन्द्रद्वीपसमीपे तु प्रविष्टा लवणोदधिम् ।  
ततस्तु पावनी पापान् पाप्नीमादाज्जवेन न ॥५७



छरपय देशो को—वेग शकु पयो को—मध्य में नोज्ज्वानक सर्रो को  
और कुष प्रावरणो को चली गयी थी । ॥५५, ५६॥ फिर वह इन्द्रदीप  
के समीप में सवणोदधि मे प्रवेश कर गयी थी । इसके उपरान्त यावनी  
नाम वाली बड़े वेग से पूर्व दिशा को चली गयी थी ॥५७॥

तोमरान् प्लावयन्तीचहसमार्गान् समूहकान् ।

पूर्वादेशाश्चसेवन्तीभित्वासावहृषागिरिम् ॥

कणप्रावरणान् प्राप्य गता साश्वत्स्थानपि ॥५८॥

सिक्त्वा पर्वतमेव सा गत्वा विद्याधरानपि ।

शैमिमण्डलकोष्ठन्तु सा प्रविष्टा महत्सरः ॥५९॥

तासा नद्युपनद्योज्या शतशोऽप्य सहस्रशः ।

उपगच्छन्तिता नद्यो यतोवपति वासवः ॥६०॥

तोरे वशीकसारायाः सुदध्निर्नाम तद्वनम् ।

हिरण्यधृङ्गा वसतिविद्वान् कौशरश्चो वशी ॥६१॥

यज्ञादपेतः सुमहानमितोजा सुविक्रमः ।

तत्रागस्त्यं परिवृता विद्वद्भिर्ब्रह्माक्षसैः ॥६२॥

शुवेरानुचरा ह्येते चत्वारस्तत्समाश्रिताः ।

एवमेव तु विज्ञेया सिद्धिं पवतवासिनाम् ॥६३॥

वह यावनी सरिता का स्रोत जो उन उपकुंस्त सात स्रोतों मे  
से एक थी तौमा दशो का प्लावन करती हुई हस मार्गों को—समूहको  
को और पूर्व देशो का सेवन करती हुई वह प्राय गिरिओ का भेदन करके  
वर्ण प्रावरणो मे पहुँच कर वह अश्व मुखो को चली गयी थी ॥५८॥ वह  
मेव पर्वत का सेवन करके फिर विद्याधरों मे पहुँच कर अन्त में शैमि  
मण्डल को ठ महान् सर मे प्रवेश कर गयी है । उन सातों नदियो मे से  
अन्य सँवओ और महस्रो ही नदियाँ तथा उप नदियाँ उप गमन किया  
करती हैं । वे ऐसी नदियाँ है जिन म इन्द्र दय वर्षा किया करते हैं ।  
वशीक मार्ग व तट पर गु नि नाम बाणा एव विनास बन है । यहाँ

पर हिरण्य शृङ्गेवर्णी विद्वान् कौवरक निवास किया करता है । वह यज्ञ से अपन-सुपहान्—अपरिमित ओज वाला—सुन्दर बलविक्रम से सम्पन्न है । वहाँ पर अगस्त्यो के द्वारा परिवृत्त तथा विद्वान् ब्रह्म राक्षसों से परिवृत्त ये चार कूत्रे के अशुभर हैं जो उसके सपाश्र्व मे रहा करते हैं । इसी प्रकार से पर्वतों में निवास करने वालों की सिद्धि को साक्षात् देना चाहिये ॥५६॥६०॥६१॥६२॥६३॥

परस्परेश द्विगुणा धर्म्यतः कामतोर्ज्यतः ।

हेमकूटस्य पृष्ठे तु सर्पिणा नदसरः स्मृतम् ॥६४॥

सरस्वती प्रभवति तस्माज् ज्योतिष्यती तु या ।

अवगाढे ह्युभयतः समुद्री पूर्वपश्चिमौ ॥६५॥

सरो विष्णुपद नाम निषधे पर्वताक्षमे ।

यन्मादग्रं प्रभवति गन्धर्वानुकुले च ते ॥६६॥

मेरोः पार्श्वीत् प्रभवति ह्रदश्चन्द्रप्रभो महान् ।

जम्बुर्ष्वेव नदी पुण्या यस्य जाम्बवन्तः स्मृतम् ॥६७॥

पयोदस्तु ह्रदो नीलः स शुभः पुण्डरीकयान् ।

पुण्डरीकात् पयोदाश्च तस्माद् वै सम्प्रसूयताम् ॥६८॥

सरसस्तु सरस्वेतत् स्मृतमुत्तरमानसम् ।

मुष्पाच्च मृगकान्ताच्च तस्माद्देसम्प्रसूयताम् । ६९

ह्रदाः कुरुपु विरुगाताः पद्ममीनकुलाकृताः ।

नाम्ना ते वैजयानाम द्वादशोदधिसन्निभाः ॥ ७०

यह सिद्धि परस्पर मे धर्म-अर्थ और नाम से द्विगुण दुभा करती है । हेमकूट के पृष्ठ पर जो सर है वह सर्पों का बनाया गया है । उस सर से सरस्वती की उत्पत्ति हुआ करती है जो कि ज्योतिष्यती है अवगाढ मे दोनों ओर पूर्व सागर और पश्चिम समुद्र है ॥६४, ६५॥ पर्वतों में अशुभतम गिरि निषध मे विष्णु पद नाम वाला सर है जिससे आगे वे गन्धर्वानुहूत प्रसूत होते हैं ॥६६॥ मेरु गिरि के पार्श्व भाग से चन्द्रप्रभ-

एक महाम् हृद प्रसून होता है और परम पुण्याश्रितनी जम्बूनदी है जिसे जाम्बून कहते हैं ॥६७॥ पयोद नीर हृद है और यह परम शुभ तथा पुण्डरीकवान् है । पुण्डरीक और पयोद न वेदा होता है ॥६८॥ सरित् यह सरोवर है और इसको उत्तर मानस कहा गया है । उत्तर सर से मृगया और मृग जानता ये दो नदियाँ प्रसून हुई हैं । पद्मों घीर मीनों से समारोह हृद कुछ देशों में विस्तृत है । नाम में वे वैजय कहे जाते हैं और वे बारह हैं जो उदधि के ही सृज्य हैं ॥६९, ७०॥

तेभ्यः शान्ती च मध्वी च द्वेनद्यो सम्प्रसूयताम् ।  
 त्रिपुरपाद्यानि याग्यष्टीतेपुदेवोनवर्षति ॥७१॥  
 उद्भिदा न्युदकान्यत्र प्रवहन्ति सरिद्वराः ।  
 यलाहकर च ऋषभो चक्रो मंनाक एव च ॥७२॥  
 विनिविष्टाः प्रतिदिश निमग्ना लवणाभ्यां ध्रुवम् ।  
 चन्द्रवान्तस्तथा द्रोणः सुमहाश्च शिलोच्चय ॥७३॥  
 उद्गापता उदीच्यान्तु अवगाढा महोदधिम् ।  
 चक्रो वधिरश्चैव तथा नारदपवतः ॥७४॥  
 प्रतीचीमायतास्ते वै प्रतिष्ठास्ते महोदधिम् ।  
 जीमूतो द्रावणश्चैव मंनाकश्चन्द्रपवंतः ॥७५॥  
 आयतास्ते महाशैलाः समुद्र दक्षिणम् प्रति ।  
 चक्रमंनाकयोर्मध्ये दिशि सद्दक्षिणापथे ॥७६॥  
 तत्र सवर्तको नाम सोऽग्निः पिवति तज्जलम् ।  
 अग्निः समुद्रवासस्तु और्वोऽसौ वडवामुख ॥७७॥

उन हृदों से शान्ती और मध्वी दो नदियाँ प्रसून हुई हैं । उनमें किम्बुरुष आदि जो आठ हैं वे ही रहा करते हैं और उनमें देव वर्षा नहीं करता है ॥७१॥ वे ऐसे ही स्थल हैं जहाँ पर उदक उद्भिद हो होते हैं तथा श्रेष्ठ नदियाँ बहा करती हैं जिनके नाम यलाहक—ऋषभ—चक्र और मंनाक हैं । ये प्रत्येक दिशा में विशेष रूप निविष्ट हैं और अन्त में

सागर सागर में निमग्न हो जाते हैं। चन्द्र कान्त—द्रोण और शुभहान्  
शिलोक्थय उत्तर दिशा में दृष्टवान् करने वाले हैं तथा महा सागर में  
पर्वण्ड-टोले हैं। चक्र-सद्विरक्त और नारद पर्वत के पूर्व दिशा में  
सायन है और वे महोदधि में प्रतिष्ठित हैं। जीमून्-द्रावण मत्स्य और  
चन्द्र पर्वत में महान् विशाल शैल हैं जो अति विस्तृत हैं तथा दक्षिण  
समुद्र के प्रति रहते हैं और चक्र एवं मत्स्य के मध्य में दिक्लोक में  
वर्षिणाप्य में हैं ॥ ७२, ७३, ७४, ७५, ७६॥ वर्षा सवर्त्तिक नाम वाला  
है और वह अग्नि उसके जल को पी जाया करता है। समुद्र में निवास  
करने वाला अग्नि जीव होता है जो कि बडबामुख नाम जाता  
है ॥ ७७ ॥

इत्येते पर्वताविष्टाश्चरवारो सवणोदधिम् ।

द्विद्यमानेषु पक्षेषु पुरा इन्द्रस्य वै भयात् ॥७८॥

तेषाम्नु दृश्यते चन्द्रे भुवने कृष्णे समाप्नोति ।

ते भारतस्य वपस्य भेदा ये न प्रकीर्तिता ॥७९॥

इहोदितस्य दृश्यन्ते अन्ये त्वन्यत्र चोदिताः ।

चत्तरोत्तरमेतेषा वर्षमुद्रिन्मते गुणै ॥८०॥

अंराभ्यायु प्रमाणभ्या चर्मन्तः। ततोर्ध्वक ।

समवितानि भूतानितेषु वर्षेषुभायशः ॥८१॥

न सन्ति नानाजातीनि तेषु सर्वेषु तानि वै ।

इत्येतद्भारवद्विद्व पृथ्वी जगदिद स्थिता ॥८२॥

ये चारों पर्वत सवणोदधि को आविष्ट किये हुए हैं। माचीन  
समय में इन्द्रदेव के द्वारा पर्वतों के पक्षों का छेदन कर दिया गया था  
जिससे उड़कर बेचुछया न जा सकें तो पक्षों के द्विद्यमान होने पर वे इन्द्र  
के भय के कारण ही समुद्र में समाविष्ट हो गये हैं ॥७८॥ उनका चन्द्र में  
गुलफ में और कृष्ण पक्ष में समाप्नोति दिखसायी दिया करती है। वे  
भारत वर्ष के भेदा हैं अतएव प्रकीर्तित नहीं किये गये हैं ॥७९॥ यहाँ

पर उदित के दिशताई दिया करते हैं और जो अग्र्य है, वे अग्र्य स्थान में प्रेरित होते हैं। उत्तरोत्तर (आगे से आगे में) इसके वर्ष ध्रुवों के द्वारा उद्दिष्ट रहे जाते हैं। आरोग्य और और आयु के प्रमाणों से धर्म—वाम ओर धर्म से उन वर्षों में भाग्यः प्राणी सम्पन्न हुआ करते हैं। उन सब में वे अनेक प्रकार की आतिथी निवाम किया करती हैं। इन सबको विश्व धारण किया करता है और यह जगत् जो है वही पृथ्वी स्थित है।

॥८०॥८१॥८२॥

### ५३ — पृथिवी परिमाण वर्णन

अत उद्धृषं प्रवक्ष्यामि सूर्याचन्द्रमसोगतिम् ।  
 सूर्याचन्द्रमसावेतो आजन्तोयावदेवतु ॥१॥  
 सप्तद्वीपसमुद्राणां द्वीपानां भाति विस्तरः ।  
 विस्तराढं पृथिव्यास्तु भवेदत्यत्र बाह्यतः ॥२॥  
 पर्याप्तपरिमाणञ्च चन्द्रादित्यो प्रकाशतः ।  
 पर्याप्तपरिमाण्यात्तु बुधस्तुस्य दिवः स्मृतम् ॥३॥  
 श्रीन् लोकान् प्रातिसामान्यात् सूर्यो यात्यविलम्बतः ।  
 अचिरात् प्रकाशेन अवनात्तु रविः स्मृतः ॥४॥  
 भूयो भूयः प्रवक्ष्यामि प्रमाणं चन्द्रसूर्ययोः ।  
 महितत्वान्महच्छब्दोह्यस्मिन्नर्थे निगद्यते ॥५॥  
 अस्य भारतवर्षस्य विष्कम्भात्तुत्यविस्तृतम् ।  
 मण्डलं भास्करस्याथयोजनस्तन्निबोधत ॥६॥  
 नवयोजनसाहस्रो विस्तारो मण्डलस्य तु ।  
 विस्तारत्रिगुणश्चापिपरिणाहोऽत्र मण्डले ॥७॥

महर्षि श्री सूतजी ने कहा—अब इससे आगे हम सूर्यदेव और चन्द्रमा की गति का वर्णन करेंगे। ये दोनों सूर्य और चन्द्रमा जितनी दूर

तक भ्राजमान हुआ करते हैं ; सप्तो द्वीपों के समुद्रों का तथा द्वीपों का महान् विस्तार शोभित एवं दीप्त होता है । इस विस्तार का आधा भाग पृथ्वी का अग्नय और चातु हुआ करता है ॥ १, २ ॥ पर्याप्त के परिमाण तक चन्द्र और सूर्य प्रकाश दिया करते हैं । पर्याप्त के परिमाण से नुर्वों के द्वारा दिवस्तोत्र के तुल्य कहा गया है ॥ ३ ॥ प्रति सामान्य से शिवा बिलम्ब किये हुए सूर्य तीन लोको को जाया करता है । शीघ्र ही प्रकाश देने के कारण से तथा अवन करने से यह रवि कहा गया है ॥ ४ ॥ मैं बारम्बार चन्द्र और सूर्य का प्रमाण कहूँगा । महित्व होने से महद्-यह शब्द इस अर्थ में निर्गदित किया जाता है ॥ ५ ॥ इस भारतवर्ष के विश्वम्भ से तुल्य विस्तृत भगवान् भुवन आस्कार मण्डल है । इनके घतनर अब योजनों के परिमाण में भी उत्तम ज्ञान प्राप्त कर लो । नौ सहस्र योजन मण्डल का विस्तार ॥ और विस्तार से तिगुना परिणाह भा इस मण्डल में होता है ॥ ७ ॥

विष्कम्भान् मण्डलाच्चैव भास्कराद् द्विगुणं पश्यो ।  
अतः पृथिव्या वक्ष्यामि प्रमाणं याजनं पुनः ॥८॥  
सप्तद्वीपसमुद्राया विस्तारो मण्डलस्य तु ।  
इत्येतदिह संख्यात पुराणे परिमाणतः ॥९॥  
तद्वक्ष्यामि प्रसरयाम् साम्प्रतञ्चाभिमानिभिः ।  
अभिमानिनो ह्यर्थात्ता ये तुल्यास्ते सा प्रतस्त्वह ॥१०॥  
देवदेवर्त्तीवास्तु सूर्यर्त्तमभिरेव च ।  
तस्माद्दे साम्प्रतर्देवक्ष्यामि वसुधातलम् ॥११॥  
दिव्यस्य सन्निवेशोर्व साम्प्रतरेव हस्तिनः ।  
यताद्वं कोटि विस्ताः पृथिवीवृत्तनः स्मृता ॥१२॥  
तस्याश्चाद्वं प्रमाणञ्च मेरोरुन्मीमात्तम् ।  
मेरोर्मध्ये प्रतिदिश कोटिरेवातु सा स्मृता ॥१३॥  
तथा सप्तमहासागरा मेरोरनन्वति पुनः ।

पञ्चाशच्च सहस्राणि पृथिव्यद्वंस्य विस्तरः ॥१४॥

विष्कम्भ और मण्डल से भास्कर से दुगुना शशि है । इससे पुनः योजनो के द्वारा पृथिवी के प्रमाण के बतलाऊँगा ॥ ८ ॥ सात द्वीप और सात समुद्रों वाली के मण्डल का विस्तार यहाँ पर यह इतना ही सख्यात पुराण में परिमाण से किया गया है ॥ ९ ॥ उसको प्रशख्यात बतलाऊँगा । जो इस समय में अभिमानियों के द्वारा किया गया है । जो अभिमानो गण व्यतीत हो गये हैं वे यहाँ पर इस समय में होने वालों के ही तुल्य हैं ॥ १० ॥ देवदेव रूप और नामों से अतीत हो चुके हैं । इसी कारण से इस समय में होने वाले देवों से समुद्रा तल का बदलाता हूँ ॥ ११ ॥ साम्प्रतो के द्वारा दिव्य का सन्निवेश कृत्स्न नहीं है । पूर्ण रूप से यह पृथिवी शत के अर्ध कोट विस्तार वाली पूर्णतया बतलाई गयी है ॥ १२ ॥ उस पृथिवी का अर्ध प्रमाण उत्तरोत्तर मेरु का ही है । मेरु के मध्य में प्रत्येक दिशा में एक करोड़ बहू बही गई है । इन प्रकार से सी सहस्र नवासी और फिर पचास सहस्र पृथिवी के अर्ध भाग का विस्तार है ॥ १३, १४ ॥

पृथिव्या विस्तर कृत्स्न योजनैस्तन्निबोधत ।

तिस्र कोट्यस्तु विस्तारात् सख्यातास्तु चतुर्दिशम् ॥१५॥

तथा शतसहस्राणामेकोनाशातिरुच्यते ।

सप्तद्वीपसमुद्रायाः पृथिव्याः स तु विस्तरः ॥१६॥

विस्तारत्रिगुणञ्चैव पृथिव्यन्तरमण्डलम् ।

गणितयोजनानान्तुकोट्यस्त्वेकादशस्मृताः ॥१७॥

तथा शतसहस्राणा सप्तत्रिंशदधिकास्तु ताः ।

इत्येतद्विप्रसख्यात पृथिव्यन्तरमण्डलम् ॥

तार्कासन्निवेशस्य दिवि यावत्तु मण्डलम् ।

पर्याप्तसन्निवेशस्य भूमेस्तावत्तु मण्डलम् ॥१८॥

पर्याप्तपरिमाणञ्च भूमेस्तुल्य दिवः स्मृतम् ।

पृथिवी परिमाण वर्णन

मेरोःप्राच्यादिशायान्तुमानसोत्तरमूर्धानि ॥१६

वस्त्वेकसारामाहेन्द्री पुण्या हेमपरिष्कृता ।

दक्षिणेन पुनर्मैरोर्मनसस्य तु पृच्छतः ॥ ०

वैवस्वतो निवसति यमः संयमने पुरे ।

प्रतीज्यान्तु पुनर्मैरोर्मनसस्य तु मूर्धानि ॥२१

अब पृथिवी का पूर्ण विस्तार योजना के द्वारा समझ लो । चारो दिशाओ में विस्तार से तीन करोड़ सख्यात हैं ॥ १५ ॥ इस भाँति से सात द्वीप समुद्रो वाली पृथिवी का वह विस्तार सो सहस्र उग्रासी कहा जाता है ॥ १६ ॥ पृथिवी का अन्तर मण्डल का विस्तार त्रिगुण है । योजना का गणित किया गया है जो एकादश करोड़ कहा गया है । इस रीति से सो सहस्र और सैतास अधिक वे हैं — इतना ही यह पृथिवी का अन्तर मण्डल होता है ॥ १७ ॥ दिन में तारकाओं के सन्निवेश का जितना मण्डल है उतना ही पर्याप्त सन्निवेश वाली भूमिका मण्डल है ॥ १८ ॥ दिव का पर्याप्त परिमाण भूमि के ही तुल्य कहा गया है । मेरु से पूर्व दिशा में मानसोत्तर मूर्धा में वस्त्वेक सार वाली पुण्य महेन्द्री हेम से परिष्कृत है । पुनः मेरु के दक्षिण में और मानस के पृच्छ भाग में संयमनपुर में वैवस्वन यम निवास किया करता है । पुनः मेरु के परिमाण में और मानस के मूर्धो में वरुण देवकी पुरी है ॥ १९, २०, २१ ॥

मुपा नाम पुरी रम्या वरुणस्यापि धीमताः ।

दिश्युत्तराया मेरोस्तु मानसस्यैव मूर्धानि ॥२२

तुल्या महेन्द्रपुर्यापि सोमस्यापि विवाशरी ।

मानसोत्तरपृष्ठे तु लोत्पानक्षत्रादिशम् ॥२३

स्थिता घमंभ्यवस्थायं लोकमार्गद्वयाय च ।

लोकासोपरिष्ठान् गव्योर्दक्षिणायने ॥२४

काष्ठागतस्य मूर्यग्य गन्धिमत्र निवाधय ।

दक्षिणोपक्रमे मूर्यः दिनेर्गन्धिमत्र मयति ॥२५



ज्योतिषाञ्चक्रमादाय सतत परिगच्छति ।

मध्यगश्चामरावत्या यदा भवति भास्वर ॥२६॥

ववस्वते सयमने उद्यन सूर्य्य प्रदृश्यते ।

सुपायामर्द्धरात्रस्तु विभावर्यास्तमेति च ॥२७॥

ववस्वते सयमने मध्याह्ने तु राविर्यदा ।

सुपायामथ वारुण्यामुत्तिष्ठन् न तु दृश्यते ॥२८॥

उस धीमान् वरुणदेव की पुरी का नाम सुपा है जो परम रम्य है जो मेरु के उत्तर दिशा में और मानस के मूर्धा में है । महेंद्र की पुरी के तुल्य ही सोम की भी विभावरी हैं । मानस के उत्तर पृष्ठ में चारों दिशाओं में लोकपाल हैं जो धर्म की व्यवस्था करने के लिये तथा लोको के संरक्षण करने के लिये ही हैं । इन लोकपालों के ऊपर सब और दक्षिण अर्ध में सूर्य की गति के विषय में ज्ञान प्राप्ति करलो ॥ २२, २३ २४ ॥ वहाँ पर दिशाओं में गमन करने वाले भगवान् सूर्य्यदेव की जो गति होती है उसको समझ लेना चाहिए । दक्षिण के उपक्रम में सूर्य क्षिप्त इषु की ही भाँति प्रसर्पण किया किरते हैं ॥ २४ ॥ जिस समय में भगवान् भास्करदेव अमरावती में मध्य में गमन करने वाले होते हैं उस समय में ममस्त ज्योतिषियों के चक्र को लेकर सतत परिगमन किया करते हैं ॥ २५ ॥ वैवस्वत सयमन में उदित होते हुए सूर्य दिखलाई दिया करते हैं । सुपा में अथ रात्रि वाला है और विभावरी ॥ अस्तता को प्राप्न होना है ॥ २६, २७ ॥ जिस समय में वैवस्वत सयमन में मध्याह्न की वेल में रवि हुआ करते हैं उस समय में वारुणी जो सुपा पुरी है उसमें उदित होते हुए वे दिखलाई दिया करते हैं ॥ २८ ॥

विभावर्यामर्द्धरात्र माहेन्द्र्यामस्तमेव च ।

सुपायामथ वारुण्या मध्याह्न तु रविर्यदा ॥२९॥

विभावर्या सोमपुर्या उत्तिष्ठति विभावमु ।

महेंद्र स्मामरावत्यामुदगच्छति दिग्गवर ॥३०॥

अर्द्धरात्रं संघमने वारुण्यामस्तमेति च ।  
 स शीघ्रमेव पर्येति भानुरालातचक्रवत् ॥३१॥  
 भ्रमन् वै भ्रममाणानि ऋक्षाणि चरते रविः ।  
 एवं चतुर्षु पाद्वेषु दक्षिणा तेषु सर्पति ॥३२॥  
 उदयास्तनये वाऽसावुत्पिष्ठति पुनः पुनः ।  
 पूर्वाह्णे चानराह्णे च द्वौ द्वौ देवालयौ तु सः ॥३३॥  
 पतरयेकन्तु मध्याह्ने भाभिरेव च रश्मिभिः ।  
 उदितो बद्धमानाभिर्मध्याह्ने उपते रविः ॥३४॥  
 अतः परं ह्रमन्तीभिर्गोभिरस्त स गच्छति ।  
 उदयास्तमयाभ्या च स्मृते पूर्वपरे तु वै ॥३५॥

विभादरी में अर्ध रात्रि का समय होना है और माहेन्द्री में अस्त-  
 गत हो जाया करते हैं जब कि वरुण की पुरी सुपा में मध्याह्न में सूर्य  
 होने है ॥ २६ ॥ सोम की पुरी विभादरी में विभावसु उदित होना है  
 और महेन्द्र देव की अमरावती में दिवाकर उदगत हो जाया करते हैं ।  
 ॥ ३० ॥ संघमन में अर्ध रात्रि होना है तथा वारुणी पुरी में अस्तगत  
 हुआ करने हैं । वह भानु एक आलात के चक्र की भाँति ( आलात-जलती  
 हुई लकड़ी के अङ्गार के सदृश ) शीघ्र ही परिघमन किया करता है ॥ ३१ ॥  
 भ्रममाण ऋक्षों ( नक्षत्रों ) के समीप में भ्रमण करता हुआ रवि विचरण  
 किया करता है । इस प्रकार से उन चारों पाद्वेषों में दक्षिणा को वह  
 प्रमाण किया करता है ॥ ३२ ॥ उदय और अस्त के समय में यह पुनः  
 पुनः उत्पिष्ठमान हुआ करना है । पूर्वार्द्ध ( दोपहर का प्रथम भाग ) और  
 अपराह्न ( दोपहर का पिछला भाग ) में वह दो-दो देवाल्यों में पतन  
 किया करता है ॥ ३३ ॥ अपनी प्रमाओं के द्वारा मध्याह्न में एक को  
 पतन करके प्रकाशित किया करता है तथा बद्धमान अपनी रश्मियों  
 ( किरणों ) के द्वारा यह रवि मध्याह्न को बेना में उपतता है ॥ ३४ ॥  
 इसके पश्चात् हाथ को शनैः शनैः प्राप्त होने वाली किरणों के द्वारा

अस्ताचल गामी हो जाया करता है । इसके उदयकाल और अस्तकालों के द्वारा ही ये पूर्व तथा पश्चिम बताये गये हैं ॥३५॥

यादृक् पुरस्तात्तपति यादृक् पृष्ठे तु पाद्वयोः ।  
 यत्रोदयस्तु दृश्येत तेषामुदय स्मृतः ॥३६॥  
 प्रणालं गच्छते यत्र तेषामस्त स उच्यते ।  
 सर्वेषामुत्तरे मेरुर्लोकस्य दक्षिणे ॥३७॥  
 विदूरभावादकंम्य भूमेरेषा गतस्य च ।  
 श्रयन्ते रश्मयो यस्मात्तेन रात्रौ न दृश्यते ॥३८॥  
 ऊर्ध्वं शतसहस्रांशु स्थितस्तत्र प्रदृश्यते ।  
 एव पुष्करमध्ये तु यदा भवति भास्करः ॥३९॥  
 त्रिशङ्कागच्छ मेदिन्या मुहूर्त्तौ स गच्छति ।  
 योजनाना सहस्रस्य द्वासांख्या निबोधत ॥४०॥  
 पूर्णं शतसहस्राणा एकत्रिंशच्च सास्मृता ।  
 पञ्चाशच्चसहस्राणितयान्यान्यधिकानिच ॥४१॥  
 भौर्दृष्टिकी गतिर्ह्येषा सूर्यस्य तु विधीयते ।  
 एतेन क्रमयोगेन यदा काष्ठान्तु दक्षिणाम् ॥४२॥  
 परिगच्छति सूर्योऽसौ मास काष्ठामुदक् दिनात् ।  
 मध्येन पुष्करस्याथ भूमते दक्षिणाने ॥४३॥

जिस प्रकार का पहिले तपना है और जैसा पाद्वों के पृष्ठ भाग में होता है । जहाँ पर इसका उदय दिखलाई दिया करता है उनका वह उदय कहा गया है ॥ ३६ ॥ जहाँ पर यह विनाश को प्राप्त हो जाया करता है उनका वह अस्तकाल कहा जाता है । सब वर्षों के उत्तर में मेरु होता है और लोकालोक पर्वत के दक्षिण में है ॥ ३७ ॥ इस भूमि से सूर्य के विदूर भाव होने के कारण यह गत हुए की रश्मियों का सेवन किया करते हैं । इसी कारण से उसके दर्शन रात्रि में नहीं हुआ करते हैं ॥ ३८ ॥ यह शत सहस्रांशु ऊर्ध्व भाग में स्थित होता है वहाँ पर

दिखाई दिया करता है। इस रीति से जिस समय में भास्कर पुष्कर के मध्य में होना है वह मेदिनी के त्रिशत् गण की मुहूर्त मान में चला जाया करता है। यह संख्या सहस्र योजनों की समझ लो ॥३६, ४०॥ वह सो सहस्र और इकत्तीस कहो गई है तथा पचास सहस्र और अधिक है ॥४१॥ सूर्य का यह गति मोहूर्तिकी की जाती है। इसी क्रम के योग में जिस समय में यह दक्षिण दिशा में परिमणन किया करता है तो यह सूर्य दिन से उत्तर दिशा में एक मास रहता है और पुष्कर के मध्य के द्वारा दक्षिणायन में मणन किया करता है ॥४२, ४३॥

मानसात्तरमेरोस्तु अन्तर त्रिगुण स्मृतम् ।  
 सर्वतो दक्षिणायान्तुकाष्ठायातन्निशोघत ॥४४॥  
 नवकोट्यः प्रसख्याता योजनैः परिमण्डलम् ।  
 तथा शतसहस्राणि चत्वारिंशञ्च पञ्चच ॥४५॥  
 अहोरात्रात् पतङ्गस्य गतिरेषा विधीयते ।  
 दक्षिणादिद्विनिवृत्ताऽपी विपुवस्योपदारविः ॥४६॥  
 क्षीरोदस्य समुद्रम्योतग्ताऽपि दिश चरन् ।  
 मण्डल विपुव चापि योजनैस्तन्निबोधन ॥४७॥  
 तिस्रः कोट्यस्तु सम्पूर्ण विपुवस्यापि मण्डलम् ।  
 तथा शतसहस्राणि विषत्येकाधिकानि तु ॥४८॥  
 श्रावणे चोत्तरा काष्ठा चित्रमानुषदा भवेत् ।  
 गोमेदस्य परद्वीपे उत्तराञ्च दिश चरन् ॥४९॥

मानस के उत्तर मेरु का अन्तर त्रिगुण कहा गया है। यह और से उसी दक्षिण दिशा में जान लो ॥४४॥ योजनो व द्वारा परिमण्डल की करोड प्रसख्यात है। तथा सो सहस्र और वंतावीस है ॥४५॥ एक प्रहोरात्र से सूर्य की यह गति रही गयी है। इस समय में यह रवि दक्षिण दिशा में निवृत्त होकर विपुव में स्थित होता है क्षीर मण्डल के उत्तर दिशा में विचरण करता हुआ विपुव मण्डल में जाता है उसकी

भी योजनो के द्वारा ही समझलो ॥ ४६, ४७॥ विषुव का मण्डल सम्पूर्ण तीन करोड़ तथा शत सहस्र और जोस अधिक है ॥ ४८ ॥ ध्रावण में जिस समय में उत्तर दिशा में चित्र भानु होता है तो शमीद के परद्वीप में उत्तर दिशा में विचरण करता हुआ होता है ॥ ४९॥

उत्तरायाः प्रमाणन्तु काष्ठाया मण्डलस्य तु ।  
 दक्षिणोत्तरमध्यानि तानि विन्धाद्यथाक्रमम् ॥५०॥  
 स्थान जरद्गव मध्ये तथैरावतमुत्तरम् ।  
 वैश्वानर दक्षिणतो निर्दिष्टमिह तत्त्वतः ॥५१॥  
 नागवीथ्युत्तरा वीथी ह्यजवीथिस्तु दक्षिणा ।  
 उभे आपादमूलस्तु अजवीथ्यादयस्त्रय ॥५२॥  
 अभिजित् पूर्वतः स्वातिन्नागवीथ्युत्तरास्त्रयः ।  
 अश्विनीकृत्तिवायाम्यानागवीथ्यस्तय स्मृता ॥५३॥  
 रोहिण्यार्द्रा मृगशिरा नागवीथिरिति ।  
 पुष्याश्लेषा पुनर्वसुर्वीथी चैरायनी स्मृता ॥५४॥  
 श्रिस्तु वीथया ह्येता उत्तमा मागं उच्यते ।  
 पूर्वोत्तरपटगुभ्यो मघा चैरायनी भवेत् ॥५५॥  
 पूर्वोत्तरप्रोष्ठपदौ गोवीथी रेवती स्मृता ।  
 श्रवणश्च धनिष्ठा च वाणश्च जरद्गवम् ॥५६॥

उत्तर दिशा का मण्डल का प्रमाण उनको यथाक्रम दक्षिणोत्तर मध्यों को ही जानना चाहिए ॥ ५०॥ मध्य में जरद्गव स्थान है तथा उत्तर में एरावत है । यहाँ पर दक्षिण में तत्त्वतः वैश्वानर निर्दिष्ट किया गया है ॥ ५१॥ नागवीथी उत्तरा वीथी है और अजवीथी दक्षिणा है । ये दोनों आपाद मूल और अजवीथी आदि तीन हैं ॥ ५२॥ पूर्व में अभिजित्—रश्मि और नागवीथी में तीन उत्तरा हैं । अश्विनी—कृत्तिवा—याम्या तीन नागवीथी बनी गयी हैं ॥ ५३॥ रोहिणी—मृगशिरा और धार्द्रा—यह नागवीथी बनी गयी हैं । पुष्य—अश्लेषा और पुनर्वसु की वीथी एरावती

बड़ी मयी है ॥१५॥ ये तीनों बोधिपा उत्तर मार्ग कहा जाता है । पूर्वा और उत्तर मालगुनी तथा मया ये मार्ग भी होते हैं ॥१६॥ पूर्वा और उत्तरा प्रोष्ठपदा दोनों तथा रेवती बोधीपी रही मयी हैं । अथवा—  
यनिष्ठा और वाह्य जरझूव हैं ॥१६॥

एतास्तु वीर्ययस्त्रिसौ मध्यमोमार्ग उच्यते ।  
हस्तचित्रातयास्वातो ह्यनवो धरिति स्मृता ॥१७॥  
जेष्ठा । वसिष्ठा मैत्रञ्च मृगशीरी तथा च्यते ।  
मूल पूर्वोत्तरापाठे वीर्यो वंशानरी भवेत् ॥१८॥  
स्मृतास्तस्यस्तु बोध्यस्ता मार्ग व दक्षिणे पुनः ।  
काष्ठयोरन्तर्ध्वैतद्वययोर्जनं पुनः ॥१९॥  
एतच्छतसहस्राणामेकत्रिंशत्तु वै स्मृतम् ।  
शतानि त्रीणि च यानि त्रयस्त्रिंशत्तयं च ॥२०॥  
काष्ठयोरन्तर ह्येतदाजमाना प्रकीर्तितम् ।  
काष्ठयोर्लैखयोश्चैव अयने दक्षिणोत्तरे । ॥२१॥  
सै वदशानि प्रसङ्गाय योजनंस्तु निबोधत ।  
एकमन्तरं तद्वच्चुक्तान्येतानि सप्तभिः ॥२२॥  
सहस्रेणातिरिक्तो च तताऽऽद्या पञ्चविंशतिः ।  
लेखयोः काष्ठयोश्चैव बाह्याभ्यन्तरयोश्चरन् ॥२३॥  
अथान्तरं स पर्येति मण्डलान्युत्तरायणे ।  
बाह्यता दक्षिणेनैव सततं सूर्यमण्डलम् ॥२४॥

ये तीनों बोधिपा मध्यम मार्ग कहा जाता करता है ।  
हस्त—चित्रा तथा स्वातो—यह अ-बोधी—इस नाम से रहो मयी है  
॥ २५॥ प्रोष्ठ—विष्ठा या धीर मैत्र इनके मृगशीरी रहो जाती है ।  
मूल—पूर्वा और उत्तरा आयादा वंशानरी बोधी होती है । ये तीनों  
बोधिपा दक्षिण मार्ग में बतायी मयी है । दिशाओं के जो अंगार है  
उमरी पुन योजनों के द्वारा बतायागये । यह अन्तर एत सहस्र २

योजन का कहा गया है । तीन सौ और अन्य तेतीस दिशाओं में योजनों का अन्तर कीर्तित किया गया है । दिशाओं में—नेखो में और दक्षिणोत्तर अयन में जो अन्तर है उसको प्रसरणात् करके योजनों के द्वारा समझिये । एक-एक का अन्तर है और उसी की तरह सातों से ये युक्त हैं । एक सहस्र से अतिरिक्त अन्य पञ्चोत्त योजन बाह्य और आभ्यन्तर लेखो और दिशाओं में विचरण करता हुआ वह अभ्यन्तर में मण्डलों को जाना करता है । उत्तरायण में बाह्य से और दक्षिण से ही निम्नर सूर्य मण्डल विचरण किया करता है ॥५८॥५९॥६०॥६१॥६२॥ ३।६४॥

चरग्नसावुदी याञ्च ह्यशीत्या मण्डलान् शतम् ।  
 अभ्यन्तरं स पर्येति क्षमने मण्डलानि तु ॥६५॥  
 प्रमाणं मण्डलस्यापि योजनानान्निबोधत ।  
 योजनाना सहस्राणि दश चाष्टी तथा स्मृतम् ॥६६॥  
 अधिकाऽष्टपञ्चाशद्याजनानि तु वै पुनः ।  
 विष्वग्भ्यो मण्डलस्यैव त्रियक् स तु विधीयते ॥६७॥  
 अहस्तु चरतेनाभे सूर्यो वै मण्डलक्रमः ।  
 कुन्नालचक्रपयन्ता यथा चन्द्रो रविस्त ॥६८॥  
 दक्षिणे चक्रवत् सूर्यस्तथाशीघ्रं निवर्त्तते ।  
 तस्मात्प्रवृष्टा भूमिस्तु कालेनाल्पेन गच्छति ॥६९॥  
 सूर्यो द्वादशभिः शीघ्रं मूर्त्तुर्द्वादशणायने ।  
 द्वादशाष्टमृक्षाणां मये चरति मण्डलम् ॥७०॥

इस प्रकार में विचरण करता हुआ वह उत्तर में एक सौ असी मण्डलों में अन्तर परिगमन किया करता है और मण्डलों में गमन करता है ॥६५॥ मण्डल का भी प्रमाण योजनों के रूप में समझ लो । एक मण्डल अष्टाष्ट योजन बराबर है और अष्टाष्ट योजन और भी अधिक पुनः कह गत है । वह मण्डल का विष्वाक्ष विचरण किया जाता है । ॥६६॥ ६७॥ दिन में सूर्य चमकता है और मण्डल का चरण किया

## सूर्यगति वर्णन

करता है। कुन्नाल ( कुम्हार वर्तन बनाने वाला ) के चक्र पर्यन्त जिस प्रकार से चन्द्रमा है उसी भाँति रवि भी होता है। दक्षिण में चक्र की ही तरह सूर्य उस भाँति शीघ्रता से निवृत्त हुआ करता है कि प्रकृष्ट अर्थात् अति दूर में रहने वाली भी भूति को बलि कल्प काल में चला जाया करता है। ६८, ६९॥ यह सूर्य दक्षिणायन में कल्पन्त शीघ्र ही त्रयोदश के बारह गुरुओं से आधे ऋषो के मध्य में मण्डल का नाम दिया करता है ॥७०॥

मुहूर्तस्तानि ऋक्षाणि नक्षत्राणि दशंश्चरन् ।  
 कुन्नालचक्रमध्यस्थो यथा म द प्रवर्तते ॥७१॥  
 उदयाने तथा मूय्य सप्तमे मन्दविक्रमः ।  
 तस्माद्दोषेण जालेन भूमि सोऽप्यु प्रवर्तते ॥  
 सूर्योऽष्टादशभिर्हन्ते मुहूर्तैर्दशायने ॥७२॥  
 त्रयोदशानां मध्ये तु ऋक्षाणां चरते रविः ।  
 मुहूर्तैस्तानि ऋक्षाणि रात्रौ द्वादशभिश्चरन् ॥७३॥  
 ततो मन्दतरं ताभ्यां चक्रन्तु प्रवर्तते पुनः ।  
 मृत्पिण्ड इव मध्यस्थां भ्रमतेऽपीध्रुवस्तथा ॥७४॥  
 मुहूर्तैस्त्रिंशता तावदहोरात्र ध्रुवो भ्रमन् ।  
 उभयोः काष्ठयोर्मध्ये भ्रमते मण्डलानि तु ॥७५॥  
 उत्तरक्रमेणैव दिवा मन्दगतिं स्मृता ।  
 तस्यैव तु पुनर्नक्षत्राणां सूर्यस्य च गतिः ॥७६॥  
 दक्षिणप्रक्रमे वापि दिवा शीघ्रं विधीयते ।  
 गतिः सूर्यस्य व नक्षत्रं मन्दा चापि विधीयते ॥७७॥  
 एव गतिविशेषेण विभजन् रात्र्यहानि तु ।  
 अजयोऽप्यहोरात्र्यां लोकां लोकां चोत्तरम् ॥७८॥

रात्रि के समय में उन नक्षत्रों को अठरह मुहूर्तों में विभज करता हुआ कुन्नाल व चक्र के मध्य में स्थित होने की भाँति मन्दा प्रवर्तन



किया करता है ॥ ७१ ॥ उत्तर की ओर गमन करने में सूर्य में दक्षिण  
 वाला होकर ही गमन किया करना है । इसी मन्दगति होने के कारण से  
 वह बहुत अधिक लम्बे समय से बहुत ही अल्प भूमि का प्रसर्पण किया  
 करता है । उदगायन अर्थात् उत्तरायण में दिन को अठारह मुहूर्तों में  
 सूर्य त्रयोदश ऋषों के मध्य में चरण किया करता है और उन्हीं ऋषों  
 को रात्रि में बारह मुहूर्तों में चरण करता है ॥ ७२, ७३ ॥ इसी से उन  
 दोनों से चक्र अधिक मन्द भ्रमण किया करता है । एक मिट्टी के पिण्ड  
 को भाँति ही मध्य में स्थित यह ध्रुव की भाँति भ्रमण करता है । तीस  
 मुहूर्तों में एक अहोरात्र में ध्रुव भ्रमण करता हुआ दोनों दिशाओं के  
 मध्य में मण्डलों का भ्रमण करता है ॥ ७४, ७५ ॥ सूर्य की उत्तर क्रमण  
 में दिन में मन्द गति बही गयी है । उसी सूर्य की फिर रात्रि के समय  
 में शीघ्रता वाली गति हो जाया करती है । दक्षिण के प्रक्रमण करने में  
 भी दिन में शीघ्रता का विधान कड़ा आता है और रात्रि में सूर्य की गति  
 मन्द हो जाया करती है । इस प्रकार से रात और दिन को अपनी गति  
 की विशेषता के द्वारा विभाजन करता हुआ दक्षिण अजवीधी में लोका-  
 लोक के उत्तर में चरण किया करता है ॥ ७६, ७७, ७८ ॥

लोकसन्तानतोह्येष वैश्वानरपश्यादवहि ।

व्युष्टिर्यावत् प्रभा सीरी पुष्करात् सप्रवर्त्तते ॥ ७९ ॥

पार्श्वेऽप्यो वाह्यतस्तावल्लोकालोकश्च पर्वत ।

योजनाना सहस्राणि दशोदध्वं चोच्छ्रितो गिरि ॥ ८० ॥

प्रकाशश्चाप्रकाशश्च पर्वत परिमण्डल ।

नक्षत्रचन्द्रसूर्याश्च ग्रहास्तारागणं सह ॥ ८१ ॥

अम्यन्तरे प्रकाशन्ते लोफालोभस्य वै गिरे ।

एतावानेवलोरस्तु निरालोवस्तत् परम् ॥ ८२ ॥

लोव आलोवने घातुनिरालोवस्त्वलोवता ।

लालालोवो तु सधत्ते तस्मात्सूर्यं परिभूयन् ॥ ८३ ॥

सूर्यं पति वर्णन

तस्मात्सन्ध्येतितामाहुरपाव्युष्टेयथान्तरम् ।

उपारात्रि स्मृताविप्रैर्व्युष्टिश्चागिअह स्मृतम् ॥८४॥

लोक सन्तान से यह वैश्वानर पथ से बाहिर ही प्रमण करता है । जब तक पुष्टि होती है यह सूर्य की प्रभा पुष्कर से संवृत हुआ करती है ॥ ७६ ॥ पाश्र्वों से बाहिर के भाग में लोकालोक नाम वाला महान् पर्वत है । यह निरि एक सहस्र दश योजन ऊर्ध्व में उच्छिन्न है ॥ ८० ॥ यह परिमण्डन पर्वत प्रकाश और अप्रकाश वाला है । नक्षत्र-चन्द्र और सूर्य ब्रह्म तारा गणों के साथ लोकालोक पर्वत के अन्धस्तर में ही प्रकाश दिया करते हैं । इनका ही लोक होता है उसके आगे दोष तो सब निरालोक अर्थात् प्रकाश रहित ही हुआ करता है । लोक आलोक्य में धातु है और निरालोक आलोक्य है । इसी से सूर्य परिष्मण करता हुआ लोक और अलोक दोनों का सन्धान किया करना है ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ८३ ॥ इसी कारण उसको सन्ध्या — इस नाम से कहते हैं । यथान्तर व्युष्टि से उपा कही जाती है । उपा रात्रि कही गई है और विप्रों के द्वारा व्युष्टि दिन कहा गया है ॥ ८४ ॥

त्रिंशत्कलो मूहृतस्तु अहस्ते दशपञ्च च ।

ह्रस्वो वृद्धिरहर्भागविवसाना यथा तु वै ॥ ८५ ॥

सन्ध्या मूहृतमात्राया ह्रासवृद्धी तु ते स्मृते ।

लेखाप्रभृत्ययादित्ये त्रिमूहर्तागते तु वै ॥ ८६ ॥

प्रातःस्मृतस्तत्र कालोभायाश्चाहुरध पञ्चच ।

तस्मात् प्रातर्गतात्फालान्मूहर्ता सङ्गदस्त्रयः ॥ ८७ ॥

मध्याह्नस्त्रिमूहर्तस्तु तस्मात्कालादनन्तरम् ।

तस्मात्तन्मध्यन्दिनात्कालादपराह्ण इति स्मृतम् ॥ ८८ ॥

अपराह्णव्यतीतान्च कालं सायं स उच्यते ॥ ८९ ॥

दशपञ्च मूहर्ताह्नो मूहर्तस्त्रि एव च ।

दशपञ्च मूहर्तं वै अहस्तु विपुले स्मृतम् ॥ ९० ॥

वर्धयतो ह्येत्येव अयने दक्षिणोत्तरे ।

अहस्तु ग्रसते रात्रि रात्रिस्तु ग्रसते अहं ॥६१॥

तीस कला वाला मुहूर्त और पन्द्रह का दिन हो । है । दिवसों के भागों से दिव्य में ह्रास और वृद्धि भी यथा रीति हुआ करते हैं । मुहूर्त मात्र में संध्या होती है और वे ह्रास तथा वृद्धि बताये गये हैं । तीन मुहूर्त समागत आदित्य में लेखा प्रभृति होती है । फिर वह काल प्रातः कहा गया है और पाँच भाग कहे गये हैं । उस मत काल से तीन सङ्ग व मुहूर्त होते हैं । मध्य दिन जो होता है वह तीन मुहूर्तों का होता है फिर उस काल के अनन्तर उस मध्य दिन के काल से अपराह्न कहा गया है ॥ ८४, ८५, ८७ ८८ ॥ बुध लोगों ने इस ाल को तीन ही मुहूर्त बताया है । उस अपराह्न के स्थिति होने से जो काल होता है उसी को मायङ्काल कहा जाता है ॥ ८६ ॥ पन्द्रह मुहूर्त वाले दिन का तीन मुहूर्त ही सय होता है । विपुत्र में यह दिन दश और पाँच मुहूर्त वाला ही कहा गया है ॥ ६० ॥ इसी कारण से दक्षिणायन और उत्तरायण में यह दिन बङ्ग जाना है और कम भी हा जाया करता है अर्थात् दिन बड़े छोटे हुआ उरत है । दिन तो रात्रि का घास कर जाता है और रात्रि दि को घन जाया करती है । तात्पर्य यही है कि दिन छोटे है तो रात्रि बड़ी हो जाती है और रात्रि छोटी होती है तो दिन बड़ा हो जाया करता है ॥६१॥

शतद्वसन्तयोर्मध्य विपुक्स्तुषिधीयते ।

आनीकान्त स्मृतोलोको लोमाश्चालोक्कृत्यते । ६२

मात्रपात्रा स्थितारत्तत्र लोमालोकरय मध्यत ।

चत्वारस्ते महात्मानस्तिष्ठन्त्याभूतसप्तवम् ॥६३॥

मुष्णमा चैव वैराज. पदमश्च प्रजापति ।

हिरण्यरोमाजय वेतुमान् राजसश्च स ॥६४॥

निद्रा निरभीमाना निस्तन्द्रा निष्परिग्रहा ।

सोऽपाला रिश्यान्ते लोचालोने चतुर्दिशम् ॥६५॥

सुरे पति-वर्णन

उत्तरं यदगस्त्यस्य शृङ्गं वैवपिसेवतम्  
 पितृयान. स्मृतः पन्था वैश्वानरपथाद्बहि ॥६६॥  
 तनासते प्रजाकामा ऋपयो येऽग्निहात्रिणः ।  
 लोकस्य सन्तानकराः पितृयानेपथिस्थिता ॥६७॥  
 भूतारम्भकृतं कर्म आशिपश्चविशाम्पते ।  
 प्रारम्भन्ते लोककामान्तेपापन्थाः सदक्षिणः ॥६८॥

शरद् और वसन्त के मध्य में विषुव का विग्रह किया जाता है । यह लोक आलोकान्त कहा गया है और लोक आलोक कहा जाया करता है ॥ ६२ ॥ उस लोकालोक के मध्य में वहाँ पर लोकपाल समवस्थित रहा करते हैं । ये महान् आत्माओं वाले लोकपाल बाह्य हैं जो अब तक भूत-संज्ञक होता है तब तक वहाँ पर स्थित रहा करते हैं ॥ ६२ ॥ इन पथरों में सुशामा बैराज होता है—प्रजापति वर्धन है—हिण्णरोमा पर्वण्य है और चीमे ॥१॥ राजम केतुमान् होता है ॥ ६४ ॥ ये लोकालोक पर्वत में चारों दिशाओं में लोकपाल स्थिति रखता करते हैं । ये चांगे ही बड़े निडर—अभिमान से रहित—तन्द्रा भूय और बिना परिग्रह वाले हुआ करते हैं ॥ ६५ ॥ उत्तर दिशा में जो शिखर है प्रसन्न देवगण सेवन किया करते हैं । वह वैश्वानर पथ से बाहिर पितृयान मार्ग बताया गया है ॥ ६६ ॥ वहाँ पर प्रजा की कामना रखने वाले ऋषिगण रहा करते हैं जो कि अग्निहोत्र करने वाले हुआ करते हैं । ये इस लोक की वृद्धि करने वाले हैं और पितृयान के पथ में स्थित रहा करते हैं ॥ ६७ ॥ हे विशाम्पते! ये लोक की कामना रखने वाले भूतों के आरम्भ के लिए किया हुआ कर्म और आशीर्वादों का प्रारम्भ किया करते हैं और उनका पन्था सदक्षिण होता है ॥ ६८ ॥

चलितन्ते तु न घमं स्यापयन्ति युगे युगे ।  
 सन्तप्ततपसा चैव मर्यादाभिः श्रुतेन च ॥ ६९ ॥  
 जायमानास्तु पूर्वं वै पश्चिमाना गृहेषु ते ।

पश्चिमाश्चैव पूर्वेषां जायन्ते निघनेष्विह ॥१००॥

एवमावतंगानाम्भे वर्तन्त्याभूतसंस्तवम् ।

अष्टाशीतिसहस्रारिा ऋषीणां गृहमेधिनाम् ॥१०१॥

सवितुर्दक्षिण मागमाश्रित्याभूतसंस्तवम् ।

क्रियावता प्रसरयेषा ये शमशानानि भेजिरे ॥१०२॥

लोकमव्यवहाराय भूतारम्भकृतेन च ।

इच्छाद्वेपरताच्चैव मंथुनोपगमा च वै ॥१०३॥

तथा कामकृतेनेह सेवनाद्विपयस्य च ।

दृश्येत् कारणं सिद्धाः शमशानानीह भेजिरे ॥१०४॥

प्रजं पण, सप्तऋषयो द्वापरेष्विह ऋजिरे ।

सन्ततिन्ते जुगुप्सन्ते तस्मान्मृत्युजितस्तु तैः ॥१०५॥

वे लोग युग युग में जो धर्म चरित हो जाया करता है उस धर्म की पुन, स्थापित किया करते हैं और धर्म की संस्थापना भली भाँति किए हुए तब से—मर्त्याओं से और भूत के द्वारा ही किया करते हैं ॥१०६॥ पहिले होने वाले वे पीछे होश मानो के गृहो में जायमान (समुद्भूत) हुआ करते हैं और जो परिवर्तन अर्थात् पीछे होने वाले हैं वे पूर्व पुरखों के निधन हो जाने पर धरती पर जन्म ग्रहण विश्व करते हैं । इस रीति से आवर्तमान होने वाले अर्थात् एक दूसरे के पीछे इस सत्तार में जन्म ग्रहण करने की पुन पुन आवृत्ति करने वाले वे भूत संस्तव जब होता है तब तब यही पर वर्तमान रहा करते हैं । यह इन ऋषियों की तपसा जो गृहमेधी है अष्टाशी सहस्र ॥ १०० ॥ १०१ ॥ ये सविता के दक्षिण मार्ग का समापन ग्रहण करने लगे भूत संस्तव जट होठा है तब तब त्रिया वाले रहा करते हैं इनकी सकल यही है जो उपर्युक्त है । वे शमशाना का भी रक्षा किया करते हैं । मोक्ष के सम्बन्धकार के लिए और भूतारम्भ धर्म र द्वारा वे इच्छा तथा द्वेष में भी रति रखने वाले हैं तथा मंथन का भी उपगम अभीष्ट की सिद्धि के लिए किया करते हैं । इस रीति से

## सूर्यगति वर्णन

कामना के होने के कारण से ये विषयों का सेवन किया करते हैं। यही कुछ कारण हैं जिनके द्वारा ये सिद्ध लोग शयशाली का सेवन किया करते थे। यहाँ पर प्रजा की इच्छा वाले सात ऋषि द्वापर में समुत्पन्न हुए थे। फिर उन्होंने सन्तति की निन्दा की थी और इसी कारण से उन्होंने मृत्यु को जीत लिया था ॥ १०२, १०३, १०४, १०५॥

अष्टाशीतिसहस्राणि तेषामप्यूध्वंरेतसाम् ।

उदक् पन्थानपर्यन्तमाश्रित्याभूतसप्तवम् ॥१०६॥

ते सम्प्रयोगाल्लोकस्य मिथुनस्य च वर्जनात् ।

ईष्याद्वेषनिवृत्त्या च भूतारम्भविवर्जनात् ॥१०७॥

इत्येतैः कारणैः शुद्धं स्तैः समतत्त्वं हि भेजिरे ।

आभूतसप्तवस्यानागमनत्वं विभाव्यते ॥१०८॥

त्रैलोक्यस्थितिकालो हि न मृतमार्गाभिनाम् ।

भूणहत्याश्वमेधादि पापपुण्यनिर्भरम् ॥१०९॥

आभूतसप्तवान्ते तु क्षीयन्ते चोर्ध्वंरेतसः ।

कर्णोत्तरमृषिभ्यस्तु ध्रुवो यत्रातुसंस्थितः ॥११०॥

एतद्विष्णुपद दिव्यतृतीयोऽग्नि भास्वरम् ।

यत्र गत्वा न शोचन्ति तद्विष्णो परमम्पदम् ॥

धर्मं ध्रुवस्य तिष्ठन्ति ये त नोमस्य काङ्क्षणाः ॥१११॥

ऊर्ध्वरेता उन अष्टाशी सहस्र ऋषियों ने उदक पथ पर्यन्त समा-  
प्य किया था और वह भी आभूत सप्तव तक वे वहाँ समवस्थित रहे  
थे। वे लोक के सम्प्रयोग में और मिथुन के वर्जन से तथा ईष्या और  
द्वेष भाव की निवृत्ति से और भूतों का समारम्भ करने के वर्जन  
से इन्हीं वृत्तिपर कारणों के होने से वे परम विशुद्ध हो गये थे  
और उन्होंने अमृतत्व की प्राप्ति कर लिया था। उनका वह  
अमृतत्व भा जब तक भूतों का सप्तव हुआ था सभी तक रहा  
था और वे वहाँ पर बराबर स्थित रहते थे। जो लोग काम के

मार्ग के गमन करने वाले हैं उनका वैलोक्य स्थिति काल नहीं होता है क्योंकि भ्रूण हत्या आदि महापापों से और अश्वमेध आदि पुण्य कर्मों से यह परिपूर्ण हुआ करता है ॥ १०६, १०७, १०८, १०९ ॥ जिस समय में यह समस्त भूतों का सप्तव होता है तो उसके अन्त में ऊर्ध्वरता लोग भी क्षीण हो जाया करते हैं। ऊर्ध्वतर ऋषियों से ब्रह्मा ध्रुव संस्थित होता है। यह विष्णु का व्योम में तृतीय परम भास्कर एव दिव्य पद है जहाँ पर पहुँच कर उस विष्णु के परम पद की चिन्ता नहीं किया करते हैं और जो लोग भी आकाशा रखने वाले हैं वे ध्रुव के ही घर्भ में स्थित रहा करते हैं ॥ ११०, १११ ॥

### ५४—ज्योतिष चक्र वर्णन

एवं श्रुत्वा कथां दिव्यामध्रुवन् लोमहर्षणिम् ।  
 सूर्यादिवन्द्रमसोवारं ग्रहाणाञ्चैव सर्वशः ॥१॥  
 भ्रमन्ति कथमेतानि ज्योतीषि रविमण्डले ।  
 अव्यूहेनैव सर्वाणि तथा चासङ्क्षरेण वा ॥२॥  
 कश्च भ्रामयते तानि भ्रमन्ति याद वा स्वयम् ।  
 एतद्वदितुमिच्छामस्ततो निगद सत्तम ॥३॥  
 भूतसमोदय ह्येतद्भवतो मे निबोध तम् ।  
 प्रत्यक्षमपि दृश्य तत् समोहयति वै प्रजा ॥४॥  
 योऽसौ चतुर्दशर्षेण शिशुमारो व्यवस्थितः ।  
 उत्तानपादपुत्रोऽसौ मेढ्राभूतो ध्रुवोदिवि ॥५॥  
 संप भ्रमन् भ्रामयते चन्द्रादित्यौ ग्रहे सह ।  
 भ्रमन्तमनुसपन्ति नक्षत्राणि च चक्षवत् ॥६॥  
 ध्रुवस्य मनसा यो वै भ्रमने ज्योतिषाङ्गणः ।  
 यान् लोकमप्येवन्ध्रुवेदद प्रगपति ॥७॥

## उगोतप चक्र वर्णन

श्रुतिगण ने कहा इस प्रकार से ग्रहों की स्थिति की कथा का श्रवण करके जो परम दिव्य थी वे फिर सून जो बोले—सूर्य चन्द्रमा का चरण और सब ग्रहों का चरण किस प्रकार से हुआ करता है। ये समस्त उगोनिया रात्रि के मण्डल में किस प्रकार से भ्रमण किया करती है? वे सब भलग २ ग्रह रोहिन होकर या असङ्ख्य भाव से भ्रमण करती हैं उनका कौन कैसे भ्रमण कराया करता है ब्रह्मा वे स्वयं ही भ्रमण किया करती हैं—हम अब यही ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं अनएव हे श्रेष्ठ तम। इनका वर्णन कीजिए ॥१, २, ३॥ श्री सूरजी ने कहा—यह सूर्य का समोहन करने वाला है। उसको आप लोग मेरे द्वारा जान लो। प्रसन्न होते हुए जो वह दृश्य है और निश्चय ही प्रजाओं को समोहित करता है। जो यह चतुर्विंश नक्षत्रों में शिशुमार व्यवस्थित है वह उच्चानपाद का पुत्र है जो विवस्वत में मेठीभूत ध्रुव है ॥४, ५॥ वही यह भ्रमण करना हुआ ग्रहों के साथ चन्द्रमा और सूर्य को भ्रमण कराता है। भ्रमण करते हुए उनके पीछे सब नक्षत्र चक्र की भाँति अनुसरण किया करते हैं। ध्रुव के मन से जो उगोनियों का गण भ्रमण करता है वह वाजानीक मय वर्धों से ध्रुव में बद्ध होकर ही प्रमण किया करता है ॥६, ७॥

तेषां भेदश्च योगश्च तथा कालस्य निश्चयः ।  
अस्तोदयास्तयोत्पाता ग्रयनेदक्षिणोत्तरे ॥८॥  
विषुवदग्रहवर्षश्च सर्वमेतद् ध्रुवेरितम् ।  
जोमूता नाम ते मेघा यदेभ्यो जीवसम्भवः ॥९॥  
द्वितीय आवहन् वायुर्मेघास्ते त्वनिसप्रिताः ।  
इतोयोजनमात्राच्च अध्यर्द्धं विवृता अपि ॥१०॥  
वृष्टिमगंस्तथा तेषां घागघारप्रकीर्तिताः ।  
पुष्करावतका नाम ये मेघाः पक्षमम्भवाः ॥११॥  
शक्रेण पश्चादिष्ठिता वं पर्वताना महोजसा ।



उदग्हिमवत्. शैलस्योत्तरे चैव दक्षिणे ।  
 पुण्ड्रं नाम समाख्यात सम्वग्वृष्टिविवृद्धये ॥२३॥  
 तस्मिन् प्रवर्तते वर्षं तत्तुषारसमुद्भवम् ।  
 ततो हिमवतो वायुहिम तत्र समुद्भवम् ॥२४॥  
 आनयत्यात्मवेगेन सिञ्चयानो महागिरिम् ।  
 हिमवन्तमतिक्रम्य वृष्टिशेष ततः परम् ॥२५॥  
 इभास्येचतत पश्चादिदम्भूतविवृद्धये ।  
 वषट्ठय समाख्यात सम्यग् वृष्टिविवृद्धये ॥२६॥  
 मेघाश्चाप्यायन चैव सर्वमेतत् प्रकीर्तितम् ।  
 सूर्यं एव तु वृष्टीना स्रष्टा समुपदिश्यते ॥२७॥  
 वर्षं धर्मं हिम रात्रि सन्ध्ये चैव दिन तथा ।  
 शुभाशुभफलानीह ध्रुवात् सर्वं प्रवर्तते ॥२८॥

हिमवान् पर्वत के उत्तर भाग में पर्वत के दक्षिण ओर उत्तर में  
 भी माँत्रि वृष्टि की वृद्धि के लिये पुण्ड्र नाम वाला वातायन गया है ।  
 उसमें तुषार से समुद्भूत वर्षा प्रवृत्त हुआ करती है । इसके उपरान्त वायु  
 हिमवान् से हिम को जो कि वही पर समुद्भूत हुआ है अपने वेग से महा  
 गिरि का सेवन करता हुआ ले आया करना है । हिमवान् का आतक्रमण  
 करके उसके बाद में वृष्टिशेष होता है । इसके पश्चात् इम ( गज ) के  
 आस्य में यह भूमी की विवृद्धि के लिये दो वष समाख्यात किये गये हैं  
 जो अच्छी तरह वृष्टि की विवृद्धि के लिये होता है ॥२३, २४, २५॥  
 ॥२६॥ और मेघ आप्यायन ( सतृप्ति ) होते हैं जो सर्वत्र प्रकीर्तित है ।  
 वृष्टियों का सृजन करने वाल भगवान् सूर्य ही समुपदिष्ट हुआ करते हैं ।  
 वर्ष-धर्म-हिम-रात्रि-शेनो सन्ध्या काल-दिन-और यहाँ पर शुभ तथा  
 अशुभ फल सब ध्रुव में प्रवृत्त होते हैं ॥२७, २८॥

ध्रुवेणाधिष्ठिताश्चाप सूर्यो न गृह्य तिष्ठति ।  
 सबभतशरीरेषु त्वापो ह्यानुश्चिताश्चयाः ॥२६॥

दह्यमानेषु तेज्वेह जङ्गमस्थावरेषु च ।  
 धूमभूतास्तु ता ह्यापो निष्क्रामन्तोह सर्वशः ॥३०॥  
 तेन चास्त्राणि जायन्ते स्थानमभूमयं स्मृतम् ।  
 तेजोभिः सर्वलोकेभ्य आदत्ते रश्मिभिर्जलम् ॥३१॥  
 समुद्राद्वायुसयोगात् वहन्त्यापो गभस्तयः ।  
 ततस्त्वृतुवशात्कालेपरिवर्तन् दिवाकरः ॥३२॥  
 नियच्छत्यापो मेघेभ्यः शुक्ला शुक्लस्तुरदिभिः ।  
 अभ्युक्ष्यात्प्रपतन्त्यापोवायुनासमुदीरिताः ॥३३॥  
 ततो वर्षन्ति पश्मासान् सर्वभूतविवृद्धये ।  
 वायुभिस्तनितचैव विद्युतस्त्वग्निजाः स्मृताः ॥३४॥  
 मेहनाच्च मिहेर्घातोर्मेषत्व व्यञ्जयन्ति च ।  
 न भ्रूयन्ते ततो ह्यापस्तस्मादभस्यवैस्थितिः ॥  
 स्रष्टाऽमी वृष्टिमगस्य ध्रुवेणाधिष्ठितो रविः ॥३५॥

ध्रुव के द्वारा अधिष्ठित जल को सूर्य प्रदह करके स्थिर होता है । समस्त भूतों के शरीरों में जो जल आनुषिचन है । उनके जङ्गम और स्थावरी में दह्यमान होने पर वह समस्त जल धूममूस अर्थात् धूँआ होकर सब ओर से निकल जाया करते हैं । और उनसे असंख्य उपपन्न हुआ करते हैं जो कि स्थान अत्रमय कहा गया है । समस्त लोको में तेज पूर्ण रश्मियों के द्वारा जल का आदान किया करता है ॥२६, ३०, ३१॥ गभस्त्रियाँ समुद्र से वायु के सयोग से जल का वहन करती हैं । इसके अनन्तर अणु के वश में होने के कारण दिवाकर समय पर परिवर्तित होता हुआ मेघों के लिये शुक्ल रश्मियों से शुक्लही जल दिया करता है । मेघ में स्थित जल नीचे गिरा करते हैं जबकि वे वायु के द्वारा समुदाहित होते हैं । इनके उपरान्त समस्त भूतों की विवृद्धि के लिये छ मास तक वर्षा करता है । वायु के द्वारा स्वर्णि और अग्नि से समुत्पन्न विद्युत पड़े गये हैं । भेदन करने में “मिहि” — इस वायु से मेघ व प्रकट किया करते

हैं उनसे जल अंशमान होकर नीचे वही गिरा करते हैं ऐसी ही मन्त्रकी स्थिति है । वृष्टि के सगं की सृष्टिका करने वाला यह रवि ध्रुव के द्वारा अधिष्ठित है ॥३२, ३३, ३४, ३५॥

ध्रुवेणाधिष्ठितो वायुवृष्टिः सहर्तते पुन ।  
 ग्रहान्निवृत्त्वा सूर्यात्ति चरते अक्षमण्डलम् ॥३६  
 चाग्न्यान्ते विशत्यकं ध्रुवेण समधिष्ठितम् ।  
 अतः सूर्यरथस्यापि सन्निवेश प्रचक्षते ॥३७  
 स्थितेन त्वेकचक्रेण पञ्चारेण त्रिनाभिना ।  
 हिरण्यमेनाभुना च अष्टचक्रैकनेमिना ॥३८  
 शतयोजनसाहस्रो विस्तारायाम् उच्यते ।  
 द्विगुणं च रथोपस्थादीवाण्डं प्रमाणतः ॥३९  
 स तस्य ग्रहाणां सृष्टो रथाह्यर्धवशेन तु ।  
 असङ्गः काञ्चनो दिव्यो युक्तः पर्वतगंहयैः ॥४०  
 कण्डोभिर्वाजिरूपैस्तैर्यथाचक्रं समास्पदतः ।  
 चारणस्य रथस्येह लक्षणैः सदृशैश्च स ॥४१  
 तेनासीचरतिव्योम्निभास्वाननुदिनन्दिनि ।  
 अथाङ्गानितु मूर्ध्न्यस्थप्रत्यङ्गानिरपस्य च ॥  
 सम्प्रसारयावयवैः कल्पितानि यथाक्रमम् ॥४२

ध्रुव से अधिष्ठित वायु पुनः वृष्टि का सहर्तन किया करता है । सूर्य ग्रह से निवृत्ति प्राप्त कर फिर अक्ष मण्डल में चरण किया करता है । उस चारण के अन्त में ध्रुव से समधिष्ठित सूर्य में प्रवेश किया करता है । इसलिये सूर्य के रथ का भी सन्निवेश यत्नाया जाता है । सूर्य के रथ में एक ही चक्र ( पहिया ) होता है और उस में पक्षि अरु होते हैं तथा तीन नाभि दृष्टा करती हैं । यह हिरण्य भु और अष्टचक्र नभि नामे चक्र के द्वारा भारवमान प्रतापेन करने वाले रथ से मूर्ध्न्य गो गृह्य योजन के विस्तार से आयाम मापा रहा जाता है । रथोपस्थ से ईषा दण्ड प्रमाण से द्विगुण है । यह

उसका रथ ब्रह्मा के द्वारा अर्ध के वश सृजन किया गया था जो असङ्ग-  
वाञ्छन—दिव्य और पवत गामी ब्रह्मों से युक्त था। चक्र के अनुसार  
समास्थित-वाजिरूप छन्दो से समुत्त था। वह लक्षणों से वरुण के रथ के,  
ही सदृश था। उसी के द्वारा आकाश में यह भास्वान् प्रतिदिन दिव मे  
चरण किया करता है। इसके अनन्तर सूर्य के अङ्ग और रथ के प्रसङ्ग  
यथाक्रम-सम्बन्ध के अवयवों से कल्पित किये गये हैं ॥३६, ३७, ३८॥  
॥३६, ४०, ४१, ४२॥

अहर्नामिस्तु सूर्यस्य एकचक्रस्य च स्मृतः ।  
अग्नौ सम्प्रत्सरास्तस्य नेम्यः पट् शतवः स्मृता ॥४३॥  
रात्रिर्वह्योद्यम्भश्चध्वज्यं व्यवस्थितः ।  
अक्षकोट्य युगान्यस्य अतंवाहा कनाः स्मृता ॥४४॥  
तस्य बाष्ठा स्मृता घोणा दन्तपङ्क्तिः क्षणास्तु वै ।  
निमेषश्चानुवर्षोऽस्य ईषा चास्य कला स्मृता ॥४५॥  
युगाक्षकोटी तं तस्य अथं कामादुभौ स्मृता ।  
सप्ता (मा)श्च पञ्चाशद्वत्सि वृहन्ते वायुरंहता ॥४६॥  
गायत्री चैव त्रिष्टुप् च जगत्पुष्टुप् तथैव च ।  
पङ्क्तिश्च वृहती चैव उणिगेव तु सप्तमः ॥४७॥  
चतुर्मक्षे निबद्धन्तु ध्रुवे चाक्षः समपितः ।  
सहस्रत्री भूमत्यक्षः सहस्रो भूमति ध्रुवम् ॥४८॥  
अक्षः सहैव चक्रेण भूमतेऽसौ ध्रुवे रितः ।  
एवमथं वशात्तस्य सन्निवेशो रथस्य तु ॥४९॥

एक चक्र वाले सूर्य का दिन नामि है। उसके अरसे सप्तासर  
हैं और उनकी नेमियाँ छै शतुएँ रही गयी हैं ॥४३॥ वरुण रात्रि है  
और ऊर्ध्व में व्यवस्थित ध्वज धर्म है। इनकी अक्ष कोटियाँ युग है और  
अतंवाह कला रही गयी हैं ॥४४॥ बाष्ठाएँ उसकी घोणा (नासिका)  
बतायी गयी हैं और दण दाँतों की पङ्क्ति है। निमेष इसका अनुवर्ष है

और इसकी ईया बसा बही गयी है ॥४५॥ उसकी ये मृगाक्ष कोटी  
 दोनों अर्ध और काम बताये गये हैं । सात ऋषि नामे छन्द वायु के वेग से  
 बहने किया करते हैं । गायत्री-त्रिष्टुप्—जगती—अनुष्टुप्—पश्ति—  
 बृहती—उष्णिक्—ये सान छन्द हैं । चक्र अक्ष में निबद्ध है और वह अक्ष  
 ध्रुव में समर्पित है । चक्र के साथ अक्ष भ्रमण करता है और अक्ष के  
 सहित वह ध्रुव प्रमा करता है ॥४६, ४७, ४८॥ ध्रुव के द्वारा प्रेरित  
 हुआ अक्ष चक्र के साथ ही घूमा करता है । इस प्रकार का अर्ध वक्र से  
 रथ का सन्निवेश होता है ॥४९॥

तथा संयोगभागेन सिद्धो वै भास्करो रथः ।  
 तेनाऽसौ तरणिमंध्ये नभस्रःसर्पतेदिवम् ॥५०॥  
 युगाक्षकोटी ते तस्य दक्षिणे स्यन्दनस्य तु ।  
 भ्रमतो भ्रमतो रश्मी तौचक्रयुगयोस्तुवै ॥५१॥  
 मण्डलानि भ्रमे तेऽस्य रथस्य तु ।  
 कुलालचक्रभ्रमवन्मण्डल सर्वतांदिशम् ॥५२॥  
 युगाक्षकोटि ते तस्य वातोर्मीस्यन्दनस्य तु ।  
 सक्रमे ते ध्रुवमहो मण्डले पर्वतोदिशम् ॥५३॥  
 भ्रमतस्तत्परश्मी ते मण्डले तूत्तरायणे ।  
 बद्धे ते दक्षिणेष्वत्र भ्रमतो मण्डलानि ॥५४॥  
 युगाक्षकोटीसम्बद्धौ द्वे रश्मीस्यन्दनस्य ते ।  
 ध्रुवेण प्रगृहीतौ तौ रश्मी धारमतारविम् ॥५५॥  
 आकृष्यते यदा ते तु ध्रुवेण समधिष्ठिते ।  
 तदा सोऽभ्यन्तरे सूर्यो भ्रमते मण्डलानि तु ॥५६॥  
 अशीतिमण्डलशत काष्ठयोरुभयोश्चरन् ।  
 ध्रुवेण मुच्यमाने न पुनारश्मियुगेन च ॥५७॥  
 तथैव बाह्यतः सूर्यो भ्रमते मण्डलानि तु ।  
 रुद्धपृथक्चैवेगेन मण्डलानि तु गच्छति ॥५८॥

उस प्रकार से संयोग के भाग से यह भगवान् भास्कर का रथ सिद्ध हुआ है। उसी रथ के द्वारा यह सूर्य देव आकाश के मध्य में दिव में प्रसर्पण किया करते हैं ॥१०॥ उसके रथ की वे युगाक्ष कोटी दक्षिण में भ्रमण करती हैं और चक्र युगों की वे दोनों रश्मियाँ भ्रमा करती हैं। आकाश में चरण करने वाले इसके रथ के भ्रम में मण्डल हैं। और कुम्हार के चाक की भाँति मण्डल सब दिशाओं में भ्रमता है। उसके रथ की वे युगाक्ष कोटी दोनों हैं। मण्डल में पर्वतों की दिशाओं में वे ध्रुव को संक्रमित किया करती हैं। भ्रमण करते हुए उसकी रश्मियाँ और वे मण्डल उत्तरायण में बढ़ित होते हैं। रथ की वे दो रश्मियाँ युगाक्ष कोटियों में सम्बद्ध ध्रुव के द्वारा वे दोनों रश्मियाँ प्रगृहीत हैं जो रवि को घारण करने वाले ध्रुव के द्वारा आवर्णित किया जाता है। जिस समय में वे ध्रुव के साथ समवृत्तिन होते हैं उस समय में वह सूर्य मण्डलों को अन्त्यन्तर में भ्रमण किया करता है। दोनों काष्ठाओं में अस्ती मण्डल शत में चरण करता हुआ रहता है। पुनः ध्रुव के द्वारा मुच्यमान् रश्मि युग से चरण करता है। उसी भाँति वहिर्मणा से यह सूर्य मण्डलों को भ्रमण किया करता है। वेग के साथ उद्घेष्टन करता हुआ यह मण्डलों को पतन किया करता है ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥

### ५५-अमावस्या महत्त्व वर्णन

कथं गच्छत्यमावास्या मासिमासि दिवं नृप !  
ऐलः पुरुरवाःसूत ! तर्पयेत कथं पितन् ॥  
एतमिच्छामहे श्रोतु प्रमावन्तस्य धीमतः ॥१॥  
तस्य चाह प्रवक्ष्यामि प्रभव विस्तरेण तु ।  
ऐलस्य दिवि संयोग सोमेन सह धीमता ॥२॥

सोमान्चेवामृतप्राप्तिं पितॄणां तर्पणं तथा ।  
 सोम्या वह्निपदं वाग्या अग्निष्वस्तास्तथैव च ॥३॥  
 यदाचन्द्रश्च सूर्यश्च नक्षत्राणां समागतौ ।  
 अमावास्या निवसत एकस्मिन्नथ मण्डले ॥४॥  
 तदा ॥ गच्छति द्रष्टुं दिवाकरनिशाकरो ।  
 अमावास्याममावास्या मातामहपितामहौ ॥५॥  
 अभिवाद्य तु तौ तत्र कालापेक्षः स तच्छति ।  
 प्रचस्कन्द ततःसोममर्चयित्वा परिश्रमात् ॥६॥  
 ऐलः पुरुरवा विद्वान् भाति श्राद्धचिकीपया ।  
 ततः स दिवि सोमवं ह्य पतस्ते पितॄन्पि ॥७॥

ऋषियो ने कहा—हे श्री सूतजी ! पुरुरवा ऐल नृप मास-मास में अर्थात् प्रति मास में अमावस्या में दिवलोक में कंसे जाया करता है और किस प्रकार से पितृगण का तर्पण करता है ? उस घीमान् के इस प्रभाव के श्रवण करने की हम लोगो की इच्छा है । सूतजी ने कहा— मैं अब उसके प्रभाव की विस्तार के साथ बतलाता हूँ । ऐल का दिवलोक में घीमान् सोम के साथ संयोग होता है । सोम से ही अमृत की प्राप्ति हुआ करती है तथा पितृगण का तर्पण होना है । सोम्य-वह्निपद—वाग्य और उसी भाँति अग्निष्वस्त हैं ॥ १, २, ३ ॥ जिस समय में चन्द्र और सूर्य नक्षत्रों में समागत होत हैं अमावस्या में एक ही मण्डल में निवास किया करते हैं ॥ ४ ॥ उस समय में वह मातामह पितामह दिवाकर निशाकरो को देखने के लिये अमावस्या—अमावस्या में जाया करता है । वहाँ पर वह उन दोनों का अभिवादन करके काल को अपेक्षा करने वाला स्थित हो जाया करता है । इसके उपरान्त वह बड़े ही परिश्रम से सोम का अभ्यर्चन करके पुस्कन्दिता होता है । महा विद्वान् पुरुरवा ऐल मास में श्राद्ध करने की इच्छा से दिवलोक में साम का और पितृगण का उप-स्थान किया करता है ॥ ५, ६, ७ ॥

द्विनवकुहमानञ्च तावुमौ तु निघाय सः ।  
 निनीवाली प्रमाणात्मकुहमावत्रतोदये ॥  
 कुहमात्र पित्रुद्देशं ज्ञात्वा कुहमुपासते ।  
 तमुपास्य ततः सोम कनापेक्षी प्रतीक्षते ॥६॥  
 स्वघ्रा मृनन् मोमाद्वैद्यं तेषाञ्च तृप्नये ।  
 इणमिः पञ्चमिश्चैव स्वघ्राऽमृतपरिस्त्रवैः ॥  
 वृष्णपक्षमुजा प्रीतिर्दु हाने परमानुभिः ॥१०॥  
 मद्योमिग्लता तेन सौम्येन मधुना च सः ।  
 निवापेज्यथ दत्तेषु पिब्येण विधिना तु वै ॥११॥  
 स्वघ्रा मृतेन सौम्येन तपयामास वै पितृन् ।  
 मौम्या बहिषदः काव्या अग्निष्वात्तास्तथैव च ॥१२॥  
 श्रुनुरग्नि स्मृतो विप्रैर्ऋतु सम्बत्सरविदुः ।  
 जज्ञिरे ऋतवन्मन्मादूनभ्यो ह्यार्त्तावामदन ॥१३॥  
 नित्गोर्लोबोर्दमाभा विज्ञेया श्रुनुमूनवः ।  
 पिनामहास्तु ऋतवो ह्यमावाभ्यादरसूनव ॥  
 प्रपिनामहाः स्मृता देवाः पञ्चाब्दं ब्रह्मण मुता ॥१४॥

द्विनव और कुह मात्र इन दोनों की वह रखकर निनीवाली क  
 प्रमाण से अन्य कुह मात्र व व्रतोदय में कुह मात्र की रितुगण का उद्देश  
 जानकर कुह की ही उपासना क्या करता है । उसकी उपासना करके  
 इनके उपरान्त वह कनापेक्षी सोम की प्रतीक्षा विदा करता है ॥६, १॥  
 यही वाम करता हुआ उनकी तृप्ति के लिये सोम से स्वघ्राऽमृत ग्रहण  
 करता है । दस और पाँच अर्थात् पन्द्रह स्वघ्राऽमृत परिस्त्रवों से वृष्णपक्ष  
 में भोग करने वालों की प्रीति होती है जो परमानुओं के द्वारा दोहित  
 की जाती है ॥ १० ॥ तुरन्त अग्निधारण करने पान उन सौम्य मधु से  
 यह रितुगण के लिये बगार्ई हुई विधि में निघायों के देन पर सौम्य मधु-  
 मृत में रितुगण का तपय विधा करता या या हि सोम्य—वै११३ ।



वाय्य और उर्मी जाति अग्निप्वात्त हैं ॥ ११, १२ ॥ यमि अशु बहा  
मया है और यिओ के द्वारा अशु को सम्बत्सर कहा जाता है । अशुमें  
उससे समुत्पन्न हुए और अशुओ से जात'व हुए थे ॥ १३ ॥ अशुओ के  
मृगु पितर धर्तारोद्ध' मान जानने च.हिए । पितामह अशुमें है जो अन्ना-  
वस्याद के मृगु हैं । अग्निनामह देव बहे गये गये हैं । पञ्चाब्द ब्रह्मावी के  
पुत्र हैं ॥ १४ ॥

सौम्यावहिपद.काव्या अग्निप्वात्ता इतिप्रिधा ।

गृहस्थायेतु यज्वानो हविर्यज्ञार्त्वाश्चये ॥

स्मृता बहिपदस्त वै पुंगवे निश्चय गताः ॥ १५ ॥

गृहगेधिनभ्य यज्वानो अग्निप्वात्ता र्त्वाव. स्मृता. ।

अष्टका पतयः काव्याः पञ्चाब्दास्तु निबोधत ॥ १६

तेषु स्रस्वत्सरोह्यनिःपूर्य्यस्तु परिवत्सरः ।

सामस्त्विवत्सरश्चैव वायुश्रीवानुवानुवत्सरः ॥ १७

इद्वत्सुवत्सरस्तथा पञ्चाब्दाये युगात्मका. ।

कालेनार्धिष्टितः तेषु च द्रमा सवते सुधाम् ॥ १८

एते स्मृता देवकृत्या. सोमपाश्चाप्मपा य ।

तास्तेन तपयामास यावदासीत्पुरुषा. ॥ १९

यस्माप्रतसूयतेसामो मासिमासि विधेयत ।

नत स्वधामृततद्वै पितृणा सोमपायिनाम् ॥

एतत्तदमृत सोममवाप मधु चैव हि ॥ २० ॥

ततः पीतसुध सोम सूर्योऽसावेकराऽमना ।

आप्यायते सुषुम्णेन सोमन्तु सामपापिनम् ॥ २१

वे सौम्य—बहिपद काव्य और अग्निप्वात्त इस तरह से तीन  
प्रकार के हैं । जो गृह ऋ यज्वा है और जो हविर्यज्ञ.र्त्वा हैं वे पुराण में  
निश्चय को प्राप्त हुए बहिपद बहे गये हैं ॥ १५ ॥ गृहमेधी यज्वा अग्नि-  
प्वात्त र्त्वा बहे गये हैं । अष्टका यति काव्य हैं । अब पञ्चाब्दों के विषय

में समस्त लो ॥ १६ ॥ उनमें सम्बत्सर अग्नि है और सूर्य परित्वत्सर है । सोम इष्टवत्सर है और वायु अनुवत्सर है उनका स्रवत्सर है । ये पञ्चाब्द युगात्मक हैं । कात् से अविधित हुआ पञ्चमा उनमें सुधा का स्रवण किया करता है ॥ १७, १८ ॥ ये इतने देवकृत्य बताये गये हैं । सोमय और उपमय जो हैं उनको उसी से पुष्टवा जब तक रक्षता है तृप्त किया करता है । यशों के सोम मास-मास में विज्ञेय रूप से प्रसव किया करता है । वह स्वयामृन् सोमरायो पितृमखो के लिए है । यह सोम अमृत और मधु को प्राप्त करता है ॥ १९, २० ॥ इसके अनन्तर सुधा का पान किये हुए सोम को यह सूर्य एक रश्मि के द्वारा सोमवाधी छीम को सुपुष्पा से आप्यायित किया करता है ॥ २१ ॥

निःशेषावेकलाःपूर्वायुगपद्व्यापयन्पुत्रा ।

सुपुष्पाप्यायमानस्य भाग भागमहः क्रमात् ॥२१॥

कलाः क्षीयन्ति कृष्णास्ताः शुक्ला ह्याप्यापयन्ति च ।

एवं सा सूर्यवीर्येण चन्द्रस्याप्यायिता तनुः ॥२२॥

पौर्णमास्या सहस्येत शुक्ल सम्पूर्णमण्डलः ।

एवमाप्यायितः सोमः शुक्लपक्षेप्यह क्रमात् ॥

देवैः पीतमुर्धं सोम पुगपश्चादि-वेदभिः ॥२३॥

पीत पञ्चदशाहन्तु रश्मिर्नैकेनभास्करः ।

आप्याय यत् सुपुष्पेन भाग भागमहः क्रमात् ॥२४॥

सुपुष्पाप्यायमानस्य शुक्लावदन्तिर्वकलाः ।

तस्मादधसन्तिवकृष्णाःशुक्लाप्याययन्तिच ॥२५॥

एवमाप्यायते सोम क्षीयते च पुनः पुनः ।

समृद्धिरेव सोमस्य पक्षयोः शुक्लकृष्णयो ॥२६॥

इत्येव पितृमान् सोमः स्मृतस्तद्वत् सुधात्मकः ।

कान्तःपञ्चदशैः साद्धंमुधामृतपरिस्रवं ॥२७॥

। पहिले सम्पूर्ण पूर्व कला एक ही साथ व्यापित हुई थी। सुषुम्णा के द्वारा अध्याय मान का दिन के क्रम से भाग-भाग हो गये। वे कृष्ण कलाएँ क्षीण हुआ करती हैं। और शुक्लपक्ष की कलाएँ आप्यायन किया करती हैं। इस प्रकार से सूर्य के ही वीर्य से चन्द्रमा का तनु आप्यायिता है ॥ २०, २३ ॥ शुक्लपक्ष का सम्पूर्ण मण्डल पूर्णमासी में दिखलाई दिया करता है। इस प्रकार से ही दिनों के क्रम से शुक्लपक्ष में सोम आप्यायिता होता है। देशों के द्वारा जिसकी मुग्धा का पान कर लिया गया है उस सोम को पहिले और पीछे रवि पान किया करता है ॥ २४ ॥ भास्कर एक रश्मि के द्वारा पन्द्रह दिन तक पीत को अहक्रम से भाग-भाग करके सुषुम्णा के द्वारा आप्यायन किया करता है। सुषुम्णा के द्वारा आप्यायमान की सुक्ल कलाएँ बड़ा करती हैं। इस कारण से कृष्णपक्ष की कलाओं का ह्राम होता है और शुक्ल कलाएँ आप्यायन किया करती हैं ॥ २५, २६ ॥ इषी भौत यद्ग सोम पुनः पुनः आप्यायित होता है और क्षीण हुआ करता है। शुक्ल तथा कृष्णपक्षों में इसी प्रकार से सोम की समृद्धि एवं क्षय हुआ करता है ॥ २७ ॥ इस रीति से यह पितृमान् सोम बताया गया है और उन्ही प्रकार से यह सुधात्मक है। सुधामृत परिस्तरों के द्वारा पञ्चदश है उसके साथ ही यह काय है ॥ २८ ॥

अतः पर प्रवक्ष्यामि पर्वाणा सन्धयश्च याः ।

यथा ग्रन्थन्ति पर्वाणि आवृत्तादिशुषेणुवत् ॥ २९ ॥

तथाब्दमासा पक्षाश्च शुक्ला कृष्णान्तु वं स्मृता ।

पौर्णमास्यास्तु यो भेदो ग्रन्थयः सन्धयस्तथा ॥ ३० ॥

अर्द्धमासस्य पर्वाणि द्वितीयाप्रभृतीनि च ।

अन्याधानाक्रिया यस्मात्प्रतीयन्ते पर्वसन्धिषु ॥ ३१ ॥

तस्मात्तु पवणोह्यादौ प्रातिपद्यादिसन्धिषु ।

सायाहन अमृत्याश्च ढौलवी वालउच्यते ॥

लवो द्वावेव राकाया कालो ज्ञेयोऽपराह्निकः ॥३२॥  
 प्रकृतिः कृष्णपक्षस्य कालेऽतीतेऽपराह्निके ।  
 सायाह्ने प्रतिपद्येव स कालः पौर्णमासिकः ॥३३॥  
 व्यतीपाते स्थिते सूर्ये लेखादूर्ध्वं युगान्तरम् ।  
 युगान्तरोदिते नीचचन्द्रे लेखोपरिस्थिते ॥३४॥  
 पूर्णमासव्यतीपातौ यदा पश्येत्परस्परम् ।  
 नौ तु चेप्रतिपद्यावत्तस्मिन्काले व्यवस्थितौ ॥३५॥  
 तत्कालं सूर्यमुद्दिश्य दृष्ट्वा सख्यातुमर्हसि ।  
 सौव सत्क्रियाकालं पठ्य कालोऽभिधीयते ॥३६॥

हमके आने जो पर्वों की सन्धियाँ होती हैं उनक विषय में वर्णन करते हैं । जिस प्रकार से आवृत्त से ईश्वर की तरह पर्व प्रयित हुआ करते हैं । तथा शब्द—मास—पक्ष शुक्ल और कृष्ण बहे गये हैं पौर्णमासी का जो भेद होना है वे सन्धियाँ और सन्धियाँ हैं ॥ ३६, ३७ ॥ अर्ध मास के द्वितीया प्रभृति जो तिथियाँ हैं । ये ही पर्व हैं जिससे पर्व सन्धियों में सन्ध्याधान क्रिया प्राप्त की जाया करती हैं उसमें प्रतिपदा आदि सन्धियों में पर्व के आदि में होना है । सायाह्न में और अनुमति का दो लव काल बढ़ा जाया करता है । दो नव ही रात्रि का अपराह्निक काल जानना चाहिए ॥ ३८, ३९ ॥ अपराह्निक काल क प्रतीत हो जाने पर कृष्ण पक्ष की प्रकृति है । सायाह्न में प्रतिपदा में वह यह काल पौर्णमासिक होता है ॥ ३३ ॥ व्यतीपात में सूर्य के स्थित होने पर लेख से ऊर्ध्व में युगान्तर होता है । लेखा के ऊपर में स्थित चन्द्रमा के युगान्तर में उदित होने पर पूर्णमास और व्यतीपात जिस समय में परस्पर में देखते हैं । वे दोनों जब तक प्रतिपद्य हैं उक्त काल में व्यवस्थित होते हैं । वह काल सूर्य का उद्देश करने देखकर सख्या करने के योग्य होता है और वह ही सायाह्न का काल है जो कि पठ्य काल बढ़ा जाता है ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

पूर्णन्दुः पूर्णपक्षे तु रात्रिसन्धिषु पूर्णिमा ।  
 तस्मादाप्यायते मत्तं पूर्णमास्या निशाकरः ॥३७॥  
 यदान्योन्यवती पाते पूर्णिमा प्रेक्षते दिवा ।  
 चन्द्रादित्योऽपराह्णे तु पूणत्वात् पूर्णिमा स्मृता ॥३८॥  
 यस्मात्तामनुमन्यन्ते पितरो देवतः सह ।  
 तस्मादनुमतिर्नाम पूणत्वात् पूर्णिमा स्मृता ॥३९॥  
 अत्यर्थं राजते यस्मात् पूर्णमास्या निशाकरः ।  
 रञ्जनाच्चोव चन्द्रस्य राकेति कवयो विदुः ॥४०॥  
 अमावमेतामृक्षे तु यदा चन्द्रदिवाकरो ।  
 एका पञ्चदशी रात्रिरमावस्या ततः स्मृता ॥४१॥  
 उद्दिश्य ताममावास्या यदा दशं समागती ।  
 अन्योऽयं चन्द्रसूर्यौ तु दर्शनाद्दर्श उच्यते ॥४२॥

पूर्ण पक्ष में पूर्ण इन्द्र होता है और रात्रि सन्धिमें में पूर्णिमा होती है । इसी से पूर्णमासी में रात्रि में निशाकर आप्यायन प्राप्त किया करता है ॥ ३७ ॥ जब अग्नोन्यवती पूर्णिमाकार क्षण करके दिव प्रेक्षण करता है और अपराह्न में चन्द्र और आदित्य होते हैं तब पूणत्व होने से पूर्णिमा कही गयी है ॥ ३८ ॥ क्योंकि त्रितुल्य देवताओं के साथ उसकी मानसे हैं इसी कारण से उसका अनुमन्य मान होने से अनुमति यह नाम हुआ है और पूणत्व होने से पूर्णिमा है ॥ ३९ ॥ पूर्णमासी में निशा कर बहुत ही अधिक दीप्तिमान् होता है यही कारण है कि चन्द्रमा के रञ्जन होने ही से कविगण उसको राकर कहते हैं ॥ ४० ॥ जिस समय में चन्द्रमा और दिवाकर दोनों ऋतु में अमावसित होते हैं वह एक ही पञ्चदशी रात्रि होती है जिसकी अमावस्या की रात्रि बढ़ा गया है ॥ ४१ ॥ उस अमावस्या का उद्देश कर जब दशक समागत होते हैं और चन्द्र तथा सूर्य अन्योन्य को मिलते हैं तो दश होने के कारण से ही उसका दश यह नाम कहा जाता है ॥ ४२ ॥

द्वौ द्वौ तर्धौवमावास्या स कालः पर्वसन्धिषु ।  
 द्वचतस्रः कुहूमावश्च पर्वकालस्तु स स्मृतः ॥४३॥  
 दृष्टचन्द्रा त्वमावास्या मध्याह्नप्रभृतोह वं ।  
 दिवा तद्वद्वर्षं रात्र्यान्तु सूर्ये प्राप्ते तुचन्द्रमाः ॥४४॥  
 सूर्येण सहसोद्गच्छेत्ततः प्रातस्तनात् वै ॥४५॥  
 समागम्य लवौ द्वौ तु मध्याह्नान्निभतत्रविः ।  
 प्रतिपञ्चुलपक्षस्य चाद्रमा सूर्यमण्डलात् ॥४६॥  
 निर्मध्यमानयामध्येतयोमण्डलयोस्तु व ।  
 स तदन्गाहुतेः कालोदशस्यच वषट्क्रियाः ॥  
 एतद्वत्तुमुक्तं जेयभमावास्यान्तु पार्वणम् ॥४७॥  
 दिवा पव त्वमावास्या क्षीणेन्दो धवले तु वं ।  
 तस्माद्दिवा त्वमावास्या गृह्यते यो दिवाकर ॥४८॥  
 भुद्देति कोकिलेनाक्तं यस्मात् कालात् समाप्यते ।  
 तत्कालसंज्ञिता ह्येषा अमावास्या कुहू. स्मृता ॥४९॥

दो-दो लव अमावस्या में हैं वह काल पर्व सन्धिषो में द्वचतस्र और  
 कुहू मान है । वह पर्व काल कहा गया है ॥ ४३ ॥ त्रिषधे चन्द्रमा दिवा-  
 सार्धे दिवा गया हो वह अमावस्या यही पर मध्याह्न प्रभृति है दिवा है  
 उष से ऊपर में रात्रि में सूर्य के प्राप्त होने पर चन्द्रमा सूर्य के साथ  
 सहसा वसित होने उसके पश्चात् प्रातः कालीन होना है ॥ ४४, ४५ ॥  
 दोलवों का समागम करने मध्याह्न से रवि निपतित हो रहा हो और  
 सूर्य मण्डल से चन्द्रमा दिखनाई देने तक शुद्ध पक्ष की प्रतिपत् होती  
 है । निर्मध्यम न उन दोनों मण्डलों के मध्य में वह रात जो होता है  
 आहुति काल है और दर्शको वषट् क्रिया का है । अमावस्या में वह श्रु-  
 त्पुत्र पार्वण जानना चाहिये ॥ ४६, ४७ ॥ धवल क्षीण इन्द्र के होने पर  
 अमावस्या में दिवा पर्व होता है । इसी से अमावस्या में जो दिवाकर  
 ग्रहण किया जाता है ॥ ४८ ॥ कुहू-रति कोकिल के द्वारा कहा गया

अमावस्या महत्त्व वर्णन

दिवसों के क्रम से होती है। इसी से पञ्चदश सोम में पौडशी कला नहीं है। इससे है विप्र। येन सोम वा पञ्चादशी मे दाय कहा है ॥ ५५, ५६ ॥

इत्यन्ते पितरो देवा. सामनाः सोमवर्दनाः ।  
 आर्त्तिवा ऋतवोऽथाद्वा देवास्तान् भावयन्ति हि । ५७  
 अतः पर प्रवक्ष्यामि पितॄन् श्राद्धभुजस्तु ये ।  
 तेषां गतिञ्च सत्तत्त्वप्राप्तिश्चादस्य नोव हि ॥ ५८  
 न मृतानाङ्गतिः शक्या ज्ञातुं वा पुनरागतिः ।  
 तपसा हि प्रसिद्धेन किं पुनर्मां सचक्षुषा ॥ ५९  
 अत्र देवान् पितॄन् दूते पितरो लौकिकाः स्मृताः ।  
 तेषान्ते घर्मसामर्थ्यात् स्मृताः सायुज्यना द्विज ॥ ६०  
 यदि वाश्रमघर्मण प्रज्ञानेषु व्यवस्थितान् ।  
 अग्रेचात्र प्रसादन्ति श्राद्धयुक्तेषु कम्मसु ॥ ६१  
 ब्रह्मचर्येण तपसा यज्ञेन प्रजया भुवि ।  
 श्राद्धेन विद्यया चैव साधदानेन सप्तधा ॥ ६२  
 कर्मस्वेतेषु ये सक्तावत्तन्त्या देहपातनात् ।  
 देदंस्ते गिरु मि. साद्धं मूप्स. सोमपंस्तथा ॥  
 स्वर्गता विवि मोदन्ते पितृमन्त उवासते ॥ ६३ ॥

ये इत्यने पितरवेन—सोमय—सोमवर्दन आर्त्तव—ऋतव हैं। इनके अन्तर अथर्वेक इनको भाविना किया करते हैं ॥ ५७ ॥ इसके आगे जो श्राद्ध सोमी पितर हैं उनको बतसाता है। उनकी गति-सत्त्व धोर श्राद्ध की प्राप्ति के विषय में कहता है ॥ ५८ ॥ जो मृत हो जाते हैं। उनकी यदि तथा पुनरागति जानी नहीं जा सकती है। यह प्रसिद्ध तप के द्वारा भी तब नहीं जानी जाती है तो मेरी तो बात ही क्या जो चक्षु न युक्त है ॥ ५९ ॥ यहाँ पर देवों की पितरों को बताया गया है। ये पितर लौकिक बने गये हैं। उनसे वे घर्म की सामर्थ्य

जिस काल से समाप्त किया जाता है उसी काल से रक्षा वासी यह अमा-  
वस्या कुहू-इस नाम से नहीं गयी है ॥४८॥

सिनीवालीप्रमाणन्तु क्षीणशेषो निशाकरः ।

अमावास्या विशत्यर्कं सिनीवाली तदा स्मृता ॥५०॥

। अनुमतिश्च राका च सिनीवाली कुहूस्तथा ।

एतासा द्विलवः कालः कुहूमात्रा कुहू. स्मृताः ॥५१॥

इत्येव पञ्चसन्धीना वालोर्द्विलव.स्मृतः ।

पर्वाणाम्तुल्यकालस्तु तुल्याहुतिवपट् क्रियाः । ५२

चन्द्रसूर्यव्यतीपात्ते समे वै पूर्णिमे उभे ।

प्रतिपत्प्रतिपन्नस्तु पर्वकालो द्विमात्रकः ॥५३॥

काल कुहू सनीवालीयोः समुद्धो द्विलवः स्मृतः ।

अर्कनिर्मण्डले सोमे पर्वकाल कला. स्मृताः ॥५४॥

यस्मादपूर्यते सोमः पञ्चदश्यान्तु पूर्णिमा ।

दशभिः पञ्चभिश्चैव कलाभिर्दिवसत्रमात् ॥५५॥

तस्मात् पञ्चदशे सोमे कला वै नास्ति षोडशी ।

तस्मात् सोमस्य विप्रोक्तः पञ्चदश्या भया दामः ॥५६॥

सिनी वाली का प्रमाण तो यही है कि निशाकर क्षीण शेष होता है और अमावस्या अर्क में प्रवेश किया करती है उस समय में यह सिनी वाली कही गयी है ॥ ५० ॥ अनुमति राका — सिनी वाली तथा कुहू इन सबका द्विलव काल होता है । कुहू कही गई है ॥ ५१ ॥ पर्व सन्धिओं का यह काल हो तब कहा गया है । पर्वों का तुल्य काल तुल्य आहुति वपट् क्रिया वाला है । चन्द्र सूर्य के व्यतीपात में दोनों पूर्णिमाएँ समान हैं प्रतिपदा से प्रतिपक्ष द्विमात्रक पर्वकाल हुआ करता है ॥ ५२, ५३ ॥ कुहू और सिनी वाली दोनों का समुद्धकाल द्विलव कहा गया है । अर्क निर्मण्डल सोम में पर्व काल कला कही गयी है ॥ ५४ ॥ क्योंकि सोम पञ्चदशी में पूरित नहीं होता है । पूर्णिमा पाँच और दश बल जो न



अमावस्या महत्त्व वर्णन

दिवसों के क्रम से होती है। इसी से पञ्चदश सोम में घोटशी कता नहीं है। इससे हे विप्र! मैंने सोम का पञ्चादशी में दाय कहा है ॥ ५५, ५६ ॥

इत्यस्ते पितरो देवा सामनाः सोमवर्द्धना ।  
 आर्त्तावा श्रुतवोऽप्याव्दा देवास्तान् भावयन्ति हि ॥ ५७  
 अतः पर प्रवक्ष्यामि पितृ न् श्राद्धभुजस्तु ये ।  
 तेषां गतिञ्च सत्तत्त्वप्राप्तिश्चाद्वयभीव हि ॥ ५८  
 न मृतानाङ्गतिः शक्या ज्ञातु वा पुनरागतिः ।  
 तपसा हि प्रमिद्धेन किं पुनर्मा सचक्षुषा ॥ ५९  
 अत्र देवान् पितृ इतीते पितरो लोकि काः स्मृताः ।  
 तेषान्ते धम्मसामर्थ्यात् स्मृताः सायुज्यगा द्विज ॥ ६०  
 यदि बाधमधर्मेण प्रज्ञानेषु व्यवस्थितान् ।  
 अन्ये चान् प्रसादन्ति श्राद्धयुक्तेषु कम्मसु ॥ ६१  
 ग्रहाचर्येण तपसा यज्ञेन प्रजया भुवि ।  
 श्राद्धेन विद्यया चैव चाध्वदानेन सप्तधा ॥ ६२  
 कर्मस्त्वेतेषु ये सक्तावत्तन्त्या देहपातनात् ।  
 देवस्ते पितृभिः साद्धं मूढममोमपंस्तथा ॥  
 स्वर्गता दिवि मोदन्ते पितृमन्त उवासते ॥ ६३ ॥

ये इनमें पितरदेव—सोमय—सोमवर्द्धन आत्मा—श्रुतव हैं।  
 इनके अनन्तर अद्विदेव उनकी प्राप्ति किया करते हैं ॥ ५७ ॥ इसके  
 जागे जो श्राद्धयोगी पितर हैं उनको बताया है। उनकी गति-सत्तत्त्व  
 और श्राद्ध की प्राप्ति के विषय में कहता हूँ ॥ ५८ ॥ जो मृत हो जाते  
 हैं। उनकी गति तथा पुनरागति जानी नहीं जा सकती है। यह  
 यह प्रमिद्ध तप के द्वारा भी तब नहीं जानी जानी है तो मेरी तो  
 खान ही क्या ओ ब्रह्म से युक्त है ॥ ५९ ॥ यहाँ पर देवों को पितरों को  
 बताया गया है। ये पितर लौकिक बने गये हैं। उनमें ने धर्म की सामर्थ्य

ये द्विजों के द्वारा सापुत्र्य में गमन करने वाले बताये गये हैं ॥ ६० ॥  
 यदि वा आश्रय धर्म से प्रजापति में व्यवस्थितो को कहा गया है और  
 यहाँ पर अन्य आदि युक्त कर्मों में प्रसन्न हुआ करते हैं । ब्रह्मचर्य—  
 तपस्या—यज्ञ—भूतलोक में प्रजा—आदि—विद्या और अन्न ये सात प्रकार  
 हैं । इन कर्मों में जो सक्त हैं और देह का पातन जब तक होता है  
 तब तक रहा करते हैं वे देवी—पितृगणों के साथ तथा सोमप  
 और ऊष्णवी के साथ स्वर्गलोक में गये हुए दिविलोक में आनन्द की  
 प्राप्ति किया करते हैं और पितृमन्त्र उपासना किया करते हैं ॥ ६१ ॥  
 ६२ । ६३ ॥

प्रजावता प्रसिद्धं पा उक्ताश्चादकृताञ्च वै ।  
 तेषां निवापे दत्तं हि सत् कुलीनस्तु बान्धवैः ॥६४॥  
 मासश्चादं हि भुञ्जानास्तेऽप्येते सोमलौकिकाः ।  
 एते मनुष्याः पितरो मासश्चादभुजस्तु वै ॥६५॥  
 तेभ्योऽपरे तु येत्वग्ये सङ्कीर्णाः कर्मयोगिण्यु ।  
 भृष्टाश्चाश्रमधर्मेषु स्वधास्वाहाविवर्जिताः ॥६६॥  
 भिन्ने देहे दुरापन्नाः प्रेतभूता यमक्षये ।  
 स्वकर्माप्पनुशोचन्तो यातनास्थानमागताः ॥६७॥  
 दीघदिग्वातिशुष्काश्च दमश्चुलाश्च विवाससः ।  
 क्षुत्पिपासाभिभूतास्ते विद्रवन्ति त्वितस्ततः ॥६८॥  
 सरित्सरस्तडागानि पुष्करिण्यश्च सवंशः ।  
 परान्नान्यभिकाहृक्षन्त काल्यमाना इतस्ततः ॥६९॥  
 स्थानेषु पात्यमाना ये यातनास्येषु तेषु वै ।  
 शात्मल्या वै नरिण्याञ्चकुम्भीपाकेदवालुके ॥७०॥

जो प्रजा वाले लोग हैं उनके यहाँ यह प्रसिद्ध है और जो याद  
 करने वाले हैं उनके यहाँ यह कहा गया है । उनके कुल में होने वाले  
 बान्धवों के द्वारा निवास में दिया हुआ आदि अर्थात् मास आदि का भोग

अमावस्या महत्वं वर्णनं

करने वाले हैं वे भी ये सोम लौकिक हैं । ये मनुष्य पितर हैं जो कि मास श्राद्ध का भोजन करने वाले हैं ॥ ६४, ६५ ॥ उनसे दूसरे जो अन्य हैं जो कर्म योनियों में सङ्कीर्ण हैं वे आश्रम धर्मों में महान् परिश्रम हैं और स्वाहा तथा स्वाधा—इन दोनों से विवाजित हैं । मित्त देह में दुर्लभ—प्रोक्ष्यत और यमलय में अपने कृत कर्मों की चिन्ता करते हुए किये हुए कर्मों का दण्ड भोगने का जो स्थान या उस पर लाये गये हैं ॥ ६६, ६७ ॥ दीर्घ—अत्यन्त शुष्क—दाढ़ी मूँछों वाले—वस्त्रों से रहित—भूख और व्यास से सताये हुए वहाँ पर इधर-उधर भागे २ फिरते हैं ॥ ६८ ॥ जल के प्राप्त करने के लिये किसी सरिता—सरोवर—तडाग और पुष्करिणियों की सब ओर खोज करते हुए दौड़ लगाते फिरा करते हैं । इधर-उधर कात्पमान होते हुए परात की दृष्टा रखते हुए रहा करते हैं किन्तु वे उन यातनायें भोगने के स्थानों में वरवश पटक दिये जाया करते हैं—नारकीय यानना भोगने के नाम ये हैं—शामली—वैगरिणी—कुम्भीपाक—इडणालुक आदि हैं ॥ ६९, ७० ॥

असिपञ्चवनेनीवयात्यमाना त्वक्मंभिः ।  
तत्रस्थानान्तु तेषां वै दुःखितानामशायिनाम् ॥ ७१  
तथा लोकान्तरस्थानां बान्धवैर्नामगोत्रतः ।  
भूमावसव्य दर्भेषु दत्ताः पिण्डास्त्रयस्तु वै ॥ ७२  
प्राप्तास्तु तपयन्त्येव प्रेतस्थानेष्वधिष्ठितान् ।  
अप्राप्ता यापनास्थानप्रभूटा ये च पञ्चधा ॥ ७३  
पश्चाद्ये स्यावरान्ते वै भूतानीक स्वकमभिः ।  
नानास्पासु जातीनां तिर्यग्योनिषुमूर्त्तिषु ॥ ७४  
यदाहारा भवन्त्येते तामु तास्विह योनिषु ।  
तस्मिंस्त्वस्मिंस्तदाहारेऽद्भुतं दत्तन्तु प्रीणयेत् ॥ ७५  
काले न्यायागतम्पात्रे विधिना प्रतिपादितम् ।  
प्राप्नुवन्त्यन्ममादत्तं यत्र यत्रावतिष्ठति ॥

यथा गोपु प्रनष्टासु चत्सो विन्दति मातरम् ।  
 तथा श्राद्धं पु दृष्टान्तो मन्त्रं प्रापयते तु तम् ॥७६॥  
 एव ह्यविवक्ष्य श्राद्धं श्राद्धादत्तं मनुरब्रवीत् ।  
 सनत्कुमार प्रोवाच पदमन् दिव्येन चक्षुषा ॥७७॥

अपने ही वृत्त कर्मों के द्वारा नारकीय मानव असिपत्र, वन नैन वाले नरक में डाल दिये जाते हैं जहाँ पर चरो ओर बरछी और तलवारें लगी रहा करती हैं । जहाँ पर जो स्थित रहते हैं वे मृत्युविक बुद्धित रहा करते हैं और उन्हें खपन करने तक का कोई वहाँ स्थान नहीं होता है । ऐसे अग्न्य स्रोतों में स्थित उनके बान्धवों के द्वारा जो नाम और योत्र का उच्चारण करके अगतम्य हो भूमि में सभी पर तीन पिण्ड विभे गये हैं ॥७१, ७२॥ प्रथम स्वामी में अधिष्ठितों को प्राप्त हुई उनको वे पिण्ड तृप्त किया करते हैं । जो यातना के स्थान में अशान्त हैं वे प्रग्रथ होकर पौष प्रकार से विभक्त होते हैं । पीछे जो अपने कर्मों के द्वारा स्वामरान्त में मृत हैं वे तिर्यक योनि वाली मूर्तियों में स्तया जातियों के नामा रूपी में जब आहार होते हैं तो उन उन योनियों में उस उस आहार में दिया हुआ श्राद्ध उनको प्रसन्न एवं तृप्त किया करता है । समय पर श्याम पूषता पात्र में विधि के सहित प्रतिपादित एवं आदत्त अन्न को जहा-जहा पर अवस्थित होता है प्राप्त किया करते हैं ॥७३, ७४, ७५॥ जिस प्रकार से गौश्रों के प्रगष्ट होने पर वत्स माता को प्राप्त किया करता है उसी प्रकार से श्राद्धों में यह दृष्टान्त है कि मन्त्र उसको प्राप्त कराया करता है ॥७६॥ इसा प्रकार से धन्य से दिया हुआ अविवक्ष्य श्राद्ध है—  
 ऐसा ही मनु ने कहा है । अपने दिव्य नेत्रों के द्वारा देखकर भगवान् सनत्कुमार ने कहा है ॥७७॥

गतागतज्ञ प्रेतानां प्राप्तिं श्राद्धस्य चैव हि ।

कृष्णपक्षरत्नहरतपा ध्रुवल.स्वप्नाय शर्करा ॥७८॥

इत्येत पितरो दया देवाश्च पितरश्च यै ।

अन्योन्यपितरो ह्येते देवाश्च पितरो दिवि ॥७६  
एते तु पितरो देवा मनुष्या पितरश्च ये ।  
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ॥७७  
इत्येष विषयः प्रोक्तः पितृणा सोमपायिनाम् ।  
एनत् पितृमहत्त्व हि पुराणेनश्चयंगतम् ॥७८  
इत्येष सोमसूर्याभ्यामैतस्य च समागमः ।  
अवाप्ति अदयाचं पितृणाञ्चैवतपसाम् ॥७९  
पर्वणाञ्चैव यः कालो यातनास्थानमेव च ।  
समासात् कीर्तितस्तुभ्यं समस्य सनातनः ॥८०  
वन्द्य येन तत्सर्वं कथितस्त्वेकदेशिकम् ।  
अशक्य परिसंस्थातुं श्रद्धेय भूतिमिच्छता ॥८१  
स्वायम्भुवस्य देवस्य एष सूर्यो मयेरितः ।  
विस्तरेणानुपूर्व्याञ्च श्रूयः किं कथयामि वः ॥८२

प्रेतों के गनायत का ज्ञाता और श्राद्ध की प्राप्ति इसके लिये  
वृष्ण पक्ष के ही दिन हैं और जो भुक्च पक्ष होता है वह तो इनके छान  
के लिये रात्रि होती है ॥७६॥ ये इनने पितर देव हैं—देव पितर हैं । ये  
अन्योन्य में पितर हैं और दिवगोक में देव पितर हैं ॥७७॥ ये पितर देव  
हैं और जो देव पितर हैं तथा मनुष्य पितर हैं एव पिता-पितामह और  
प्रपितामह हैं ॥७८॥ यह इनका सोमपायी पितृगणों का विषय कहला  
दिया गया है । यह पितृगण का महत्त्व पुराण में निश्चय को प्राप्त हुआ  
है ॥७९॥ यह सोम और सूर्यों का वर्णन तथा पर्वों का काल और  
याचना भोगने का स्थान यह सभी सन्नेन के साथ तुम्हारे सामने वर्णित  
कर दिया है । यह सब और सनातन है । जिसके द्वारा वैदिक होता है  
वह सभी एक देशिक कह दिया गया है । इसकी परिमन्त्रा नहीं की जा  
सकती है । जो भूति की इच्छा करने वाला है उसे श्रद्धा करने चाहिये ।  
॥८२, ८३, ८४॥ स्वायम्भुव देव का यह सूर्य विस्तार के साथ और

अनुपूर्वों के सहित मैंने आपको सब बतला दिया है । अब अब मे आप लोगों को मैं बड़ा बतलाऊँ—यह कहिए ॥८५॥

## ५६ —चतुर्गुण मान वर्णन

चतुर्गुणानि यानि स्यु पूर्वं स्वायम्भवेऽन्तरे ।  
 एषा निसर्गं सरयाञ्च शोतुमिच्छाम विस्तरात् ॥१॥  
 एतच्चतुर्गुणं त्वेव तद्वदयामि निबोधत ।  
 तत्प्रम ण प्रमर्याय विस्तराच्चैव वृत्स्नश ॥२॥  
 लौकिकेन प्रमाणेन निष्पाद्याद्भस्तु मानुषम् ।  
 तेनापीह प्रसर्यायवदयामि तु चतुर्गुणम् । ३॥  
 काष्ठा निमेषा दश पञ्च चैव त्रिंशच्च काष्ठाङ्गमेतु कला तु ।  
 त्रिंशत्कलाश्चैव भवेत् मूहृतंस्तस्मिंश्शता रात्र्यहनी समेते ॥४॥  
 अहोरात्रं विभजते सूर्यो मानुषलौकिक ।  
 रात्रि स्वप्नाय भूतानाञ्चेष्टायै कर्मणामह ॥५॥  
 पित्र्ये राष्ट्रग्रहनी मास प्रविभागस्तयो पुन  
 कृष्णपक्षस्त्वहस्तेषां शुक्ल स्वप्नाय शबरी ॥६॥  
 त्रिंशद्ये मानुषा मासा पेत्रो मास स उच्यते ।  
 शतानि त्रीणि मासानां पृष्ट्या चाभ्यधिकानि तु ।  
 पेत्र रावत्सरो ह्यप मानुषेण विभाव्यते ॥७॥

ऋषियो ने कहा—पूर्व स्वायम्भुव अन्तर मे जो चतुर्गुण हैं ।  
 अब हम लोग उनका निसर्ग और उनका सत्ता कास धनन करना चाहते  
 हैं और पूरा विस्तार व साथ उसे सुनना चाहते हैं ॥१॥ श्री भूतजी ने  
 कहा—यह जो चारो युगों की चौबड़ी जिस प्रकार से है उसको मैं  
 बतलाता हूँ उसे मनी याति समझना । उनका जो प्रमाण होना है उसको

चतुर्गुण मान वर्षेन

प्रमत्तात् करके पूर्ण रूप से विस्तार के सहित में बतला रहा है ॥२॥  
 लौकिक प्रमाण के द्वारा मानुष वर्ष का निष्पन्न करने के उमी के द्वारा महा  
 पर प्रमत्तात् करके में चारों युगों का वर्णन करुणा ॥३॥ पन्द्रह निमेष  
 की काण्डा होती है और तीस काण्डों की एक कला गिनी जाती है ।  
 तीस कलाओं का एक मुहूर्त होता है और तीस मुहूर्तों का एक महोरात्र  
 हुआ करता है ॥४॥ सूर्य मानुष लौकिक महोरात्र में विभक्त होता है ।  
 रात्रि का समय प्रातियों के अर्धरात्रि, मृदा, सेने का, होरा, है और दिन  
 विविध भाँति के कर्मों की चेष्टा करने के लिये हुआ करता है ॥५॥  
 पितृगण का मास रात्रि और दिन हुआ करता है उन दोनों का प्रतिभाष  
 इसी भाँति हुआ करता है कि उनका कृष्ण पक्ष मास का दिन हुआ करता  
 है और जो मास का शुक्ल पक्ष होगा । वही शर्वरी स्वप्न के लिये होती  
 है ॥६॥ जो ये तीस मानुष मास है वह पैत मास कहा जाया करता है ।  
 तीन सौ साठ मासों का पैत सम्बत्सर होता है जो मानुष के द्वारा विभा-  
 वित हुआ करता है ॥७॥

मानुषेणैव मानेन वर्षाणां य एत भवेत् ।  
 पितृणां तानि वर्षाणि सस्यातानि तु त्रीणि वै ।  
 दश च ह्यधिका मासा पितुस्सर्पेह कीर्तिताः ॥८॥  
 लौकिकेन प्रमाणेन अथो यो मानुषः स्मृतः ।  
 एतद्दिद्व्यमहारात्रमित्येषा वीदकी श्रुतिः ॥९॥  
 दिव्ये राष्ट्रहनी वयः प्राविभागस्तयोः पुनः ।  
 अहस्तु यदुदक् चं च रात्रिर्या दक्षिणायनम् ॥  
 एते राष्ट्रहनी दिव्ये प्रसख्याते तयोः पुनः ॥१०॥  
 त्रिशद्यानि तु वर्षाणि दिव्यो मासस्तु स स्मृतः ।  
 मानुषाणां शत यच्च दिव्या मासास्त्रस्यतु ॥  
 तथैव सह सस्यातो दिव्य एष विधिः स्मृतः ॥११॥  
 त्रीणि वर्षशतान्येव पट्टिवपस्तथैव च ।

दिव्य. सम्बत्सरोहयेण मानुषेण प्रकीर्तितः ॥१२॥  
 त्रीणि वर्षसहस्राणि मानुषेण प्रमाणतः ।  
 त्रिषदन्यानि वर्षाणि स्मृतः सप्तपिवत्सरः ॥१३॥  
 नव यानि सहस्राणि वर्षाणि मानुषाणि ।  
 वर्षाणि नवतिश्चैव ध्रुवसम्बत्सरः स्मृतः ॥१४॥

मानुष मास के घान के द्वारा हो जो वर्षों का एक शतक होता है वे पितृगण के तीन वर्ष संख्यात किये गये हैं । दश अधिक मास होते हैं । यहाँ पर यही पितृसंख्या कीर्तित की गयी है ॥१२॥ लौकिक प्रमाण से जो मानुष अब्द कहा गया है—यह दिव्य अहोरात्र होता है—इस प्रकार से यही वैदिकी श्रुति है ॥१३॥ दिव्य रात्रि और दिन एक वर्ष होता है और उन दोनों का प्रविभाग इसी प्रकार से हुआ करता है कि जो उत्तरायण है वह दिन होता है और जो दक्षिणायन होता है वही रात्रि होती है । ये ही रात्रि और दिन दिव्य उनके प्रसख्यात किये गये हैं ॥१४॥ तीस जो वर्ष होते हैं वही दिव्य मास कहा गया है । मनुष्यों के जो शत है वे दिव्य तीन मास होते हैं । इसी भाँति से यह सख्यात हुआ करता है और गही दिव्य विधि बतसायी गयी है ॥११॥ तीन सौ साठ वर्ष का इस प्रकार से एक दिव्य सम्बत्सर मानुष के द्वारा प्रकीर्तित किया गया है ॥१२॥ मानुष प्रमाण से जो तीन सहस्र वर्ष होते हैं और तीस और होते हैं वही सप्तपियों का वत्सर कहलाता है । नौ सहस्र मानुष वर्ष और नब्बे अधिक वर्षात् नौ हजार नब्बे वर्ष का ध्रुव सम्बत्सर कहा जाया करता है । ॥११, १४॥

षट्त्रिंशत्सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि च ।  
 षष्टिश्चैव सहस्राणि संख्यातानि तु संख्यया ॥  
 दिव्यं वर्षसहस्रन्तु प्राहुः संख्याविदा जनाः ॥१५॥  
 इत्येतेष्वपिभिर्गीतं दिव्यया संख्यया द्विजाः ।  
 दिव्येनैव प्रमाणेन युगसंख्या प्रयत्निता ॥१६॥



चत्वारि शरते वर्षे युगानि ऋषयोऽब्रुवन् ।  
 कृतत्रेता द्वापरञ्च कलिश्चैव चतुर्गुणम् ॥१७॥  
 पूर्वं कृतयुगं नाम ततस्त्रेताभिधीयते ।  
 द्वापरञ्च कलिश्चैव युगानि परिकल्पयेत् ॥ ८॥  
 चत्वार्योद्गः सहस्राणि वर्षाणि तत् कृत युगम् ।  
 तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यश्च तथाविधः ॥१८॥  
 इतरेषु ससन्ध्येषु ससन्ध्याशेषु च त्रिषु ।  
 एकपादे निवर्तन्ते सहस्राणि शतानि च ॥२०॥  
 त्रेता त्रीणि सहस्राणि युगसंख्याविदो विदुः ।  
 तस्यापि त्रिंशती सन्ध्या सन्ध्याश्च सन्ध्यया समः ॥२१॥

जो सख्या के वेत्ता पुरुष हैं वे छत्तीस हजार ब्रह्मण्य वर्ष और  
 साठ हजार सख्या के द्वारा जो सख्यात किये गये हैं उनको दिव्य सहस्र  
 वर्ष कहा करते हैं ॥१५॥ हे द्विजगण ! ऋषियगों के द्वारा दिव्य संख्या  
 से यहाँ बताया गया है और दिव्य प्रमाण के द्वारा ही युग सख्या भी  
 प्रकीर्तित की गयी है । ऋषियो ने भारत वर्ष में चार युग पतलाये हैं ।  
 चार चारों युगों के नाम कृतयुग—त्रेतायुग—द्वापर और कलियुग हैं ।  
 ये चारों युग क्रम से ही हुआ करते हैं । सबसे पूर्व कृतयुग होता है ।  
 उसका पश्चात् त्रेतायुग कहा गया है और फिर द्वापर तथा कलियुग  
 होता है । चार सहस्र वर्षों का कृतयुग होता है । उस कृतयुग की उत्पत्ती  
 ही शत वाली सन्ध्या होती है और उसी प्रकार का सन्ध्याश होता है ।  
 ॥१६, १७, १८, १९॥ इतर तीनों में सन्ध्या से युक्त और सन्ध्याश से  
 युक्तों में एक पाद में तो सहस्र निवृत्त हो जाते हैं । २०॥ युग सख्या के  
 वेत्ता लोग त्रेता को तीन सहस्र कहा करते हैं । उसकी भी तीन शत  
 सन्ध्या होती है और सन्ध्या के समान ही सन्ध्याश होता  
 है ॥ २१ ॥

द्वे सहस्रे द्वापरन्तु तन्ध्याशिं तु चतु शतम् ।  
 सहस्रमेक वर्षाणा कलिरेव प्रकीर्तित ॥  
 द्व शतै च तथान्ये च सन्ध्या सन्ध्याशयो स्मृते ॥२२॥  
 एषा द्वादशसाहस्री युगसस्या तु सञ्ज्ञिका ।  
 कृतत्रेता द्वापरञ्च कलिश्चेति चतुष्टयम् ॥२३॥  
 तत्र सम्बत्सरा सृष्टा मानुषास्तान्निबोधत ।  
 नियुतानि दश द्व च पञ्च चैवान्न सख्यया ॥  
 अष्टाविंशत्सहस्राणि कृत युगमयोच्यते ॥२४॥  
 प्रयतन्तु तथा ऽण द्वै चान्ये नियुते पुन ।  
 यत्पणवत्सहस्राणिसख्या तानिच सख्यया ॥२५॥  
 त्रेतायुगस्य सरयंपा मानुषेण तु सञ्ज्ञिता ।  
 अष्टौ शतैर्सहस्रेणि वर्षाणा मानुषाणि तु ॥  
 चतु पष्टिसहस्राणि वर्षाणा पर युगम् ॥२६॥  
 चत्वारि नियुतानि स्युवर्षाणि तु कलियुगम् ।  
 द्वात्रिंशच्च तथान्यानि सहस्र णि तु सख्यया ।  
 एतत्कलियुगं प्राक्त मानुषेण प्रमाणतः ॥२७॥  
 एषा चतुर्षु भावस्या मानुषेण प्रकीर्तिता ।  
 चतयुगस्य सख्याता सन्ध्या सन्ध्याशकं सद्र ॥२८॥

चतुर्गुण मान वर्णेन

तथा छियानवे सहस्र सख्या के द्वारा त्रेनायुग की यह सख्या मानुष प्रमाण से सजा वाली की गयी है । मानुष वर्ष आठ सौ सत्तह और चौसठ हजार वर्षों के प्रमाण वाला द्व्यपर युग कहा गया है ॥ १, २६॥ चार नियुत और अन्य दत्तीत सहस्र वर्षों की सख्या वाला कालयुग मानुष प्रमाण से कहा गया है ॥ २७॥ यह चारो युगों की अवस्था मनुष्य प्रमाण के द्वारा कीर्तित की गयी है और चारो युगों की सख्या उनकी सख्या और सख्याश के तर्हि सख्यात की गयी है ॥ २८॥

एषा चतुर्गुणस्य तु साधिका त्वेकसप्तति ।  
 वृत्तनेतादियुक्ता सा मनोरन्तरमुच्यते ॥ २६  
 मन्वन्तरस्यसख्या तु मानुषेण निबोधत ।  
 एकत्रिंशत्तथाकोट्यसख्याता सख्ययाद्विजै ॥ २७  
 तथा शतसहस्राणिदशचान्यानि भागश ।  
 सहस्राणि तु द्वित्रिंशच्छतान्यष्टाधिकानि च ॥ २८  
 अशांतिदचैव वर्षाणि मासाश्चैवाधिकास्तुषट् ।  
 मन्वन्तरस्यसख्यमैषामानुषेण प्रकीर्तिता ॥ २९  
 दियेन च प्रमाणेन प्रवक्ष्याम्यन्तर मनो ।  
 सहस्राणां शतान्याहुः सच वै परिसंख्यया ॥ ३०  
 चत्वारिंशत् सहस्राणि मनोरन्तरमुच्यते ।  
 मन्वन्तरस्य कालस्तु दुर्गै सह प्रकीर्तिता ॥ ३१  
 एषा चतुर्गुणस्य तु साधिका ह्येकसप्तति ।  
 क्रमेण परिवृत्ता सा मनोरन्तरमुच्यते ॥ ३२  
 एतच्चतुदशगुण वत्पमाहुस्तु तद्विद ।  
 तत्तरतु प्रनय वृत्तम् स तु सप्रलयो महान् ॥ ३३

इन चारो युगों की साधिका इकहत्तर चौकड़ो जिसमें कुल त्रेता आदि सभी युग होते हैं एक मनु का जन्म होना है । अब उसी मन्वन्तर की सख्या मानुष प्रमाण से भी समझ लो । द्विजबर्णा के द्वारा सख्या से

इकतीस करोड़ संख्यात की गयी है। तथा ही सहस्र और अन्य दश सहस्र एवं आठ अधिक बत्तीस सौ वर्ष एवं छं भास अधिक मानुष प्रमाण से यह सख्या मन्वन्तर की बही गयी है ॥ २६, ३०, ३१, ३२ ॥ अब मैं दिव्य प्रमाण से मनु का अन्तर बतलाता हूँ। वह परिसख्या से सौ सहस्र कहा गया है। चालीस सहस्र मनु का अन्तर बतलाता हूँ। वह परिसख्या से सौ सहस्र कहा गया है। चालीस सहस्र मनु का अन्तर कहा जाता है। उसके ज्ञाता लोग इसका चौदह गुना वरूप कहा करते हैं और मन्वन्तरों का काल युगों के साथ ही कहा गया है। ये चारो युगों की नाम चाली साधिका इषहत्तर चौदड़ी की होती है और प्रथम से यह परिवृत्त होती है तो वही मन्वन्तर कहा जाता है। कल्प के बाद पूर्ण प्रलय होता है। वह महान् सप्रलय होता है ॥ ३३, ३४, ३५, ३६ ॥

वल्प्रमाणो द्विगुणो यथा भवति संख्यया ।  
चतुर्थुं गास्या व्याख्याता कृतत्रेतायुगञ्च वै ॥३७॥  
त्रेतासृष्टिं प्रवक्ष्यामि द्वापरं कलिमेव च ।  
युगपत्सम्भवेत्तौ द्वौ द्विधा वक्तुं न शक्यते ॥३८॥  
क्रमागतं मयाप्येतत्तुभ्य नोक्तं युगद्वयम् ।  
ऋदिवशप्रसङ्गेन व्याकुलत्वात्तथा क्रमात् ॥३९॥  
नोक्तं त्रैतायुगे शेषं तद्वक्ष्यामि निबोधत ।  
अथ त्रैतायुगस्यादौ मनुः सप्तर्षयश्च ये ॥  
श्रीतस्मार्तं ब्रुवन्धर्मं ब्रह्मणा तु प्रचोदिताः ॥४०॥  
दाराग्निहोत्रसम्बन्धं ऋग्वज्रु सामसहिताः ।  
इत्यादिवहुलं श्रीतं धर्मं रुप्तर्षयोऽब्रुवन् ॥४१॥  
परम्परागतं धर्मं स्मार्तत्वाचारलक्षणम् ।  
वर्णाश्रमाचारयुक्तं मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥४२॥

जिस प्रकार से सख्या से वल्प्र का प्रमाण द्विगुण होता है। कृत-

चतुर्गुण मान बखान

मय लोग की सृष्टि को बतलाऊंगा । दापर और कतिगुण को भी बत-  
लाऊंगा । एक ही साथ समवेत ये दोनों दो प्रकार से नहीं बतलाये जा  
सकते हैं । क्रम से प्राप्त इन दोनों युगों की मने भी आपकी नहीं  
बतलाया है । अधियों के बश के प्रसङ्ग से व्याकुलता होने के कारण  
तथा क्रम से चैतायुग में दोष नहीं बतलाया है । उसे अब बतलायेंगे  
भली भाँति समझ लो । इसके अनन्तर त्रेता युग के आदि में मनु और  
षो सप्तपि हैं उनको भी एव स्मार्त धर्म को बतलाते हुए ब्रह्माजी  
के द्वारा प्रेरित किया गया था । ३७, ३८, ३९, ४० ॥ दारा-प्रमिहोम  
का सम्बन्ध—ऋक्, यजु और साम सहित—इत्यादि बहुलता वाला  
घोत धर्म सप्तर्षियों ने कहा था । स्मार्तत्व आचार क सङ्गण वाला और  
वर्णाश्रमों के आचार से मुक्त परम्परा क द्वारा आया हुआ धर्म इस सबको  
स्वापम्भुव मनु ने बतलाया था ॥ ४१, ४२ ॥

सत्येन ब्रह्मचर्येण श्रुतेन तपसा तथा ।  
तेषां सुतप्ततपसा मार्गेणानुक्रमेण ह ॥४३॥  
सप्तर्षीणां मनोश्चैव आदौ त्रेतायुगे ततः ।  
अवुद्धिपूर्वकं तेन सङ्कृतं पूर्वक्रमेण च ॥४४॥  
अमिवृतास्तु ते मन्त्रा दशनंस्तारकादिनि ।  
आदिकल्पे तद्देवानां प्रादुर्भूतास्तु ते स्वयम् ॥४५॥  
प्रमाणेष्वथ सिद्धानामभ्यपारुच्य प्रवर्तते ।  
मन्त्रयोगो व्यतीतेषु कल्पेष्वथ सहस्रतः ॥  
ते मन्त्रा वै पुनस्तेषां प्रतिमायामुपस्थिता ॥४६॥  
ऋचो यजूपिसामानिमन्त्राश्चायवणास्तु ये ।  
सप्तर्षिभिश्च येषोक्ताः स्मात्तन्तु मनुरब्रवीत् ॥४७॥  
त्रेतादौ सहा वेदा केवल धम्मंसेतव ।  
स रोघादायुषश्चैव व्यस्यन्ते द्वापरे च ॥  
ऋषयस्तपसा वेदानहोराश्रमधीयत ॥४८॥  
अनादिनिघना दिव्या एवं प्रोक्ताः स्वयम्भुवा ।

स्वधर्म्यंसंवृता साङ्गा यथा धर्मं युगे युगे ।

विक्रियन्ते स्वधर्मन्तु वेदवादाद्यथायुग्म् ॥४६॥

सत्य से—ब्रह्मचर्य से—श्रुत—तप से और उनके भली भानि सपे हुए तप से—अनुक्रम मार्ग से बतलाया या ॥४३॥ इसके पश्चात् आदि त्रेतायुग में सप्तपियो क और मनु के अष्टादि पुरस्सर ही एक बार पहिले ही उसने मन्त्रों को अभिवृत्त किया था । वे ही अभिवृत्त मन्त्र तारक आदि दशमों के द्वारा देवों के आदि कल्प में स्थय ही प्रादुर्भूत हो गये थे ॥ ४४, ४५ ॥ इसके अनन्तर वे सिद्धों के तथा अन्यो के प्रमाणों में प्रवृत्त हुए हैं । इसके पश्चात् सत्सो नहरो क अतीत होने पर यह मन्त्र भोग रहा है ॥ ४६ ॥ फिर उनके वे मन्त्र प्रतिष्ठा के रूप में उपस्थित हुए थे । श्रुत्या—यजु—साम और ओ मन्त्रवेद क मन्त्र है तथा सप्तपियो के द्वारा ओ मन्त्र कहे गये हैं और स्मात् इनको मनु ने कहा था । त्रेतादि में सहित हुए वेद कवल धर्म के सेतु थे । फिर आयु के सारा होने से वे ही आपर में व्यस्थित हुए हैं । अविगण १५ के द्वारा रात दिन वे तो का अध्ययन किया करते थे ॥ ४७, ४८ ॥ भगवान् स्वयम्भू ने पूर्व में अनादि निधन अर्थात् आदि-अन्त से रहित दिग्ध वेदों को कहा था । ये युग-युग में धर्म ने अनुसार ही अज्ञों ने सहित स्वधर्म सङ्ग हुए थे । युग के अनुसार वेदवाद से अपने धर्म को विकृत किया करते हैं ॥ ४६ ॥

आरम्भयज्ञः क्षत्रहविर्यज्ञा विशः स्मृता ।

परिचारयज्ञा शूद्राश्च जपयज्ञाश्च ब्राह्मणाः ॥४९॥

ततः समुक्षिता वर्णास्त्रेताया धर्मशालिनः ।

निधावन्त प्रजावन्त समृद्धिसुखिनश्च वै ॥५०॥

ब्राह्मणश्च विधीयन्ते क्षत्रिया क्षत्रियविशः ।

वंश्यान् शूद्रानुवन्तं शूद्रात् परमनुग्रहात् ॥५१॥

शुभा, प्रकृत्यस्तथा धर्मा वर्णाश्रमाभ्याः ।

संरूपितेन मनसा वाचा वा हस्तभ्रमणा ॥

त्रेतायुगे ह्यविकले कमरिम्भः प्रसिध्यति ॥५२॥

आयूरूपं बलं मेघा आरोग्य धर्मशीलता ।

सर्वसाधारण ह्येतदासीत्त्रेतायुगे तु वै ॥५४॥

धर्णाश्रमव्यवस्थानमेषां ब्रह्मा तथाकरोत् ।

संहिताश्च तथा मन्त्रा आरोग्यधर्मशीलता ॥५५॥

संहिताश्च तथा मन्त्रा अपिभिर्ब्रह्मण सुतैः ।

यज्ञः प्रवर्तितश्चैव तदा ह्येव तु देवतैः ॥५६॥

यामं शुक्लेजयैश्चैव सवसाधनसम्भृतैः ।

विश्वसृष्टिभिस्तथा सादृ देवेन्द्रेण महीजसा ॥

स्वयम्भुवेन्तरे देवैस्ते यज्ञाः प्राक्प्रवर्तिताः ॥५७॥

आरम्भ यज्ञ क्षत्र हविषा, फिर वैश्यों के यज्ञ कहे गये हैं । धूम्र  
परिचार यज्ञों वाले थे तथा जप यज्ञ वाले ब्राह्मण हुए थे ॥ ५० ॥ इसके  
उपरान्त त्रेता में धर्मशाली वणों का समुदाय हुआ था । वे सब त्रियम्बो  
से सम्पन्न प्रजाओं वाले और सुख सगृह्णित से युक्त थे । ब्राह्मणों के द्वारा  
क्षत्रियों का विधान किया गया था—क्षत्रियों के द्वारा वैश्यों का किया गया  
था । धूम्र वैश्यों का अनुवर्तन करते थे और शूद्रों पर परम अनुग्रह था ।  
उन सबकी प्रकृतियाँ परम शुभ थीं और धर्म भी वणों और आश्रमों के  
समाश्रित वाला था । उस पूर्ण त्रेता युग में सङ्कल्पित मन से—वाणी से  
और हाथों के द्वारा किये हुए कर्म में वह कर्मों का समारम्भ प्रसिद्ध  
हुआ था ॥ ५१, ५२, ५३ ॥ उस त्रेता युग में आयु—रूप—बल—मेघा—  
आरोग्य और धर्मशीलता यह सब कुछ सबके लिये साधारण था । ब्रह्मा—  
जी ने इन सबकी वरुणों और आश्रमों की उस प्रकार की व्यवस्था करदी  
—की कि आरोग्य—धर्मशीलता—मन्त्र और संहिता—उसी तरह की थी ॥ ५४  
५५ ॥ ब्रह्माजी के पुत्र ऋषियों के द्वारा संहिताएँ और मन्त्र प्रवृत्त किये  
गये थे । उस समय में ही देवनों के द्वारा यज्ञ प्रवर्तित किया गया था ।  
समस्त साधनों से संभूत याम—शुक्ल—जनों के द्वारा तथा महान् भोजन वाले

देवेन्द्र ने विश्व सृजो के साथ देवो ने सब यज्ञ स्वायम्भुव अन्तर में पदित प्रवर्तित किये थे ॥ ५६, ५७ ॥

सत्य जपस्तपोदान पूर्वं धर्मोऽप्यमुच्यते ।  
 यदा धर्मस्य ह्रसते शाखा धर्मस्य वद्धते ॥ ५८  
 जायन्ते च तदा शूराऽऽयुष्मन्तो महाबलाः ।  
 न्यस्तदण्डा महायोगायुज्वानो ब्रह्मावादिनः ॥ ५९  
 पद्मपत्रायताक्षाश्च पृथुवक्त्रा सुसहता ।  
 सिंहोरस्का महासत्त्वा मत्तमातङ्गगामिनः ॥ ६०  
 महाघनुर्द्धराश्चैव त्रेताया चक्रवर्तिनः ।  
 सर्वलक्षणपूर्णस्ते न्यग्रोधपरिमण्डलाः ॥ ६१  
 न्यग्रोधी तु स्मृतीवाह व्यामोन्यग्रोध उच्यते ।  
 व्यामेन तूच्छमोयस्तत उद्ध्वन्तुर्देहिनः ॥  
 समुच्छ्रयो परीणाहो न्यग्रोधपरिमण्डलः ॥ ६२ ॥  
 अक्र रथो मणिर्भार्या निर्धिरश्वो गज रत्नया ।  
 प्रोक्तानि सनरत्नानि पूव स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥ ६३

सबसे पूर्व सत्य-जप-तप और दान यही धर्म कहा गया था । जिस समय में धर्म का कुछ हास होता है तो धर्म की शाखा की वृद्धि हुआ करती है ॥ ५८ ॥ उस समय में शूरो की समुत्पत्ति हुआ करती थी जो शूर आयुष्मान् और महान् बलवान् थे । ये शूरन्यस्त दण्ड-महान् योग वाले-यज्वा-ब्रह्मावादी-पद्म पत्र के तुल्य आयत नेशो वाले-पृथु वक्त्र-सुसह-सिंह के समान उर स्थल वाले-महासत्त्व सत्ता मत्त हाथी के सदृश गमन करने वाले थे । उस समय में होने वाले शूर महान् घनु-धारी थे और त्रेता में चक्रवर्ती हुए थे । वे शूर समस्त मक्षणो से परिपूर्ण एवं न्यग्रोध परिमण्डल वाले थे ॥ ५९, ६०, ६१ ॥ दोनों न्यग्रोध दो धातु बहे गये हैं और व्याम को न्यग्रोध कहा जाता है जिसका उच्छ्रम व्याम के समान है इससे उपरान्त देह धारी का समुच्छ्रम न्यग्रोध परिमण्डल



चतुर्गुण मानवर्गन

परीणाह होता था ॥ ६२ ॥ पहिले स्वायम्भुव अन्तर में चरु—  
रथ—मणि—भार्या—निधि—अश्व—गज ये सात रत्न बताये गये  
हैं ॥ ६३ ॥

विष्णोरक्षेण जायन्ते पृथिव्यां चक्रवर्तिनः ।  
मन्वन्तरेषु सर्वेषु ह्यतीतानागतेषु वै ॥ ६४ ॥  
भूतभव्यानि यानोह वसंतमानानि यानि च ।  
लैतायुगानि तेष्वत्र जायन्ते चक्रवर्तिनः ॥ ६५ ॥  
भद्राणामानि तेषाञ्च विभाव्यन्ते महीजिताम् ।  
अत्यद्भुतानि चत्वारि वसधर्मसुखधनम् ॥ ६६ ॥  
अन्योन्यस्याविरोधेन प्राप्यन्ते नृपतेः समम् ।  
अर्थोधर्मश्च कामश्च यशोविजयएव च ॥ ६७ ॥  
ऐश्वर्येणाणिमाद्येन प्रभुशक्तिर्वनान्विताः ।  
श्रुतेन तपसा चैव ऋपोस्तेऽभिभवन्ति हि । ६८ ॥  
वलेनाभिभवन्त्येते तेन दानवमानवान् ।  
लक्षणंश्चैव जायन्ते शरीरस्यरमानुषे ॥ ६९ ॥  
कैशास्थिता ललाटेन जिह्वा च परिमार्जन्ती ।  
इयामप्रमाद्वतुर्दंष्ट्राः श्रवसाश्चोर्ध्वरेतसः ॥ ७० ॥

जो व्यतीत हो गये हैं और जाने वाले हैं उन सभी मन्वन्तरों में  
एक पृथ्वी मण्डल में चक्रवर्ती नृप भगवान् विष्णु के अंश से ही समुत्पन्न  
हुआ करते हैं ॥ ६४ ॥ भूत, भव्य और वर्तमान जो भी यहाँ पर पैदा हुए  
हैं उनमें चक्रवर्ती समुत्पन्न हुआ करते हैं । उन मही के पालक नृपों के  
बहुत ही भद्र नाम होते हैं और उनमें धन—धर्म—सुख और धन ये चार  
वस्तुएँ अत्यन्त ही अद्भुत हुआ करते हैं ॥ ६५, ६६ ॥ अन्योन्य के परस्पर  
में विरोध न होने से नृपति के अर्थ—धर्म—काम—यश और विजय समान  
ही होने से अणिमा आदि के ऐश्वर्य से प्रभु शक्ति के चल से समन्वित  
वे नृपतिगण श्रुत एवं तप के द्वारा ऋषियों को भी अभिमूढ करने वाले

हुआ करते थे ॥६७, ६८॥ अमानवीय शरीरो मे स्थित लक्षणो के द्वारा  
वे उत्पन्न हुआ करते थे और ये उस बल के द्वारा दानव-मानवो को  
तिरस्वृत किया करते थे ॥६९॥ सनाट पर उनके केश स्थित होते थे  
तथा जिह्वा परिभाजन करने वाली थी—श्याम उनकी प्रभा थी—चार  
द्रष्टाओ वाले—अवस और ऊर्ध्वरेता होते थे ॥७०॥

आजानवाहवश्चैव तालहस्तौ वृषाकृती ।  
परिणाहप्रमाणभ्या सिंहस्कन्धाश्च मेघिनः ॥७१॥  
पादयोश्चक्रमत्स्यौ तु शङ्खपर्श च हस्तयो ।  
पञ्चाशीति सपस्त्राणि जीवन्तिह्यजराभयाः ॥७२॥  
असङ्गा गतयस्तेषा चतस्रश्चक्रवर्तिनाम् ।  
अन्तरिक्षे समुद्रेषु पाताले पर्वतेषु च ॥७३॥  
इत्यादामन्तप, सत्यन्धोताधर्मास्तु वै स्मृता ।  
तदा प्रवर्तते धर्मो वर्णाश्रमविभागशः ॥७४॥  
मर्षादास्यापनार्थञ्च दण्डनीतिः प्रवर्तते ।  
'हृष्टपुष्टा जनाः सर्वे आरोगा पूर्णमानसा ॥७५॥  
एकां वेदश्चतुष्पादरहोतायान्तु विधि स्मृतः ।  
श्रीणि यपंसहस्राणि जीवन्तेतत्रताःप्रजा ॥७६॥  
पुत्रपौत्रसमाकीर्णा भ्रियन्ते च क्रमेण ताः ।  
एते क्षेमायुगे भावस्त्रोतासरया निबोधत ॥७७॥  
श्रोतायुगस्वभावेन सन्ध्यापादेन वर्तते ।

सन्ध्यापादः स्वभावाच्च योऽयं पादेनतिष्ठति ॥७८॥

उनकी बाहुएँ जानु पर्यन्त सम्यो होनी थी—ताल वृक्ष के सदृश  
रूप होते थे तथा वृष के तुल्य आकृति हुमा करती थी । परिणाह और  
प्रमाण मे सिंह के समान स्वर्णो वाले मेघा युक्त थे । उनके चरणो मे  
चक्र तथा गरज के विद्वद् हुमा करत थे एवं हाथो मे चक्र और पद्म होते  
थे । वे समय अरत और रोग म रहित होकर विषही हजार वर्ष पर्यन्त

## द्वापर और कलियुग वर्णन

जीवित रहा करने थे । उन चमत्तियों की चार सङ्ग रहित गतियाँ हुआ करती थीं—समुद्रों में, अन्नरिक्त में, पानाल में और पर्वतों में सर्वत्र पतिनी रक्षा करने थीं ॥७१, ७२, ७३॥ इज्जा-दान-नप और सत्य में त्रेतायुग के धर्म बनाये गये हैं । उस समय से वर्षों और आश्विनियों का विभाग वाला धर्म प्रवृत्त रहा करता था ॥७४॥ साप्ताहिक सम्यक् कार्यों की मर्यादा की स्थापना करने लिये दण्ड नीति की प्रवृत्ति हुआ करती थी । वह समय ऐसा होता था कि उसमें प्रायः सभी मनुष्य हृष्ट पृष्ट और पूर्ण मानस वाले रोगों से रहित रहा करते थे । एक वेद और चार पाद थे—यही विधि त्रेता में कही गयी है । उस समय में वे सब प्रजाजन लोग एकार वर्ष तक जीवित रहा करते थे ॥७५, ७६॥ सभी लोग पुत्रों एवं पौत्रों में समाकीर्ण होने वाला रहकर क्रम से ही मृत्यु को प्राप्त हुआ हुआ करते हैं । तात्पर्य यह है कि बड़ों क रहने हुए छोटी की मृत्यु नहीं हुआ करती थी । यह ही त्रेतायुग का भाव था जब त्रेता की सन्ध्या को भी समझ लो ॥७७॥ त्रेतायुग के स्वभाव से सन्ध्या का पाद से रहनी थी और स्वभाव से सन्ध्या का पाद जो है वह जो भय है पाद से हो स्थित रहा करता था ॥७८॥

## ५७—द्वापर और कलियुग वर्णन

अथ कर्ष्यं प्रवक्ष्यामि द्वापरस्य विविधं पुनः ।  
तत्त त्रेतायुगे क्षीणे द्वापरे प्रतिपद्यते ॥१॥  
द्वापरस्य प्रजानन्तु निबद्धिस्तेनायमे तु या ।  
परिवृत्ते युगे तस्मिस्तत्त. सावेप्रणश्यात ॥२॥  
तत. प्रवृत्तिने तासा प्रजाना द्वापरे पुन ।  
लोमोर्वातवणिग्युद्धं तत्त्वानामविनिश्चय. ॥३॥  
प्रज्वलद् वै वर्णाना कम्मणान्तु विपर्याय ।

यात्रा-बधःपरोदण्डोमानोदर्पोऽक्षमाबलम् ॥४॥

तथा रजस्तोमोभूयः प्रवृत्ते द्वापरे पुनः ।

आद्येकृतेनाघर्मोऽस्ति स द्वेताया प्रवर्तितः ॥५॥

द्वापरे व्याकुलो भूत्वा प्रणश्यति कलो पुनः ।

वर्णानां द्वपरेधर्माः सङ्कीर्यन्ते तथाश्रमाः ॥६॥

द्वैधमुत्पद्यते चैव युगे तस्मिन्श्रुतिस्मृतौ ।

द्विधाश्रुति स्मृतिश्चैव निश्चयो नाधिगम्यते । ७

महा महर्षि सूतजी ने कहा—इसके आगे अब मैं द्वापर की विधि का वर्णन करूँगा । उस त्रेता युग के क्षीण होने पर द्वापर युग प्रतिपन्न हुआ करता है । प्रजाजनो को जो त्रेतायुग में सिद्धि थी वह द्वापर के आदि काल तक रही थी किन्तु पयो ही उस युग का परिवर्तन हुआ वैसे ही वह त्रेता युग की सिद्धि नष्ट हो गई थी । उन्ही प्रजाओं की द्वापर में युग के प्रवृत्त होने पर सोम—धृति—वाणीयुद्ध और तत्त्वों के विषय में विशेष निश्चय का अभाव हो गया था ॥ १, २, ३ ॥ वर्ण जो ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्य और शूद्र ये चारों का एक सुन्दर क्रम चला आ रहा था उसका प्रध्वंस हो गया था और जो लोगों के वर्णों के अनुसार मर्यादित कर्म होते थे उन सबमें विपरीत भाव उत्पन्न हो गया था । यात्राबध—परदण्ड—मान—दर्प—अक्षमा—अबल ये सब उस समय में रनप गये थे और द्वापर युग के प्रवृत्त होने पर रजोगुण तथा तमोगुण की विशेषता

अनिश्चयावगमनाद्धर्मतत्त्वं न विद्यते ।  
 धर्मतत्त्वे ह्यविज्ञाते मतिभेदस्तु जायते ॥८॥  
 परस्पर विभिन्नास्ते दृष्टीनां विभ्रमेण तु ।  
 अतो दृष्टिविभिन्नैस्तैः कृतमत्याकुलन्त्वित्दम् ॥९॥  
 एको वेदश्चतुष्पादः संहृत्य तु पुनः पुनः ।  
 संशेषादायुपश्चैव व्यस्यते द्वापरेष्विह ॥१०॥  
 वेदश्चैकश्चतुर्धा तु व्यस्यते द्वापरादिषु ।  
 ऋषिपुत्रैः पुनर्वेदा भिद्यन्ते दृष्टिविभ्रमैः ॥११॥  
 ते तु ब्राह्मणविन्यासैः स्वरक्रमविपर्ययैः ।  
 संहृता ऋग्यजु साम्ना संहितास्तर्महर्षिभिः ॥१२॥  
 सामान्याद्वंकृताञ्छीय दृष्टिभिः नैः क्वचित् क्वचित् ।  
 ब्राह्मणं कल्पसूत्राणि भाष्यविद्यास्तथैव च ॥१३॥  
 अन्ये तु प्रस्थितास्तान्यं केचित्तान् प्रत्यवस्थिताः ।  
 द्वापरेषु प्रवर्तन्ते भिन्नार्थैस्तैः स्वदर्शनैः ॥१४॥

जब किसी भी निश्चय का अवगमन नहीं होता है धर्म का तत्त्व विद्यमान नहीं रहा करता है । धर्म के तत्त्व के विज्ञात न होने पर मति में भेद स्वाभाविक रूप से उत्पन्न हो जाता है ॥ ८ ॥ इस तरह दृष्टिकोणों के विभ्रम होने से वे सब परस्पर में विभ्रम हो जाते हैं । अतएव विभिन्न दृष्टि वाले उनके द्वारा यह सब संसार मति से आकुल हो जाया करता है ॥ ९ ॥ वेद वस्तुतः एक ही है किन्तु उसके चार पाद पुनः-पुनः संहृत करके किये गये थे । द्वापर युग में आयु के संक्षेप से यह ऐसी व्यवस्था की गयी थी । एक ही वेद के चार भेद द्वापरादि में व्यवस्थित किये गये थे । दृष्टि के विभ्रम वाले ऋषियों को पुत्रों के द्वारा फिर वेदों के भेद किये गये थे ॥ १०, ११ ॥ ब्राह्मण विन्यास और स्वर क्रम के विपर्ययो से वे वेद संहृत किये गये हैं और उन महर्षियों के ऋक् यजु और सामवेदों को संहिताएँ की गयी थी ॥ १२ ॥ सामान्य

उपद्रव समुत्पन्न हो जाने हैं ॥ १५, १६, १७, १८ ॥ इसके पश्चात्  
बाधो-मन और कर्मों के द्वारा जो दुःख होते हैं उनमें निर्वेद उत्पन्न  
होता है। जब निर्वेद होता है तो उनको दुःख से मोक्ष प्राप्त करने की  
विचारणा होती है। उस दुःख से छुटकाग पाने की विचारणा में वैराग्य  
भी होता है उस वैराग्य से दोनों का वर्णन हुआ करता है। जब दोषों  
पर दृष्टि जाने से वे दोष स्मरणवा दिखलाई दिया करते हैं तो उस दोष  
वर्णन से ज्ञान की समुत्पत्ति होती है। यह ज्ञान की उत्पत्ति उन्हीं मेधावी  
पुरुषों की होती है जो पहिले मध्य स्वायम्भुव अन्तर में थे। द्वार युग  
में सत्तार में सास्त्रों का विरोध करने वाले लोग उत्पन्न हो जाया करते  
हैं ॥ १९, २०, २१ ॥

आयुर्वेदविकल्पाश्च अङ्गानाज्योतिषम्यच ।  
अर्थशास्त्रयिकल्पाश्च हेतुशास्त्रविकल्पनम् ॥२२॥  
प्रक्रियाकल्पसूत्राणामाप्यविद्याविकल्पनम् ।  
स्मृतिशास्त्रप्रभेदाश्चप्रस्थानानिपृथक्पृथक् ॥२३॥  
द्वापरेष्वभिवर्तन्ते मतिभेदास्तथा नृणाम् ।  
मनसा कर्मणा वाचा कृष्ट्याद्वार्ता प्रसिध्यति ॥२४॥  
द्वापरे सर्वभूतानां कालं बलेद्यपरः स्मृतः ।  
लोभो घृतिवणिग्युद्धन्तत्त्वानाभविनिश्चयः ॥२५॥  
वेदशास्त्रप्रणयनं वर्णानां सङ्करस्तथा ।  
वर्णाश्रमपरिध्वंसः कामद्वेषौ तथैव च ॥२६॥  
पूर्णं वर्षमहसो द्वे परमायुस्तदा नृणाम् ।  
नि शेषे द्वापरे तस्मिन्स्तस्य सन्ध्या तु पादतः ॥२७॥  
गुणहीनास्तु तिष्ठन्ति धम्मस्य द्वारपरस्य तु ।  
तथैव सन्ध्या पादेनमरुस्तन्याप्रतिष्ठितः ॥२८॥

द्वार में आयुर्वेद विकल्पा-ज्योतिष क अङ्गशास्त्र-अर्थ शास्त्र  
विकल्प-हेतुशास्त्र विकल्प-कल्प सूत्रों की प्रक्रियामाध्य विद्या विकल्पन-

स्मृति शास्त्र के प्रभेद इस प्रकार से पृथक्-पृथक् प्रस्थान उस युग में अभिवर्तित होते हैं और मनुष्यों में मति के भेद हो जाते हैं अर्थात् सभी मनुष्यों की मति विभिन्न हो जाती है और किसी की मति किसी से मेल नहीं खाती है। मन-कर्म और वचन से बहुत ही कष्ट से वार्ता प्रसिद्ध होती है ॥ २२, २३, २४ ॥ द्वापर-युग का समय ऐसा ही था जो समस्त भूतों के लिये परम क्लेश से परिपूर्ण था। प्राणियों में लोभ की मात्रा अधिक हो गई थी—धृति—वणिग्युद्ध और तत्त्वों का विशेष निश्चय नहीं था। देवों और शास्त्रों का प्रणयन—वर्णों का सङ्कर दोष—वर्णों और आश्रमों का सर्वतोभावे से नाश—काम वासना और द्वेष सबमें छाया हुआ था ॥ २५, २६ ॥ उस समय में मनुष्यों की परमायु पूरे दो सहस्र वर्ष की थी। द्वाहर युग के विशेष हो जाने पर उसके एक पाद की उसकी सन्ध्या का काल था। द्वापर युग के धर्म की ऐसी दशा थी कि सब गुणहीन रहा करते थे। उसी प्रकार से उस सन्ध्या में उसका एक पाद से अक्ष प्रतिष्ठित रहता था ॥ २७, २८ ॥

द्वापरस्य तु पर्येषा पुष्यस्य च निबोधत ।  
 द्वापरस्याशशेषे तु प्रतिपत्तिः कलेरथ ॥२९॥  
 हिसास्तेयानृतं माया दम्भश्चैव तपस्विनाम् ।  
 एते स्वभावाः पुष्यस्य साधयन्ति च ताः प्रजाः ॥३०॥  
 एष धर्मस्मृतः कृत्स्नो धर्मश्च परिहीयते ।  
 मनसा कर्मणा वाचा वार्त्ताः सिद्ध्यन्ति वानवा ॥३१॥  
 कलिः प्रमारको रोगः सततं चापि क्षुद्भयम् ।  
 अनावृष्टिभयञ्चैव देशानाञ्च विषयः ॥३२॥  
 न प्रमाणे स्थितिं ह्यस्ति पुष्ये धोरेषु गोकसी ।  
 गर्भस्थोऽग्नियतेर्काश्चिद् यौवनस्थस्तथापरः ॥३३॥  
 रथावयं मध्यकोमारेऽग्नियन्ते च कलौ प्रजाः ।  
 अरण्ये जीवन्ताः पापा महाबोधा ह्यधार्मिकाः ॥३४॥

अनतघ्नतलूब्धश्च पुण्ये चैव प्रजा म्रियता ।

दुरिष्टंरघोतंसच दुराचान्दुरागमं ॥३४॥

द्वारपर युग की यही परीक्षा है । अब पुण्य के विषय में भी जान लेना चाहिए । द्वारपर के अश्व देश में ही कलियुग की प्रतिपत्ति हो जाती है ॥ २६ ॥ जो तपस्विजन होते थे उनमें भी हिंसा—मस्तेप—अनृत ( मिथ्या ) और महान् दम्भ भाव होता था । पुण्य के ये ही स्वभाव होते थे और वे प्रजाओं का साधन किया करते थे ॥ ३० ॥ यही उस समय का धर्म कहा गया है वैसे वास्तविक जो धर्म था वह पूर्ण रूप से हीन हो गया था मन—वचन और कर्म से बाँतिए सिद्ध हीं अथवा न हीं । यह कलियुग एक ऐसा प्रमारक रोग जैसा है । निरन्तर ही लोगों को लुब्धा और भय रहा करता है । सर्वेश दृष्टि क न होने का भय बना ही रहता है और देशों का विपर्यय होता है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ पुण्य और कलियुग में प्रमाण में कोई भी स्थिति नहीं होती है । कोई कोई तो गर्म में स्थित होते हुए ही मर जाता करता है और कोई अपनी पुत्रावस्था में पहुँच कर मृत्यु की प्राप्त हो जाता करता है ॥ ३३ ॥ इस कलियुग में प्रजाजन प्राय स्थविरता में तथा मध्य कोमारवस्था में मर जाता करते हैं । सभी लोग अत्यल्प तेज और बल विक्रम वाले—महान् पापी—अत्यधिक त्रीघ्न से युक्त और अधार्मिक होते हैं ॥ ३४ ॥ पुण्य में सभी प्रजा जन बुरी इच्छा वाले—दुरागत—दुराचार और दुरागमों से युक्त एवम् मिथ्या व्रत वाले और लुब्धक हुआ करते हैं ॥ ३५ ॥

विप्राणा कम्मदोपैस्तं प्रजाना जायते भयम् ।

हिंसा मानस्तयेप्याचि क्रोधोऽसूयाऽक्षमाऽघातः ॥३६॥

पुण्ये भवन्ति जन्तूनालोभो मोहश्च सवशः ।

सङ्क्षोभो जायतेऽयं कलिमासा सर्वयुगम् ॥३७॥

। धीदन्त तथा वेदान्यजन्त वै द्विजातयः ।



उत्सोदन्तियथाचैवैरयैः। मादं न्तुत्तुत्रियाः ॥३८॥  
 शूद्राणां भग्नयोनिस्तु सम्बन्धो ब्राह्मणः सह ।  
 भवतीहक्लौ तस्मिन्शयनासनभाजनैः ॥३९॥  
 राजानः शूद्रमयिष्ठा पापण्डानांप्रवृत्तयः ।  
 कापायिणश्च निष्कच्छास्तथाकापालिनश्चह ॥ ४०॥  
 ये चान्ये देवव्रतिनस्तथा ये धर्मद्रूपकाः ।  
 दिग्वृत्ताश्च ये केचिद्वृत्तयश्च श्रुतिलिङ्गिनः ॥४१॥  
 एवस्विघाश्च ये केचिद्भुवन्नीह कलौ युगे ।  
 अधीयते तदा वेदान् शूद्राधर्मायकोविदाः ॥४२॥

विप्र अपने कर्मों से दूषित हो गये थे और उनके ही कर्मों के दोषों के कारण प्रजाओं का भय उत्पन्न हो जाया करता है । पुण्य में जन्तुओं में हिंस-मान-ईर्ष्या-क्रोध-असूया-अक्षमा-अघृति-लोभ और सब ओर में मोह, ये अवगुण हो जाया करते हैं । इस कलियुग की प्राप्त करके अत्यन्त सखीम जीवों में समुत्पन्न हो जाया करता है ॥ ३९, ४०॥  
 द्विजानि गण वेदों का अध्ययन नहीं किया करते हैं और न वे यजन हो करते हैं तथा क्षत्रिय लोग वैश्यों के साथ ही सब उत्पन्न हो जाते हैं । ॥ ३८ ॥ शूद्रों का ब्राह्मणों के साथ मन्त्र और योनि का सम्बन्ध होजाता है । इस धीर कलियुग में शूद्रों का ब्राह्मणों के साथ शयन-आसन और भोजन के द्वारा भी सम्बन्ध हो जाया करता है ॥ ३९ ॥ राजा लोगों में प्रायः शूद्रों की अधिकता होती है तथा पाण्डित्यों की प्रवृत्तियाँ बड़ी-चढ़ी होती हैं । सभी ओर काषाय वस्त्रों के धारण करने वाले-सिद्धरुच्छ और कानालिव दिखलाई दिया करते हैं । और जो अन्य कोई देवव्रती हैं तथा जो धर्म द्रूपक हैं एवम् जो कोई दिग्वृत्त वाले हैं वे भी सब वृत्ति के ही लिए श्रुति लिङ्गों के धारण करने वाले होते हैं अर्थात् सबका लक्ष्य केवल धार्मिक आडम्बर दिखाकर रोओ के कमाने का ही हुआ करता है । इस कलियुग में जो कोई भी होते हैं वे इसी प्रकार के हुआ

करते हैं। कलि में शूद्र लोग वेदों का ग्रन्थवन किया करते हैं और वे ही प्रमं तथा धर्म के विद्वान् होते हैं ॥ ४०, ४१, ४२ ॥

यजन्ति ह्यश्वमेधस्तु राजान द्यूद्योनय ।  
स्त्रीबालगोवध कृत्वा हत्वा चैव परस्परम् ॥४३॥  
उपहृत्य तयान्यान्य साधयन्ति तदा प्रजा ।  
दुःखप्रचुरतात्पायुर्दंशोत्साद सोगता ॥४४॥  
अधर्माभिनिवृत्तत्वं कलौवृत्तं कलौस्मृतम् ।  
अपूणहत्या प्रजानाञ्च तथा ह्येव प्रवर्तते ॥४५॥  
तस्मादायुर्वल रूप प्रहीयन्त कलौयुगे ।  
दुःखेनामिप्लुताना च परमायुः शतं नृणाम् ॥४६॥  
भूत्वा च न भवन्तीह येदाः कलियुगेऽखिला ।  
उत्सीदन्ते तथा यज्ञाः केवल धर्महेनवः ॥४७॥  
एषाकलियुगावस्यासन्ध्याशीनु निबोधत ।  
युगेयुगे तु हीनन्तेऽस्त्रीन् पादाश्चमिद्वय ॥४८॥  
युगस्वभावा सन्ध्यासु अवतिष्ठन्ति पादतः ।  
सन्ध्यास्वभावा स्वाक्षेपुपादेनैवावतस्थिरे ॥४९॥

शूद्र योनि से समुत्पन्न राजा लोग इस कलियुग में अश्वमेध यज्ञों के द्वारा यजन किया करते हैं। ये लोग स्त्री-बाल और गौ का वध करके तथा परस्पर में हनन करते हुए अयोग्य का अपहरण करके उस समय में प्रजा का साग्न किया करते हैं। दुःखों की बहुतायत—प्रायु का रक्षक होना—देह का उत्सादन—रोगों के सहित रहना और अधर्माभिनिवृत्तम् यह इस कलिका वृत्त है जो कि कलियुग में कहा गया है। प्रजाजनों की अपूण हत्या (मर्मस्थ बालक को अपूण कहते हैं) इसी प्रकार से सबकी प्रवृत्तियाँ कलि में होती हैं। इसी कारण ॥ इस कलियुग में आयु-बल और रूप लाक्षण की हीनता हुआ करती है। दुःखों की इतनी अधिकता जीवों को रहा करती है कि इस कलि में दुःखों से अभिप्लुत मनुष्यों की

परमायु अर्थात् अधिक से अधिक उम्र सी वर्ष की ही हुआ करती है ।  
 ॥४३. ४४, ४५, ४६॥ इस कलियुग में समस्त वेद होकर भी नहीं हुआ  
 करते हैं अर्थात् होते हुए भी वे सब निष्फल ही होते हैं । केवल धर्म के  
 हेतु यज्ञ उत्सीहमान हुआ करते हैं । यह ऐसी इस कलियुग की अवस्था  
 होती है । अब उस युग की सन्ध्या और सन्ध्याशो को भी समझ लो ।  
 युग-युग में सिद्धियाँ तीन-तीन पाद हीन हुआ करती हैं । युग के  
 स्वभाव सन्ध्याओं में भी पाद से अवस्थित रहा करते हैं । अपने  
 भागों में सन्ध्या के स्वभाव एक पाद से अवस्थित रहा करते थे ॥ ४७,  
 ४८ । ४९॥

एवं सन्ध्याशकेकाले सम्प्राप्ते युगान्तिके ।  
 तेषामधर्मिणा शारत्ता भृगुणाञ्च कुले स्थितः ॥४७॥  
 गोत्रेण वै चन्द्रममे नाम्नाप्रमतिकृष्यते ।  
 कलिसन्ध्याशभागेषु मनोःस्वायम्भुवेऽन्तरे ॥४८॥  
 समास्त्रिशत्सम्पूर्णाः पयंटन्वेव सुन्धराम् ।  
 अस्त्रकर्मा स वै सेनाहस्त्यश्वरपसङ्कुलाम् ॥४९॥  
 प्रवृत्तीतायुर्धविप्रैः शतशोऽप्य सहस्रशः ।  
 स सदातं परिवृतो म्लेच्छान् सर्वाग्निजघ्निवान् ॥५०॥  
 स हत्वा सर्वशश्चैव राजानः शूद्रयोनयः ॥५१॥  
 पापण्डान् च तदा सर्वाग्निशेषानकरोत् प्रभुः ॥५२॥  
 अधार्मिकाश्च ये केचित्तान्सर्वान् हन्ति सर्वशः ।  
 औदीच्यान्मह्यदेशाश्च पार्वतीयास्तथैव च ॥५३॥

इस प्रकार से युग के अन्त करने वाले सन्ध्याश काल के सम्प्राप्त  
 होने पर उन अधर्मियों का शासन करने वाला भृगुओं के कुल में स्थित  
 चन्द्रमस गोत्र में युक्त नाम से प्रमत्ति कहा जाता है । कलिके सन्ध्याश  
 भागों में मनु के स्वायम्भुव अन्तर में जब तीस वर्ष पूर्ण हो जाते हैं तो  
 अस्त्र बर्म वाला इस वसुन्धरा पर पर्यटन करते हुए एक विशाल सेना

# द्रापर और कलियुग वर्णन

लेकर निकलता है जिस सेना में हाथी-घोड़े और और रथ सभी होते हैं और इनसे वह संकुल हुआ करती है। सभी प्रकार के वायुधो को ग्रहण करने वाला वह हजारो और सैकड़ो विप्रो के सहित रहता है। उसके साथ उस समय मे वह परिवृत रहकर समस्त म्लेच्छो का निहृनन कर दिया करता है ॥२०, ५१, ५२, ५३॥ वह सभी ओर मे जो राजा शूद्र योनि वाले होते हैं उनका हनन कर देता है। उस समय मे वह प्रभु सभी पाण्डिओ को निशेष कर देता था ॥५४, ५५॥ जो भी कोई अशान्मिक होते थे उन सबको सभी ओर से मार गिराता है। जो ओदीक्ष्य हैं अर्थात् उत्तर दिशा मे रहने वाले हैं—मध्य देश के निवासी हैं तथा पर्वतीय भागों के रहने वाले हैं इन सबका अन्त कर देने वाला वह था ॥ ५६ ॥

प्राच्यान् प्रतीच्याश्च तथा विन्ध्यपृष्ठापरान्तिकान् ।  
तथैव दाक्षिणात्यारश्च द्रविडान् सिंहलः सह ॥५७॥  
गन्धारान् पारदाश्चैव पहलवान् यवनान् शकान् ।  
तुपारान् बर्बसान् श्वेतान् पुलिन्दान् बबरान् श्वसान् ॥५८॥  
लम्पकान्गन्धकाश्चापि चोरजातीस्तथैव च ।  
प्रवृत्तचक्रो बलवान्शूद्राणामन्तकृद् बभौ ॥५९॥  
विद्राव्य सर्वभूतानि चचार वसुधामिमाम् ।  
मानवस्य तु वंशे तु नृदेवस्येहजज्ञिवान् ॥६०॥  
पूर्वजन्मनि विष्णुश्च प्रमतिर्नाम वीर्यवान् ।  
स्वतः स वै चन्द्रमसः पूर्वं कनियुगे प्रभुः ॥६१॥  
द्वात्रिंशेऽभ्युदितेवर्षे प्रकान्तो विशात्सिमाः ।  
निजघ्नेसर्वभूतानिमानुषाण्येवसवंशः ॥६२॥  
कृत्ववीजापशिष्टान्तापृथ्वीकूरेणकर्मणा ।  
परस्परनिमित्तेन कालेनाकस्मिकेन च ॥६३॥

प्राच्य-प्रतीच्य तथा विन्ध्य के पृष्ठ वासी—अपरान्तिक—दाक्षि-

णात्य ( दक्षिण दिशा वाले )—द्रविड—सिंहल—मा-धार—पारद—  
 पहलन—यवन—शक—तुषार—ववज—श्वेन—पुलिन्द—बर्बर—श्वस—सम्पक—  
 आन्ध्रक तथा घोर जाति वाले सबका शूद्रो का अन्त कर देने वाला वह  
 बलवान् प्रवृत्त चक्र होकर सुशोभित हुआ था ॥५७, ५८, ५९॥ सभी  
 भूतों को विद्रावित करके वह इस पृथ्वी पर सञ्चरण किया करता था ।  
 वह यहाँ पर नृदेव यागव के वश मे समुपपन्न हुआ था ॥६०॥ पूर्व जन्म  
 मे वह विष्णु वीर्यवान् प्रमिति नाम वाला था पूर्व मे वह प्रभु कःि मुग मे  
 चन्द्रमा के कुल मे था । बत्तीसवें वर्ष के अम्युदित होन पर यह प्रशान्त  
 हुआ था । जब बीस वर्ष हो गये तो इनके सभी ओर से मानुष सभी भूतों  
 का निहन्न कर दिया था । परस्पर मे निमित्त आकस्मिक बाल के द्वारा  
 तथा क्रूर वमं से पृथ्वी को धीजावलिष्टा त कर दिया था ॥ ६१ ॥  
 ॥६२, ६३॥

सस्थिता सह सायासे सेना प्रमतिना सह ।  
 गङ्गायमुनयोमध्येसिद्धिप्राप्ता समाधिना ॥६४॥  
 ततरत्तेषु प्रनष्टेषु सन्ध्याशे क्रूरवम्भसु ।  
 उत्साद्य पार्थिवान् सर्वान् तेष्वतीतेषु वै तदा ॥६५॥  
 ततः सन्ध्याशवे बाले सप्राप्ते च युगात्तरे ।  
 स्थिता स्वस्नावशिष्टासु प्रजास्थिह वरचित् वरचित् ।  
 स्वाप्रदानास्तथातेर्धं लोभाविष्टास्तुवृन्दशः ।  
 उपहिमन्ति चान्यो यत्रलुम्भन्तिपङ्कजम् ॥६६॥  
 अराजके युगाशे तु सदृशये ममुपस्थिते ।  
 प्रजास्ता वै तदा सर्वा परस्परभयादिताः ॥६७॥  
 व्याकुलास्मा पगवृन्तान्तरज्य दधमृदाणि तु ।  
 सशस्त्रान् प्राणानवेक्षन्तो निष्कारुण्यात् मुदुतिताः ।  
 नष्टे शोभन्मृगे धर्मं वामराधयशागुणः ।  
 निगर्षादा निगान्द निगन्हे ॥६८॥

प्रमति के साथ वह सेना सायास में संस्थित हो गई थी । गङ्गा और यमुना के मध्य में समाधि के द्वारा सिद्धि को प्राप्त हुए थे । इसके पश्चात् सन्ध्याश में उन क्रूर कर्मों वालों के प्रनष्ट हान पर उस समय में उनके अतीत होने पर सभी पापियों का उत्सादन कर दिया था । इसके प्रनन्तर युग का अन्त करने वाले सन्ध्याशक काल के सम्प्राप्त होने पर यही ससार में वही—कहीं पर प्रजाजनो के अत्यन्त अल्प रह जान पर वे स्थित थे । समूहों के रूप में धन न देने वाले और लोभ से आदिष्ट चित्त वाले वे सब परस्पर में प्रसुम्पन करते थे और एक दूसरे का उप-हिंसन किया करते हैं ॥ ६४, ६५, ६६, ६७ ॥ वह युगाश अराजक जैसा था और उसमें सक्षय के समुपस्थित होने पर वह ऐसा समय था जिसमें सम्पूर्ण प्रजाजन परस्पर में भय से अदित हो रहे थे । वे सब प्रजाएँ देव गृहा का परिमाण करके परावृत्त हो गये थे । अपने २ प्राणी को देखते हुए निष्कारण्य भाव से वे सब अच्छी तरह वृद्धित हो गये थे । ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ श्रीन तथा स्मार्त धर्म के नष्ट हो जान पर सब लोग काम और क्रोध के वश में होकर उनके ही अनुयायी बन गये थे । सब मर्यादा से रहित—आनन्द से शून्य—सह हीन और नितरज बन गये थे ॥ ७० ॥

नष्टे धर्मे प्रतिहता ह्रस्वका पञ्चविंशका ।  
 हित्वा दाराश्च पुनाश्च विपादध्याकुलप्रजा ॥७१  
 अनावृष्टिहतास्तेवै वार्तामुत्सृज्यदु खिता ।  
 चीरकृष्णाजिनधरा निष्क्रुद्धानिष्पग्निगृहा ॥७२  
 वर्णाश्रमपरिभ्रष्टा सङ्क्रुद्धघोरमास्थिता ।  
 एव वष्टमनुप्राप्ता ह्यल्पक्षपाः प्रजास्ततः ॥७३  
 ज तवश्च क्षुधाविष्टा दुःसान्निर्वेदमायमन् ।  
 सध्वयन्ति च देवास्ताश्च श्रवत् परिवर्तनाः ॥७४  
 ततः प्रजास्त ता सर्वा मासाहाग भवन्ति हि ।

अथ दोर्घेण कालेन पक्षिणः पशवस्तथा ।  
 मत्स्याश्चैव हताः सर्वेः क्षुधाविष्टैश्च सर्वशः ॥८०  
 नि शोषेष्वथ सर्वेषु मत्स्यरक्षिपशुष्वथ ।  
 सन्ध्याशे प्रतिपन्नेषु नि शोपास्तु नदा कृता ॥८१  
 सतः प्रजास्तु सम्भूय कन्दमूलमयोऽस्तनन् ।  
 फलमूलशनाः सर्वे अनिकेतास्तथैव च ॥८२  
 बल्कलान्यथ वासांसि अथ सग्याश्च सर्वशः ।  
 परिग्रहो न तेभ्यस्ति घनशुद्धिमवाप्नुयुः ॥८३  
 एवमथमभिप्यन्ति ह्यल्पशिष्टा प्रजास्तदा ।  
 तासामल्पावशिष्टानामाहाराद् वृद्धिरिष्यते ॥८४

मृगान् वराहान् वृषभान्ये चान्ये वनचारिणः ॥७५॥  
 भक्ष्यादचैवाप्यभक्ष्याश्च सर्वास्तान् भक्षयन्ति ताः ।  
 समुद्र सन्निता यास्तु नदीश्चैव प्रजास्तु ताः ॥७६॥  
 तेऽपि मत्स्यान् हरन्तीह आहारार्थं च सर्वशः ।  
 अभक्ष्याहारदोषेण एकवर्णगता प्रजाः ॥७७॥

घर्म के नष्ट होने पर ॥७५॥ प्रतिहत-ह्रस्वक घोर पञ्चविंशक हो गये थे । अपनी दाराओं और पुत्रों का त्याग करके सब प्रजा विषाद से व्याकुल थी । अनावृष्टि के कारण हत हुए वे सब वार्ता का त्याग करके अत्यन्त दुःखित थे । चीर तथा कृष्ण जिन ( कासा भृगु वर्म ) को धारण करने वाले—निष्कृद्ध और सब बिना परिग्रह वाले थे । वर्षा और आश्रम से परिघ्रष्ट हुए घोर सङ्कटावस्था में समस्थित थे । इस प्रकार से कष्ट को प्राप्त हुई सब प्रजाएं अल्प शेष रह गई थी ॥ ७१, ७२ ७३ ॥ जन्तुगण सब भूख से आविष्ट हुए अत्यन्त दुःख से निर्बेद को प्राप्त हो गये थे । चक्र की भाँति परिवर्तन करने वाले उन देशों का सधय किया करते थे । इसके उपरान्त वे समस्त प्रजाएं मांस का आहार करने वाली हो गई थी । कुछ लोग मृगों को खाते थे तो कुछ वाराह—वृषभ और अन्य वनचारियों का भक्षण किया करते थे ॥ ७४ ॥ ७५ ॥ वे सब प्रजाएँ उस समय में ऐसी हो गई थी कि चाहे भक्ष्य हो या अभक्ष्य हो सभी का भक्षण किया करते थे । कुछ प्रजाजन समुद्रों में तथा कुछ नदियों का सधय किया करते थे वे भी अपने आहार के लिये सर्वत्र मत्स्यों का हरण किया करते थे । अभक्ष्य आहार के करने के दोष से सब प्रजा एक वर्ण-गत होगई थी ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

यथा कृतयुगे पूर्वमेकवर्णमभूत्किल ।

तथा कलियुगस्यान्ते शूद्रोभूता प्रजास्तथा ॥७८॥

एव वपशत पूर्णं दिव्य तेषां न्यवर्तत ।

पट्त्रिंशच्च सहस्राणि मानुषाणि तु तानि वै ॥७९॥



अथ दीर्घेण कासेन पक्षिणः पञ्चवस्तथा ।  
 मत्स्यारश्चैव हताः सर्वेः क्षुधाविष्टंश्च सर्वश ॥८०॥  
 नि शेपेष्वय सर्वेषु मत्स्यनाक्षिपशुष्यथ ।  
 सन्ध्यासो प्रतिपन्नेतु नि शेपास्तु नदा कृता ॥८१॥  
 ततः प्रजास्तु सम्भूय कन्दमूलमथोऽम्बनम् ।  
 फलमूलाक्षिनाः सर्वे अनिकेतास्तथैव च ॥८२॥  
 बल्कनान्यथ वातासि अधःशय्याश्च भवन्त ।  
 परिग्रहो न तेष्वस्ति घनशुद्धिमवाप्नुयुः ॥८३॥  
 एवंक्षयगमिष्यन्ति ह्यल्पक्षिप्ता प्रजास्तदा ।  
 तासामल्पावक्षिष्टानामाहाराद् वृद्धिरिष्यते ॥८४॥

जिस प्रकार से पूर्व में कृत युग में सभी प्रजाजन एक ही वर्ण वाले थे क्योंकि उस आदिकाल में वनों की कोई भी व्यवस्था ही नहीं बनी थी उसी भाँति इस कलियुग के इस अन्तिम काल में सभी लोग शूरीभूत हो गये थे क्योंकि वनों के रम्यं घमं सभी छोड़कर एक वर्ण पैसे बन गये थे । इस प्रकार से पूर्ण दिव्य एक सौ वर्ष बन के व्यतीत हो गये थे जो कि मनुष्य वर्ष छत्तीस हजार होने थे ॥ ७८, ७९ ॥ इसके अनन्तर बहुत अधिक दीर्घ काल तक भूख से व्याकुल लोगो क द्वारा सभी ओर में समस्त पशु-पक्षी और मत्स्य मार दिये गये थे और खा लिये गये थे ॥ ८० ॥ उस कालयुग के सन्ध्याकाल में जब कि यह प्रतिपन्न हो गया था सम्पूर्ण पक्षी-पशु और मत्स्यो के नि शेप हो जाने पर सभी समाप्त हो गये थे । जब कोई भी जीव प्रजा के लोभो को धाने के लिये रहे थे तो फिर उन्होंने भूमि से कन्द मूलो को खोदने का आरम्भ कर दिया था । सब लोभ फल-मूल और कन्दों को खाने वाले और बिना परो वाले हो गये थे । सबके वस्त्र वृक्षों की छाल के ही थे और सब नीचे भूमि पर शयन करने वाले थे । उन लोगो में कुछ भी परिग्रह शेष नहीं रह गया था और सब लोगो ने घन की शुद्धि को प्राप्त कर लिया

या । इस प्रकार से उस समय में जो भी बहुत थोड़ी-थोड़ी प्रजा अवशिष्ट रह गई थी वह क्षय की प्राप्त हो जायगी । उन अल्पत्व से होने लगे हुए के आहार से वृद्धि अभीष्ट हुआ करती है ॥ ८१ ॥ ८२ ॥ ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

एव वर्षासत दिव्य सन्ध्याशस्तस्य वर्संते ।  
 ततो वपसहस्रान्ते अल्पशिष्टा स्त्रियमुताः ॥८५॥  
 मिथुनानितुता सर्वा ह्यन्योन्यसप्रजश्चरे ।  
 ततस्तास्तु म्रियन्तेव पूर्वोत्पन्ना प्रजास्तुमा ॥८६॥  
 जातमानोऽप्यपत्येषु तत कृतमवर्त्तत ।  
 यथा स्वर्गे शरीराणि नरके ऽपि देहिनाम् ॥८७॥  
 उपभोगसमर्थानि एव कृतयुगादिषु ।  
 एव कृतस्य सन्तानं बलेश्चैव स्यस्तथा ॥८८॥  
 विचारणात्तु निर्वेदः साम्यादस्थात्मना तथा ।  
 ततश्चैवात्मसम्बोधं सम्बोधाद्धर्मशीलता ॥८९॥  
 कलिशिष्टेषु तेष्वेव जायन्ते पूर्ववत् प्रजा ।  
 भाविनोऽर्थस्य च बलात्ततः कृतमवर्त्तत ॥९०॥  
 अतीतानागतानि स्युर्यानि मन्वन्तरेऽपि ह ।  
 एतेयुगस्वभावास्तु मयोक्तास्तु समासत ॥९१॥

इस रीति से उस कलियुग का वह सन्ध्याशस्त दिव्य सौ वर्ष का होता है । जब यह सौ वर्ष समाप्त हो गये थे तब इनके अन्त में बहुत ही थोड़े स्त्रीजन और उनके सुत अवशिष्ट रह गये थे । उनके वे मिथुन सब अन्योन्य में समुत्पन्न हुए थे । इसके उपरान्त जो पूर्व में उत्पन्न प्रजाये थी वे मर जाया करती थी । फिर सन्तानों के जात मात्र होने पर कृत युग वत्तमान होने लगा था । जिस तरह देहधारियों के शरीर स्वर्ग में और नरकों में रहा करते हैं ॥ ८५, ८६, ८७ ॥ इस प्रकार से कृत युगादि में देहधारियों के शरीर उपभोग करने में समर्थ

थे । इसी रीति से कलियुग का सय और कृत युग की सन्तति हुई थी ॥ ८८ ॥ साम्बावस्थात्मा के द्वारा विचार करने से निर्वेद होता है और फिर उस निर्वेद से आत्मा का भली भाँति ज्ञान समुत्पन्न हुआ करता है । जब सम्बोध हो जाता है तो धर्मशीलता का प्रादुर्भाव स्वभाविक रूप से हो जाता करता है ॥ ८९ ॥ इस रीति से उस कलियुग में जो अवशिष्ट रह जाया करते हैं उनसे पूर्व की भाँति प्रजाएँ जन्मग्रहण किया करती हैं फिर भावी अर्थ के बल से कृत युग बरसा करता था । इस ससार में माधवसरो में जो भी कोई अनीत और अनागत हैं वे हुआ करते हैं । ये तय युगों के स्वभाव मैंने आपस्त सक्षेप के साथ सब बतला दिये हैं । ॥९०, ९१॥

विस्तरेणानुपूर्वमिच्छ नमस्कृत्य स्वयम्भुवे ।  
 प्रवृत्तस्तु तत्तन्तस्मिन् पुनः कृतयुगे तु वै ॥९२॥  
 उत्पन्नाः कलिशिष्टेषु प्रजाः कार्यायुगास्तथा ।  
 तिष्ठन्ति चेह ये सिद्धा अदृष्टा विहरन्ति च ॥९३॥  
 सह सप्तपिभिर्यं तु तत्र ये च व्यवस्थिताः ।  
 ब्रह्मक्षत्रविशः शूद्रा वीजार्थं य इह स्मृताः ॥९४॥  
 तेषां सप्तपयं धर्मं कथयन्तीह तेषु च ।  
 वर्णान्ममाचारयुत श्रोतस्मार्त्तविधानतः ॥९५॥  
 एव तेषु क्रियावत्सु प्रवर्तन्तीह वै कृते ॥९६॥  
 श्रोतस्मार्त्तम्विज्ञानान्तु धर्मं सप्तपिदशिते ।  
 ते तु धर्मव्यवस्थार्थं तिष्ठन्तीह कृते युगे ॥९७॥  
 मन्वन्तराघिनारेषु तिष्ठन्ति अपयस्तु ते ।  
 यथा क्षवप्रदग्धेषु तृणेष्वेव्रापनक्षितौ ॥९८॥

स्वयम्भू भगवान् को नमस्कार करके मैंने विस्तार से और आनु-पूर्वी से सभी कुछ बतला दिया है । फिर इससे बाद ये पुनः उम कृतयुग की प्रवृत्ति हो जाता करती है । उसके प्रवृत्त होने पर जो कलियुग में

थोड़े से बचे लुके रह जाते हैं उन्हीं में कृतयुग की प्रजाएँ समुत्पन्न हुआ करती हैं । जो वहाँ पर सिद्ध मणु स्थित रहा करते हैं वे अदृष्ट होते हुए विहार किया करते हैं । सप्तपिण्डों के साथ वहाँ पर जो व्यवस्थित रहते हैं वे वहाँ पर बीजायु में ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्य और शूद्र बतलाये गये हैं । उन लोगों को उनके सप्तपिण्ड ध्यौत—स्मार्त्त के विधान से वर्णों और आश्रमों के आचार से युक्त धर्म को बहा करते हैं । इसी प्रकार से कृतयुग में क्रियावान् उनमें वे सब प्रवृत्त हुआ करते हैं ॥६२, ६३, ६४, ६५॥ ॥६६॥ ध्यौत और स्मार्त्त धर्मों में स्थित रहने वालों को सप्तपिण्डों के द्वारा प्रवर्णित धर्म में वे वहाँ पर उस कृतयुग में धर्म की व्यवस्था के लिये ही अवस्थित रहा करने हैं । वे ऋषिगण मन्वन्तरो के अधिकारों में उनी तरह से स्थित रहा करते हैं जैसे आपन क्षिति में दावागिरी से प्रदग्ध हुए तृणों में बनो की स्थिति हुआ करती है ॥६७, ६८॥

वनाना प्रथमं दृष्ट्वा तेषा मूलेषु सम्भवः ।

एव युगाद्युगाना वै सन्तानस्तु परस्परम् ॥६९॥

प्रवृत्तं ते ह्यविच्छेदाद्यावन्मन्वन्तरक्षयः ।

सुखमायुर्वंश रूप धर्माधी काम एव च ॥१००॥

युगेष्वेतानि हीयन्ते श्रयः पादाः क्रमेण तु ।

इत्येषः प्रतिसन्धिर्वः कीर्तितस्तु मया द्विजाः ! ॥१०१॥

चतुर्युगाणा सर्वेषामेतदेव प्रसाधनम् ।

एषा चतुर्युगान्तु गणिता ह्येकसप्ततिः ॥१०२॥

क्रमेण परिवृत्तास्ता मनोरन्तरमुच्यते ।

युगाख्यासु तु सर्वासु भवतोह यदा च यत् ॥१०३॥

तदेव च तदन्यासु पुनस्तद्ध यथाक्रमम् ।

सर्गं सर्गं यथा भेदा ह्युत्पद्यन्ते तथैव च ॥१०४॥

चतुर्दशसु तावन्तो ज्ञेया मन्वन्तरेष्विह ।

आसुरी यातुधानी च पेशाची यक्षराक्षसी ॥१०५॥

एते युगस्वभावा व परिक्रान्ता यथाक्रमम् ।

मन्वन्तराणि यान्यस्मिन् कल्पे वक्ष्यामि तानि च ॥ १०८

प्रत्येक युग में उस समय में जो भी प्रजा होती है उनके विषय में अब थवण करो । कल्प के अनुसार युगों के साथ यह प्रजा भी तुल्य लक्षणों वाली होती है । यही युगों का यथाक्रम संक्षण बताया गया है ॥१०६॥ चिर काल में प्रवृत्त अतियुग के स्वभाव से मन्वन्तरों के परिवर्तन होते हैं । क्षय और उदय होने के कारण से परिवर्तमान यह जीवलोक क्षण भर सक्षिप्त नहीं रहता है । ये युगों के स्वाभाव यमानुसार हमने आप लोगों को परिक्रान्त कर दिये हैं । इस कल्प में जो भी मन्वन्तर होते हैं उनको भी हम बतलायेंगे ॥१०७, १०८॥

## ५८ — चतुर्गुण गति वर्णन

अश्वामर्षिः सहस्राणि वर्षाणाम् कृतं युगम् ।

तस्य तावच्छती सन्ध्या द्विगुणा रविनन्दन । ॥१॥

यत्र धर्मश्चतुष्पादस्त्वधम पादविग्रह ।

स्वधमनिरता सन्तो जायन्ते यत्र मानवा ॥२॥

विप्रा स्थिता धमपरा राजवृत्तौ स्थिता नृपा ।

कृष्यामभिरता वृषया शूद्रा क्षुभ्रधन स्थिता ॥३॥

तदा सत्यञ्च शौचञ्च धर्मश्चैव विवर्धते ।

सद्भिराचरितं कर्म क्रियते ख्यायते च वै ॥४॥

एतत् कालं युगं वृत्तं सर्वेषामपि पार्थिव ।

प्राणिनामसंज्ञानामपि वै नीचजन्मतम् ॥५॥

त्रीणि वषसहस्राणि त्रैतायुगमिहो यते ।

तस्य तावच्छती सन्ध्या द्विगुणा परिकीर्त्यते ॥६॥

द्वाभ्यामधर्मः पादाभ्यात्रिभिर्धर्मो व्यवस्थितः ।

यत्र सत्यञ्च सत्वञ्चलताधर्मो विधायते । ७

मत्स्य भगवान् ने कहा—चार सहस्र वर्षों का कृत युग कहा जाता है और उस युग की उतने ही सौ वर्ष की सन्ख्या होनी है जो द्विगुणा हे रविनन्दन ! हुआ करती है ॥ १ ॥ जिस कृत युग में धर्म के चार पाद पूर्ण होते हैं और अधर्म का विग्रह केवल एक ही पाद होता है । जिस युग में सभी मनुष्य अपने २ धर्म में निरत रहा करते थे । उस समय में सभी विभ्रगण धर्म में उत्तर होकर रहा करते थे और नृपों के बर्ग राजवृत्ति में स्थिर रहा करते थे । वैश्य लोग कृषि के कर्म में स्थित थे और शूद्र सेवा धर्म के करने वाले हुआ करते थे ॥ २, ३ ॥ उस समय में सत्य, शीघ्र और धर्म विधेय रूप से बधित हुआ करते थे । सत्पुरुषों के द्वारा सत्कर्म का समाचरण किया जाता था और बही स्यात् हुआ करता था । हे पार्थिव ! इस प्रकार का नीच जाति में भी जन्म ग्रहण करने वाले प्राणी भी सब धर्म को ही सज्ज रखने वाले जिसमें होते थे । वह कृतयुग का समय हुआ था ॥ ४ ॥ ५ ॥ तीन हजार वर्षों की अवधि वाला त्रेता युग कहा जाता है उस युग की उतने ही सौ वर्ष वाली दुगुनी सन्ख्या होनी है । इस युग में धर्म के केवल तीन ही धरण होते हैं और अधर्म दो पादों वाला रहा करता है । जिसमें सत्य और सत्व त्रेता का धर्म हुआ करता है

॥ ६ ॥ ७ ॥

त्रेताया विकृतिर्यान्ति वर्णस्त्वेतेन संशयः ।

चतुर्वरास्य वन्द्यस्याद्यान्ति दीर्घलम्पमाश्रमा ॥ ८ ॥

एष द्योतायुगगतिरिचित्रा देवनिर्मिता ।

द्वापरस्य तु या जेष्टा तामपि श्रोतुमर्हसि ॥ ९ ॥

द्वापरन्दे सहस्रे तु वर्षाणां रविनन्दन ! ।

तस्य तावच्छती सन्ध्या द्विगुणा युगमुच्यते ॥ १० ॥

तत्र चार्धपराः सर्वे प्राणिनो रजसा हताः ।  
 सर्वे नैष्कृतिका क्षुद्रा जायन्ते रविनन्दन ! ॥११॥  
 द्वाभ्यां धर्मः स्थितः पदभ्यामधर्मस्त्रिभिरुत्थितः ।  
 विपर्ययाच्छनैर्धर्मः क्षणमोक्तः कलियुगे ॥१२॥  
 ब्राह्मण्यभावस्य ततो तथोत्सुख्य व्यधीर्यते ।  
 व्रतोपवासास्त्यज्यन्ते द्वापरे यमपर्यये ॥१३॥  
 तथा वपसहस्रन्तु वर्षाणां द्वेष्टते अपि ।  
 सन्ध्ययासह सखात क्रूरकृतियुग स्मृतम् ॥१४॥

त्रेता मे ये चारो वर्षा विवृति को प्राप्त हो जाया करते हैं—  
 इसमें कुछ भी सफल नहीं है । चारो वर्षों की विवृति से चारो आधम  
 भी दुर्बलता को प्राप्त हो जाया करते हैं ॥१५॥ यही इस त्रेता युग की  
 गति है जो अति विचित्र और देवों के द्वारा निर्मित है । अब द्वापर युग  
 की ओर घेष्टाएँ हैं उन्हें भी आप श्रवण करने के योग्य होते हैं । हे रवि-  
 नन्दन ! द्वापर युग की अवधि दो सहस्र वर्षों की होती है और उसकी  
 उत्तरे ही सौ वर्ष की दुगुनी सन्ध्या है—इस प्रकार से यह युग कहा जाता  
 है ॥१६, १७॥ उस युग में सभी प्राणी रजोगुण से हत होते हुए अर्ध-  
 परामण हुआ करते हैं । हे रविनन्दन ! सभी प्राणी इस युग में नैष्कृतिक  
 और अत्यन्त क्षुद्र होते हैं । धर्म केवल दो ही चरणों वाला स्थित रहता  
 है और अधर्म के तीन पाद समुत्थित होकर रहता करते हैं । कलियुग में  
 विलुप्त विपर्यय हो जाने धर्म दाय को धर्म-ज्ञानः प्राप्त हो जाया करता  
 है ॥११, १२॥ फिर ब्राह्मण्य भाव का विनाश और ओत्सुका श्री विभीषण  
 हो जाया करता है । द्वापर युग में विपर्यय हो जाने पर व्रत और उपवास  
 आदि सब त्याग दिये जाया करते हैं ॥१३॥ फिर एक सहस्र वर्ष की  
 अवधि वाला तथा दो सौ वर्ष की सन्ध्या व सहित यह महान् क्रूर कलि-  
 युग सखात करव बताया गया है ॥१४॥

यथाधर्मंश्चतुष्पादः स्याद् धर्मोपादविग्रहः ।  
 काभिनस्तपसाच्छन्नाजायन्ते तत्र मानवाः ॥१५॥  
 ज्ञेयातिसात्त्विकः कश्चिन्न साधुर्न च सत्यवाक् ।  
 नास्ति का ब्रह्मभक्ता वा जायन्ते तत्र मानवाः ॥१६॥  
 बहद्धारगृहीताश्च प्रक्षीणस्नेहवृद्धताः ।  
 विजाः शूद्रसमाचारा सन्ति सर्वे कलौ युगे ॥१७॥  
 आभमाणा विपर्ययाः कलौ सपरिवर्तते ।  
 वर्णानाञ्चैव सन्देहो युगान्ते रविनन्दन ! ॥१८॥  
 विद्याद् द्वादशसाहस्री युगाद्-वा पूर्वाणिमिताम् ।  
 एव सहस्रपर्यन्त तदहो प्राज्ञमुच्यते ॥१९॥

जित बलिपुत्र ने अधर्म चारों पादों से युक्त रहा करता है और धर्म का केवल एक ही धरण अर्थात् रहता है । उस युग में मानव तप में समावृत्त होकर का भी उत्पन्न हुआ करते हैं ॥१५॥ इस युग में न तो कोई सात्विक सात्त्विक ही होता है और न कोई भी साधु एक सत्य वाणी बोझने वाला हुआ करता है । इसमें तो सभी मानव नास्तिक अथवा अश्रमिक उत्पन्न हुआ करते हैं ॥१६॥ सभी बहद्धार से ब्रह्म के हुए और शीघ्र स्नह के बन्धन से होते हैं । इस कतिपय में सभी विषय युद्ध के समान आचरण करने वाले हो जाया करते हैं कतिपय में सभी भाति परिवर्तित होकर अधर्मों का विपर्यय हो जाया जाता है । हे रविनन्दन ! इस युग के अन्त में तो वर्णों का भी सन्देह हो जाया करता है । पूर्ण में निर्माण की हुई यह युगों की आस्था बारह सहस्र वर्षों की जाननी चाहिए । इस प्रकार से एक सहस्र पर्यन्त यह ग्रहों का दिन कहा जाया करता है । ॥१७॥ ॥१८॥ ॥१९॥

ततोऽहनि गते तस्मिन् सर्वेपानेव जीविनाम् ।  
 सरीरनिवृत्तिं दृष्ट्वा लोकसहारबुद्धिः ॥२०॥  
 देवतानाञ्च सर्वाणां ब्रह्मादीनामहीयते ! ।



दैत्यानां दानवानाञ्च यक्षराक्षसपक्षिणाम् ॥२१॥

गन्धर्वाणामप्सरसां भुजङ्गानाञ्च पाथिव ! ।

पर्वतानां नदीनाञ्च पशूनाञ्चैव सत्तम ! ॥२२॥

तिर्यग्योनिगतानाञ्च सत्त्वानां कृमिणान्तथा ।

महाभूतपतिः पञ्च हृत्वा भूतानि भूतकृत् ॥२३॥

जगत्सहरणार्थाय कुरुते वंशस महत् ।

भूत्वा सूर्यश्चक्षुरी चाददानो भूत्वावायुः प्राणिनां प्राणजालम् ।

भूत्वा वह्निर्निर्दहत्सर्वं लोकान्भूत्वा मेघोभूय उग्रोऽप्यवपत् ॥२४॥

उस ब्रह्मा के एक दिन के ममाप्त हो जाने पर सभी जीवधारियों के शरीर की निवृत्ति को देखकर लोको के संहार की बुद्धि से हे महीपते ! समस्त देवताओं—ब्रह्मादिकों—दैत्यों—दानवों—यक्ष, राक्षस, पक्षियों—गन्धर्वों—अप्सरसगणों—हे पाथिव ! पर्वतों—नदियों—हे श्रेष्ठतम ! पशुओं तिर्यग्योनियों में रहने वाले सर्पों और कृमियों के भूतों के करने वाले महा-भूतों के पति पाथो भूतों का हरण करके जगत् के सहरण करने के लिए महान् वंशस किया करते हैं । उसके चक्षुओं को आदान करने वाले होकर—सब लोकों का निर्दहन करता हुआ वह्नि होकर एवं फिर अत्युग्र मेघ होकर वर्षा किया करता था ॥२०॥२१॥२२॥२३॥२४॥

### ५६—प्रलयकाल वर्णन

भूत्वा नारायणो योमी सत्त्वभूतिविभावसु । ।

गर्भस्तिग्निं प्रदीप्ताग्निं सशोषयति सागरान् ॥१॥

सत्त. गीत्वाण्वान् सर्वाद् नदीं नृपांश्च सर्वशः ।

पशवनाञ्च सलिलं सर्वमादाय रदिमग्निः ॥२॥

भित्वा गर्भास्तिग्निश्चैव महीङ्गत्वा रयात्सत्तात् ।

पातालजनमादाय पियन्तु रसमुत्तमम् ॥३॥  
 भूतानृक्कनेदमन्यञ्च यदस्ति प्राप्तिषु ध्रुवम् ।  
 तत् सर्वमरविन्दाक्षमादत्ते पुरुषोत्तमम् ॥४॥  
 वायुश्च भगवान् भूत्वा विधुन्वानोऽस्त्रिस जगत् ।  
 प्राणपानममानाक्षात् वायूनाक्षयते हरिः ॥५॥  
 ततो देवगणाः सर्वे भूतान्येव च यानि तु ।  
 गन्धोद्घ्राण क्षरीरञ्च पृथिवी सञ्चितगुणाः ॥६॥  
 जिह्वा रसश्च स्नेहश्च सञ्चिताः सलिले गुणाः ।  
 रूप चक्षुर्विपाकञ्च ज्योतिरेवाश्रितागुणाः ॥७॥

श्रीमत्स्य भगवान् ने कहा—सबकी मूर्ति योगी वारायण विमाधु  
 होकर अपनी अत्यन्त प्रशोभ गन्धस्थियों के द्वारा समस्त सागरों का समो-  
 पण किया करते हैं ॥ १॥ इसके अनन्तर सब भगवत्तों का—नदियों का और  
 सभी ओर कूपों के जल को पीकर तथा रश्मियों के द्वारा सब पर्वतों के  
 सन्निध को ग्रहण करके—अपनी किरणों से मही का भेदन करके नीचे  
 पहुँच कर रसानल से पाताल के जल का पान करके वहाँ के उत्तम मूल  
 को ग्रहण कर लेते हैं ॥ सूत्र—अमूर्क तथा अन्य जो भी भेदन करने योग्य  
 प्राणियों में होता है निश्चय ही उस सब अरविन्दाक्ष को पुरुषोत्तम से  
 लिया करते हैं ॥२, ३, ४॥ समस्त जगत् का विधुनन करने वाला  
 भगवान् वायु होकर फिर आहूँ प्राणायाम समान प्राणि वायुओं का  
 समाकर्षण किया करते हैं ॥ ५॥ इस अनन्तर सब देवगण और जो  
 सब भूत हैं उनका भी समाकर्षण कर लिया करते हैं ॥ गन्ध घ्राण को  
 तथा क्षरीर पृथ्वी को सब गुण सञ्चित हुआ करते हैं ॥ जिह्वा—रस और  
 स्नेह सलिल में गुण सञ्चित होते हैं ॥ रूप, चक्षु और विशाख ज्योति का  
 भी समग्रण करने वाले गुण हैं ॥ ६, ७ ॥

सूत्र. प्राणश्च चेष्टा च पवनेमश्रितागुणाः ।  
 शब्द श्रोत्रञ्च स्नान्येव गगनेमश्रितागुणाः ॥८॥

लोकमाया भगवता मुहूर्त्तेन विनाशिता ।  
 मनोबुद्धिश्च सर्वेषा क्षेत्रज्ञश्चेति यः श्रुतः ॥८॥  
 स वरेण्य परमेष्ठि हृषीकेशमुपाश्रिताः ।  
 ततो भगवत्तस्तस्य रश्मिभिः परिवारितः ॥९॥  
 वायुनाक्रम्यमाणसु द्रुमशाखासु चाश्रिताः ।  
 तेषा सपर्वणोद्भूतः पावकः शतधाज्वलन् ॥११॥  
 अदहन् च तदा सर्वं वृतः सम्बर्तं गोजलः ।  
 सपर्वतद्रुमान् गुल्मान् लतावस्तीस्तृणानि च ॥१२॥  
 विमानानि च दिव्यानि पुराणि विविधानि च ।  
 यानि चाश्रयणीयानि तानि सर्वाणि सोऽदहत् ॥१३॥  
 भरमीकृत्वा ततः सर्वान् लोकान् लोऽरुगुरर्हरिः ।  
 भूयो निर्वपियामास युगान्तेन च कर्मणा ॥१४॥

स्वर्ग-प्राण और चेष्टा पवन में समित गुण हैं । शब्द-शक्ति और आकाश मगन के सञ्चय करने वाले गुण हैं । भगवान् ने एक ही मुहूर्त्त में लोकमाया का विनाश कर दिया था । सबके मन-बुद्धि और जो क्षेत्रज्ञ गुण गया है वे सब उस वरेण्य परमेष्ठी हृषीकेश का उपाश्रय करने वाले हुए थे । इसके पश्चात् उन भगवान् की रश्मियों से सब परिवारित हो गया था ॥८॥ ९॥ १०॥ वायु के द्वारा द्रुमों की शाखाओं के आक्रमण भाग होने पर आश्रित हो गये थे । उनके तात्पर्य से समुद्रमग्न पावक सबको जलो से जलगा हुआ हो गया था । उस समय में सबको बुरा हुआ भगवत्क अवल ने जला दिया था । द्रुमों से मुक्त पर्वतों को—गुल्मों को—लता बल्गों और मृगों को—दिव्य विमानों को—विविध गुणों को और जो जो आश्रयों पर उन सबको उसने जला दिया था ॥११॥ १२॥ १३॥ इसके उपरान्त लोको के गुरु की हरि में समस्त लोको को भासीकृत करने फिर युगान्त कर्म के द्वारा निर्वपित किया था ॥१४॥

सहस्रवृष्टिः शतघा भूत्वा कृष्णो महाबलः ।  
 दिव्यतोयेन हविषा तपयामास मेदिनीम् ॥१५॥  
 ततः क्षीरनिकायेन स्वादुना परमाम्भसा ।  
 शिवेन पुण्येन महीनिर्वाणमगमत् परम् ॥१६॥  
 तेन रोधेन संछन्ना पयसा वर्षतो घरा ।  
 एकार्णवजलीभूता सर्वसत्त्वविवर्जिता ॥१७॥  
 महासत्त्वान्यापि विभुं प्रष्टान्यमितीजसम् ।  
 नष्टाकंपवनाकाशे सूक्ष्मे जगति सवृते ॥१८॥  
 संशोपमात्मना कृत्वा समुद्राणि देहिनः ।  
 दग्ध्वा सप्ताव्य च तथा स्वपितृयेक सनातन ॥१९॥  
 पी ण रूपमास्थाय स्वपितृयमितविक्रमः ।  
 एकार्णवजलव्यापी योगी योगमृपाश्रितः ॥२०॥  
 येनेकानि सहस्राणि युगान्येकार्णवाम्भसि ।  
 न चैनं कश्चिदव्यक्तं व्यक्तं वेदितुमर्हति ॥२१॥

महावृक्ष से सम्पन्न श्रीकृष्ण ने सैकड़ों प्रकार से सहस्र वृष्टि वाले हीकर दिव्य तोम हवि के द्वारा इस मेदिनी को तृप्त कर दिया था ॥ १५ ॥ इसके उपरान्त क्षीर सागर में रहने वाले परम स्वाद से युक्त शिव और पुण्य जल के द्वारा इस मही का परम निर्वाण हो गया था ॥ १६ ॥ फिर रौध से यह मेदिनी संछन्न हुई जलो की वर्षा से एकार्णवी भूत जल पूर्ण हो गई थी और यह सब सबको से विवर्जित थी ॥ १७ ॥ सूर्य-यवन और आकाश के नष्ट होने पर इस सूक्ष्म जल का सम्बरण हो जाता है और यह सब भी अमित भोज वाले विभु में सत्पूट हो जाया करते हैं ॥ १८ ॥ अपने ही आपकी आत्मा से समस्त समुद्रों का तथा देहधारियों का संशोषण करके सबको दग्ध करके तथा सप्तावित करके सनातन प्रभु एक ही उस समय में शयन किया करते हैं ॥ १९ ॥ अमित विक्रम वाले प्रभु पौराण रूप में समस्थित होकर शयन करते हैं

और एकार्णव के जल में व्यापक योगी योग का उपाश्रय किया करते हैं । २० ॥ उस एकमात्र सागर में इस प्रकार से योग निद्रा के आनन्द में शयन करने वाले प्रभु को अनेकों सहस्र युग व्यतीत हो जाया करते हैं । उस अवस्था में इस अव्यक्त को कोई भी व्यक्त रूप से जानने के योग्य नहीं हुआ करता है ॥२१॥

कश्चैव पुरोनाम किं योग कश्चयोगवान् ।

असौ कियन्त कालञ्च एकार्णवविधिप्रभुः ॥२२

करिष्यतीति भगवानिति कश्चन बुध्यते ।

न द्रष्टा नैव गमिता न ज्ञाता नैव पार्श्वगः ॥२३

तस्य न ज्ञायते किञ्चित्तमृते देवसत्तमम् ।

नमः क्षिति पवनमप प्रकाशप्रजापति भुवनधर सुरेश्वरम् ।

पितामहश्रुतिमिलयमहामुनि प्रशाम्य भूय शयनहारोचयत् ॥२४

यह पुरुष नाम वाला कौन है—योग क्या है और कौन इसके करने वाला है—यह विभु भगवान् कितने काल पर्यन्त इस एक मात्र सागर में शयन करते रहने की विधि को करेंगे—इसको कोई भी नहीं जानता है । न तो कोई इसके देखने वाला है—न कोई इसका ज्ञान प्राप्त करने वाला है न कोई ज्ञाता तथा पार्श्व में गमन करने वाला ही होता है ॥ २२, २३ ॥ उस देवों में श्रेष्ठ के बिना उसकी विषय में कोई भी

## ६०-यज्ञावतार वर्णन

एवमेकार्णवोभूते मेते लोके महाद्युति ।  
 प्रच्छाद्यसत्तिलेनोर्वा हृत्तो नारायणस्तदा ॥१॥  
 महतो रजसो मध्ये महार्णवसर मु व ।  
 विरजस्क महाबाहुमक्षय ब्रह्म य विदु ॥२॥  
 आत्मरूपप्रकाशेन तमसा सवृत् प्रभुः ।  
 मन सात्त्विकमाधाय यत्र तत् सत्यमाप्त ॥३॥  
 मायातम्य पर ज्ञान भूतन्तदब्रह्मणापुरा ।  
 रहन्यारण्यकादिदष्ट यच्चोपनिषद स्मृतम् ॥४॥  
 पुरण्योपज्ञइत्येतत् यत्पर परिकीर्तितम् ।  
 यश्चान्य. पुरुषाख्य स्यात् स एष पुरयोत्तम ॥५॥  
 ये च यज्ञकरा विप्रा येचत्विज इतिस्मृता ।  
 अस्मादेवपुरा भूता यज्ञेभ्यः श्रूयता तथा ॥६॥  
 ब्रह्मण प्रथम वचनादुद्गातारञ्च सागरम् ।  
 होतारमपि चाध्वर्यु बाहुभ्याससृजत् प्रभु ॥७॥

श्री भगवत् प्रवक्ष्यामि ते कथा—इस प्रकार स एकार्णवी भूतलोक में उस समय में महान् द्युति बाध हव नारायण सत्तिल स तवी का प्रच्छादन करके शयन किया करते हैं ॥ १ ॥ महान् रजोगुण के मध्य में, महार्णवसरो में जो विरजस्क ( रजोगुण स रहित ) महान् बाहुओं वाला अग्रय है जिसको ब्रह्म जानते हैं ॥ २ ॥ अपने रूप के प्रकाश से तम से सवृत् प्रभु सात्त्विक मन का आधान करके जिसमें रहते हैं वह साय है ॥ ३ ॥ पहिले ब्रह्म के द्वारा वह यथा सत्य परम ज्ञान प्राप्त हुआ था जो रहन्यारण्यक उद्दिष्ट था और जो ओपनिषद ज्ञान कहा गया है ॥ ४ ॥ जो परपुरण यज्ञ—यह परिकीर्तित विद्या ग्या है और जो अन्य है । जिसका नाम पुरण है वह ही पुरयात्तम प्रभु है ॥ ५ ॥ जो यज्ञों में सम्पादन करने वाले विप्र हैं वे आत्विज रहे गये हैं । पहिले इनो स यज्ञ क

सहित उपनिषदों की क्रियाएँ हैं। वह एकार्णव में शयन किया करते हैं जो पहिले बड़ा भारी उपश्रव्य हुआ था। हे विप्रगण ! जिस तरह से मार्कण्डेय को कुतूहल हुआ था। उसका अब आप लोग श्रवण करो। वह महामुनि उन भगवान् की कुक्षि में ही शीर्ष हो गये। वरदान के तंत्र से उनकी आयु भी बहुत से सहस्रों वर्षों की हुई थी ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥

अदरतीर्थप्रसाङ्गेन पृथिवीतीर्थगोचरान् ।  
 आश्रमाणि च पुण्यानि देवतायनानि च ॥१५  
 देशान् राष्ट्राणि चित्राणि पुराणि विविधानि च ।  
 जपहोमपर शान्तस्तपोधोर सभास्थितः ॥१६  
 मार्कण्डेयस्ततस्तस्य शर्मर्षवदाद्विनिः सुतः ।  
 स निष्क्रामन्नचात्मानं जानीते देवमायया ॥१७  
 निष्क्राम्याप्यस्य वदनादेकावमथो जपत् ।  
 सर्गस्तमसान्छन्नं मार्कण्डेयोऽन्वगैस्त ॥१८  
 तस्योत्पन्नं भयन्तोऽत्र मशयश्चात्मजीविते ।  
 देवदर्शनराहृष्टो विरमय परमज्ज्ञतः ॥१९  
 चिन्तयन् जलमध्यस्थो मार्कण्डेयोऽन्वगैस्त ।  
 किन्तु स्यात्तम चिन्तेय मोहस्त्वोऽनुभूयते ॥२०  
 व्यक्तमन्यतमोभावस्तेषां सम्भावितो मम ।  
 नहीदृशं जगत् वनेणमयुक्तं सत्यमहति ॥२१

तीर्थों के प्रसङ्ग से पृथिवी में स्थित प्रत्यक्ष तीर्थों का पर्यटन तथा पुण्यमय आश्रम देवों ने आयतन—देश—राष्ट्र—विविध एवं अनेक पुरों का भटन करते हुए जब एक होम में परायण तथा परम शान्त होकर गौर तपश्चर्या में समास्थित हो गये थे ॥१२॥१६॥ इससे पचास उनके मुप से शर्म मार्कण्डेय विनिःसृत होगये थे। वह निष्क्रमण करत हुए देव की माया से अपने आपरो मो नहीं जानते थे अर्थात् उनकी अपने

कर्मनिष्ठान को करने के लिये जो हुए थे उनके विषय में श्रवण करो ॥६॥ प्रभु ने प्रथम मुख से ब्रह्मा को और उदगाता सागर को फिर बाहुओं से होता और अश्वयु को सृजित किया था ॥७॥

ब्रह्मणो ब्राह्मणाच्छसि प्रस्तोतारञ्च सर्वशः ।

तो मित्रावरुणौ पृष्ठात् प्रतिप्रस्तारग्मेव च ॥८॥

उदरात् प्रतिहृत्तार होतारञ्चैव पार्थिव ! ।

अच्छावाकमथोव्यान्नेष्टारञ्चैव पार्थिव ! ॥९॥

पाणिभ्यामथ चाग्नीध्रसुब्रह्मण्यञ्च जानुतः ।

प्रावस्तुतन्तु पादाभ्यामुन्नेतारञ्च याजुषम् ॥१०॥

एवमेवैव भगवान् पौडशैव जगत्पतिः ।

प्रवक्तुं सर्वयज्ञानामृत्विजोऽसृजदुत्तमान् ॥११॥

तदेव वै वेदमय पुरुषो यज्ञसंस्थितः ।

वेदारचं तन्मयाः सर्वे साङ्गोपनिषदक्षियाः ॥१२॥

स्वपित्येकाणवे चैव यदाश्चर्यमभूत्पुरा ।

श्रूयन्ता तद्यथा विप्रा ! मार्कण्डेयकुतूहलम् ॥१३॥

गीणा भगवतस्तस्य कुक्षावेव महामुनि ।

यद्ववर्षसहस्रायुस्तस्यैव वरतेजसा ॥१४॥

उस प्रभु ने ब्रह्मा से ब्राह्मणों को और साँझ प्रस्तोता को सृजन किया था । दोनों मित्रावरुणों को और प्रति प्रस्तार को पृष्ठ से सृजित किया गया था । हे पार्थिव ! उदर से प्रतिहृत्ता और होता का सृजन किया गया था । दोनों ऊँदों से अच्छा वाक तथा नेष्टा की रचना की थी । दोनों हाथों से आग्नीध्र को तथा जानु से सुब्रह्मण्य को रचा था । पादों से प्रावस्तुत और याजुष उन्नेता का सृजन किया था । इस प्रकार से ही इन जगत् के पति भगवन् ने सोसहो सम्पूर्ण यज्ञों के प्रवक्ता उत्तम अश्विन को का सृजन किया था ॥८॥९॥१०॥११॥ वहीं यह वेदमय पुरुष यज्ञों में संस्थित है । इसी से परिपूर्ण मत्स्यपुराण वेद है तथा ब्रह्मा के



सहित उपनिषदों की क्रियाएँ हैं। वह एकार्णव में शयन किया करते हैं जो पहिले बड़ा भारी उपश्रमपूर्ण हुआ था। हे विप्रमण ! जिस तरह से मार्कण्डेय को बुलूहल हुआ था। उसका लक्ष बाप लोच श्रवण करो। वह महामुनि उन भगवान् की कुक्षि में ही शीर्ण हो गये थे। वरदान के तेज से उनकी आयु भी बहुत से सहस्रों वर्षों की हुई थी ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥

अटंस्तीर्यप्रसङ्गेन पृथिवीतापंगोचरान् ।  
 आश्रमाणि च पुण्यानि देवतायनानि च ॥१५॥  
 देशान् राष्ट्राणि चित्राणि पुराणि विविधानि च ।  
 जपहोमपर, शान्तस्तपोघोर समास्थितः ॥१६॥  
 मार्कण्डेयस्ततस्तस्य सनैर्वाक्त्राद्विनिः सृतः ।  
 स निष्क्रामन्नचात्मानं जानीते देवमायया ॥१७॥  
 निष्क्रम्याप्यस्य बदनादेकाणंबमथो जगत् ।  
 सर्गतस्तमसाच्छन्न मार्कण्डेयोऽन्वधीक्षत ॥१८॥  
 तस्योत्पन्न भयंतीत्र मशयश्चात्मजीविते ।  
 देवदर्शनसहृष्टो त्रिस्मय परमङ्गतः ॥१९॥  
 चिन्तयन् जलमध्यस्था मार्कण्डेयोऽन्वधौक्षत ।  
 किन्तु म्यान्मम चिन्तेयं मोहःस्वरूपोऽनुभूयते ॥२०॥  
 व्यक्तमन्यतमोभावस्तेषां सम्भावितो मन ।  
 नहीदृश जगत् केशममुक्तं सत्यमहंति ॥२१॥

तीनों के प्रसङ्ग से पृथिवी में स्थित अथवा तीनों का पर्यटन तदा पुण्यमय आश्रम-देवों के आश्रम-देश-राष्ट्र-विविध एवं अनेक पुरों का भ्रमण करते हुए जप एवं होम में परायण तथा परम शान्त होकर तपश्चर्या में समास्थित हो गये थे ॥१५॥१६॥ इसके पश्चात् उनके मुख से सनैर् मार्कण्डेय विनिःसृत हो गये थे। वह निष्क्रमण करत हुए देव की माया से अपने आपकी भी नहीं जानने थे क्योंकि उनके अपने

स्वरूप का भी ज्ञान नहीं था ॥ १७ ॥ मार्कण्डेय मुनि ने इनके मुख से  
 बाहिर निकल कर भी इस सम्पूर्ण जगत् को सब ओर अन्धकार से  
 समाच्छन्न और एकमात्र सागरमय देखा था ॥ १८ ॥ जब यहाँ पर  
 इस प्रकार जगत् का स्वरूप देखा था तो उसके हृदय में अत्यन्त तीव्र  
 भय समुत्पन्न हो गया था और अपने जीवन के रहने में भी संशय हो  
 गया था । जब देव का दर्शन प्राप्त किया तो उससे वह अत्यधिक प्रसन्न  
 हुआ और उसे महान् विस्मय समुत्पन्न हो गया था ॥ १९ ॥ जल के  
 मध्य में स्थित मार्कण्डेय महर्षि ने चिन्तन करते हुए यह सब कुछ देखा  
 था अपन हृदय में ऐसा विचार हो गया था कि क्यों ऐसी मेरी चिन्ता  
 हो रही है ? क्या यह एक मोह है अथवा स्वप्न का अनुभव किया जा  
 रहा है ॥ २० ॥ व्यक्त उनका अत्यन्तम भाव मुझे सम्भावित हुआ  
 था । यह मरत्य जगत् इस प्रकार के आयुक्त बलेश के योग्य नहीं होता  
 है ॥ २१ ॥

नष्टचन्द्रार्धपवने नष्टपर्जनभूतले ।

षतमः स्यादयं लोक इति चिन्तामवस्थितः ॥ २२

ददशं चापि पुर्य स्वपन्तं पर्वतोपमम् ।

सलिलेऽद्धमथो मग्नं जीमूतमिव सागरे ॥ २३

उत्तलन्तमिव तेजोभिर्गोयुत्तमिव भास्करम् ।

दार्ढ्या जाग्रतमिव भासन्तं स्येन तेजसा ॥ २४

देवद्रष्टुं मिहायात की भवानिति विस्मयात् ।

तथैव स मुनि वृत्तिं पुनरेव प्रवेक्षितः ॥ २५

सम्प्रविष्टं पुन वृत्तिं मार्कण्डेयोऽतिविस्मयः ।

तथैव च पुनर्मयो विज्ञानं स्वप्नदर्शनम् ॥ २६

स तथैव यदा पूर्वं यो घरागटते पुरा ।

पुण्डरीकं जरोरेता विविधान्याश्रमाणि च ॥ २७

अनुभूयंजमानांश्च समान्निवरदक्षिणान् ।

आपश्यद्देवकुक्षिस्थान् याजकान् शतशोद्विजान् ॥२०॥

माझ को प्राप्त हुए चन्द्र-सूर्य और पवन वाले तथा विनष्ट पर्वत एवं भूतल वाले इसमें यह कीन सा लोक होगा—इसी चिन्ता में वह बहुत समय पर्यन्त अवस्थित रहा था ॥ २२ ॥ पर्वत की उपमा वाली अर्थात् महान् विजयन शयन करते हुये एक पुरुष को देखा था जो उसका माग्य से एक जीमूत भी भाँति आधा भाग समित में मग्न हो रहा था ॥ २३ ॥ जो इनका तेजोमय था कि अग्नि के समान जलप्लवमान था—किरणों से युक्त भास्कर के सदृश था और रात्रि में अपने तेज से भासमान आधत् की भाँति दिखलाई दे रहा था ॥ २४ ॥ वह विस्मय से यह ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से कि आप कीन हैं देव का दर्शन प्राप्त करने के लिये यहाँ पर आये थे उग्रीही वह आये थे वैसे ही वह मुनि उसी भाँति कुक्षि में पुनः प्रवेशित हो गये ॥ २५ ॥ पुनः कुक्षि में सम्प्रविष्ट हुए मार्कण्डेय मुनि अत्यन्त विस्मित हो गये थे । फिर दूसरी बार भी उसी भाँति स्वप्न-दर्शन को वे जानने लगे थे । वह भी पूर्व की ही भाँति घोरामण्डल में पर्यटन किया करते हैं । जो घरा परम पुण्यमग वीरों के जलों समुपेन भी और इसी भाँति अनेक आधमों में भी ग्राह्य न करते हैं । उस समय में ऋतुओं के द्वारा समाप्त करती है अष्ट वक्षिणा त्रिनके ऐसे मनमानों को और देव की कुक्षि में स्थित सब डो याजक द्विजों को उसने देखा था ॥ २६, २७, २८ ॥

सद्वृत्तमास्थिता सर्वे वर्णाब्राह्मणपूर्वराः

चतारदन्ताश्रमाः सम्प्रभयाद्दिष्टागम्या तव ॥२९॥

एव दर्पशत साग्र भावण्डेयस्य धीमतः ।

चरत, पृथिवी सर्वान्न कुदधन्त, समोक्षित, ॥३०॥

सत वदन्निदय वं पुनर्गन्त्राद्विनिस्तृत ।

गुप्त अश्वोऽशाखाया घालमेव निरंश्त ॥३१॥

सतीर्षकार्णवजले नोद्वारेणानृताम्परे ।

अव्यग्रः क्रीडते लोके सर्वभूतविवर्जिते ॥३२॥

स मुनिर्विस्मयाष्टिः कौतूहलसमन्वितः ।

बालमादित्यसङ्काश नाशक्रोदभिर्वाक्षितुम् ॥३३॥

स चिन्तयस्तथैकान्ते स्थित्वा सलिलसन्निधौ ।

पूर्वदृष्टमिदं मन्ये शङ्कितो देवमायया ॥३४॥

अगाधसन्तिले तस्मिन् मार्कण्डेयः सुविस्मयः ।

प्लवस्तथात्तिमगमत् भयात् सन्दस्तलोचनः ॥३५॥

ब्राह्मण जिनमे सर्व प्रथम है ऐसे चारो वर्ण वाले लोग सद्वृत्त (चरित) में समास्थित थे । ब्रह्मचर्य आदि चारो आश्रम भी जैसे जैसे तुमको बतलाये थे । भली भाँति व्यवस्थित थे । इस प्रकार सम्पूर्ण पृथ्वी पर सञ्चरण करते हुए धीमान् मार्कण्डेय मुनि को डेढ़ सौ वर्षें व्यतीत हो गये थे किन्तु वह फिर भी उस बुद्धि का अन्त नहीं देख पाये थे । इससे उपरांत फिर किसी समय में पुनः वह मुख से बाहिर निकल पड़े थे और उन्होंने ग्योथ की छाया में छिपे हुए एक बालक को देखा था । नीहार न समाप्त जितना अन्धकार है ऐसे उन एकाग्रित जल में, जहाँ कि सभी प्रकार के भूतो का अभाव था, ऐसे लोक में वह व्यग्रता रहित होकर वीरता करता है ॥ ३६, ३७, ३८, ३९ ॥ उसको देखकर वह मुनि आश्चर्य में पूर्ण तथा समविष्ट होकर कौतूहल से समुत्त हो गया था । वह बालक मूर्ख के तुल्य तेज से परिपूर्ण था कि उसको वह देख नहीं सका था ॥ ३९ ॥ उसने चिन्तन करते हुए सलिल की सन्निधि में उसी भाँति एकाग्र में स्थित होकर देव की माया से शङ्का वा ना होकर इस सबको पूर्ण की भाँति देखा हुआ मानने लगता है ॥ ४० ॥ अत्यन्त विस्मय से मग्न होकर उस अगाध जल में तब से गन्धर्व गन्धो वाला वह मार्कण्डेय मुनि प्लवमान होता हुआ अत्यन्त ही घबराह हुआ का प्राण हा गया था ॥ ४१ ॥

त तर्ग्यं भगवानाह स्वामीनां वातयोपवान् ।

कर रहा है ? मुझको माकण्डेय—ऐसा कहकर मृत्यु को देखने के लिये योग्य होता है ? उस माकण्डेय मुनि ने उससे अत्यन्त क्रोध से इस प्रकार कहा था तब उसी भाँति भगवात् मधुसूदन पुनः उससे कहने लगे थे ।  
॥३६, ४०, ४१॥

अहं ते जनको वत्स ! हृषीकेश पिता गुरु ।  
आयु प्रदाता पौराण किं मान्स्वन्नोपसपसि ॥४२॥  
मा पुत्रकाम प्रथम पिता तेऽङ्गिरसोमुनि ।  
पूर्वमाराधयामास तपस्तीव्र समाश्रित ॥४३॥  
ततस्त्वा घोरतपसा प्रावृणोद मितौजसम् ।  
उत्तवानहमात्मस्थ महर्षिभिमितौजसम् ॥४४॥  
क समुत्सहते चान्यो यो न भूतात्मकात्मज ।  
द्रष्टुमेकाण्वगत धीढ त योगवत्तमना ॥४५॥  
ततः प्रहृष्टवदनो विस्मयोत्पुल्लसोचन ।  
मर्द्दिनं यद्वाञ्छतिपटो माकण्डयो महानृपा ॥४६॥  
नामगोत्रे ततः प्रोच्य क्षीर्घागुर्लोकवृजित ।  
तरमं भगवते भक्त्या नमस्कारमयाकरोत् ॥४७॥

श्री भगवान् ने कहा—हे वत्स ! मैं तेरा जनक हूँ । मैं परम पुरा-  
तन—हृषीकेश—पिता—गुरु और आयु के प्रदान करने वाला हूँ । क्यों तू  
मेरे समीप नहीं आ रहा है ? ॥४२॥ पहिले पुत्र की कामना रखने वाले  
तब पिता अङ्गिरस मुनि ने परम तीव्र तपस्या का समाधाय ग्रहण करके  
मरी ही समाराधना की थी ॥४३॥ इसका अनंतर आयत घोर तप से

उसने प्रमित ओज वाले तुमको प्राप्त करने का वरदान प्राप्त कर लिया था । इसके पश्चात् मेरे ही अन्दर स्थित अपरिमित ओज वाले महर्षि से मैंने कहा था जो भूतात्मकात्मज न हो ऐसा ग्रन्थ कौन है जो योग के भाग से ओड़ा करते हुए एकार्णव में व को देखन का उत्साह किया करता है ? । ४४, ४५॥ इसके पश्चात् प्रहृष्ट मुख वाला—विस्मय से समुत्फुल्ल सोचनो से संयुत—मस्तक में अञ्जलि पुट को बद्ध करते हुए महान् तपस्वी मार्कण्डेय अपने नाम अंदर ओज का उच्चारण करके शीर्षायु और लोक पूजिन ने उन भगवान् को भक्तिभाव से नमस्कार किया था ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

दृष्टेय तरेवतो मायामिमांशा तु-तवानघ ।  
यदेवाणवमध्यस्थ शेषे त्व बालरूपवान् ॥४८॥  
किं सज्जश्चैव भगवन् । लोके विज्ञायसे प्रभो । ।  
तर्कयेत्वा महात्मान को ह्यन्य स्थातुमहति ॥४९॥  
अहनारायणो ब्रह्मन् । सर्वभू सर्वनाशन ।  
अह सहस्रशीर्षाख्यं पदं गमिसजित ॥५०॥  
आदित्यवर्णं पुष्पो मखे ब्रह्ममयो मख ।  
अहमग्निह यमाहो यादरा पतिरव्यय ॥५१॥  
अहमिन्द्रपदे शक्रो वर्षाणा परिवत्सर ।  
अह यागी युगाख्यश्च युगान्तावर्तएव च । ५२॥  
अह सर्वाणि सत्वानि देवतान्प्रखिलानि तु ।  
भुजङ्गानामह शेषो ताक्ष्यो वै सबपक्षिणाम् ॥५३॥  
वृतात् सबभूतानां त्रिदवपा बालसजित ।  
अह धाम्मस्तपद्वाह सर्वाथमनिवासिनाम् ॥५४॥

अहं चैव सारिर्दिव्या क्षीरोदश्च महार्णवः ।

यत्तत् सत्यं च परममहमेकं प्रजापतिः ॥५३॥

अहं साख्यमहं योगोऽप्यहं तत्परमम्पदम् ।

अहमिज्याः क्रियाः चाहमहं विद्याधिपः स्मृतः ॥५४॥

भार्गव्येय महामुनि ने कहा—हे अनघ ! मैं अब सत्त्विक रूप से आपको इस देव माया के ज्ञान को जानने को मैं इच्छा करता हूँ कि जो बाल रूप वाले आप इस एकाक्षर के मध्य में स्थित होकर शयन कर रहे हैं ॥५३॥ हे प्रभो ! हे भगवन् ! आप इस लोक में किस सजा वाले होकर जाने जाते हैं अर्थात् लोक में आपका क्या नाम प्रसिद्ध है । मैं ऐसा अनुमान करता हूँ कि महात्मा आपको कोई अग्न्य स्थित करने के योग्य होता है ॥५४॥ श्री भगवान् ने कहा—हे ब्रह्मन् ! मैं सबकी उत्पत्ति करने वाला तथा सबका नाश करने वाला नारायण हूँ । मैं सहस्र शीर्षा नाम वाले पदों से अभिसज्जित होता हूँ ॥५५॥ मैं सूर्य के समान वर्ण वाला पुरुष और मख में ब्रह्ममय मख हूँ । मैं हव्य का वहन करने वाला धमिर्न हूँ तथा मैं अविनाशी यादवों का स्वामी हूँ ॥५६॥ मैं इन्द्र के पद पर

मैं ही इज्जत और क्रिया हूँ तथा मुझे ही विद्या का अधिप कहा गया है ।  
॥५४, ५५, ५६॥

अहं ज्योतिरहं वायुरहं भूमिरहं नभः ।  
अहमापः समुद्राश्च नक्षत्राणि दिशोदश ॥५७  
अहं वर्षमहं सोमः पर्जन्योऽहमहं रविः ।  
क्षीरोदसागरे चाहं समुद्रे बडवामुक्षः ॥५८  
वह्निः संवर्तको भूत्वा पिवंस्तोयमयं हविः ।  
अहं पुराणः परमं तयंवाहं परायणम् ॥५९  
अहं भूतस्य भव्यस्य वसंतमानस्य सम्भवः ।  
यत् किञ्चित् पश्यसे विप्र । यच्छृणोषि च किञ्चन ।  
यत्ल्लोके चानुभवसि तत् सर्वं भागनुस्मर ।  
विश्वसृष्टमया पूर्वं सृज्यं चाद्यापि पश्यमाप् ॥६०  
युगे युगे च श्रक्ष्यामि मार्कण्डेयात्पितृं जगत् ।  
सदेतदखिल सर्वं मार्कण्डेयावधारय ॥६१  
धुश्रूपुर्मम घर्माश्च कुक्षौ चर सुखं मम ।  
मम ब्रह्मा शरीरस्थो देवैश्च श्रुषिभिः सह ॥६२

मैं ही ज्योति, वायु, भूमि, नभ, आप ( जल ), समुद्र, नक्षत्र,  
दिश दिशाएँ, वर्ष, सोम, पर्जन्य, रवि हूँ अर्थात् पवन भूमि आदि समस्त  
मेरा ही एक रूपरा स्वरूप है । क्षीरसागर मे मैं विद्यमान हूँ तथा समुद्र मे  
बडवानस मेरा ही रूप है । सम्बर्तक अग्नि होकर असमय हवि का पान



करने वाला मैं परम पुरातन एवं परायण मैं हूँ । मैं ही अतीत होने वाले-  
 भव्य ( भविष्य ) और वर्त्तमान काल को समुत्पन्न करने वाला हूँ । हे  
 विप्र ! इस लोक में जो भी कुछ तुम देखते हो, श्रवण करते हो और  
 जितका भी कि किञ्चितमात्र अनुभव किया करते हो वह सभी मुझको ही  
 अर्थात् मेरा ही स्वरूप समझना चाहिये । मेरे ही द्वारा यह सम्पूर्ण विश्व  
 पहिले सृजित किया गया है और जो कुछ भी आज भी सृजन करने  
 के योग्य है उस सभी को मुझे ही देख लो ॥५७, ५८, ५९, ६०, ६१॥  
 हे मार्कण्डेय ! प्रत्येक युग में इस सम्पूर्ण जगत् को मैं ही सृजित किया करता  
 हूँ इसीलिये यह सभी कुछ जो भी है मेरा ही स्वरूप है और मुझ को ही  
 तुम समझ लो ॥६२॥ मेरे धर्मों के श्रवण करने की इच्छा वाले यदि तुम  
 हो तो तुम मेरी ही इस कुक्षि में सुख पूर्वक सचरण करते रहो । यह  
 ब्रह्मा भी मेरे इसी शरीर में स्थित है और सब देवगण भी उसके साथ में  
 विद्यमान रहा करते हैं ॥६३॥

व्यक्तमव्यक्तयोग मामवगच्छासुरद्विषम् ।

अहमेकाक्षरो मन्त्रस्त्वक्षरश्चोव तारकः ॥६४॥

परस्त्रिवर्गादोङ्कारस्त्रिवर्गार्थनिदर्शनः ।

एवमादिपुराणेशो वदन्नेव महामतिः ॥६५॥

वक्तृमाहूतवानाशु मार्कण्डेय महामुनिम् ।

ततो भगवतः कुक्षिं प्रविष्टो महामुनिम् ॥६६॥

स तस्मिन् सुखमेकान्ते शुश्रूषुह समव्ययम् ।

योऽहमेव विविधतनुं परिश्रितो महाणवे व्यपगयचन्द्रभास्वरे ।

शानेशचरन् प्रभुरपि हंससंज्ञितोऽमृतं जगद्विरहितकालपर्यये ॥६७॥

व्यक्त-अव्यक्त-योग वाला—असुरों का द्रोष्टा मुझको ही समझ  
 तो । एकाक्षर और तीन अक्षरों वाला तारक मन्त्र भी मेरा ही एक  
 स्वरूप है ॥६४॥ त्रिवर्ण से पर ओङ्कार और त्रिवर्ण के अर्थ का निदर्शन-  
 महामयि आदि पुराणोंने इस प्रकार म महामुनीश्वर मार्कण्डेय से कहते  
 हुए ही अपना मुख आह्वन कर दिया था और इसके उपरान्त वह मुनि  
 श्रेष्ठ उनकी कृति में प्रविष्ट हो गये थे ॥६५, ६६॥ वह उसमें एकान्त  
 में सुख पूर्वक अविनाशी हम का श्रवण करने वाले होकर कृति में सव-  
 रण करते हैं । जो यह मैं ही नाना भाँति वाले तनुओं का परिश्रम करके  
 इस महामन्त्र में त्रिप्रमे सूर्य और चन्द्र आदि सभी व्यवगत हैं हम की संज्ञा  
 वाला श्मश्रु भी छोड़े ८ चरण करता हुआ विरहित काल पर्यय में इस  
 जगत् का सूत्रन मैं ही किया है ॥६७॥

---

# तन्त्र महाविज्ञान

श्लोक में व्याप्त विभिन्न प्रकार के तन्त्र सम्बन्धी धर्मों को दूर करने और तान्त्रिक विषयों का जनोपयोगी बौद्धिक व वैज्ञानिक विश्लेषण करने वाली वषों की अथक खोज का परिणाम, दो खण्डों में प्रकाशित यह पुस्तक मौलिक सूत्र वृत्त से ओत प्रोत है। जनसाधारण में फैले उपेक्षा भाव को यह आश्रयण में परिवर्तित कर देगी, ऐसा हमारा विश्वास है क्योंकि तन्त्र एक उच्चकोट की वैज्ञानिक साधना प्रणाली है जिसकी सहायता से साधक भौतिक व आत्मिक दोनों क्षेत्रों में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त कर सकता है।

प्रथम खण्ड में तन्त्र की महत्ता, प्रामाणिकता, प्राचीनता, गोपनीयता उसके धर्म, सिद्धान्त, भाव, आचार व पूजा पर प्रकाश डाला गया है। पञ्चमकारों की तथाकथित घृणित साधनाओं का वास्तविक रहस्य समझाया गया है। शक्तिपात, नाद, बिन्दु, कला, मन्त्र, वर्ण, मातृका, मन्त्र, बीजाक्षर आदि विषयों का वैज्ञानिक स्पष्टीकरण किया गया है जिससे तन्त्र की वैज्ञानिकता पर कुछ भी सन्देह नहीं रह जाता।

दूसरे खण्ड में उचित साधना के विश्वव्यापी प्रसार, इतिहास, विज्ञान, दार्शनिक रूप, तान्त्रिक विवेचन व मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण पर खोजपूर्ण सामग्री दी गई है। वेद, उपनिषद्, पुराण योग वसिष्ठ, महाभारत, गीता, आरभ्यक वेदान्त व सांख्य में प्राप्य शक्ति की महत्ता का दिग्दर्शन किया गया है। दुर्गा, लक्ष्मी, काली, सरस्वती व दत्त महाविद्याओं काशी, तारा, पोटशी, भुवनेश्वरी, छिन्नमाता, भैरवी, घमावती, बरुणामुखी, मातङ्गी और कमला के स्वरूप व साधना विधानों का विषद वर्णन किया गया है जिससे साधक इच्छित तान्त्रिक सिद्धियों को प्राप्त कर सकता है।

इस तरह से तान्त्रिक विषयों का वैज्ञानिक प्रतिपादन और साधना विधान दोनों इनमें द्या गये हैं जिससे ग्रन्थ अग्न्यन्न उपादेय बन गया है।

मूल्य २ टण्ड १५) मात्र

प्रकाशक - संस्कृति संस्थान, छाजाकृतुव, घरेली (उ० प्र०)